मार्कण्डेय पुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण)



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियों, १८ पुराणों योग वासिष्ठ, आदि के प्रसिद्ध भाष्यकार और हिन्दी के लगभग १५० ग्रन्थों के रचयिता ।



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब वेदनगर, बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

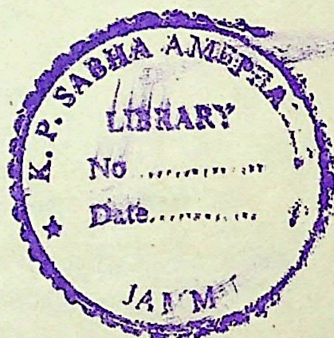


G. N. Mujoo

39, Karan Nagar

Jammu.

Jan: 1993.







मार्कण्डेय पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)



सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, योग वासिष्ठ,
२० स्मृतियाँ व १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार।



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर), बरेली—२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ७४२४२

प्रकाशक :
डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर)
बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)
फोन : ७४२४२

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

संशोधित संस्करण :
सन् १९८९

*

मुद्रक :
शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी
नव ज्योति प्रेस
सेठ भीकचन्द्र मार्ग मथुरा

*

मूल्य :
तेइस रुपये मात्र

भूमिका

भारतवर्ष के धार्मिक साहित्य में पुराणों का एक विशिष्ट स्थान है। यों तो हिन्दू धर्म में वेदों की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और अध्यात्म कीदृष्टि से उपनिषदों को समस्त संसार में अद्वितीत माना गया है, पर लोक-प्रियता की दृष्टि से पुराणों का दर्जा बढ़ा-चढ़ा है। जिस प्रकार ऊँचे दर्जे का साहित्य थोड़े विद्वानों द्वारा समादृत होता है, पर सामान्य कोटि की मनोरंजक, तथा रुचिकर पुस्तकों का प्रचार अगणित जनता में होमा है, उसी प्रकार वेद और उपनिषदों के गूढ़ तत्वों का विवेचन जहाँ गिने चुने, विद्वानों तथा अध्ययनशील व्यक्तियों के काम की चीज होती है, वहाँ पुराणों की कथाओं को गाँवों के अपढ़ लोग भी सुनते और समझते रहते हैं। यद्यपि कुछ कारर्णो से पठित समुदाय में इनके सम्वन्ध में कई प्रकार की भ्राँतियाँ फैली हुई हैं और अनेक आधुनिकता का दावा करने वाले सज्जन इनको सर्वथा कल्पित भी कह देते है, पर इसका कारण यही हैं कि उन्होंने कभी पुराणों के अध्ययन का प्रयत्न नहीं किया। पुराणोंका उद्देश्य प्राचीन युगों की घटनाओं और परम्परागत ऐतिहासिक कथाओं को सरल तथा मनोरंजक शैली में वर्णन करना है। इनमें से कुछ वास्तत्रिक, कुछ अर्घ-वास्तविक और कुछ धर्म, पुण्य व सच्चरित्रता की प्रेरणा देने के लिए कल्पित भी होती हैं। पुराणों में प्रत्येक विषय को धर्म, सदाचार, नीति का पुट देकर लोक-शिक्षा का माध्यम बनाने की चेष्टा की गई है। इसके लिए पुराण लेखकों को घटनाओं के वर्णन में संशोधन, परिवर्तन तथा कल्पना का आश्रय अवश्य लेना पड़ा है, पर उनका मूल आधार प्राय: ठीक ही है और यदि हम, उनके रूपक, अलंकार, अतिश-योक्ति, अर्थवाद का विश्लेषण करके अन्तराल में झाँकें तो अनेक बहुमूल्य और कल्याणकारी मणि-मुक्ताओं की प्राप्ति हो सकती है।

दूसरी बात यह भी है कि सब पुराणकार एक श्रेणी के और समान ज्ञान महत्व तथा दृष्टिकोण रखने वाले भी नहीं है। उनमें से कुछ का उद्देश्य पाठकों को अध्यात्मयोग, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना है। कुछ किसी विशेष देवता और सम्प्रदाय के महत्व का प्रतिपादन करके अपने अनुयायियों की श्रद्धा को दृढ़ करने के उद्देश्य से रचे गये हैं। कई पुराणों में सीधी सादी धार्मिक कथाओं और दृष्टान्तों द्वारा लोगों को उपासना, पूजा, भक्ति, व्रत, जप, तप, सदाचार आदि की शिक्षायें दी गई हैं, जिसमें सामान्य मनुष्य अपने जीवन को अधिक शुद्ध, पवित्र बनाकर समाज के लिए हितकारी सिद्ध हो सके। फिर पुराणों का प्रचार और प्रभाव देखकर कुछ थोड़ी विद्या बुद्धि के लोगों ने छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें लिखकर उनके नाम में भी 'पुराण' शब्द सम्मिलित कर दिया है। ऐसी स्थिति में जो लोग केवल दोष-दर्शन अथवा विरोधी की दृष्टि से ही पुराणों पर विचार करने लगते हैं उनको अपनी रुचि के अनुकूल विपरीत आलोचना, आक्षेप दोषारोपण का मामला भी उनमें मिल सकता है, पर हमारी सम्मति में उसकी न तो कोई उपयोगिता है, न प्रशंसा है और न उससे उनकी विद्या और बुद्धि की उत्कृष्टता का ही कोई प्रमाण मिलता है।

यदि पुराणों का गम्भीरता तथा सहानुभूति पूर्वक अध्ययन किया जाय तो मालूम होता है कि उनका मुख्य उद्देश्य वेद उपनिषद् दर्शन, स्मृतियों आदि शास्त्र ग्रन्थों में वर्णित धर्म, अध्यात्म, सृष्टिरचना, मानव सभ्यता के विकास सम्बन्धी गूढ़ तथ्यों का इस प्रकार विस्तार और व्याख्या सहित वर्णन करना था जिससे साधारण श्रेणी के जनसाधारण उनको समझकर लाभ उठा सकें। उनका दूसरा उद्देश्य उन्हें कथा के उपयोगी रूप में बनाना भी था जिससे अनपढ़ लोगों स्त्रियों और बालकों के सामने उनको बाँच कर उपदेश दे सकना सभव हो। इसलिए पुराणों को प्राय: आख्यान, उपाख्यान, दृष्टान्त रूपक कहानी आदि ऐसी सुगम और सरल शैली में लिखा गया है, जिससे सब प्रकार के व्यक्ति उनको प्रेम से सुन सकें और उनसे अपनी बुद्धि तथा स्थिति के अनुकूल लाभ उठा सके।

पौराणिक, साहित्य का एक लक्षण सर्ग (सृष्टि रचना) और प्रतिसर्ग

(सृष्टि का लय तथा विलीनता) के विषय में विचार करना है। यद्यपि यह एक बहुत जटिल तथा विवादग्रस्त विषय है, जिसके सम्बन्ध में संसार के बड़े विद्वान् और वैज्ञानिक तरह-तरह के मतभेद प्रकट करते रहते हैं पर पुराणों में इसे देवासुर संग्राम के रूप में ऐसा मनोरंजक बना दिया है कि पाठक कहानी के द्वारा ही सृष्टि-विज्ञान के मोटे तथ्यों को जान लेता है। इसी तरह प्राचीन राजवंशों का वर्णन भी पुराणकारों ने परोपकार, उदारता, त्याग, तपस्या के उदाहरण दिखाने के ढंग से किया है। यह आवश्यक नहीं कि राजवंशों की ऐसी नामावलियों में प्रत्येक राजा के नाम आ ही जायें पर उनमें से ऐसे राजाओं को छांटकर उनका विशेष रूप से वर्णन किया गया है जिनके चरित्र और कार्यों से हम किसी प्रकार की सत्‌शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को ऊँचा उठा सकते हैं।

इस दृष्टि से यदि हम कहें कि पुराण-ग्रन्थ भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, इतिहास के भंडार हैं तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं है। एक विद्वान् के कथनानुसार 'पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है, इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता, भारतीय-जीवन की दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। इनमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है। लोक-जीवन के सभी पक्ष इनमें अच्छे प्रकार प्रतिपादित हैं। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं, मानव मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना या योजना नहीं, मनुष्य जीवन का कोई अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझने में बहुत कठिनाई होती है, वे बड़े रोचक ढंग से, सरल भाषा में, आख्यान आदि के रूप में इनमें वर्णित हुए हैं।' एक अन्य लेखक ने कहा है कि 'भारतीत धर्म, दर्शन और संस्कृति सदाचार एवं सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक विषय पुराणों में आये हैं। वस्तुतः पुराणों की वर्णन शैली से स्तब्ध हो जाना पड़ता है। किन्तु इनमें सबसे महत्वपूर्ण अंश वेदों की अध्यात्म ब्रह्मविद्या या सृष्टि विद्या है, जिसे पुराणों ने खुलकर स्वीकार किया है। 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' यह सूत्र ही मानों पुराण का रचना बीज बन गया था। इस दृष्टि से 'वेद-विद्या' का ही लोक सुलभ अवान्तर रूप 'पुराण-विद्या' है।'

मार्कण्डेय पुराण की विशेषता—

महापुराणों के पाँच मुख्य लक्षण बताये गये हैं सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वतर और वंशानुचरित। यद्यपि ये लक्षण थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी प्रसिद्ध पुराणों में पाये जाते हैं तो भी जिन पुराणों का उद्देश्य किसी विशेष देवता या सम्प्रदाय की पुष्टि करना है, उनका विशेष ध्यान उसी तरफ लग जाता है और इन मूल विषयों के वर्णन को भी उसी रंग में रंग दिया जाता है। पर मार्कण्डेय 'पुराण' इस त्रुटि से अधिकांश में बचा हुआ है और उसमें मुख्य रूप से धर्म, नीति, सदाचार के प्रतिपादन को ही अपना लक्ष्य बनाया है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव में से किसी देवता को बढ़ाने के लिए दूसरे की हीनता नहीं दिखाई गई है। इसी प्रकार अग्नि, सरस्वती, सूर्य आदि का भी समान भाव से स्तवन किया गया है। इस निष्पक्षता की भावना के फलस्वरूप इस पुराण में विभिन्न विषयों का यथार्थ रूप में वर्णन करने की तरफ ध्यान दिया गया है, जिनसे उनकी उपयोगिता बढ़ गई है इस दृष्टि से यह पुराण हिन्दू-धर्म की समन्वयवादी विचारधारा की एक बहुत उत्तम कृति है जिसने पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों के भेदभाव मिटाने का प्रयत्न करते हुए सब देवों की एकता पर जोर दिया है। इसका विचार क्षेत्र इतना उदार है कि केवल हिन्दू सम्प्रदायों में ही नहीं वरन् बौद्ध और जैन जैसे सर्वथा भिन्न समझे जाने वाले मतों के प्रति भी पृथकत्व की भावना नहीं रखी है। भगवान् भास्कर की स्तुति करते हुए कहा है—

विस्पष्टा परमा विद्या ज्यतिर्भा.शाश्वती स्फुटा।
कैवल्यं ज्ञानमाविभू: प्रकाम्यं संविदेव च॥
बोधश्चावगतिश्चैंव स्मृतिर्थिज्ञानमैव च।
इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वत:॥

अर्थात् 'वैदिकों की पराविद्या, ब्रह्मवादियों की शाश्वत ज्योति जैनों का कैवल्यं, बौधों की बोधागति सांख्यों का ज्ञान योगियों का प्राकाम्य,

वेदान्दियों का संवित्, धर्म शास्त्रियों की स्मृति योगाचार का विज्ञान ये सब रूप एक ही महाज्योतिष्मान सूर्य के विभिन्न दर्शन हैं।'

इसकी दूसरी विशेषता 'कर्म' को प्रधानता देना है। अन्य अनेक लेखकों ने जहां-यज्ञ-हवन आदि को ही धर्म का साधन माना हैं अथवा गृह त्याग करके तपस्वी या संन्यासी बन जाने को आत्म-कल्याण का मार्ग बतलाया है, वहाँ 'मार्कण्डेय पुराण' में 'देवतत्व' 'इन्द्रत्व' और ब्राह्मणत्व तक को कर्मों का परिणाम बतलाया है। यहाँ कर्म का तात्पर्य पूजा, पाठ जप तप से नहीं वरन् परोपकार और दुःखी प्राणियों के कष्ट निवारण से ग्रहण किया गया है। ऐसे कर्म की प्रशंसा करते हुए पुराणकार कहते हैं—

'मनुष्य का जो कर्म करुण से प्रेरित होता हैं और जिसमें किसी प्रकार के कपट का भाव नही होता, उससे मनुष्य को किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है।'

बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से देश में जब भिक्षु, मुनि श्रमण आदि की संख्या बहुत अधिक बड़ा गई थी और गृहस्थ धर्म का उत्तरदायित्व पूरा किये विना ही 'निर्वाण' और 'मोक्ष' नाम पर कार्यक्षम व्यक्ति निकम्मा जीवन व्यतीत करने लगे थे तब मार्कण्डेय ने गृहस्थ-आश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की और स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'जो गृहस्थ धर्म का पालन करके पूर्वजों तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता वह गृह त्याग करके भी किसी प्रकार की सुगति किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? इस पर जब विपक्षी यह आक्षेप करते थे कि वेद और उपनिषदों में कर्म-मार्ग को अविद्या कहा है तो फिर उसका अनुसरण क्यों करना चाहिए, तो मार्कण्डेय का उत्तर था कि 'वेदों का यह कथन असत्य नहीं है कि कर्म 'अविद्या' है पर साथ ही यह भी कह दिया है कि विद्या तक पहुँचने का मार्ग अविद्या ही है। कर्तव्य-कर्म का पालन करके जो संयम का ढोंग करता है वह उत्थान के बजाय अधोगति के गढ़े में गिरता है।' इस सिद्धान्त का बहुत स्पष्ट समर्थन 'ईशोपनिषद्' में किया गया है जिसमें विद्या और अविद्या का समन्वय करते हुए कहा है।

विद्या चाविद्या न यस्तद वेदोमयं सह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।

अर्थात् मनुष्य के लिये विद्या रूप ज्ञान-तत्व और अविद्या रूप कर्म-तत्व दोनों का जानना ही आवश्यक है। वह कर्मों के अनुष्ठान से मृत्यु को पारकर ज्ञान के अनुष्ठान अमृतत्व का उपभोग करता है।' सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए कर्मों से कुशल होने की आवश्यकता है और पारलौकिक जीवन में सर्वश्रेष्ठ स्थिति तक पहुँचने के लिए ज्ञान का होना अनिवार्य है। साथ ही यह भी निश्चित है कि कर्म की कुशलता प्राप्त किये विना ज्ञान और मोक्ष का दावा करना एक प्रकार की मूढ़ता है। गीता में भी 'योग: कर्मसु कौशल' कहकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। शुकदेव और दत्तात्रेय जैसे पूर्व जन्मके सिद्ध योगियों का उदाहरण तो अपवाद स्वरूप है सामान्य मनुष्यों के लिए जीवन को सार्थक बनाने का कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही हैं।

गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन के साथ मार्कण्डेय ने नारी के महत्व को भी बतलाया है और सामाजिक जीवन में उसे उचित स्थान दिये जाने का समर्थन किया है। यद्यपि बौद्ध-युग में स्त्रियों को भी भिक्षुणी बनने का विधान था, पर गृहस्थी के रूप में उनके दर्जे को बहुत घटा दिया था। उनके कथनासार नारी मोक्ष प्राप्ति में एक बड़ी बाधा है इसलिए उसका त्याग और उपेक्षा ही मोक्षाभिलाषी के लिए अवश्यक है। स्वयं बुद्ध भी अपनी स्त्री यशोधरा को आकस्मिक रूप से छोड़कर चले आये थे इससे इस भावना को और भी अधिक बल मिला था। 'मार्कण्डेय पुराण' ने इस धारणा को सर्वथा अग्राह्य बतलाकर स्त्रियों के ऐसे उपाख्यान उपस्थित किये जिनमें उनको धर्म अर्थ काम मोक्ष की पूर्ण रूप से सहायिका माना गया। मदालसा उपाख्यान (१९,६६,७०) में कहा गया है—

'पति को भार्य्या की सदा रक्षा और पालन करना चाहिए। भार्य्या भर्ता की सहायता होने पर सम्यक प्रकार धर्म अर्थ काम की सिद्धि का

निमित्ति होती है। भार्य्या और भर्त्ता दोनों ही जब-परस्पर में अनुकूल होते हैं तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धर्मादि त्रिवर्ग में समाहित होने के कारण पुरुष जिस प्रकार भार्य्या के बिना कभी धर्म अर्थ का लाभ करने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार भार्य्या भी स्वामी के बिना धर्म-साधन में समर्थ नहीं होती। ये धर्म आदि दोनों के ही सम्यक प्रकार से आश्रित रहते है। उदाहरण के लिए देवता पितृ, भृत्य और अतिथियों का सत्कार न होने, से धर्माचरण की पूर्ति नहीं होती। यदि पुरुष पर्याप्त धन कमा कर ले आवे पर घर में भार्य्या न हो अथवा वह कुभार्य्या हो तो वह सब धन बिना कुछ लाभ पहुँचाये क्षय को ही प्राप्त होता है। इसलिए पुरुष और स्त्री जब समान रूप से धर्म का पालन करते हैं, तभी त्रयी धर्म लाभ करने में समर्थ होते हैं।'

मार्कण्डेय पुराण के पांच विभाग:—

यद्यपि यह पुराण मार्कण्डेय ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हैं, पर इसमें वर्णित कथा प्रसङ्गों के आधार पर ही यह प्रकट होता है कि यह कई वक्ताओं के मुख से निकल कर पूर्ण हुआ है। हम निम्न रीति से इसे ५ भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) अध्याय १ से ६ तक जैमिनि ने मार्कण्डेय से महाभारत सम्बन्धी शङ्काओं के चार प्रश्न पूछे हैं। पर मार्कण्डेय ने समयाभाव से उनका उत्तर स्वयं न देकर जैमिन को विन्ध्याचल पर्वत में रहने वाले धर्म-पक्षियों के पास भेज दिया जिन्होंने उनकी शंकाओं का पूर्ण रूप से समाधान किया।

(२) अध्याय १० से ४४ तक प्राणियों के जन्म, मरण, विकास आविर्भाव, निरोभाव आदि के विषय में प्रश्न किया गया। इसका उत्तर वैसे धर्म पक्षियों ने दिया, पर इनका वास्तविक वक्ता जड़ सुमति है, जिसने किसी समय अपने पिता को यही कथा सुनाई थी।

(३) अध्याय ४५ से ८० तक मार्कण्डेय ने अपने शिष्य क्रौष्टुकि के प्रति इस पुराण के मूल विषय का वर्णन किया है।

(४) अध्याय ८१ से ९२ तक देवी की कथा है, जिसे मेधा ऋषि ने कहा है। यह कथा देवी भागवत से मिलती हुई है तथा अन्य पुराणों में भी यह विस्तार के साथ पाई जाती है।

(५) अध्याय ९३ से अन्तिम अध्याय तक कुछ विशेष राजाओं का वर्णन किया गया है।

इस पुराण में वर्णित आख्यानों की विविधता और कई वक्ताओं के मुख में इसका कथन देखते हुए स्वाभावतः यह अनुमान होता है कि मूल पुराण में कुछ उपयोगी अंश बाद में संग्रह करके सम्मिलित किये गये हैं। तो भी देशी और विदेशी विद्वान् आलोचकों की सम्मति के अनुसार यह अब से सोलह-सत्रह सौ वर्ष पूर्व वर्तमान रूप में आ चुका था।

मार्कण्डेय पुराण के मुख्य विषय–

इस पुराण का आरम्भ जैमिन और मार्कण्डेय के सम्वाद के रूप में होता है। जैमिनि व्यासजी के शिष्य थे और उनकी जगत् प्रसिद्ध रचना महाभारत के बहुत बड़े प्रशंसक थे तो भी स्वतन्त्र चिन्तक होने के कारण उन्हें उसकी कुछ घटनाओं में सन्देह हुआ और मार्कण्डेयजी से उन्होंने उनका समाधान करके की प्रार्थना की उनके चार प्रश्न इस प्रकार थे– (१) जगत् की सृष्टि स्थिति संहार करने वाले वासुदेव निर्गुण होकरभी किस कारण मनुष्यत्व कृष्णावतार को प्राप्त हुए? (२) अकेली द्रौपदी किस प्रकार पाँचों पाण्डवों की महिषी हुई? (३) महाबलशाली बलरामजी ने किस प्रकार तीर्थयात्रा करके ब्रह्म हत्या का प्रायश्चित किया? (४) महातेजस्वी पाण्डवों द्वारा द्रोपदी से उत्पन्न पाँचों पुत्र किस कारण अववाहित अवस्था में ही मारे गये? इन प्रश्नों पर विचार किया जाय तो प्रथम प्रश्न ही महत्व का है, जिसका निर्णय करने का अति प्राचीनकाल से आज तक होता आता है। जब कि परमात्मा पूर्णतया और निराकार है तो वह किस प्रकार सगुण बनकर संसार की रचना की व्यवस्था ही नहीं करता वरन् मनुष्यों के रूप में अवतार लेकर दुष्टों से इसकी रक्षा भी करता है। यह प्रश्न सदैव दार्शनिकों तथा विचार-

शील लोगों के मध्य विवाद का विषय बना करता है। अन्य धर्म वालों ने भी अपने बुद्ध तीर्थङ्कर, ईश्वर-पुत्र आदि को विशेष आत्मा के रूप में बतलाया है पर पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार साक्षात् परब्रह्म का इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होना एक ऐसी घटना है जिसका समाधान सहज में नहीं किया जा सकता ? इसलिए जैमिनि ने उस युग के श्रेष्ठ ज्ञानी समझे जाने वाले मार्कण्डेय के सामने सर्वप्रथम प्रश्न यही रखा कि वे निर्गुण या सगुण की समस्या का ठीक ढङ्ग से निर्णय करें।'

अगले अध्याय में उन चार धर्म पक्षियों की कथा का वर्णन किया गया है जिनके मुख से मार्कण्डेय पुराण कहलवाया गया है यद्यपि यह कथा मुख्यत: अभिमान से हानि और अतिथि सत्कार की पराकाष्ठा दिखाने के उद्देश्य से ही लिखी गई पर उसमें स्थान-स्थान पर महत्व-पूर्ण दशाओं को सन्निवेशित किया गया है। जैसी जीवन की अस्थिरता का वर्णन करके मनुष्य को प्रत्येक अवसर पर निर्भय रहकर कठिनाईयों का सामना करने के सम्बन्ध में कहा गया हैं—

'युद्ध से भागने वालों तथा युद्ध में लड़ने वालों का जीवन उतना ही होता है जितना विधाता द्वारा स्थिर किया रहता है। किसी का भी जीवन उसकी इच्छा के अनुसार नहीं होता। कोई अपने घर में रहने पर भी मरता है, कोई भागकर भी मरता है, कोई खाते-पीते ही मर जाता है। कोई स्वस्थ शरीर से विलास करता हुआ शस्त्रादि से बचकर भी काल के कराल गाल में जा पड़ता हैं, कोई तपस्या में निरत और कोई योगाभ्यास करते यमालय गया है, किन्तु अमर कोई नहीं हुआ। इसलिए कार्यरता पूर्वक युद्ध से विमुख होना मनुष्य के लिए सर्वथा अशोभनीय हैं।

धर्म-पक्षियों का उपाख्यान–

तीसरे अध्याय में एक सत्यनिष्ठ सुकृत नामक मुनिका उपाख्यान है। इनकी परीक्षा लेने के लिए इन्द्र बुड्ढे गिद्ध का रूप धारण करके आया और उनसे अपने आहारके लिए मनुष्य का माँस माँगा सुकृतने पहले अपने चारों पुत्रों को बुलाकर गिद्ध का आहार बनने के लिए कहा पर वे भयवश

इसके लिए तैयार न हो सके। तब पिता ने उनको पक्षी की योनि में उत्पन्न होने का शाप दिया और स्वयं गिद्ध का आहार बनने के लिए देह त्याग करने लगा। इस पर इन्द्र ने प्रकट होकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और इच्छानुसार वरदान दिया। इस प्रसंग में चारों पुत्रों ने मानव-शरीर की वास्तविकता का जो वर्णन किया है वह बड़ा भावपूर्ण और साथ ही कवित्वमय है। उन्होंने कहा—

'यह मानव-देह एक नगर के समान है जो प्रज्ञा रूपी चहार दीवरी से घिरा हुआ है। हड्डियाँ इसके खम्भे हैं, इसकी दीवारें चमड़े से बनी हैं और रक्त, माँस, चर्बी आदि से लिपी हैं। नसों का जाल इसे चारों ओर से घेरे हुए हैं, इस पुरी के बहुत बड़े नौ दरवाजे हैं जिसके भीतर चैतन्य रूपी पुरुष राज्य करता है। मन और बुद्धि राजा के दो मन्त्री है पर आपस में विरोध रहने के कारण वे एक दूसरे का प्रतिरोध करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह नामक राजा के चार शत्रु हैं वह सदा राजा के नाश की चेष्टा करते रहते हैं।'

वह राजा जिस समय नौ द्वारों को रोक कर भीतर प्रस्थान करता है तब उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह निर्भय होकर रहती है। उस समय शत्रुओं का उस पर कुछ भी वश नहीं चलता पर जब वह सब द्वारों को खोलकर रहता है तब 'अनुराग' नामक शत्रु नेत्रादि से आक्रमण करता है। यह शत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रबल है। उसी समय लोभ, मोह और क्रोध रूपी तीनों शत्रु उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। वह राग रूपी शत्रु इन्द्रिय रूपी दर्वाजों द्वारा पुरी में घुसकर मन और बुद्धि के संग संयुक्त होने की अभिलाषा करता है। यह दुर्द्धष राग समस्त इन्द्रियों और मन को वशीभूत करके प्रज्ञा रूपी परकोटा का भग्न करता है। बुद्धि भी मन को राग के वशीभूत देखकर तत्काल नष्ट हो जाती है। तब अमात्यहीन तथा प्रज्ञा द्वारा त्यागा हुँआ राजा अकेला रह जाता है और शत्रुगण उसके छिद्रों (निर्बल स्थानों) को जानकर उसे नष्ट कर डालते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ रूपी चारों शत्रु स्मृति-शक्ति का

नाश कर देते हैं। राग से क्रोध होता है, क्रोध से लोभ उत्पन्न होता है लोभ से मोह की उत्पत्ति और उससे स्मृति नाश होता है। स्मृति नाश से बुद्धि नाश और बुद्धि का नाश होने से सर्वनाश होता है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म तथा अवतार–

जैमिनि ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में कि निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप क्यों और कैसे धारण करते हैं पक्षियों ने एक 'चतुर्व्यूहात्मक' सिद्धान्त का वर्णन किया। उन्होंने कहा कि 'तत्वदर्शी मुनियों के मतानुसार नार' जल को कहते हैं। वह 'नार' ही एक मात्र जिसका अयन अर्थात् घर था उसको 'नारायण' कहा जाता है। वही अनन्तलीला निधान भगवान् विभु नारायण' सगुण और निर्गुणात्मक द्विविध रूप से चार मूर्तियों में अवस्थित हैं। उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणी से अतीत है, पंडित लोग, जिसको शुक्ल वर्ग कहते हैं, जो नित्य रूपिणी मूर्ति तीनों गुणों को अति क्रम करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधान स्वरूप पहिली मूर्ति का नाम 'वासुदेव' मूर्ति है। इसमें ममता का लेश-मात्र भी नहीं है। उसका रूपवर्ण, नाम जो कुछ कहा जाता है वह सब कल्पनामय है, क्योंकि योगी भी उसका वास्तविक अनुभव नहीं कर सकते वह मूर्ति सव काल विराजमान परम पवित्र तथा सदा एक रूप हैं।

दूसरी मूर्ति 'शेष' या संकर्षण' के नाम से पाताल में निवास करती है और इस पृथ्वी को मस्तक पर धारण किये हुए हैं। इस मूर्ति ने तामसी होने से तिर्यगयोनि अवलम्बन की है। तीसरी मूर्ति जिसके कारण सम्पूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते हैं, जिसके द्वारा प्रजा पालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं, उस सत्वगुणमयी मूर्ति का नाम 'प्रद्युम्न' मूर्ति है। चौथी मूर्ति पन्नग शैया पर जल में शयन करके वास करती है, वह रजोगुण युक्त है। उसके द्वारा ही सदा सृष्टिकार्य सम्पम्न होता है, इस मूर्ति का नाम 'अनिरुद्ध' मूर्ति है। भगवान् की प्रजापालन कारिणी जो तीसरी प्रद्युम्न मूर्ति है, उसी के द्वारा पृथ्वी में सदा धर्म संस्थापन होता है। धर्म का विनाश करने वाले उद्धत असुरगण उसी के द्वारा मरते हैं और उनके द्वारा ही धर्म रक्षा परायण प्राणी रक्षित होते हैं।

मार्कण्डेय पुराण के मतानुसार उस सृष्टिकर्ता परमेश्वर में निर्गुण और सगुण, अमूर्त और मूर्त, पर और अपर इन दोनों का समन्वय पाया जाता है। जो 'अमूर्त' और 'पर' है उसी का 'अरूप' कहा गया है, एवं जो 'मूर्त' और 'अपर है वही उस परमआत्मा-नारायण विष्णु का विश्व स्वरूप है। जो लोग समझते हैं कि भगवान् केवल क्षीरसागर में शयन कर रहे हैं अथवा वैकुण्ट में विराजमान हैं या गोलोक में लीला कर रहे हैं, वे अभी सत्य से दूर हैं। भगवान् तो एक सर्वव्यापी तत्व हैं और इस विश्व में जहाँ जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह उन्हीं का रूप है। इस तथ्य को 'विष्णु पुराण' में भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है—

न तद्योग पूजां शक्यं नृपः चिन्तयितुं यतः।
ततः स्थूल हरेरूपं चिन्तयेद्विश्व गोचरम् ॥५५
हिरण्यगर्भो भगवान् वासबोऽथ प्रजापतिः।
मारुतो वसवो रुद्रा भास्करोस्तारका ग्रहाः ॥५६
गन्धर्वयक्षा दैत्याद्याः सकला देवयोनयः।
मनुष्याः पशवः शैलाः समुद्राः सरितः द्रुमा ॥५७
भूतं भूतान्य शेषाणि भूतानां ये च हेतवः।
प्रधानादि पंचतन्मात्र विशेषान्तं चेतनान्तकम् ॥५८
एक पादं द्विपादं च बहुपादमपादकम्।
मूर्तमेतत् हरेरूपं भावनात्रियात्मकम् ॥५९
एते सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्म स्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ॥६०

(६—७)

अर्थात् 'ये जो विश्व में सर्वत्र दिखालाई पड़ने वाले पदार्थ हैं' यह विष्णु का स्थूल रूप है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, भगवान् वासुदेव, प्रजापति मरुद्गण, वसु रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, गृह, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य आदि देवयोनियाँ मनुष्य पशु पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष सम्पूर्ण भूत और उन भूतों के जितने कारण प्रधान (मूल प्रकृति) से लेकर पंच तन्मात्राओं तक हैं और जिसमें चेतन-

अचेतन दोनों सम्मिलित हैं, एक पाद, द्विपाद बहुपाद पर बिना पैरों वाले (सरीसृपादि) जितने प्राणी हैं वे सब विष्णु के मूर्ति रूप हैं। इसे ही 'इदं सर्वम्' या चराचर जगत् कहते हैं। इसकी रचना तीन प्रकार की भावनाओं से हुई—ब्रह्म भावना कर्म भावना और आध्यात्मिक भावना इन्हें क्रमशः सत्व रज और तम भी समझा जा सकता है। परब्रह्म रूप विष्णु जब अपनी शक्ति से संयुक्त होता है तब इन्हीं तीन भावों में अपने को प्रकट करता है।'

भगवान् के निर्गुण और सगुण रूप का विवेचन करते हुए 'ब्रह्म पुराण' में कहा गया है कि 'तत्वदर्शी मुनियों ने जल को 'नार' कहा है। वह नार पूर्व काल में भगवान् का 'अयन' (गृह) हुआ, इसलिए वे 'नारायण कहलाये, वे भगवान् नारायण सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही निर्गुण सगुण भी कहे जाते हैं। वे दूर भी हैं और समीप भी हैं। जिनसे लघु और जिनसे महान् दूसरा नहीं है जिन अजन्मा प्रभु ने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है जो आविर्भाव तिरोभाव, इष्ट, अदृष्ट से विलक्षण है, सृष्टि और संहार भी जिनका रूप बतलाया जाता है, उन आदि देव परब्रह्म परमात्मा को हम प्रणाम करते हैं। जो एक होते हुए भी अनेक रूपमें प्रकट होते हैं, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्त-अव्यक्त जिनके स्वरूप हैं, जो जगत् की सृष्टि, पालन और संहार के मूल कारण है, उन परमात्मा को नमस्कार है।'

'मार्कण्डेय' विष्णु' ब्रह्म' आदि सभी पुराण इस विषय में एकमत है कि जो निर्गुण-निराकार ब्रह्म अनादि और अरूप कहा जाता है वही सगुण और साकार होकर इस चराचर विश्व को प्रकट करता है। उसको सबसे पृथक किसी अगम्य स्थान में विराजमान मानना निरर्थक है वरन् वह विश्व के प्रत्येक छोटे और बड़े से बड़े पदार्थ में व्याप्त है और जिसे इस सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त हो गई है वह प्रत्येक स्थान और प्रत्येक पदार्थ में उसके दर्शन कर सकता है। इसी रहस्य को 'रामायण' में शिवजी ने अत्यन्त संक्षेप में कह दिया है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रकट होंहि मैं जाना॥

द्रोपदी के पाँच पति और पंचेन्द्र उपाख्यान–

जैमिनि के दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए पक्षियों ने कहा कि द्रौपदी कोई सामान्य नारी न थी वरन् वह अग्नि से प्रकट हुई साक्षात् सती थी जो द्रुपद की कन्या के रूप में अवतीर्ण हुई थी। इसी प्रकार पाँचों पांडव भी पाँच रूपों में इन्द्र के हीं अवतार थे। इन्द्र को समझौते के विरुद्ध त्रिशिरा तथा वृत्रों के बध तथा अहिल्या सतीत्व भंग करने के अपराध में अपनी समस्त शक्तियों धर्म, तेज, वल और रूप से वञ्चित हो जाना पड़ा था,। वे ही शक्तियाँ धर्मराज वायु, स्वयं इन्द्र और अश्विनी-कुमारों के द्वारा कुन्ती तथा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इस प्रकार द्रौपदी वास्तव में पाँच रूपों को प्राप्त एक मात्र इन्द्र की ही पत्नी थी।

महाभारत में भी पाँचों पाण्डवों को पाँच इन्द्रों का अवतार बतलाया है और कहा है कि किसी समय वैवस्वत यम ने नैमिषारण्य में होने वाले एक दीर्घकाल व्यापी यज्ञ में दीक्षाली और उस समय प्रजाओं को मारने का काम बन्द कर दिया। इससे मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ गई और इससे देवताओं को डर पैंदा हो गया। तब इन्द्र और अन्य देवता ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने उनको वास्तविक कारण बतलाकर नैमिषारण्य जाने को कहा। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने गंगाजी में एक स्त्री को रोते देखा जिसके आँसू जल में गिरकर सोने के फूल बनते जाते हैं। इन्द्र ने उससे रोने का कारण पूछा। वह उनको हिमालय पर ले गई जहाँ एक तरुण तथा तरुणी बैठे हुए पासा खेल रहे थे। इन्द्र ने उनको पहिचान कर कहा-मैं इन्द्र हूँ सब भुवन मेरे वश में हैं।' इस पर शिवजी ने क्रुद्ध होकर उसे एक अँधेरी गुफा में भेज दिया जहाँ वैसे ही चार इन्द्र पहले से बन्द थे। जब उन सबने अपने छुटकारे की प्रार्थना की तो भगवान् शिव ने कहा कि तुम्हारा छुटकारा तब होगा जब तुम पृथ्वी पर मनुष्य-जन्म लेकर पराक्रम के कार्य करके

दिखलाओगे। उस स्त्री से भी शिवजी ने इनके साथ पृथ्वी पर जन्म लेकर इनकी पत्नी बनने को कहा।"

एक और उपाख्यान भी महाभारत के आदि पर्व में इस सम्बन्ध में पाया जाता है, जिसमें कहा है कि एक ऋषि कन्या ने पति की प्राप्तिके लिए शिवजीकी आराधना करके कठिन तप किया था और जब वे वरदान देने को उपस्थित हुए तो उसने 'पति' देहि शब्द पाँच बार कहा। शिवजी ने कहा कि तुमने पांच बार पति के लिए कहा है इससे तुम्हारे पाँच पति होंगे।

वास्तविक बात यह है कि बहु-पतित्व की प्रथा जो पंजाबके पहाड़ी प्रदेश कुल्लू में अभी तक चली आती है, भारत के शेष भाग में अनैतिक मानी जाती है। इसलिए महाभारतमें द्रोपदी के पाँच पतियों काउल्लेख करने के पश्चात् उसे धर्म तथा नीतियुक्त सिद्ध करने के लिए आख्यानों के रूप में उसका कारण समझाना पड़ा। आध्यात्मिक दृष्टि वाले विद्वानों ने इसका स्पष्टीकरण वैदिक साहित्यमें वर्णित 'पंचेन्द्र' कल्पनाके आधार पर किया है। उनका कथन है कि मानव शरीर में स्थित पाँचों इन्द्रियों का संचालन पांच प्राणों द्वारा होता है। प्रत्येक 'प्राण' को इन्द्र कहा जाता है और उसी के कारण 'इन्द्रिय' नाम पड़ गया है। इन पांचों के पीछे एक मध्यप्राण है जो इन पांचों को प्रदीप्त रखता है। इसको महेन्द्र कहा गया है ? इस प्रकार एक मुख्य प्राण शक्ति पांच इन्द्रियों के साथ सहयोग करती है। पुराणों में वैदिक तत्वों को उपाख्यानों के रूप में डालकर समझाने की शैली अपनाई गई है उसका परिणाम यह पाँच इन्द्रों द्वारा पांडवों की उत्पत्ति का कथानक है।

द्रोपदी के पाँच पतियों के इन उपाख्यानों से नैतिक शिक्षा यह भी प्राप्त होती है कि सदाचार का त्याग करने से इन्द्र जैसा शक्तिमान् देवराज भी उसके कुपरिणाम से नहीं बच सकता। पर स्त्री गमन और वचन-भंग के दोष से इन्द्र का पतन हो गया और उसको नरलोक में आकर उसका प्रायश्चित करना पड़ा।

हरिश्चन्द्र का अमर उपाख्यान—

जैमिनि के तीसरे प्रश्न के उत्तर में कि बलराम को ब्रह्म-हत्या कैसे लगी और किस प्रकार उन्होंने तीर्थ यात्रा करके उससे छुटकारा पाया, पक्षियों ने जो छोटा-सा उपाख्यान बलरामजी के स्वभाव के सम्बन्ध में कहा है उसमें कोई विशेषता नहीं है। पर चौथे प्रश्न ' द्रोपदी के पाँचों पुत्र अविवाहित अवस्था में ही अनाथ की तरह क्यों मार डाले गये ?" का उत्तर देते हुए पक्षियों ने राजा हरिश्चन्द्र का जो उपाख्यान सुनाया है वह भारतीय धार्मिक-साहित्य की एक अमर कृति है। इसमें दिखलाया गया है कि मनुष्य सत्य-व्रत का पालन करते हुये कहाँ तक दृढ़ता रख सकता है और फिर उसी के आधार पर कैसे उच्च से उच्च स्थिति प्राप्त कर सकता है ।

राजा हरिश्चन्द्र के इस उपाख्यान में जैसी घोर दुर्दशा दिखलाईहै और विश्वामित्र को जैसे नृशंस रूप में चित्रित किया है उससे इसमें कुछ अस्वाभाविकता आ गई है और इसकी वास्तविकता में संदेह होने लगता हैं, पर लेखक ने इसमें करुण भाव का इतना अधिक समावेश कर दिया कि उससे श्रोताओं की आत्मा विह्वल हो जाती है और उन्हें विचार करने की सुधि नहीं रहती कि इसमें कहाँ तक वास्तविकताहै और कितना अंश कहानी का है। आज तक करोड़ों व्यक्ति 'सत्य हरिश्चन्द्र'के दृष्टांत से सत्य की महिमा को स्वीकार कर चुके हैं। वर्तमान युगके महामानव महात्मागाँधी ने भी अपनी 'आत्म कथा'में कहा है कि सबसे पहले हरिश्चन्द्र का नाठक देखने से ही उनकी हृदय भूमि में सत्य-प्रेम का पौधा बोया गया था जो समय और परिस्थितियों से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अन्त में समस्त भारतीय समाज को अपनी प्राणदायक छाया में लाने में समर्थ हुआ ।

नरकों का स्वरूप और विवरण—

दसवेंसे पन्द्रहवें अध्याय तक भार्गवके पुत्र सुमतिके मुखसे पुनर्जन्म तथा नरकोंका वर्णन करायागया है। सुमति बाल्यावस्थासे ही अत्यन्त-शांत

स्वभाव और सब प्रकार कीसुख-सामग्री की तरफसे उदासीन रहनेवाला था, जब उसका उपायन होने का अवसर आया और पिता ने उसे चारों आश्रमों के कर्तव्यों का उपदेश दिया तो उसने हसकर कहा कि 'हेदिता' आपने इस समय मुझे जो उपदेश दिया है मैंने अनेकवार उसको सुना- तथा उसका अभ्यास किया है । अनेक शास्त्रों तथा बहुत प्रकार शिल्पों का भी मैंने अभ्यास किया है, मैंने अनेक वार दुःख पाया, अनेक बार सुख प्राप्त किया, अनेकबार उच्चदशाका और फिर हीन अवस्थाका अनुभव किया । मुझे इन सब वातोंका ज्ञानहै तो अब वेदाभ्यासका क्यों प्रयोजन है ? मेरा अनेकबार शत्रु-मित्र और सम्बन्धियों से मिलाप और वियोग हुआ है अनेक माता तथा अनेक पिता देखे हैं, हजारों सुख-दुख सहन किये हैं । मलमूत्र से भरे स्त्री के जठर में अनेक बार बास किया है, सहस्र रोगोंकी दारुण यंत्रणा भोगी है । मैंने कितनी बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पशु कीट मृग और पक्षी की योनि में जन्म ग्रहण किया है। जिस प्रकार इस समय आपके घरमें उत्पन्न हुआ हूँ ऐसे अनेक वार राज सेवकों और अनेकवार योद्धाओंके घर में उत्पन्न हुआ हूँ । मैं अनेकबार मनुष्योंका भृत्य और दास बना हूँ और अनेकवार स्वामी तथा प्रधान भी हो चुका हूँ । मैंने अनेक मनुष्योंको माराहै अनेकबार अन्य मनुष्योंद्वारा मारागया हूँ । मैंने अनेकवार दान किया है और अनेकवार औरोंसे ग्रहणभी किया है । हे तात ! इस प्रकार संकटमय संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करते हुए मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि बेदों के कर्म काण्डोंके मार्गसे इस दु.खदायी संसार-चक्र से छुटकारा नही पासकता । जब मैं मोक्ष प्राप्ति के वास्तविक मार्ग को जान चुका हूँ तब मुझे वेदा- भ्यास की क्या आवश्यकता हैं ।'

इस प्रकार सुमति ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े स्पष्ट रूपसे वर्णन कियाहैं और साथही सकाम कर्मकाण्ड के मार्गकी अपेक्षा निष्काम भावसे कर्तव्य पालनकी श्रेष्ठता भी बतलाई है । साथही उस युगमें बौद्धभिक्षुओं तथाहिन्दू सन्यासियोंमें संसारके सब बन्धनोंको त्यागकरआत्म साक्षात्कार और ब्रह्म प्राप्तिका जोआदर्श पायाजाताहै उसकाही प्रतिपादन किया है।

पर यह पुराणकार का निजी अभिमत अथवा अंतिम निर्णय नहीं है। आगे चलकर उन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन किये बिना कर्म त्याग और सन्यास की भर्त्सना भी की है और कहा है कि जो व्यक्ति 'आश्रमों के राज-मार्ग को त्याग छलाँग मारकर मुक्ति-पद पर पहुँच जाना चाहता है उसे प्राय: नीचे ही गिरना पड़ता है।'

नरकों का वर्णन प्राय: सभी पुराणोंमें एक-सा पाया जाता है विभिन्न प्रकार के पापोंके फलसे मरणोपरांत भयंकर कष्ट भोगने पड़ते हैं पापियों को दण्ड प्रहार करते हुए कुश, काँटें, गड्ढे, पथरीली भूमि पर खींचकर ले जाया जाता है और बारह दिन भयंकर आकृति वाले यमराज के सम्मुख खड़ा किया जाता है। वहाँ 'मिथ्यावादी, मिथ्या साक्षी देने वाले, मनुष्य और अन्य प्राणियों की हत्या करने वाले, भूमि सम्पत्ति तथा स्त्री का हरण करने वाले, अगम्या स्त्रियों से दुराचार करने वाले लोगों को रौरव नरक में डाला जाता है। वह रौरव नरक दो हजार योजन विस्तृत है और उसमें जाँघ की बराबर गहरा गढ़ा है। उस गढ़े में लाल अंगारे भरे रहते है जिन पर होकर पापी मनुष्य को चलना पड़ता है उसके पैर पग-पग पर अग्नि से फटते और नष्ट होते हैं जिससे वह दिन रात में एक बार पैर रखने और उठाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार चरण रखते हुए सहस्र योजन पार कर लेने पर वहाँ से छुटकारा पाता है और पाप शुद्धि के लिए उसी के समान दूसरे नर्क में जाता हैं और इसी प्रकार सब नरकों को पार करना पड़ता है।

नरक का वह वर्णन बड़ा विस्तार है और विभिन्न पुराणों में इस प्रकार के वीभत्स विवरणके अध्यायके अध्याय भरे पड़े हैं। तामस नरकमें कड़ाकेकी सर्दी पड़तीहैं और सदैव घोर अंधेरा छाया रहता हैं। वहाँसर्दी से कष्ट पाकर पापी मनुष्य इधरसे उधर दौड़ते हैं और ठंड को मिटाने के लिए परस्पर लिपटते हैं। ठंड की अधिकता से दाँत ऐसे कड़कड़ातेहैं कि वे टूटकर गिर जाते हैं। भूख प्यासभी वहाँ बहुत लगतीहै परन्तुसकी निवृत्ति का कोई साधन नहीं होता। ओलों के साथ बहने वाली भयंकर हवा शरीर की हड्डियों को तोड़ देती है और मज्जा तथा रक्त बाहर

गिरता है। वे भूखे प्राणी उसी को खाकर भूख को मिटाते हैं। इस प्रकार अनेक वर्षों के अन्धकार में पड़े कष्ट भोगा करते हैं।

तीसरे 'निकृन्तन' नामक नरक में बहुत से चक्र लगातार घूमते रहते हैं। यमदूत पापी जीवों को उनके ऊपर चढ़ाकर तेजी से घुमाते हैं और फालसूत्र नामक यन्त्र से उनके प्रत्येक अंग को बार-बार काटते रहते हैं। पर इससे उन पापियों का प्राण नही निकलता वरन् शरीर के सैकड़ों टुकड़े होने पर भी वे फिर जुड़ जाते हैं और उनको पुनः काटे जाने की महाकष्ट कारक प्रक्रिया सहन करनी पड़ती है। चौथे 'अतिष्ठ' नरक में भी वैसे ही कुम्हारों के चक्र और घटी यन्त्र होते हैं। पापियों को उन चक्रों पर चढ़ाकर निरन्तर घुमाया जाता है और कभी विश्राम नहीं लेने दिया जाता जिससे उनको अपार कष्ट होता है। इसी प्रकार अन्य पापियों को रहट के समान एक घटीयन्त्र में बांधकर नीचे ऊपर घुमाया जाता है, जिससे उनके मुख से रक्त लार गिरती है, आँखों से अश्रु बरसते हैं और वे असह्य कष्ट का अनुभव करते रहते हैं।

पांचवा असिपत्रवन' अत्यन्त भयङ्कर है। जब उसमें पापी मनुष्य गर्मी से व्याकुल होकर हरे भरे पेड़ों की छाया में भागते हैं तो उनके ऊपर पेड़ों के पत्ते जो तलवारोंकी तरह होते है गिर जाते हैं और उनके अङ्गों को छिन्न-भिन कर डालते हैं। उसी समय कुत्ते रूपी यमदूतवहाँ आकर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। छटवाँ तप्त कुम्भ' नरक है जिसमें पापियों को खौलते हुए तेल और लोहे के चूर्ण से भरे घड़ों में डालकर घोर कष्ट पहुँचाया जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि नरकों का यह वर्णन हृदय को कँपाने वाला है और उसे सुनकर एक बार घोर पापी व्यक्ति भी सहम जाता है। यहकह सकनातो कठिनहै कि इसविश्वके किसी कोनेमें वास्तवमें कोईऐसास्थानहै यानहींजहां उपर्युक्त प्रकारके अनुभव होते हों, परयदि हमइस समस्यापर आध्यत्मिक दृष्टिसे विचार करते हैं तो मालूम पड़ताहै कि क्रोधलोभ अहंकार, मोह कामवासना और मदजो मनुष्यका पतन करनेवालेषज्रिपुकहा गयेहैं वे ही नर्करूपहै और जोव्यक्ति उनके वशीभूत होजाता है वह उप-

युक्त नरकों की सी पड़ीइसी दुनियाँमें भोगता रहता है। क्रोधकी अग्नि रौरव नरकसे कमनहीं होती और कितनेही व्यक्ति उसके पंजेमें पड़कर सारा जीवन घोर अशान्ति और मानसिक जलनमेंही व्यतीतकर देतेहैं। इसी प्रकार जिस व्यक्तिके पीछे लोभका भूतलग जाताहै वह सदा प्रत्येक पदार्थका अभावही अनुभवकरताहै। उसकी तृष्णाकी कभी पूर्तिनहीं होती और इससे उसके उत्साह और आशाओं पर तुषारपात होजाता है और वह 'तुम' नरक के कष्टों को इस पृथ्वी पर ही सहन करता रहता है 'निकृन्तन' कर्कका वर्णनकिसी अहङ्कार ग्रस्त प्राणीके वर्णनसे ही मिलता जुलता है। अहंकारी प्यक्ति अन्य व्यक्तियोंको तुच्छ समझकर बड़े गरूरके साथअपन कीवड़प्पनी तरह-तरह की कल्पनायें खड़ी करता रहता है,पर वेसव वास्तविकता के धरातल पर टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। इससे उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है और वह असह्य पीड़ा अनुभव करताहै।

अप्रतिष्ठ' नरक मोह का परिणाम होता है। सांसारिक पदार्थो के मोह में फँसकर वह एक बार अपने को धन्य और सफल समझने लगता है, पर फिर जब उनका वियोग हो जाता हैं तो खेद से भरकर आँसू बहाता रहता है जल भरने के रहट की तरह वह बार-बार भरता और खाली होता रहता है और इसके परिणाम स्वरूप उसके हृदय में सदैव हलचल मचती रहती है। 'असिपत्र वन' नरक दूषित कामवासना का रूपक है। दुराचार या व्यभिचार की वासना यद्यपि दूर से बड़ी सुन्दर और मनमोहक जान पड़ती है, पर उसका परिणाम तलवार या छुरीसे आलिंगन करने के समान ही नाशकारी होता है। क्रोधाग्नि के समान कामाग्नि भी बहुत जलाने वाला है। इससे शक्तिका और भी क्षय होता है और मनुष्य का जीवन नष्ट प्रायः हो जाता है। छठा नर्क तप्त कुम्भ कहा गया है जो 'मद' का परिणाम होता है। उसके कारण मनुष्यअपनी छोटी-मोटी सफलताओं या सामान्य वैभव पर बहुत फूलता रहताहै पर जब वह दूसरों को अपनेसे बड़ा-चढ़ा देखता है तो उसकेभीतर ईर्ष्याद्वेष की ऐसी अग्नि प्रज्वलित होती है कि शरीर का समस्त रस-रक्त खोलने लगता है और हृदय में लोहे के हजारों नुकीले टुकड़े चुभने लगते हैं।

मार्कण्डेय पुराण का यह नर्क-वर्णन एक बहुत बड़ा प्रभावशाली रूपक है जिसका आशय यही है कि यदि मनुष्य, को सांसारिक व्यथाओं,पीड़ाओं ज्वालाओं से बचना है तो उसे, काम क्रोध, आदि मानसिक दुष्प्रवृत्तियों से बचकर सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। सदाचार और इन्द्रियों का संयम ही स्वर्ग का द्वार है और इसके विपरीत इन्द्रियों का दुरुपयोग, दुराचरण हर प्रकार से कष्टदायक और दुर्गति में ग्रस्त करने वाला है। साथ ही हम भी स्वीकार करते है कि नर्क वर्णन में तथ्य का अंश चाहे कितना भी कम ज्यादा हो: पर सामान्य अशिक्षित जनता पर उसका प्रभाव पड़ा है और करोड़ों व्यक्ति उससे भयभीत हो पाप कर्मों से न्यूनाधिक परिणाम में बचते रहते हैं।

महा मानव के लक्षण—

नरकों के वर्णन के प्रसंग में विपश्चित्त नामक एक राजा का भी कथानक आ गया है; जो थोड़ी देर के लिए नरक दर्शन के लिए लाया गया था और जिसने उस अवस्था में भी परोपकार धर्मको नहीं छोड़ा। अगणित नारकीय जीवों का उसने उसी समय उद्धार किया। उसका सम्पर्क प्राप्त होने से समस्त नर्कवासी जीवों को कुछ सुख मिलने लगा, यह देखकर उसने स्वर्ग-सुखको छोड़कर वहीं रहने का आग्रह किया और कहा कि उसने जो कुछ पुण्य किया है उसके बदले में इन पापियों का उद्धार कर दिया जाय। वह वहाँ से तभी हटा जब वहाँ पर उपस्थित नरक निवासियों को छुटकारा मिल गया। राजा की इस महामानवता के फलस्वरूप भगवान विष्णु का विमान उसे लेने आया और उसे स्वर्ग की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त हो गई।

ऐसा पुण्यवान् राजा भी किस कारण नर्क दर्शन के लिये लायागया इसकी कथाभी बड़ी शिक्षाप्रद है।यमदूत ने उसे बतायाकि विदर्भ देशकी राजकुमारी आपकी पत्नीथी।जबवह ऋतुमती हुई तो आप उसकी उपेक्षाकरके केकय देशकी रानीके साथ बिहार करते रहे। ऋतुकाल के समय तो स्त्री-पुरुषका समागमएक प्राकृतिक नियमहैजिससे प्रजाकी उत्पत्ति होतीहै और सृष्टि-क्रम स्थिर रहता हैं। इस दृष्टिसे उसे दूषित नहीं बतलाया गया है।

पर अन्य समयमें स्त्रीका उपभोग कामसक्तताका लक्षणहै। प्राकृतिक नियम का उल्लंघनकरके विषयासक्तताका आचरण धर्मकी दृष्टिसे एक पाप कर्मही है औरइसी फलस्वरूप आपको कुछ क्षणोंके लिए नर्क प्रदेश में आना पड़ा। शास्त्रमेंभी कहा गयाहैकिजैसे हवनके समयअग्नि घृताहुति की प्रतीक्षाकरती है इसी प्रकार ऋतुकालमें स्वयं प्रजाप्रति ऋतुआधान की प्रतीक्षा करता है। दूसरी शिक्षा इस आख्यान से यह भी प्राप्त होती है कि त्याग सबसे बड़ा पुण्य हैंऔर इसके द्वारा सामान्य पुण्य भी अनेक गुणा बढ़ जाता है।

पतिव्रत धर्म की लोकोत्तर महिमा–

पतिव्रत का आदर्श भारतवर्ष की एक ऐसी विशेषता है जिसका अस्तित्व संसार के अन्य किसी स्थान में नहीं पाया जाता। भारतीय धर्मकथा-लेखकों ने पति-पत्नी के सम्बन्ध को अमिट बना दिया है और उसकी शृंखला को जन्मान्तर तक विस्तृतकर दिया है। इस सम्बन्ध में जो आख्यान विभिन्न स्थानों में पाये जाते हैं उनमें अतिशयोक्ति से काम लिया गया है पर उसका उद्देश्य यही है कि लोगों के हृदय में यह तथ्य भली-भांति जम जाय। मार्कण्डेय पुराण के सोलहवें अध्याय में एक पतिव्रता द्वारा सूर्य का उदय होना रोक देने की कथा ऐसी ही है। ब्राह्मणी का पति कोढ़ी होने पर भी वेश्या गमन के लिए लालायित हुआ, पर मार्ग में उसे मार्ण्कण्डेय ऋषिद्वारा सूर्योदय होते ही मरने का शाप दे दिया दे दिया गया। इस पर पतिव्रताने कहाकि 'अब सूर्य का उदय ही नहीं होगा?' ऐसा होने पर सब प्रकार के यज्ञ, सध्या, श्राद्ध आदि भी रुक गये। तब देवताओं की प्रार्थना पर अत्रि ऋषि की पतिव्रता पत्नी उस ब्राह्मणी के पास गई और उसे राजी करके सूर्योदय कराया और उसके पति की मृत्यु हो जाने पर उसे अपने पतिव्रत के बल से पुनर्जीवित किया। इस आख्यान का उद्देश्य पतिव्रत धर्मकी अलौकिक शक्ति का प्रभाव सामान्य जनों के हृदय में स्थापित करना ही है, जो समाज के हित की दृष्टि से एक कल्याणकारी प्रवृत्ति ही मानी जायेगी। इस घटना के परिणाम स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्तियों ने चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में अनुसूया के पुत्र होकर जन्म लिया है।

मदालसा का उपाख्यान

मदालसा का उपाख्यान कई दृष्टियों से धार्मिक जगत् में प्रसिद्ध है और वह भारतीय नारियों की आध्ययात्मिक ज्ञान-प्रियता तथा वैराग्य-भावना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मदालसा राजकुमार ऋतुध्वज की पत्नी थी जो उनको पातालकेतु नामक दैत्य का संहार करते हुए मिली थी कुछ समय केपश्चात् पाताल केतु के भाईने ऋतुध्वजके साथछल कर के माद लसा को यह असत्य समाचार सुनाया कि 'ऋतुध्वज तपस्वियों की रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्यके हाथसे मारे गये इसको सुनकर मदालसा ने शोक मग्न होकर उसी समय प्राण त्याग दिए ऋतुध्वज को वापस आने पर इस शोक जनक घटना का हाल विदित हुआ और उस ने कहा—यह अबला धन्य थी जिसने मेरी मृत्यु की बात सुनते ही प्राण त्याग दिये। मैं बड़ा कठोर प्राणी हूँ। जो उसके बिना जीवित हूँ। पर यदि मैं जीवन दे डालूँ तो उसका क्या उपकार होगा? इसलिए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मदालसा ने मेरे लिए प्राण त्याग दिया तो मैं भी जीवन भर अन्य स्त्री को अपनी सहचारिणी नहीं वनाऊँगा और सदैव उसकी स्मृति को ताजा रखकर परोपकार मय कार्यों में ही लगा रहूँगा।"

कुछ समय पश्चात् ऋतुध्वज की दो नाग कुमारों के मित्रता हो गई वे ब्राह्मण के वेश में उसके पास आते थे। उन्होंने ऋतुध्वजकी मनोव्यथा को जानकर एक दिन उसका जिक्र अपने पिता अश्वतर से किया और कहा कि हमको कोई ऐसा उपाय नहीं सूझता कि जिससे उसका कुछ उपकार किया जा सके। जो मर चुका उसे सिवाय भगवान के और कौन फिर से जीवित कर सकता है। पिता ने कर्म की महिमा बतलाते हुए कहा द्यु लोक और पृथ्वी में ऐसा कोई, असम्भव कार्य नहीं है जिसे मन और इन्द्रियों के समय से युक्त मनुष्य सिद्ध न कर सके। कर्म सर्व प्रधान है। चलती हुई चींटी अनेक योजन तक चली जाती है, पर बिना चले शीघ्रगामी गरुड़ भी जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है।"

अपने कथन को सत्य सिद्ध करने के लिए अवश्वतर ने शिबजी की तपस्या करके मदालसा को जीवित करा दिया और उसे ऋतुध्वज को प्रदान करके उसके जीवन को पुनः सरस और सुखी बना दिया। इस प्रकार इन्होंने यह भी दिखला दिया कि मित्रता अर्थ केवल ऊपरी शिष्टाचार ही नहीं हैं वरन् मनुष्य को मित्र का सच्चा हित साधन करने के लिए कठिन से कठिन कार्य को अंगीकृत करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

जब मदालसा के प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ और राजा ऋतुध्वज ने उसका विक्रांत नाम रखा तो वह बहुत हँसने लगा। राजा की कल्पना थी कि मेरा पुत्र समस्त शत्रुओं को नष्ट करने वाला महावीर योद्धा बनेगा और बड़े-बड़े वीरता के काम करके वंश के नामको बढ़ायेगा पर मदालसा उसको अपना दूध पिलाने के साथ शैशवावस्था से ही लोरियों के रूप में अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा देने लगी। नह कहती थी—

"हे तात ! तू तो शुद्ध आतमा है। तेरा कोई नाम नहीं हैं। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर ही पांच भूतों का बना है। न बह तेरा है, न तू इसका है। फिर तू किसलिए रोता है ?"

"जैसे इस जगत में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतों के सहयोग से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थों के पाने से पुरुष के पंचभौतिक देह की पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आतमा की न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।"

"तू अपने इस देह रूपी चोले केजीर्ण शीर्ण होने पर मोह न करना शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला मांस मेद आदि से बँधा हुआ है, पर तू इससे सर्वथा पृथक् है।"

"कोई जीव पिता के रूप में प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है किसी को माता पिता और किसी को प्रिय पत्नी कहते हैं। कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'यह मेरा नहीं है' इस भाव से पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूत समुदाय के ही नाम रूप है ऐसा तुझे मानना चाहिए"।

"यद्यपि समस्त भोग दुःख रूप हैं तथापि मूढ़चित, मानव उन्हें दुःख दूर करने वाला सुख की प्राप्ति कराने वाला समझ लेता है। पर जो ज्ञानी है और जिनका चित्त मोह से आच्छन्न नहीं हुआ है वे उन भोगजनित सुखों को भी दुःख ही मानते हैं"

"स्त्रियों की हँसी क्या है हड्डियों दाँतों का प्रदर्शन हैं। जिसे हम अत्यन्त सुन्दर नेत्र कहते हैं वे मज्जा की कलुषता हैं। कुछ आदि अङ्ग मांस की ग्रन्थियाँ है। इसलिए पुरुष जिस स्त्री पर मोहके भाव से अनुराग रखता है क्या वह एक प्रकार से हाड़-माँस की ढेरी ही नहीं हैं?

"पृथ्वी पर सवारी चलती है, सवारी पर यह शरीर बैठा रहता है। और इस शरीर के भीतर भी एक दूसरा पुरुष बैठा हुआ है। पर हम सवारी और पृथ्वी पर वैसी ममता नहीं रखते जैसी की अपनी इस देह में रखते हैं। यही मूर्खता है।"

इसी प्रकार के सत् उपदेश देकर मदालसा ने अपने प्रथम तीन पुत्रों को अध्यात्म मार्ग का पथिक और साँसारिक प्रपचसे विरागी बना दिया तब राजा ने उससे कहा कि अब एक पुत्र को राजधर्म तथा गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनीचाहिए जिससे वह हमारे उत्तराधिकारी को ग्रहण करके राज्य संचालन कर सके। राजा के आग्रह को स्वीकार करके मदालसा चौथे पुत्र अलर्क को लोरियाँ सुनाते हुए इस प्रकार उपदेश देने लगी।

बेटा ! तू धन्य है जो शत्रु रहित होकर चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता रहेगा पृथ्वी के पालन से तुझे सुख की प्राप्ति हो और धर्म के फलस्वरूप तुझे अमरत्व मिले पर्वों पर सद् ब्राह्मण को भोजन से तृप्त करना, बन्धुबांधवों की इच्छापूर्ण करना, अपने हृदय में दूसरों की भलाई का ध्यान रखना और पराई स्त्रियों की ओर कभी मनको न जाने देना अपने मन में सदा भगवान का चिन्तन करना, ध्यान द्वारा अन्तःकरण के कामक्रोध आदि छहों शत्रुओं को जीतना ज्ञान के द्वारा माया का निवारण करना और जगत की अनित्यता का विचार करते रहना। धन की आय के लिये राजाओं पर विजय प्राप्त करना, यश के लिए धन का सद्व्यय करना, परायी निन्दा सुनने से विरत रहना और विपत्तियों में पड़े हुए व्यक्तियों का उद्धार करना

'बाल्यावस्था में तू भाई बन्धुओं को आनन्द देना, कुमारावस्था में आज्ञा पालन द्वारा गुरुजनों को सन्तुष्ट रखना, युवावस्था में गृहस्थ, धर्म का पालन करके कुल को सुशोभित करने वाली पत्नी को प्रसन्न करना और वृद्धावस्था में वन के भीतर निवास करके वहाँ रहने वाले त्यागी तपस्वियों की सहायता करना।

"हे तात ! राज्य करते हुए मित्रों को सुख देना, सज्जनों की रक्षा करते हुए लोकोपयोगी यज्ञों और उत्सवों की परम्परा को स्थिर रखना और देश की रक्षा के लिए आवश्यकता हो तो दुष्ट, शत्रुओं का सामना करके प्राण भी निछावर कर देना।"

राजधर्म और राजनीति का आदर्श—

माता द्वारा खेल खेलते हुए ही इस प्रकार के जीवनादर्श के उपदेश प्राप्त करता हुआ अलर्क जब कुछ बड़ा हो गया और उसका उपनयन संस्कार हुआ तो उसने माता को प्रणाम करके कहा कि लोक और परलोक के सुख तथा जीवन की सफलता प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए इसका मेरे प्रति उपदेश करिये।

मदालसा ने कहा पुत्र! राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य धर्मानुकूल आचरण करते हुए प्रजा की रक्षा और उसे संतुष्ठ रखना है राजा को उचित है कि वह सातों व्यसन-कटु भाषण, कठोर दंड, धन का अपव्यय, मदिरापान, काम शक्ति आखेट में व्यर्थ समय गँवाना और जुआ खेलने से सदैव बचकर रहे क्योंकि ये मूलोच्छेद करने वाले हैं। अपनी गुप्त मन्त्रणा को कभी प्रकट नहीं होने देना चाहिये, क्योंकि शत्रु सदैव ऐसे मौके की ताक में रहते हैं और गुप्त भेदों का पता लगाकर आक्रमण करके राज्य का नाश करने को तत्पर हो जाते हैं। राजा को अपना गुप्तचर विभाग बहुत उत्तम रूप से सङ्गठित करके रखना चाहिए जिससे मालूम पड़ता रहे कि शत्रु उसके राज्य में किस प्रकार की भेदनीति या तोड़फोड़ की योजना कर रहे हैं और अपने साथियों में से कौन सच्चा है और कौन शत्रु के बहकावे में आ गया है

सबके साथ प्रेम युक्त व्यवहार करते हुए भी राजा को अपने मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों पर भी आँख बन्द करके विश्वास नहीं करना चाहिये, पर आवश्यकता पड़ने पर शत्रु पर भी विश्वास कर लेना चाहिए। उसे युद्ध तथा शांति के अवसरों का पूरा ज्ञान रखना चाहिए। संधि (शत्रु से मेल रखना) विग्रह (युद्ध छेड़ना) यान (आक्रमण करना) आसन (अवसर की प्रतीक्षा में रहना) द्वैधीभाव (दुरंगी नीति से काम लेना) समाभ व (किसी बलवान् राजा की शरण लेना इन) छः उपायों का राजा को पूरा ध्यान रखना चाहिए। फिर मंत्रियों को जीते, फिर कुटुम्बीजनों तथा सेवकों के हृदय पर अधिकार करे, फिर समस्त प्रजा को अपना अनुरक्त बनाये और तब शत्रुओं के साथ विरोध करे। जो इन सबको जीते बिना ही शत्रुओं से विरोध कर लेता है वह प्रायः असफलता का ही मुख देखता है और अपनी हानि कर लेता है।

काम, क्रोध, लोभ, मद मान और हर्षोन्मत्तता ये मनुष्यों के लिए पतन कराने वाले दोष हैं। राजा तो इनके वशीभूत होकर नष्ट हो जाता है। राजा को कौआ, कोयल, भौंरा, हिरन, सांप हंस, मुर्गा और लोहे के व्यवहार से भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिस प्रकार कौआ सदैव आलस्य रहित रहता है, कोयल दूसरों से अपना काम निकालती है, भौंरा सब से रस लाभ लेता रहता है, हंस नीर क्षीर विवेक रखता है, मुर्गा ब्रह्म मुहूर्त में ही जागकर कर्मरत हो जाता है तथा लोहा सबके लिए अभेद्य और तीक्ष्ण रहता है, वैसा ही आचरण राजा को रखना चाहिए। राजा चींटी की तरह उचित समय पर समस्त आवश्यक, पदार्थों का संग्रह करे। उसे जानना चाहिए कि जिस प्रकार एक छोटी सी आग की चिन्गारी बड़े-बड़े वनों को जला डालने की शक्ति रखती है, इसी प्रकार एक छोटा-सा शत्रु अवसर आ जाने पर बहुत अधिक हानिकर सकता है। जिस प्रकार सेमल का छोटा सा बीज धीरे-धीरे एक बहुत विशाल पेड़ के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार कोई सामान्य शत्रु भी बढ़ते-बढ़ते अत्यन्त प्रबल हो सकता है। इसलिए उसे आरम्भ में ही उखाड़ फेंकना चाहिए।

"राजा को सब देवताओं का अंश कहा गया है और उसे इन्द्रवायु सूर्य, चन्द्र एवं यमइन पांचों देवोंकी तरहपृथ्वीका पालन करना चाहिए, जैसे इन्द्र चार महीनों तक वर्षा करता है वैसे ही राजाकोदान दक्षिणा उपहार द्वाराप्रजा को प्रसन्नकरना चाहिए।जैसे सूर्य आठ मास तकसूक्ष्म रूपसे जल सोखता रहताहै वैसेही राजाओंको ऐसे ढङ्गसे करवसूल करते रहना चाहिए जिससे किसीको कष्टका अनुभव न हो। जिस प्रकारयम-राज समयानुसार भले-बुरे सबको अपने नियंत्रण में रखता है औरसदैव उचित न्यायही करता है। वैसे ही राजा कोसज्जनऔरदुष्टसबको स्ववश में रखना चाहिए 'जैसे वायु अनजानमें ही सर्वत्र पहुँचता रहता है उसी प्रकार राजा को गुप्तचरों द्वारा मित्र-शत्रु सबका पूरा भेद मालूम करते रहना चाहिए। जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर सबमनुष्य प्रसन्न होतेहैं वैसे ही राजा को अपने मधुर व्यवहार द्वारा सवको सुखी और प्रसन्न रखना चाहिए। जो कुमार्गगामी और स्वधर्म से विचलित मनुष्य को उनके धर्म में स्थापित कर देता है वही सच्चा राजा है। भूतों प्राणियोंके पालन में ही राजधर्म की सफलता मानी जाती है।"

गृहस्थ धर्म की विशेषता—

'मार्कण्डेय पुराण से गृहस्थ को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया और स्पष्टकहाहै कि पितृगण ऋषिगण, देवगण भूतगणनागण कृमि कीट,पतंग गण, पक्षिगणऔर असुरगण—येसमस्त ही गृहस्थाश्रम का अवलम्बन कर जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं। 'गृहस्थ हमको अन्न देगा या नहीं 'यह चिन्ता करके उसी के मुख की तरफ देखते रहते हैं।

आगे चलकर गृहस्थ की उपमा एक गायसे दी है कि ऋग्वेदजिसकी पीठ यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा, इष्टापूत उसका सींग, साधु-सूक्त रोम शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रम ही उस धेनु की प्रतिष्ठा है। इस धेनु का कभी क्षय नहीं होता स्वाहा' स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार इस धेनु के थन हैं। इनमेंसे देवगण स्वहाकार,पितृगण और मनुष्यगण हन्तकार स्तनका पान करते रहते हैं। जो गृहस्थ इस प्रकार देवता आदि को तृप्त नहीं करता वह महापापी होता है। इस प्रसंग में एक महत्वपूर्ण श्लोक यह है—

श्रीमतं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
सीदताय तत्कृतै चैव तत्तापं स समश्नुते ।

"किसी निर्धन और असहाय व्यक्ति के क्षुधार्त होकर प्रार्थना करने पर उसको भी आहार दे। सम्पत्ति होने पर समर्थ पुरुष को उसे भोजन कराना चाहिए। जो जाति वाला श्रीमान व्यक्ति के समीप होते हुए भी दुःखी रहता है और इस कारण कोई पाप-कर्म करता है तो श्रीमान को भी पाप के अंश का भागी होना पड़ता है।"

अगर हम वर्तमान समयकी विचारधारा और भाषा के अनुसार इस विचारको प्रकट करें तो इसे भारतवर्ष का धार्मिक साम्यवाद कह सकते हैं। अपने आस-पास तथा परिचित समाज में कोई व्यक्ति भूखा नङ्गा अभाव ग्रस्त न रहे इसको ध्यान रखना सम्पत्तिशालीव्यक्तियोंकाकर्तव्य है। परिस्थिति वश सम्पत्ति कहीं भी कम या ज्यादाआती, जातीरहेपर वास्तव में वह समस्त समाज की है और उसका उपयोग उसके हित की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति किसी उपाय अथवासंयोग से सम्पत्ति को पाकर उसे निजी समझकर ताले में बन्द रखने की चेष्टा करता है, उसके स्वाभाविक प्रवाह को रोकता है वह वहुत बड़ा सामाजिक पाप करता है। इस प्रकार अन्य लोगों को जीवन साधनों का अभाव होने से वे जो कुछ चोरी, जमा, ठगी, लूटमार या अन्य पापकर्म करते हैं उसके उत्तरदायी वास्तव में वे व्तक्ति ही होते हैं जो किसी प्रकार सम्पत्ति के प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं।

आज हम समाज में इसी दूषित प्रणालीको जोरों से फैलता देखरहे हैं। आज चारोंतरफ यही दृश्यदिखलाई पड़ रहा हैकि 'धनी दिनपरदिन अधिक धनवान बनजाता है और गरीब निरन्तर अधिकगरीब होताजाता है।' मानव धर्मकी निगाहसे यह प्रवृत्ति अत्यन्त जघन्यऔर कुफल उत्पन्न करने वाली है। इसीके परिणामस्वरूप समाजमें तरह-तरहके विग्रह-फूट अनेकता और अनुचित विरोध भावों की उत्पत्ति होतीहै और क्लेश तथा अशान्तिकी वृद्धि होतीहै।इसलिए शास्त्रोंमें कदम-कदमपर दानकी प्रेरणा दी है। उसका आशय यहीहै कि मनुष्यकोअपनीआवश्यकतासे अधिकजो

कुछ मिल जाय उसे दान, धर्म, यज्ञ, अतिथि सत्कार आदि के रूप में स्वेच्छा से समाज को ही लौटा देना चाहिए। इसी भाव को कई सौ वर्ष पहले महात्मा कबीर ने एक छोटे दोहे में प्रकट किया था।

पानी बाढ़्यो नाव में, घर में बाढ़्यो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ।।

जिस प्रकार नाव के भीतर पानी जमा हो जाने से वह डूबने लगती है उसी प्रकार एक व्यक्ति के पास आवश्यकता से अधिक धन का भण्डार जमा हो जाने से अनेक प्रकार के दोष दुर्गुण उत्पन्न होने लगते हैं। उससे एक तरफ व्यक्ति में अहंकार, लोभ, निष्ठुरता, दुश्चरित्रता की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं और दूसरी तरफ अभाव ग्रस्तता दीनता, हीन आचरण आदि बढ़ने लगते हैं। इस दूषित परिस्थिति को रोकने के लिये भारतीय शास्त्रकारों ने स्वेच्छा से त्याग का उपदेश दिया था और जब तक समाज उचित रूप से उसका पालन करता रहा तब तक यहाँ शांति और सामाजिक एकता कायम भी रही। आज अनेक देशों के शासक या सत्ताधारी दल साम्यवाद के नाम से इसी कार्य को करने की चेष्टा कर रहे हैं, भारतीय संविधान का अन्तिम लक्ष्य भी 'समाजवाद' की स्थापना बतलाया गया है, पर व्यक्तियों की स्वार्थपरता और लोभ की भावनाओं के रहते हुए इन प्रयत्नों का परिणाम बहुत कम दिखलाई पड़ रहा है। मार्कण्डेय पुराण लेखक ने इस सत्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट करके निःसंदेह समाज-निर्माण के एक बहुत बड़े सिद्धांत पर प्रकाश डाला है।

अनासक्त भाव की श्रेष्ठता—

मदालसा उपाख्यान के अन्त में मनुष्यों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के इन दोषों को मिटाने का एक सीधा उपाय अनासक्त भावना को उत्पन्न करना बताया है क्योंकि सब प्रकार के सम्पत्ति और चरित्र सम्बन्ध दोष प्रायः तभी बढ़ते हैं जब मनुष्यों अपने आत्म स्वरूप को भूलकर इस पंच भौतिक जगत् को सत्य और अपना अन्तिम लक्ष्य समझ बैठता है। इस उपदेश को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये पुराण कारने मदालसा के पुत्र अलर्क की कथा को आगे

बढ़ाते हुए कहा है कि मदालसा के उपदेशानुसार धर्मराज्य करते हुएभी वह अन्तिम अवस्था में साँसरिक माया मोह में विशेष फस गया और आत्मोत्थान के वास्तविक लक्ष्य को भूल ही गया। यह देखकर उसके वड़े भाई वनवासी सुबाहु को चिन्ता हुई और उसने एक युक्ति की दृष्टि से काशीराज के पास पहुँच कर उसे अलर्क पर आक्रमण करने कीप्रेरणा दी। इस आक्रमण का सामना न कर सकने के कारण अलर्क की मोह निद्रा टूटी उसने माता का अन्तिम चिन्ह स्वरूप अँगूठी के भीतर लिखा हुआ यह उपदेश पढ़ा—

असङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भि सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भैषजम् ॥

"मनुष्यों को आसक्ति का पूर्णतया त्याग करना चाहिए, पर यदि वैसा सम्भव न हो तो सत्पुरुषों की संगति ही करनी चाहिए, क्योंकि विषयासक्ति की औषधि सत्संग ही है।"

इस उपदेश से अलर्क को जो मार्ग दर्शन हुआ तदनुसार वह सत्संग केउद्देश्यसे महात्मा दत्तात्रेयके पास जापहुँचा और उनकोअपनीविपत्ति का पूरा वर्णन सुनाकर दुःख दूर करनेकी प्रार्थनाकी। देत्तात्रेयने उसकी बुद्धि पर पड़े पर्देको देखलिया ओर सबसे प्रथम प्रश्न यही कियाकि 'तुम अपने मनमें अच्छी तरह सोच विचार करमुझे यह बतलाओ कि तुमको दुःख किस प्रकार का है और वह क्यों उत्पन्न हुआ है? तुम अपने वास्तविक स्वरूप परविचार करो, साँसारिक वस्तुओंसे उसके सम्वन्धकानिर्णय करो और तब बतलाओ कि किस बात ने तुमको क्यों दुःखी किया है?" इन शब्दों को सुनकर जबअलर्क राज्यपर आक्रमण सम्बन्धी समस्तघटना पर आध्यात्मिक दृष्टिसे विचार करने लगे तो उनका संशय बहुत शीघ्र दूर होगया और वे हंसते हुए कहने लगे मैं वास्तब में बड़े भ्रम में पड़ा था कि इन पच तत्व को ही अपनामुख्य आधार समझ कर उनके लिए शोक कर रहा था। अगर तात्विक दृष्टि से विचार किया तो मैं न तो भूमि हूँ, न जल हूँ, न अग्निहूँ न वायु हूँ और न आकाश ही हूँ। इन सब

पदार्थों में न्यूनता अथवा अधिकता होने से ही हम शोक और हर्ष करते हैं आत्मा की दृष्टि से यह निरर्थक हैं। यदि सुख दुःख का कारण मन और बुद्धि को मानें तो आत्मा इनसे भी अलग है। इसलिए वास्तव में न मेरा कोई राज्य है न कोषहै, न कोई मेरा शत्रु है। जैसे विभिन्नपात्रोंमें भरे हुए जलमें आकाश का प्रतिविम्ब अलग-अलग जान पड़ता है, पर वास्तव में वह एक ही होता हैं उसी प्रकार मैं गलती से काशीराज तथा बड़े भाई सुवाहु को अपने से पृथक् समझ रहाहूँ। ये लोग मेरे दुःख का कारण नहीं, वास्तव में मेरे दुःख का कारण मेरी ममता है। यदि ममता की भावना को त्यागकर विचार करे तो कहीं दुःख नहीं है। जवविल्ली किसी गौरैया या चुहियाको पकड़ने जाती है, तो हमको कुछभी दुःखनहीं होता, औरजव वह घरमें पाले तोता मुर्गे को खा डालती है तो हम शोक करने लगते हैं इसलिए आत्मा की दृष्टि से हमको कोई दुःख या सुख नहीं होता। किसी एक भौतिक पदार्थ द्वारा दूसरे भौतिक पदार्थको उत्पीड़ित देखकर ही हम झूंठमूंठ सुखदुःख की कल्पना कर लेते हैं।"

दत्तात्रेय जी ने राजा अलर्क की भ्रांति को इस प्रकार दूर करके उसे दुःख से मुक्त होने का मार्ग बतलाया कि तुम्हारा।सोचना युक्ति युक्त है। वास्तव में सब प्रकार के दुखों का मूल यह मेरा-मेरा' ही हैं। जब हम इस ममता को त्याग देते हैं तो दुःख की जढ़ स्वयं ही कट जाती है। यह संसार कर्मों का एक महावृक्ष है। उसका अंकुर अहंभावमें से फूटता हैं। ममता ही उसका भारी तना है। घर वार का मोह उसका शाखायें हैं, स्त्री पुत्र,धन,सम्पत्ति आदि पत्ते हैं। वह वृक्ष निरन्तरबढ़ता रहता है और तब उस पर पाप-पुण्य के फूल और सुखःदुख फल लगते हैं तो अज्ञानी लोगउसे लालसा कामनाओं द्वारा सींचते रहते हैं। यह वृक्ष बन्धन-मुक्ति के मार्ग को रोककर खड़ारहता है। जो लोग संसार रूपी वन में भ्रमण करते हुए उसका आश्रय लेते हैं उन्हें सच्चासुख कहाँ मिल सकता है? इसलिए आवश्यकता है कि अपने ज्ञान रूपी कुठारको सतसग रूपी सान धरने के पत्थर पर तेज करके इस ममता रूपी वृक्षको

काट डाला जाय। तभी हम आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान के शाँतिदायक उद्यान में पहुँच सकते हैं जहाँ धूल और काटों का भय नहीं है।'

इसके पश्चात् दत्तात्रेय ने अलर्क को योग साधन का पूरा विधि-विधान उसके बीच में आने वाले उपसर्ग और प्रलोभनों की चेतावनीदी और योगी के आचार व्यवहार का उपदेश दिया। अन्त में ओंकार महिमा को समझाते हुए कहाकि उसकी 'अ' 'उ' 'म' तीन मात्रायेंसत्व, रज, तम तीनों गुणों अथवा ब्रह्मा, बिष्णु, महेश तीन ईश्वरीय शक्तियों की प्रतीक है और चौथी ऊर्ध्व मात्रा परब्रह्म की ओर संकेत करतीहै। जो साधन ओंकार के इस स्वरूप को हृदयंगम करके उसका ध्यान करेगा वह केवल इसी साधन से मुक्ति का अधिकारी बन सकता है।

दत्तात्रेय के आत्मोपदेश से अलर्क कृतार्थ हो गया। उसका शोक मोह सर्वथा लोप होगया और उसने स्वयं काशीराज तथा सुबाहुके पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक समस्त राज्य अर्पण कर दिया। उसकी इस निस्पृहता को देखकर वे भी बड़े प्रभावित हुए और सुबाहु ने अपना अभीष्ट लक्ष्य पूरा हुआ देखकर उसका राज्य उसी को लौटा दिया। पर अब अलर्कको सच्चा आत्मज्ञान हो चुका था और आत्मा के शाश्वत रूपको अनुभव कर चुका था अत उसी समय पुत्र को राज्य भार देकर वनवास के लिए चला गया।

सृष्टि रचना और उसका विकास—

यहाँ तक मदालसा-उपाख्यान के रूप में मानव धर्म तथा अध्यात्म ज्ञान की चर्चा की गई जिसका मनन करने से मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक जीवन की सफलता का मार्ग विदित हो जाता है इसके पश्चात् पुराण का मूल विषय "सर्ग प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर, राज्यवंश" आरम्भ होता हैं। ये विषय थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रत्येक पुराण में पाये जाते हैं और इसे हम पौराणिक 'सृष्टि विद्या' कह सकते हैं। जिस प्रकार वेदोंमें एक अक्षर-तत्व सेसत्-रज तम तीनों गुणोंकी उत्पत्तिबतला

कर उनसे समस्त सृष्टिका विकास और विस्तार बतलाया है, उसीप्रकार पुराणोंमें एक निराकर ब्रह्मसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी तीन सृजन, पालन तथा सहार करनेवाली शक्तियों का उद्‌भव बतलाकर देव, ऋषि,पितर एवं भूतगणों के वंशों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। वास्तवमें वेदऔर पुराणों के वर्णनमें कोई सिद्धान्त भेद नहीं है, वरन् पुराणकारोंने वेदों के सूक्ष्म और शुष्क विषय को रूपकों और दृष्टान्तों की शैली में विस्तृत व्याख्या करके उसे साधारण बुद्धिके लोगों के लिए भी बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। इससृष्टि-रचना क्रम का सारांश इन शब्दोंमें दिया जा सकता है।

इस भौतिक जगत् को जो मूल कारण है उसे 'प्रधान' कहते है। उसी को महर्षियोंने अव्यक्त सूक्ष्म, नित्य अथवा सद्सत्स्वरूप प्रकृतिकहा हैं। सृष्टिके आदि कालमें केवल एक ब्रह्महीं था जो अजन्मा अविनाशी, अजर, अपरिमेय और आधार-निरपेक्ष हैं वह गन्ध, रूप,रस, स्पर्शऔर शब्दसे रहित है और अनादि तथा अनन्त है। वही सम्पूर्ण जगत की 'योनि' और तीनों गुणों का कारण हैं। यह ज्ञान विज्ञानसे अगम्य है। सृष्टिका समय आने पर वही गुणों की साम्यावस्था रूप प्रकृतिको क्षुब्ध करता है जिसके फलस्वरूप महत्वत्व का प्राकट्य होता है। महत्वत्व से वैकारिक, तैजस, भूतादि अर्थात् सात्विक, राजसऔरतामस इस त्रिविध अहंकार का आविर्भाव होता है। तामस अहंकार से शब्द स्पर्श, रूप, रसऔर गन्ध इन पांच तन्मात्राओं का उद्‌भव होता हैं और इन तन्मात्राओं से क्रमश: आकाश वायु, तेज जल और पृथ्वी तत्वका आविर्भाव होता है। राजस अहंकार से श्रोत्र, त्वक् चक्षु, रसना और घ्राण इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा वाक्, पाणि, पाद वायु और उपस्थ इनपाँच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहंकार से इन दसों इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता तथा ग्यारहवें मनकी उत्पत्ति होती है। फिर महत्वत्व से पृथ्वी तत्व पर्यन्त सबतत्व मिलकर पुरुष और प्रकृतिके सम्बन्ध से एक अण्ड उत्पन्न करते हैं। यह अण्ड धीरे-धीरे बढ़ता है और साथ ही उसके भौतिक प्रतिष्टित 'ब्रह्म,नामसे प्रसिद्धक्षेत्रज्ञ पुरुषभी वृद्धिको प्राप्त

होता हैं आवश्यक वृद्धि और विकास हो जाने पर प्रथम शरीरी या साकार ब्रह्मा प्राकट्य होता है और फिर वही ब्रह्मा उस अखण्ड में समस्त सचराचर जगत् की रचना करते हैं।" यह बात मार्कण्डेयपुराण में बहुत स्पष्ट शब्दों में कही गयी हैं।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदि कर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत।
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्।

पर यह 'ब्रह्मा' कोई ब्राह्म शक्ति या व्यक्ति नहीं है। संसारमें उस परब्रह्म के अतिरिक्त चैतन्य सत्ता का कोई अन्य स्रोत नहीं है, इसलिए ब्रह्म ही विविध रूपों में प्रकट होकर सृष्टि का विकास करता है। इस तथ्य को 'मनुस्मृति' में बहुत स्पष्टता से कह दिया गया है—

यत्तत्ककारणमव्यक्तं नित्यं सद्सदात्मकम्।
तद् विसृष्टं स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥

अर्थात् जो अव्यक्त, सद्सदात्मक नित्य कारण है वह ब्रह्म है और उसीसे विसृष्ट या प्रेरित सृष्टिमें जो अनुपविष्ट कारण में वहब्रह्मा कहा जाता है।"

इस सबका तात्पर्य यही है कि पुराणों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन प्रधान देव और इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, गणेश आदि सैकड़ोंगौण देवता मानने पर भीइस मूल तत्वसे इनकार नहीं किया है किइससमस्त विश्व प्रपंच का मूल एकही है जिसे परमात्मा, परब्रह्म, निराकार ईश्वर आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता हैं। जिस प्रकारपिता अपनी स्त्रीके गर्भ में स्वयं बीज रूपसे प्रविष्ट होकर पुत्र बनताहै या वृक्ष अपना समावेश बीज के भीतर कर देता है उसी प्रकार निराकार ब्रह्म स्वयं ही अण्डे के भीतर प्रविष्ट होकर साकार देवतत्वों का आभिर्भाव करते हैं और बादमें वे ही सचराचर जगत्के रूपमें अपना विस्तार करते हैं। इसी दृष्टिसे वेदान्तमें प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म स्वरूपही माना है और मुक्त कण्ठ से 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा कर दी है।

यद्यपि ऊपर से देखने पर अपने व्यक्तियोंको सृष्टिके आदि कारण

का यह विवेचन अनावश्यक अथवा निरर्थक भी मालूम पड़ सकता है वे कहेंगे कि इतनी दूर जाने की, ऐसे अज्ञेय क्षेत्र में प्रवेश करके महा कठिन कल्पना करने की क्या आवश्यकता है ! जो कुछ सामने है उसी को यथार्थ मानकर उपयोग और व्यवहार क्यों न किया? पर यह बहुत संकीर्ण अथवा अदूरदर्शी दृष्टिकोण है। ऐसे ही विचारों के कारण आज संसार में भौतिकवाद का बोलवाला है और अधिकांश मनुष्य किसी प्रकार स्वार्थ साधन को ही सबसे महत्व का काम समझ बैठे हैं। इसका परिणाम घोर व्यक्तिगत स्वार्थ परता पारस्परिक संघर्ष दूसरे का नाश करके भी अपना लाभ करने की प्रवृत्ति के रूप में देखने में आता है। यही प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते आज समग्र संसार को एक साथ नष्ट करने के भय के रूप में उपस्थित हो गई है।

यह सब नाशकारी परिणाम उन मनुष्यों के जीवन के पीछे किसी तरह की उच्च दार्शनिक पृष्ठ भूमि न होने से ही उत्पन्न हुए हैं। पर जो मनुष्य यह विश्वास करता है कि यह समस्त जगत और तमाम प्राणी एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए हैं और यह एक अविनाशी महाशक्ति का खेलमात्र है, जो कुछ समय बाद फिर उसी एक तत्व में विलीन हो जायेगा, तो वह मिट्टी से बने और थोड़े ही समय बाद फिर मिट्टी हो जाने वाले पदार्थों के लिये किसी तरह का हीन, निकृष्ट काम करने को तैयार न होगा। इस दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण ही पूरब और पश्चिम की मनोवृत्तियों में जमीन आसमान का अन्तर हो गया है जिस का वर्णन एक बिनोदी उर्दू कविने इनदो लाइनों में किया है।

कहा मैसूर ने खुदा हूँ मैं।
डार्बिन बोले बूवना हूँ मैं॥

अर्थात्—मैंसूर (इरान के ब्रह्मज्ञानी) ने घोषणा की कि मैं खुदा हूं (अहं ब्रह्मास्मि) और योरोप के विज्ञानी पुरुष डार्विन ने कहा 'मैं बन्दर हूं।''

जिस व्यक्ति की यह भावना होगी की मैं इस समस्त संसार के आदि कारण परब्रह्म का अंश हूं वह सदा अपनी निगाह बहुत ऊपर रखेगाऔर

नीचतापूर्ण कार्यों से बचता रहेगा। पर जिसकी धारणा यह होगी कि मैं तो मिट्टी, पानी आदि पंचभूतों का पुतला हूँ, और सौ-सौ पचास वर्ष में फिर उन्हीं में मिल जाऊँगा, उसकी निगाह सोना-चाँदी इकट्ठा करके तरह-तरह के भोग अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त कर लेने के अतिरिक्त और कहाँ जा सकती हैं ? इसलिये भारतीय मनीषियों का सबसे पहले सृष्टि के मूल कारण पर विचार करना और मनुष्यों को सदैव अपने सच्चे स्वरूप पर विचार करते रहने की प्रेरणा देना निस्सन्देह व्यक्ति और समाज के लिये परम कल्याणकारी है।

समाज का निर्माण और विकास—

सृष्टि-विकास के पश्चात समाज निर्माण पर विचार करना आवश्यक है। पुराणों में भौतिक पदार्थों और जीव जगत की उत्पत्ति का जो क्रम बतलाया गया है वह अधिकाँश में विज्ञान-सम्मत है, उसे सर्वथा काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है। पहिले कहा जा चुका है कि महत्तत्व सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का अहङ्कार पैदा होता है। आगे चलकर सर्वप्रथम तामस अहङ्कार से 'असंज्ञ' (चेतना रहित) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे मिट्टी, पत्थर, लोहा आदि, फिर राजस अहङ्कार से 'अन्त: संज्ञ'(सुप्र-चैतन्य) पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जैसे घास बेलें वनस्पति, वृक्ष आदि। इनसे प्राणशक्ति प्रकट हो जाती है, पर मनकी क्रिया भीतर छिपी रहती है। अन्त में सात्विक अहङ्कार से 'ससंज्ञ' (चैतन्य) जीवधारी सृष्टि होती है जैसे कीट, पतंग पक्षी, मनुष्य आदि। पांचकर्मेइन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन। इस विकार सर्ग के विकसित होने के कारण ससज्ञ सृष्टि को 'वैकारिक' भी कहा जाता है।

जीवधारी सृष्टिके सम्बन्धमें बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने जो प्राणी प्रथम बनाये वह सर्दी-गर्मीसे बहुत कमप्रभावित होकर नदियोंझीलों समुद्र और पर्वतोंके निकट विचरण करते रहते थे। वे उपयोगके विषय में अनायासतृप्ति लाभकर लेतेथे और उनमेंकिसी प्रकार विघ्नद्वेष अथवा मत्सरता। वे दृष्टि न बनाकर पर्वत या समुद्र तट पर निवास करते एवं सदा

निष्काम भावी और प्रसन्नचित्त थे। यह स्पष्टत: उस समय का वर्णन है जिसे हम 'प्रकृति का साम्राज्य' या 'स्टेट आफ नेचर' कहते हैं। उस समय प्राणी अपना निर्वाह घास-पात, फल-फूलसे कहते है और इसलिए उनको किसी प्रकार चिन्ता या संघर्ष की आवश्यकता नहीं है। यही वह युग होता है जिसके लिये कथाओं में कहा जाता है कि पशु और पक्षी भी बातें करते हैं और देवता भी उनकी सहायता को आ जाते हैं वास्तव में जिस समय तक भाषा का अविर्भाव नहीं होता तब प्रत्येक प्राणीदूसरे प्राणी के भावों को उसकी आकृति और ध्वनि, चीत्कार आदिसे पहचान लेता है। उनका प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा ही सञ्चालन होता है और वे प्रकृति के संकेतों का आशय भी भली प्रकार समझते हैं। इस दृष्टि से उस आदि कालीन युगमें एक प्रकार से देवता ही पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

पर परिवर्तन शील सृष्टि क्रम में यह अवस्था सदैव स्थिर नहीं रह सकती। क्रमश: जीवों की अनायास तृप्ति हो जाने की 'सिद्धि' समाप्त होने लगी और आकाश से जल रूपी दूध बरसने लगा और लोगों के निवास स्थानों में कल्पवृक्ष उत्पन्न हो गये जिनसे उनकोआवश्यकता की समस्त वस्तुऐं प्राप्त हो जाती थीं। तत्पश्चात् जब मनुष्योंमें कल्पवृक्षों के प्रति राग उत्पन्न होने लगा तो वे नष्ट हो गये और चारशाखा वाले अन्य वृक्ष पैदा हुए जिनके प्रत्येक पुट में बिना मक्खियों के ही मधु उत्पन्न होता था और उसीको पीकर लोग जीवन निर्वाह करतेथे।यह स्थिति त्रेतायुग में थी क्रमश: मनुष्य अत्यन्त लोभी होने लगे उन वृक्षों पर अपना अधिकार जमाने लगे और उनकी जड़ों में अपने रहने के घर बना लिये। इससे वे वृक्ष में भी कुछ काल में नष्ट हो गये।

उस समयमें सब प्राणी भूख-प्यास से व्याकुल होकर अत्यन्तकातर होने लगे। कुछ समयपश्चात् आकाशसे जलकी विशेषरूपसे वर्षाहोनेलगी और उसकाजल मिट्टीके संयोगसे दोषरहित होकर नदियोंके रूपमेंपरिणत होगया। नदियोंके प्रभावसे पृथ्वीपर तरह-तरहकी उत्तम औषधियां (वनस्पतियाँ) पैदाहुई जिनका उपयोग करनेसे लोगोंका सुखपूर्वकनिर्वाह

होने लगा। पर जब लोग उन वनस्पतियों को भी अधिक से अधिक परिणाम में इकट्ठा कर लेने का लालच करने लगे तो वह भी नष्ट हो गई कोई अन्य उपाय न देखकर लोगों ने भगवान् ब्रह्माजी (बुद्धि) की शरण ली तो उन्होंने कुछ बीज उत्पन्न करके लोगों को कृषि-विद्या का उपदेश दिया और सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से उनको चार वर्णों में विभाजित करके प्रत्येकवर्ण को एक-एक कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा उन्होंने कर्म परायण ब्राह्मणों के लिए प्राजापत्य स्थान, संग्राम करने वाले क्षत्रियों के लिए ऐन्द्र स्थान, स्वधर्म निरत वैश्यों के लिए मारुत-स्थान और सेवा परायण शूद्रों के लिए गांधर्व-स्थान की कल्पना की।'

इस विवेचन से आदि मानव-समाज और उसके क्रमश: विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वर्तमान युग के अर्थशास्त्र तथा समाज के एक बड़े विवेचक कार्लमार्क्स ने यह मत प्रकट किया है मानव समाज में सब तरह की प्रथाओं और रीति-रिवाजों के उत्पन्न और प्रचलित होने का मूलाधार आर्थिक व्यवस्था ही थी जिस काल में जीवन-निर्वाह के जैसे साधन प्राप्त थे वैसे ही सामाजिक व्यवस्था भी उस समय बन गई। उपर्युक्त पौराणिक वर्णन में भी यही बतलाया गया है कि जैसे-जैसे जीवन निर्वाह विधि के साधन बदलते गये उसी प्रकार प्राणियों और उनकी जीवन-निर्वाह विधि में भी परिवर्तन होता गया। जब तक लोगों में स्वार्थ बुद्धि की वृद्धि नहीं हुई और वे प्रकृत्ति दत्त पदार्थों में से आवश्यकतानुसार ही लेकर अपनी भूख मिटा लेते थे तब तक उनका काम बिना किसी विशेष प्रयत्न के जङ्गल और वनों की स्वाभाविक उपज से होता रहा। पर जैसे-जैसे उनमें संग्रह और परिग्रह की भावना उत्पन्न होने लगी प्रकृति भी अपने दान को संकुचित करने लगी और लोगों को जीवन निर्वाह की परिश्रम और युक्तिसाध्य विधियों का आश्रय लेना पड़ा। इसी से खेती और पृथक् परिवार की प्रथा का जन्म हुआ। आगे चलकर विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों तथा पेशों के बढ़ने से जाति-प्रथाका भी उद्भव हुआ। जितने ही अधिकलोग विभाजित हुए और अपने उत्पादन को सुरक्षित रखकर उसका स्वयं उपभोग करने लगे वैसे-वैसे ही मानव सम्बन्धों में जटिलता आती गई

और क्रमशः शासन, राज्य और राष्ट्र का प्रादुर्भाव होकर मानव-समुदाय आधुनिक सभ्यता, संस्कृति तक पहुँच गया।

यह तो भौतिक पदार्थों के विभाजन तथा स्वामित्वके कारणउत्पन्न सामाजिक व्यवस्था की एक मोटी रूप रेखा हुई। जब इसके साथभली बुरी मनोवृत्तियों, धर्म-अधर्म कर्तव्य, अकर्तव्य सत्य झूँठ, प्रेम-घ्रणा, मित्रता-शत्रुता आदि भावनाओं का योग होता हैं तो मानव-व्यवहारों में ऐसी जटिलता आ जाती है कि जिसके निर्णय और कार्य रूप में परिणत करने में बड़े-बड़े समाज शास्त्री तथा न्यायवेत्ता विद्वानों की बुद्धि भी चकरा जाती है। इसका वर्णन पुराणकार ने अपनी रूपक और अलंकारों की विशिष्ट शैली में इस प्रकार किया है—

"जब ब्रह्मा के मानस पुत्रों से सृष्टि का विस्तार न हो सका तो उन्होंने एक पुरुष उत्पन्न करके उसके आधे भाग से एक स्त्री को भी उत्पन्न किया और उनको पति-पत्नी बनाकर प्रजाकी उत्पत्ति का आदेश दिया वे ही संसार के प्रयम मानव प्राणी स्वायम्भुव मनु और शतारूपा थे। उनके दो पुत्र हुए। प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो कन्याएँ भी हुई प्रसूति और ऋद्धि-ऋद्धिका विवाह रुचि से हुआ जिससे यज्ञ और दक्षिणा नामक दो सन्तानों की उत्पत्ति हुई। दक्ष और प्रसूतिके चौबीस कन्याएँ हुईं उन्हें धर्म ने अपनी पत्नी बनाया। इसके साथ ही अधर्म का परिवार भी बढ़ा। उसकी पत्नी हिंसाव का अनृत नामक पुत्र और सृति नामक कन्या उत्पन्न हुई। उनसे नरक और भय नामक पुत्र हुए और माया तथा वेदना दो कन्याएँ हुई। माया से मृत्यु और वेदना से दुख नामक पुत्र उत्पन्न हुए। मृत्यु से व्याधि जरा, शोक तृष्णा और क्रोध नामक पुत्र हुए। दुःख से जो सन्तति हुई वह सब अधर्म का आचरण करने वाली थी। मृत्यु ने लक्ष्मी नामक एक ओर स्त्री से विवाह किया जिसके चौदह पुत्र हुए जो मनुष्यों के मन तथा इन्द्रियों में प्रविष्ट होकर उनको नाश की तरफ ले जाते हैं।

इन पुत्रों में से एक का नाम दुःसह है, जिसको अत्यन्त भयंकर बत-

लाया है कि वह जन्म लेते ही ऐसा भूखा था कि समस्त संसार के उसके द्वारा नष्ट होने की सम्भावना जान पड़ी। तब ब्रह्मा ने उसके रहने के लिये स्थान नियतकरदिए किजहाँ,बुरे लक्षण,आलस्य प्रमाद दारिद्रय हों वहाँ पर निवास करे। जहाँ देशाचार, जाति धर्म लोकचार का ठीक तरह से आचरण किया जाता है जप होम, मंगल यज्ञ शौच आदि का विधिवत पालन किया जाता है उन स्थानों से वह दूर रहे। इस दुःसह के निमष्टि' नाम पत्नी से सन्तकृष्टि, तथोक्ति, परिवत, अंगघ्रूक, शकुनि गण्ड, प्रान्तरति और गर्भहा नामक आठ पुत्र हुए। नियोजिका विरोधिनी, 'स्वयंहारकी, भ्रामणी ऋतुहारिका, स्मृति हरा बीज हरा और विद्वेषणी नामक आठ कन्यायें भी हुईं। दुःसहकी इन सोलह सन्तानों ने मनुष्यों के जीवन को महाकष्टयमय बना दिया और जिस पर उनका वश चलता है उसे वे नष्ट करके ही छोड़ते हैं।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि दुःसह और उसकी सन्तानों का आशय तरह-तरह की दूषित मनोवृत्तियों, नैतिक, समाजिक और भौतिक दोषों और भाँति-भाँति के रोगों से ही हैं, जो कर्तव्य विमुख और आलसी व्यक्तियों पर सवार होकर उन्हें नष्ट किया करते हैं। पुराणकार ने दुःसह के रहने के जितने स्थान बतलाये है वे सब दूषित आचरण वालों के ही लक्षण हैं। सदाचारी और कर्तव्यरत व्यक्तियों की तरफ वह आँख उठा कर भी नहीं देखता। अड़तालीसवें अध्याय में दुःसह के क्रिया-कलापों का विस्तृण वर्णन निःसन्देह पढ़ने और शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

रुद्र सृष्टि अथवा अग्नि तत्व की व्याख्या–

अगले अध्याय में कहा गया है कि ब्रह्माजीने कल्प के आदि में अपने समान एक पुत्रका ध्यान कियातो एकनील लोहित कुमारउत्पन्न हुआ। वह ब्रह्माजीकी गोद में रोने लगा। ब्रह्माजी ने पूछा–तू क्यों रोता हैं। तो उसने कहा'मेरा नाम रखिये। उसने उत्पन्न होते ही रुदन किया इससे ब्रह्माने कहा-तुम्हारा नाम 'रुद्र' हुआ। इस पर वह सातबार और रोया तब ब्रह्माने उसके सात नाम और रखे–भव, शर्व ईशान, पशुपति, भीम

उग्र और महादेव। तब उसके रहने के लिए आठ स्थान नियत किये–सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित, ब्राह्मण और सोम। उसकी आठ पत्नियाँ भी बनादी-सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहादिक दीक्षा रोहिणी। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सग, सन्तान और बुध को रुद्र के आठ पुत्र बताये गये हैं।

यह रुद्रका रूपका वैदिक साहित्य में वर्णित प्राण तत्व की कथा के रूपमें व्याख्या है 'शतपथ ब्राह्मण' में कहा गया है 'यो वै रुद्रः सोऽग्नि' अर्थात् अग्नि या प्राणतत्व का नाम रुद्र भी है। पुराण में इसका नाम जो 'नीललोहित कुमार 'कहा गया हैं उसका आशय यही है कि अग्नि की रश्मियों का अथवा सूर्य-रश्मियों का वर्णन एक छोर पर नीला और दूसरे पर लोहित (लाल) ही होता है। 'अथर्ववेद' के एक सूक्त में भी रुद्र के 'नीला लोहित धनुष' का उल्लेख मिलता है। अग्नि तत्व जब अपने केन्द्रों में जाग्रत होता है तो वह 'रुद्ररूप' में होता है। उसमें वुभुक्षावृत्ति उत्पन्न होती है अर्थात् वह बाहर के कोई पदार्थ अपने पोषण को चाहता है। जब उसे वह पदार्थ मिल जाता है तो वह रचनात्मक अर्थात 'शिव बन जाता है। रुद्र के जो सात नाम और बतलाये गये हैं वे अग्नि तत्व के सात रूप हैं जो अव्यक्त पदार्थों को व्यक्त रूप में लाने के साधन बनते है। अग्नि या प्राण तत्व ही समस्त भौतिक पदार्थों को प्राण या गति तत्व को प्रदान करता है। अतः वे उसके स्थान है। इसी प्रकार स्वधा स्वाहा आदि आहवनीय अग्नि से सम्बन्धित हैं। शनि, शुक्र, वुध आदि सभी ग्रह उपग्रह अग्नि तत्थ के ही विभिन्न रूप या उनके परिवार की तरह हैं।

मन्वन्तर और सप्त द्वीप वर्णन–

इसके पश्चात् स्वायम्भुव मन्वन्तर और उसमें उत्पन्न राजाओं के शासन-क्षेत्र के रूप में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि कुश, क्रौञ्च शाक और पुष्कर इन सात द्वीपों का वर्णन आया है। इन सातों द्वीपों का विस्तार

सब मिलकर पचास करोड़ योजन बतलाया गया है, जिसमें से जम्बूद्वीप की लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजन है और भारतवर्ष इसी का एक भाग है स्वायम्भुव मधु के बड़े पुत्र प्रिय व्रत की प्रजावती नामक पुत्री का विवाह प्रजापति कर्दम के साथ किया गया। उसके सात पुत्र हुए जिनमें से अग्नीध्र को जम्बू का, मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का, व युष्मान को शालमलि का, ज्योतिष्मान् को कुशका, द्युतिमान् को कोञ्च, भव्य को शाकद्वीपका और सवन को पुष्कर का अधिपति बनाया गया। फिर इन में से प्रत्येक के भी प्राय: सात-सात ही पुत्र हुए जिनके लिए उक्त द्वीपों को सात विभाग में जिनका नाम वर्ष रखा गया है, बांट दिया गया। इनमें से प्रत्येक द्वीप में सात पर्वत और सात नदियाँ भी थी। इन सबकी बड़ी नामावली अनेक पुराणों में पाई जाती है, पर वह पाठकों के लिए रुचिकर नहीं हो सकती। उनका एकाधनाम वर्तमान इतिहास या भूगोल के नामों से मिलता हैं, पर उसे अधिक महत्व देना ठीक नहीं। एक विद्वान का इस सम्बन्ध में यह भी मत है कि ये सातों द्वीप एक समय में एक साथ मौजूद नहीं थे, पर पृथ्वी के उलट फेर के फलस्वरूप विभिन्न कालों में बने और नष्ट हुए हैं। वर्तमान समय में हम पृथ्वी के जिस रूप को देख रहे हैं वह जम्बूद्वीप है और उसी का वर्णन कुछ अंशों में हमको प्रत्यक्ष दिखाई देता है। शेष छ: द्वीप भूत काल या भविष्य काल से सम्बन्धित है। पर पुराणों ने इस विषय पर त्रिकालद्रष्टा की हैसियत से विचार किया सृष्टि रचना और इसके विलय के नाटक को इस प्रकार लिख दिया है जैसे वह एक ही समय में उनके नेत्रों के सम्मुख हो रहा हो।

अधिकांश विद्वानोंके मतानुसार जम्बूद्वीप का जो वर्णन पुराणों में किया गया है उसमें एशिया के बड़े भाग का समावेश हो जाता है। पर चूंकि पुराने समय में आवागमन के साधन बहुत ही सीमित थे इसलिए सभी लेखकोंने जो भौगोलिक वर्णन लिए हैं उनमें वास्तविकता और कल्पना सम्मिलत है। पुराणों के वर्णन में नहीं वरन् यूनानी इतिहासकार हेरीडोटस तथा इटेलियम मार्कोपोलोके वर्णनों में भी बहुत सी बातें ऐसी

पाई जाती है जो इन्होंने दूसरे लोगों से सुनकर लिख दी थी और जो अब काल्पनिक सिद्ध हो रही है। इसलिए पुराणों पृथ्वी के विभिन्न द्वीपों, समुद्रों, खन्डों का जो वणन किया गया है वह कथा रूपमेंही ग्रहण किया जाना चाहिये। वास्तवमें पुराणकार भारत वर्ष में ही रहते थे, यहीं के निवासियों से उनका परिचय और सम्बन्ध था, इसलिए इन्होंने यहाँ के नगरों, जनपदों, पर्वतों, नदियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा हैं वही प्रामाणिक और उपयोगी सिद्धहोताहै। फिर पुराणोंका मुख्यउद्‌देश्-यजन साधारणको धार्मिक और नैतिक शिक्षा देनाथा इसी दृष्टिसे उनकी महतापर विचारकरना चाहिये। इस प्रकारके भौगोलिक वर्णनतो इन्होंने कथानकों को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्यसे कियेहैं और वे सभीपुराणों में प्राय: उसीरूपमें लिख दिये गये हैं जिसमें वे परम्परासे चलते आतेथे। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के दृष्टिकोणमें उनकी आलोचना में प्रवृत्ति होना अपनी 'विभा' के अहङ्कार का निरर्थक प्रदर्शन ही है।

आग्नीध्र को लम्बू द्वीप दिया गया उसके अपने पुत्रोंमें उसने नौ हिस्से कर दिये। इनमें हिम नाम दक्षिणवर्ष नाभि राजा को मिला। नाभि से इनका उत्तराधिकार उनके पुत्र ऋषभ को मिला और ऋषभ अपने पुत्रभरत को राज्य को देकर तपस्या करने चले गये। इन्हींभरतके नाम से यह खण्ड भारतवर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पुराणकोके मतानु-सार शकुन्तला के पुत्र भरत के नामके आधार पर इस देश का नाम भारतवर्ष होनेकी कल्पना ठीक नहीं हैं। यह भरतभी महायोगी औरत पस्वी थे। वे कुछ समय पश्चात अपने पुत्र सुमतिको गद्दी पर विठा कर वंनको चले गये। इस प्रकार स्वायम्भुव मनुवके पुत्रप्रियसव्रत का वंश समस्त पृथ्वी पर बहुत समय तक शासन करता रहा।

इसके पश्चात् अन्य पाँच मन्वन्तरों के सम्बन्ध में भी तरह-तरह की कथायें दी गई हैं जिससे अनेक प्रकारकी शिक्षायें प्राप्त हो सकती है। पर ऐतिहासिक या सामाजिक विकासकी दृष्टिसे इनमें विशेष तथ्य दृष्टि गोचर नहीं होता है।

सूर्य का तात्विक विवेचन

सूर्य-रचना का मुख्य आधार सूर्य है। संसार के प्रत्येक पदार्थ को उसी से उष्णता प्राप्त होती है और वहीप्राण रूप बनाकर प्रत्येक जीवित प्राणी में गति उत्पन्न करता है। मनुष्यमें निरोगिता, स्वास्थ्य,शारीरिक बल, उत्साह साहस पराक्रम आदि गुण भी उसीके प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। वही प्रकाशका एकमात्र साधन है। उसकेबिना सर्वघोर अन्धकार ही है। प्रकाश के अन्य जितने कृत्रिम साधन मनुष्य ने खोज निकाले हैं वे भी सूर्य की ही देन हैं। सूर्य अग्नि-तत्व का प्रतीक है और उसके बिना संसार जड़ और मृतक ही है।

मार्कण्डेय पुराण में इस प्राकृतिक को ही सबसे अधिक महत्व दिया गया है और उसी को पूजा उपासना के योग्य वतलाया गया है। वैवस्तव मन्वन्तर का आरम्भ सूर्य के पुत्र मनुसे ही मानागया हैं और उसके वर्णनमें सूर्यकी महिमापर पर्याप्त प्रकाशडाला गया है कथामेंकहा गया है कि त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था जिससे वैवस्वतमनु तथा यमदो पुत्रों तथाएक पुत्री यमुना काजन्महुआ। उस समय सूर्य का तेज अत्तन्त प्रखरथा और संज्ञा उसेसह सकने मेंअसमर्थथी। इससे वह अपना एक छायामय शरीर बनाकर गुप्त रूप से अपने पिता के घर चली गयी और छायासे कह गई कि तुम इस भेदको कभी प्रकट मत करना कुछ समय पश्चात् पिताने संज्ञा को फिर पति गृह जाने की सलाह दी तो वह वहाँसे चली आई और घड़ी का रूप-रखकर सूर्य के रूप का सुधार होने के उद्देश्य से तप करने लगी।

कुछ समय पश्चात् सूर्य को छाया के रूप में कृतिम संज्ञा का भेद मालूम पड़गया और उन्होने विश्वकर्माके पासजाकर इस सम्बन्ध मेंपूछा तोमालूम हुआ कि सूर्यके असहनीय तेजके कारण पिताके यहाँ चलीआई थी और अब कहीं तप करने चली गई है यह जानकर सूर्यने विश्वकर्मा से अपने स्वरूपको काटछांटकर सौम्य बना देनेको कहा। उन्होंनेसूर्य को

'रूम्वत्सर' रूपी खराद पर चढ़ाकर इस प्रकार छांट दिया जिससे उन का स्वरूप बहुत दर्शनीय और लोकोपयोगी बन गया। उसके स्वरूप के दर्शन करके देवता उसकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

हे देव ! तुम ऋग्वेद स्वरूप हो तुमको नमस्कार है। तुम्हीं यजुः स्वरूप हो तुमको नमस्कार है। (तुम्हीं) ज्ञान (प्रकार) के एक मात्र आधार हो, तुम्हीं तम (अन्धकार के नाशक), युद्ध ज्योति स्वरूप और निर्मल हो, तुमको, नमस्कार है। तुम शंख, चक्र गदा पद्म धारण करने वाले विष्णु रूप हो, तुम्हें नमस्कार हैं। तुम्हीं वरिष्ठ वरेण्य पर और परमात्मा हो, तुम्हीं ज्ञानी मनुष्यों की निष्ठा, सर्वभूतों के कारण स्वरूप हो। तुम्ही प्रकाश, आत्मा रूपी भास्कर, दिनकर हो, तुम्हीं रात्रि के कारण स्वरूप हो, तुम्हीं सन्ध्या और ज्योत्स्नाकारी हो। तुम्हीं भगवान हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत जाग्रत और गतिमान् होता है। तुम्हारे प्रभाव से ही यह चराचर युक्त अखिल ब्रह्माण्ड भ्रमण करता हैं। सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हारी किरणों से स्पर्श होकर पवित्र होते हैं। तुम्हारी किरणों द्वारा ही जलादि की पवित्रता साधित होती हैं। हे देव ! जब तक यह जगत् आपकी किरणों के संयोग को प्राप्त नहीं होता तब तक होम दानादि कोई उपकार कर्म भी नहीं हो पाता। आपके अंग से जो किरणें निकलती हैं में ही ऋक् यजुः साम रूपी त्रयी विद्या हैं। तुम्हीं ब्रह्म रूपी प्रधान ओर अप्रधान हो। तुम्हीं मूर्तिधारी ओर अमृत हो, स्थूल और सूक्ष्म रूप से तुम्हीं काल रूप हो।'

इस स्तोत्र में सूर्य को जो वर्णन किया है उससे प्रकट होता हैं कि इन पक्तियोंका लेखकसूर्यकोही परमात्माका मुख्य स्वरूप मानताहैं और संसार में एकमात्र उन्हींको पूजनीय,अर्चनीय,उपासनीय तत्व स्वीकार करता है। वेद में भी प्रकाश और तपदोनों का कारण सूर्य को ही बतलाया गया है और ब्रह्मांड मेंजो गति और जगतमें प्राणतत्व दिखाई पड़ता है उसका मूल भी सूर्यके अतिरिक्त कोई न हो। सूर्य को त्रयी विद्या का भी मूल बतलाया गया है। यही त्रयीविधा, वेदों का एक महत्वपूर्ण विषयहै और कुछ विचार

करने से प्रतीत होता है कि वही हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी मान्यताओं का मूल स्रोत है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है—

'ऋक्-यजु सामका सम्मिलित रूप सूर्य है वस्तुत: यह वैदिक तत्व-ज्ञान का मूलभूत दृष्टिकोण था। विश्व की प्रत्येक रचना सूर्य की शक्ति है। त्रयी विद्या को ही यज्ञ कहते, हैं इसलिए सूर्य को यज्ञ-नारायण कहा जाता है। त्रयी विद्या 'त्रिक' का ही दूसरा नाम है। भारतीय धर्म, दर्शन, वैदिक और पुराण तत्व सबका मूल त्रयी विद्या या त्रिक हैं वेद में अव्यय-पुरुष, अक्षर-पुरुष और क्षर-पुरुष, पुराणों में ब्रह्म, विष्णु शिवा रूपी त्रिदेव एवं दर्शन में सत्व, रज तम नामक तीन गुण त्रयी विद्या के ही रूप हैं। यही भू:भुव, स्व: नामक तीन व्याहृतियां हैं। भारतीय साहित्य में त्रिकों की अनेक समानान्तर सूचियां हैं। मन-प्राण वक् एवं प्राण-अपान व्यान त्रिक के ही रूप हैं। इस प्रकार त्रयी विद्या या त्रिक' का अपरिमित विस्तार भारतीय साहित्य में पाया जाता हैं। सूर्य उस विद्या का सर्वोत्तम प्रतीक है।'

'मार्कण्डेय पुराण' में इस एक स्थान पर ही नहीं वरन् अनेक प्रसङ्गों में सूर्य को ही सृष्टि का सबसे महान और रचनात्मक साधन बतलाया गया है। अध्याय ६४ में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जब चारों वेदों को प्रकट किया और उनका समस्त उत्तम तेज एक होकर ॐकार' के श्रेय तेज से संयुक्त हुआ तब सूर्य का सर्वोच्च तेज दृष्टि गोचर होने लगा। यह तेज सृष्टि रचना में सबसे पहले उत्पन्न हुआ था इसी से 'आदित्य' कहा जाता है। पर उस आरम्भिक दशा में यह इतना प्रखर और अनियन्त्रित था कि ब्रह्माजी ने देखा कि वे कुछ सृष्टि रचेंगे वह सब इसकी तीव्रता से नष्ट हो जायेगी। इसका उत्ताप जल सोख लेगा और पृथ्वी तत्व को भी भस्म रूप कर देगा। इसलिए उन्होंने सूर्य नारायण की स्तुति करते हुए कहा—

'जो सम्पूर्ण विश्व के आत्म स्वरूप है, जो इस विश्वरूप में ही वर्तमान है, विश्व ही जिनकी मूर्ति हैं, योगीगण जिनकी इन्द्रियों से अग्राह्य परम ज्योति का ध्यान करते हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँजो अचिन्त्य

शक्ति ऋग्वेदमय यजुर्वेद का आधार सामवेद की उत्पत्ति का कारण हैं, जो परमब्रह्म स्वरूप और गुणातीत है। सबसे पहले मैं उन्हीं सर्वकारण रूप परम पूज्य, परमवेद्य, परम ज्योति, देवात्मता हेतु स्थूल रूपी से भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् को नमस्कार करता हूँ। हे देव! तुम्हारी शक्ति ही 'आद्या' है क्योंकि उसी के द्वारा प्रेरित होकर मैं जल पृथिवी, पवन और अग्नि रूपी देवताओं और प्रणवादि की सृष्टि करता हूं। इसी प्रकार स्थिति और प्रलय भी मैं तुम्हारी शक्तिसे प्रेरित होकर ही करता हूँ।

हे भगवान्! तुम्हीं वह्नि रूप हो। जब तुम पृथिवी का जल सोखते हो तब मैं जगत् की रचना और अन्नादि को सम्पन्न करता हूँ। तुम्हीं सर्वव्यापी गन स्वरूप हो और तुम्हीं इस पंच भूतात्मक विश्वकी रक्षा करते हो। हे विवस्वन्, परमात्मा तत्व के ज्ञाता अखिल यज्ञमय विष्णु रूप में यज्ञों द्वारा तुम्हारी ही अर्चना करते हैं। आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। तुम्हीं देवरूप हो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। तु म्हीं योगीजनों द्वारा चिन्तनीय परब्रह्म स्वरूप हो तुम को प्रणाम करता हूँ। हे विभो! तुम अपने तेज को निवृत्त करो मैं सृष्टि करने को उद्यत हुआ हूँ। तुम्हारा जो प्रखर तेज समूह सृष्टि में विघ्नकारी होता है उसे संयमित करो।'

इसी प्रकार देवमाता अदिति द्वारा और राज्य वर्धन के आख्यान में ब्राह्मणों और राजा द्वारा सूर्य के कई स्तोत्र इस पुराण में दिये गये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि पौराणिक प्रतीकों के स्थान पर मार्कण्डेय पुराण के रचयिता ने विवस्वान्' (जिनसे आगे चल कर इन्द्र (प्राण) और विष्णु तथा शिवका आविर्भाव होता है को ही उपासना तथा ध्यान को सर्वश्रेष्ठ और मूल लक्ष्य माना है, पुराण में देवासुर संग्रामकी जो कथायें भरी पड़ी हैं, उसका बहुत कुछ सम्बन्ध भी सौर शक्तिके आविर्भाब से ही हैं। वेदों में जिस वृत्रासुर का प्रसंग आया है और जिसको नष्ट करके इन्द्र 'देवराज' वने थे वह वास्तव में सार-शक्ति के अवरोधक अन्धकार तत्व के मिटने का ही वर्णन है।

शक्ति के दो रूप और देवी द्वारा असुरों का पराभव—

७३ से ८५ अध्याय तक देवी के आविर्भाव और उसकी अपार महिमा का वर्णन किया है। इसके लिए किसी सुरथ नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उसके राज्य को शत्रुओं ने षड़यन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सब कुछ छोड़कर वन में चला जाना पड़ा। पर वहाँ भी उसका ध्यान अपने महल, कोषागार, नगर, हाथी, घोड़ों में लगा रहा और वह उनके विषय में चिन्ता करता हुआ दुःखी रहने लगा। वहीं उसकी भेंट समाधि नामक एक वैश्य से हो गई जिसको उसके स्त्री-पुत्र आदि ने समस्त धन अपहरण करके घर से निकाल दिया था और जो अब वन वासियों के साथ रहकर जीवन-निर्वाह कर रहा था। पर अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा न था और वह घर वालों की हानि-लाभ सुख-दुख की बात सोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनों ने उसी अरण्य में आश्रम बनाकर रहने वाले मेधा ऋषि से अपनी दुर्दशा और मनोव्यथा के विषय में प्रश्न किया। ऋषि ने उनको मोह-जनित भ्रम का रहस्य समझाया और साथ ही देवी की महिमा तथा उपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति से छुटकारा पा सकते थे।

देवी का यह उपाख्यान 'दुर्गा सप्तशती' के नाम से प्रसिद्ध है और वह कितने ही स्थानों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ कहा गया है। इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत् कर्ता भगवान् विष्णु सो रहे थे और उनकी नाभि से सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए और वे ब्रह्माजी को मारने को दौड़े। ब्रह्मा उनका सामना करने में असमर्थ थे अतः उन्होंने 'परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुति की। उससे सन्तुष्ट होकर देवी प्रकट हुई और उसने विष्णु को जगाकर मधु और कैटभ के कुकृत्य का उनको ज्ञान करा दिया। विष्णु इन असुरों से पाँच हजार वर्ष तक बाहु युद्ध करते रहे, पर उनका विनाश न कर सके। तब महा माया ने ही उनको मोहित करके कहलवाया कि हे विष्णु

हम तुम्हारे साथ युद्ध करके सन्तुष्ट हुए हैं, हमसे कोई वर माँगो।' विष्णु ने कहा तुम मेरे वध्य हो, यही वर मैं माँगता हूँ। वचन बद्ध होने से उन्हें वर देना पड़ा और तब विष्णु ने चक्र से उनका मस्तक काट दिया।

जब देवलोक का अधिपति इन्द्र को बनाया गया तो महिष नामक असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उनको हराकर देवलोक पर अधिकार करलिया। इन्द्र औरअन्य देवगण ब्रह्माजी को साथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण में गये और महिषासुर के अत्याचारों की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे बड़े क्रोधित हुए और उनके मुखों से एक महातेज निकला। उसी समय ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य देवगणों के मुख से भी तेज प्रकट हुआ। समस्त देवताओं के उस तेज ने सम्मिलित होकर एक देवी का रूप धारण कर लिया। सब देवताओ ने उसे अपने सवश्रेष्ठ अलंकार और अस्त्र-शस्त्र-दिये और उसे त्रैलोक्य में अजेय एक महाशक्ति बना दिया इस प्रकार वह देवी जब युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महा शब्द से तीनों लोक काँपने लगे। उसे सुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजाकर दौड़ा और दोनों पक्षों में घोर सग्राम होने लगा। आरम्भ में महिषासुर केचिक्षुर, चामर उदग्र, महाहनु असिलोमा, वाष्कल और विडालाक्ष सेनापतियों से सामना हुआ और एक-एक करके सब मारे गये। फिर दुर्धर और दुर्मुख आदि महिषासुर के महा पराक्रमी सहयोगी रणभूमि में उतरे पर देवीके सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर सके और सेना-सहित मारे गये।

अपनी सेना और साथियों को इस तरह नष्ट होता देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित होकर सामने आया और अपने समस्त अद्भुत साधनों से भयंकर सग्राम करने लगा। वह महिष कभी सिंह कभी हाथी का रूप धारण करके लड़ता था। कभी भूमि पर और कभी आकाश में जाकर शस्त्र वर्षा करता था उसके भयंकर संग्राम से तीनों लोक क्षुब्ध हो गये। तव देवी अपने सिंह से उछाल लेकर महिषासुर के ऊपर कूद पड़ी और उसे पैर से दबाकर तलवार से उसका मस्तक काट डाला।

उसका वध होते ही सर्वत्र हर्ष की लहर उठ गई और समस्त देवता देवी की जय जयकार करने लगे। इस अवसर पर देवगणों ने देवी की जो स्तुति की वह बड़ी अर्थ पूर्ण है। उसमें कहा गया है कि देवी ने अपनी शक्ति का समस्त विश्व में विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसके रहस्य को ज्ञात नहीं कर सकते। वही जगत का कारण अव्याकृता प्रकृति, देवताओं और पितरों की स्वाहा और सुधा तथा मोक्ष-भिलाषियों को मोक्षा प्रदान करने वाली पराविद्या है। देवी ही तीनों वेदों की शब्दमयी मूर्ति सम्पूर्ण जगत की रक्षा करने वाली, समस्त शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वतीव सागर से उद्धार करने वाली दुर्गा विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और शिव के सिर पर विराजने वाली गौरी है। उसकी शक्ति और बल अपार है।

तीसरी वार जब शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने देवताओं को हराकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण में पहुँचे। उस समय पार्वती की देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओं की रक्षाके लिए असुरों से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुपम सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेजकर अपना प्रणय सन्देश कहलवाया। पर देवी ने उत्तर दिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि 'जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा वही मेरा भर्ता हो सकेगा।' इस पर शुम्भ ने क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन को एक बड़ी सेना के साथ देवी को पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। इन असुर सेना के साथ देवी का विकट संग्राम हुआ, और अन्त में सब असुर मारे गये। फिर चण्डमुण्ड नामक महा असुर लड़ने को आये पर वे भी कालीद्वारा मार डाले गये, जिससे काली का नाम 'चामुण्डा' पड़ गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक रणभूमि में आया। इसमें यह विशेषता थो कि उसके रक्त की जितनी बूँदे पृथ्वी पर गिरती थीं उतने हीनये असुर और पैदा हो जाते थे और उनका नाशअसम्भव प्रतीत होता थातब देवीने काली से कहा किजब मैं रक्त बीज पर अस्त्रसे प्रहार करूँतो

तुम उसके रक्त को पी जाओ, एक भी बूँद को भूमि पर मत गिरने दो। काली ने ऐसा ही किया और तब उस महाअसुर का बध किया जा सका।

रक्त बीज के मारे जाने पर स्वयं शुभ और निशुभ सम्पूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। पहिले निशुम्भ का देवी के साथ घोर संग्राम हुआ और वह मारा गया फिर शुंभ सामने आया और उसने देवी की सहायक सप्त मातृका शक्तियों ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी बाराही नारसिंह और ऐन्द्री की ओर संकेत करके कहा— 'तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रमका झूँठ मूँठ अभिमान करती हो' इस पर देवी ने उन सात शक्तियों को अपने अन्दर समेट लिया और कहा कि ये सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ है जो मेरी इच्छा से प्रकट होती रहती हैं। अब देख मैं अकेली ही तेरा बध करती हूँ। इसके पश्चात् असुर सेना से देवी का सबसे बड़ा संग्राम हुआ और शुभ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरों को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। इस महान विजय के पश्चात देवताओं ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की उसमें उनको ही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओं ने कहा—

महामाया ही विपत्ति में पड़े जनों का कष्ट दूर करती है। वही जगत की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विद्याएँ और समस्त दैवी शक्तियाँ उन्हीं के रूप हैं। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार उनकी इच्छा से होता है।'

स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को वरदान देते हुए आश्वासन दिया कि 'पृथ्वी पर जब जब असुरों की उत्पति बढ़ेगी मैं विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।'

देवी सप्त शती' का यह उपाख्यान मार्कण्डेय पुराण' का एक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंशहै और नवरात्रियों के अवसर पर लाखों भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते हैं। एक धार्मिक कथा के रूप में निःसन्देह यह रचना बड़ी प्रभावशाली और रोचक

है, पर इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षा-प्रद हैं।

आधिभौतिक रूप में तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि संसार में दैवी शक्तियों के साथ आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा संघर्ष सदैव होता है। असुर या दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमण कारी और धूर्त होते हैं और इस कारण प्राय: आरम्भ में देव शक्तियों या सज्जन व्यक्तियों को दबा लेते हैं, उनको पीड़ित करते हैं। पर जब कष्ट मिलने से देवगण सावधान होते हैं, अपनी शक्तियों को एकत्रित और संगठति करते हैं तब वे असुरों का संगठन अहङ्कार, स्वार्थपरता दूसरों के उत्पीड़न की भावना पर आधारित होता है, जब कि देवताओं (सज्जनों में संगठन में) त्याग तपस्या, परोपकार, विश्वकल्याण जैसी उच्च भावनायें भी निहित रहती हैं। इसलिए संघर्ष में असुरगण चाहे जैसी माया, छल बल से काम लें अन्त में उन्हें परास्त होना ही पड़ता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अर्थ मनुष्य के भीतर उत्पन्न होने वाली सद् और असद् वृत्तियों के संघर्ष और मानसिक हलचल से है। भौतिक लाभ और सुखों को प्रधानता देना और उनके लिए अनुचित ढंगों को अपनाना बहुसंख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी धारणा यही होती है कि हम अपने अन्त:काल तक जो कुछ ऐश्वर्य वैभव प्राप्त कर लेंगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, यह सार है, क्योंकि देहत्याग के बाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो। इस प्रकार के निकृष्ट विचार मनुष्य में स्वार्थपरता के भावों को भड़काते है। जिससे वह अन्य व्यक्तियों की किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने में संकोच नहीं करता।

यह एक प्रकार का तामसी अहंभाव होता है। जिससे मनुष्य के अन्दर के सद्‌विचार क्षीणहो जातेहैं और वह समाज तथा संसार के लिए सष्टाचारी तथा ध्वंसकारी शत्रु का रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसे तामसी और स्वार्थान्धताके विचारों का नाम ही महिषासुर है जो आत्मा की सद्‌वृत्तियों

को दबाकर दूषित भावनाओं का राज्य स्थापित कर देता है। इस दूषित अहम्भाव से छुटकरा पाने के लिए मनुष्य को बड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़ती है। उसके लिए समस्त देव-शक्तियों श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को जागृत करके एक लक्ष्य पर एकत्रित करना पड़ता है। तब वह शक्ति रूपा देवी एक-एक करके दुविचारों की सेना का संहार करती है।'अन्त में दूषित अहंभाव विभिन्न रूपों में उसके सामने आता है पर सद्बिचारों की पैनी तलवार से उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आधिदैविक दृष्टि से देवी सप्तशती' की कथा का आशय सृष्टि के बिकास पर आरम्भिक परिबर्तनों से है। जैसा हमें मालूम है हमारी जानी हुई चराचर सृष्टि का मूल आधार सूर्य है। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञान युक्त जीवों की उत्पत्ति और वृद्धि होसकी है। पर सृष्टि के आरम्भ में जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब समय तक तम का आवरण उसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने में बाधक होतीहै उसे सृष्टि विज्ञान के ज्ञाता ऋषियों ने 'असुर' के नाम से पुकारा है। प्रकाश की तरह प्राण-तत्व या गति भी देव-भाव का सूचक है क्योंकि उसी से प्राणी जगत का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्य के तेज का परिपाक नहीं होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्यशील नहीं होती तब तक ही तम के आवरण युक्त अवस्था को बृक्ष अथवा महिषसुर का आधिपत्य कहा जाता है। उस समय तक सूर्य या इन्द्र अपने 'राज्य' से वंचित होता है। जब सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सौर-तेज सर्वत्र व्याप्त होकर सृष्टि-रचना के कार्य को अग्रसर करते हैं तो वहीं वृत्र या महिष का बध हो जाता है। यह कार्य देव-भाव की शक्ति का संग्रह होने से ही होता है इसलिए उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि-विकास और रचना के परिवर्तन करोड़ों वर्षों में होते हैं अतएव 'देवासुर संग्राम' उतने समय तक चलता ही रहता है। यह सब वर्णन वेदोंमें स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारों ने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा में लिख दिया है। इस बिषय

पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान् ने देवासुर संग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

'देवों के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्राण से है। सूर्य में जागरण भाव ही है सूर्य के भीतर सोना (निद्रा) नहीं है। आसुरी-भाव परिधि पर आक्रमण करते हैं, पर सूर्य-मण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। केन्द्र पर देवताओं का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नही पहुँच सके। इसलिए 'शतपथ ब्राह्मण' में इन्द्र के देवासुर संग्राम को वनावटी कहा—

न त्व युयुत्से कतमच्चानाहर्न तेऽमित्रौमघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुनन्नु पुरायुयुरसुः॥

अर्थात्—'हे इन्द्र ! तुम कभी लड़े नहीं, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धों का सब वर्णन माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा कोई शत्रु है और न पहिले तुमसे लड़ने वाला कोई था।'

वेदों में इन्द्र और वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्र के मरने से इन्द्र 'असपत्न' (बिना शत्रु के हो गया वही भाषा मार्कण्डेय पुराणमें महिषासुर के लिए प्रयुक्त की गई है-इन्द्रोऽभून्महिषासुरः' (७५-२) महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। पुनः इन्द्र सूर्य मण्डल का अधिष्ठातृ देवतादेव-भाब की वृद्धि से या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है जो अपने तम से सौर तेज को ढक देता है वही वृत्र या महिष है। सृष्टिकाल के हिसाब से परमेष्ठी को सूर्य-भाव में आने को समय लगा होगा। सूर्य के जन्म से लेकर उसके तेज का पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा। अन्त में जब इन्द्र पुनः प्रबल हुए तब वही महिष बध हुआ।'

देवासुर संग्राम और देवी के युद्धों की कथायें वास्तव में बड़े सुन्दर रूपक हैं जिनके माध्यम से पुराणकारों ने आध्यात्मिक और अधिवैदिक गहन तत्वों को सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य रूप में वर्णन किया है। उनमें तामसिक शक्तिके ऊपर सात्विक शक्ति की विजय का भाव दर्शाया

गया है, जो मनुष्य को सतोगुण का अवलम्बन करने की प्रेरणा देता है उसमें प्रकट होता है कि अन्धधार या तम की शक्तियाँ चाहे कुछ समय के लिए प्रकाश-सत्य की शक्ति को आच्छादित करलें पर अन्त में विजय सत्य-सतोगुण की होती है।

चौदह मन्वन्तर—

मन्वन्तरों का वर्णन और विवेचन पुराणों का एक मुख्य लक्षण माना गया है और मार्कंण्य पुराण में भी इस सम्बन्ध में अनेक रोचक कथायें दी गई है। उपर्युक्त 'देयी सप्तशती' जिसका सारांश पिछले पृष्ठों में दिया गया है स्वरोचिष मन्वन्तर के कथानक का ही एक अंश है। मन्वन्तरों की संख्या चौदह वतलाई है जिनमें से स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औतम, तामस रैवत और चाक्षुष ये छः बीत चुके हैं। स तवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान समय में चल रहा है। इसके पश्चात सावर्णि, दक्षसावर्णि, व्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि रौच्य और भौत्य नाम के सात मन्वन्तर और व्यतीत होंगे। ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन के अन्तर्गत होते हैं जिनका परिमाण मनुष्यों के ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों का बतलाया गया है। ब्रह्मा के इस एक दिन अथवा चौदह मन्वन्तरों की सम्मिलित अवधि को एक कल्प' कहा जाता है।

यदि हम मानवीय इतिहास के दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो दस बीस हजार वर्ष का इतिहास ही बहुत अस्पष्ट जान पड़ता है जिसका पता लगाने में बहुत कुछ अनुमान और कल्पना से काम लेना पड़ता है। ऐसी दशा में पुराणकारों का चार अरब वर्ष पहिले का इतिहास नाम-धाम सहित लिख देना विचित्र ही जान पड़ता है। इसका कारण यही है कि पुराणकार सृष्टि के निर्माण और प्रलय को एक सामान्य नियम मानकर उसके मुख्य परिवर्तनों (सर्गों) की चर्चा करते हैं। यह ठीक है कि वर्तमान मानव-सभ्यता का इतिहास आठ-दस हजार वर्ष से अधिक का विदित नहीं होता और वह भी अधूरी और कुछ अंशों में अनुमानों पर भी आधारित है, पर इसमें कोई सन्देह नही कि पृथ्वी की सृष्टि और प्रलय होते रहने से ऐसी सभ्यतायें हजारों बार बन और विगड़ चुकी है और हजारों ही बार बनें और बिगड़ेगी। जब देश और काल अनन्त

और अनादि है और निरन्तर परिवर्तन विश्व का अटल नियम है तब आज की दुनिया और मनुष्य जाति को ही सब कुछ समझ लेना या उसके अ गे पीछे संसार को शून्य हीं मान लेना ज्ञान का बहुत सीमित प्रयोग: करना है।

हम जानते हैं कि पुराणों में विभिन्न मन्वतरों के राजाओं ऋषियों और व्यक्तियों की जो कथायें दी गई हैं वह वर्तमात दुनियाँ के स्वरूप और समूह के अनुसार ही लिखी गई है, पर उनमें किसी तरह की हानि नहीं जान पड़ती। इन वर्णनों का मुख्य उद्देश्य पाठकों को सृष्टि की विशालता और अनादि काल से होते चले आने वाले विविध परिवर्तनों का आभास कराना ही है जिससे वह अपनी वास्तविकता का अनुभव कर सकें और अधर्म तथा अनीति से बचकर अपने धर्म कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। व्यक्तियों के नाम और उनके कथन तो इस उद्देश्य से लिखे गये हैं जिससे पाठकों को वे स्वाभविक ज न पड़ें और वे उनसे शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त कर सकें। हम तो यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि प्रत्येक मन्वन्तरों में मनुष्यों का आकार प्रकार और शरीर रचना वर्तमानतरह की ही थी औरवे इसीं प्रकार बोलकर अपना मनो भाव प्रकट करते थे पर इसमें सन्देह नहीं कि पञ्चभूत, प्राणशक्ति और चेतन तत्व मिलकर इसी से मिलती जुलती प्राणियों की रचना और विनाश सदैव करते ही हैं और विविध प्रकार की भली बुरी घटनाओं का होते रहना प्रकृति का एक स्वाभाविक और अनिवार्य नियम है। यदि किसी काल के मनुष्य चार हाथ पैरों से गमन करने वाले हों या उड़कर आते जाते हों तो इससे भी भलाई-बुराई, नैतिकता-अनैतिकता, पाप-पुण्य की शिक्षाओं में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

पौराणिक कथाओं का मुख्य उद्देश्यलोगों को सदाचरण की सत्-शिक्षाएं देना ही है। वर्णनों के नाम गांव, संख्या, कथोपकथनके ज्योंका त्यों होने पर वहस करना निरर्थकहै। रामायण और महाभारत के नायकों के अथवा बुद्ध ईसा, सिकन्दर, चन्दगुप्त, चाणक्य अशोक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के जो सम्भाषण उनके जीवन चरित्रों या ऐतिहासिक कथाओं में दिये गयेहैं वहभी उस समय किसी समयशार्ट हैण्ड लेखक ने नहीं लिखे थे पर घटनाओं के सम्पूर्णता और स्वाभाविकता का रूप देने के ख्याल से कथा

लेखक, कविगण या नाटककार उसे ऐसे रूप में लिखते ही हैं मानो वे घटनायें उनकी आँखों के सामने ही हुई हों। पौराणिक कथाओं की रचना भी इसी प्रकार और ऐसे ही शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई हैं। हम तो उन लेखकों के व्यापक दृष्टिकोण की प्रशंसा ही करेंगे जिन्होंने मानव मात्र को ही नहीं प्राणी मात्र में एक ही सत्ता को अनुभव करके मनुष्यों के सम्मुख सत्य, न्याय, सहानुभूति, दया, क्षमा के दैवी गुणों के आदर्श ऐसे रूप में उपस्थित किये जो किसी सहृदय व्यक्ति के अन्तःकरण को सहज ही प्रभावित कर सकते हैं।

इस दृष्टि से मार्कण्डेय पुराण का दर्जा बहुत ऊँचा माना जाता है। इसमें मतमतान्तर सम्प्रदायवाद और विशेष स्वार्थी की भावना से ऊपर उठ कर आतमोथान, सच्चरित्रता, परोपकार, दया क्षमा आदि सद्‌गुणों की ही शिक्षा दी है। इन तथ्यों को साधरण बुद्धि के मनुष्य भी हृदयगम कर सकें इसलिए उपाख्यानों की रोचक शैली का अवलम्बन किया है। इसके 'हरिश्चन्द्र' और 'मदालसा के उपाख्यान धार्मिक-जगत् में अमर बन चुके हैं और दुर्गा' सप्तशती शक्ति सम्प्रदाय ही नहीं हिन्दू मात्र का परायण ग्रन्थ बन चुका है। नरक वर्णन, योग निरूपण सूर्यतत्व विवेचन, पतिव्रत महिमा आदि का इसमें ऐसे प्रभावशाली ढ़ंग से वर्णन किया है कि प्रत्येक पाठक को उससे कुछ न कुछ सद्‌प्रेरणा अवश्य प्राप्त होती है। सृष्टि रचना जड़ और प्राणी जगत् का क्रम विकास, मानव स्वभाव के दोष और दुरितों का कथन, राजवंशों की कथायें आदि पौराणिक विषयों के वर्णन में भी मार्कण्डेय पुराण ने अतिशयोक्ति से यथा सम्भव बचकर शिक्षा और उपदेश पर अधिक दृष्टि रखी है। इन सब विशेषताओं के कारण सामान्य जनता तथा विद्वानों में भी मार्कण्डेय पुराण का अपेक्षाकृत अधिक मान है और हमारा विश्वास है कि पाठक इसके परायण में पर्याप्त लाभान्वित हो सकते हैं।

मार्कण्डेय पुराण की श्लोक संख्या अन्य पुराणों के विस्तार को देखते हुए पर्याप्त न्यून है। अतः इसमें कोई खास कमी नहीं की गई है। केवल श्राद्ध सम्बन्धी कुछ विषय जो अप्रासङ्गिक जान पड़ता था छोड़ा गया है। अन्यथा आदि से अन्त तक सम्पूर्ण ग्रन्थ ज्यों का त्यों रखा गया है।

मार्कण्डेय पुराण की विषय सूची

१. जैमिनि की महाभारत विषयक चार शंकायें और मार्कण्डेय महामुनि द्वारा वपु अप्सरा शाप वर्णन ६५
२. महाभारत-सग्राम में वपु तीर लगना और चार पक्षी शावकों का जन्म ७४
३. पक्षियों का शमीक मुनि द्वारा पालन और निज शाप वृतान्त कहकर विन्ध्याचल गमन ८३
४. पक्षियों के पास जैमिनि मुनि का आगमन और पूर्वोक्त चार प्रश्न करना, भगवान के चतुर्व्यूहावतार का वर्णन ९५
५. इन्द्र के शापग्रस्त होने से उसका द्रोपदी के पाँच पतियों के रूप में प्रकट होना १०४
६. बलदेव जी द्वारा मद्य-दोष से ब्रह्म-हत्या और प्रायश्चित के लिए तीर्थ यात्रा करना १०८
७. द्रोपदी के पाँच पुत्र अविवाहित अवस्था में ही मृत्यु को क्यों प्राप्त हुए ? ११३
८. हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र उपाख्यान, हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा १२३
९. विश्वामित्र तथा वासिष्ठ का आदि और वक के रूप में महा संग्राम और ब्रह्माजी की शान्ति स्थापना १६२
१०. पिता-पुत्र सम्बाद रूप में प्राणियों के जन्मादि और जीव पर आने वाले संकटों का वर्णन १६७
११. गर्भ-स्थापन होकर प्राणियों की उत्पत्ति और कर्म विपाक १८०
१२. पापियों को दण्ड देने के लिए छ. नरकों का लोमहर्षण स्वरूप वर्णन १८४
१३. पुत्र के सातवें पूर्व जन्म की कथा और कर्मफल के सम्बन्ध में राजा विपश्चित का यमदूत से सम्वाद १९१

१४- विभिन्न पापों के कर्मफल स्वरूप घोर नरक यातनाओं का वर्णन १६४
१५-कर्मफल भोगने के पश्चात् प्राणियों का नरक से छुटकारा और विविध योनियों में भ्रमण २०६
१६- पतिव्रता का अपने कोढ़ी पति की रक्षार्थ सूर्योदय रोक देना और देवताओं का अनुसूया की शरण में आना, सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अनुसूया के पुत्र रूप में जन्म लेना और कीर्तवीर्य अर्जुन का गर्ग मुनि से दत्तात्रेय की महिमा श्रवण करना २१७
१७- कीर्तवीर्य अर्जुन का दत्तात्रेय की शरण जाना और महान् वर लाभ करना २४२
१८- ऋतुध्वज को कुवलय नामक दैवी अश्व की प्राप्ति और उसका कुवलयाश्व नाम होना २४७
१९- कुवलयाश्व का पाताललोक गमन, मदालसा से विवाह और पाताल केतु दैत्य का सेना सहित संहार २५५
२०- पाताल केतु दैत्य को माया द्वारा कुवलयाश्वकी मृत्युका मिथ्या समाचार और मदालसा का मरण २६९
२१. कुवलयाश्व का चरित्र सुनकर नागराज अश्वतर का तपस्या द्वारा मदालसा को जीवित करना २७६
२२- कुवलयाश्व का नागराज अश्वतर के यहाँ जाना और मदालसा की पुनः प्राप्ति २८३
२३- मदालसा द्वारा प्रथम तीन पुत्रों को आत्मज्ञान का उपदेश देकर संसार से विरक्त बना देना और फिर राजा के आग्रह से चौथे पुत्र अलर्क को ग्रहस्थ धर्म का उपदेश २९९
२४- अलर्क के प्रश्न करने पर मदालसा का राजधर्म और राजनीति कथन ३०८
२५- वर्णाश्रम धर्म कीर्तन ३१३
२६- गृहस्थ धर्म, वेद विद्याका महत्व तथा धनिक कर्तव्य वर्णन ३१९

२७- सदाचार, शिष्टाचार और नागरिक कर्तव्यों का वर्णन ३२५
२८- अलर्क को राज्यभार और रहस्यमय अंगूठी देकर मदालसा का पति सहित वन गमन ३४२
२९. अलर्क को सांसारिक विषयों में आसक्त देखकर उसके बड़े भाई सुबाहु द्वारा काशी नरेश को आक्रमण के लिए प्रेरित करना तथा अलर्क की आत्मानुभूति प्राप्त होकर दत्तात्रेय के निकट जाकर योग का उपदेश ग्रहण करना ३४४
३०- दत्तात्रेय का ममता का रूप और उससे होने वाले बन्धनों का वर्णन ३५०
३१- दत्तात्रेय का अलर्क को अष्टाङ्ग योग का उपदेश तथा योग-मार्ग में आने वाले विघ्नों का वर्णन ३५३
३२- पाँच उपसर्ग, सात भाव तथा अष्ट सिद्धियों का वर्णन करके योग सिद्धि तथा मुक्ति की प्राप्ति कथन ३६२
३३. योगी के आहार-विहार के नियम और अनासक्त राग-विहीन ३६८
३४- अहंकार के स्वरूप और प्रणव की महिमा कथन ३१२
३५- जीवन के अन्त होने पर मृत्यु सूचक अरिष्टों का वर्णन और उनसे सावधान होने का उपदेश ३७४
३६- अलर्क का आत्मज्ञान प्राप्त करके काशिराज के पास जाना राज्य की पुनः प्राप्ति तथा पुत्र को राज्य देकर तपस्या के लिए वन जाना ३८६
३७- मार्कण्डेय और क्रौष्टुक का सम्वाद, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और विकास वर्णन ३९३
३८- प्रकृति से जगत की उत्पत्ति, एक ही ईश्वर का ब्रह्मा, बिष्णु और शिव के रूप में प्राकट्य, ब्रह्मा का दिन, मन्वन्तर और ब्रह्मा की आयु का वर्णन ४०३

३९. पाद्मकल्प के पश्चात् बाराह कल्प में नारायण द्वारा पृथिवी का उद्धार और ब्रह्माजी द्वारा नौ प्रकार की वैकृत और प्राकृत सृष्टि कथन ४०९

४०. ब्रह्मा द्वारा देवकाल, वेद, मनुष्य, प्रकाश और जगत के विभिन्न पदार्थों का निर्माण ४१४

४१. ब्रह्मा से सात्विक, राजस, तामस, नर नारियों की उत्पत्ति मिथुन सृष्टि, मनुष्यों के निवास स्थान, नाप और गणना का आरम्भ, जीविका प्रणाली, कृषिकला का विकास समाज सङ्गठन कथन ४२०

४२. ब्रह्मा के आठ मानस पुत्र, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा, दक्ष और रुचि प्रजापतियों की सन्तति का वर्णन ४३२

४३. कलि की कन्या के दुःख देने वाले परिवार और भीषण कर्मा दुःसह की उत्पत्ति और उसके रहने के स्थानों के रूप में मनुष्य के भले-बुरे कार्यों का उल्लेख ४४६

४४. रुद्र-सृष्टि और मार्कण्डेय ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन ४६३

४५. स्वायम्भुव मनु के वंश का विस्तार और मर्यादा, ऋषभ पुत्र भरत का चरित्र कथन ४६८

४६. पृथ्वी का विस्तार, सप्त द्वीप और जम्बू द्वीप में भारतवर्ष का वर्णन

४७. जम्बू द्वीप के प्रमुख पर्वत, नदी और भारतवर्ष का महत्व कथन ४७८

४८. गंगा की अनेक धाराओं और किम्पुरुष आदि देशों का वर्णन ४८२

४९. भारतवर्ष का विस्तार और वहाँ के विभिन्न स्थानों का वर्णन ४८६

५०. कूर्म संस्थान के रूप में भारत के विभिन्न देशों का वर्णन ४९४

॥ ॐ ॥

मार्कण्डेय पुराण

प्रकर्ण-१ महाभारत विषयक चार शंकायें

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्यवंदितमतीबविविक्तचित्ते
तपुःतुनातुहरिपादसरोज युग्ममाविभवत्क्रमधितभूर्भुवःस्व ।१।
पायात्सवः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगानिविष्ट-
मूर्तिः । श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव-
यस्यकरोति संगात् ।२। नारायणंनमस्कृत्सनरंचैवरोत्तमम् ।
देबींसरस्वतीं व्यासंततोजयमुदीरयेत् ।३।

तपःस्वाध्याय निरतमार्कण्डेयमहामुनिम् ।
व्यास शिष्योमहातेजाजैमिनिःपर्यपृच्छत ॥१

संसार के भय और दुःख के नाशक, एकान्त चित्त योगियों और सन्यासियों द्वारा ध्यान योग्य तथा वंदनीय, भूः भुवः और स्वर्लोकका कमन रूप से अतिक्रमण करने वाले नारायण के पद पद्म आपको पवित्र करें ? ।१। जो शेषशायी, श्वास से जल के कारण कण को कम्पायमान करने वाले, जिससे समुद्र नर्तन करता सा प्रतीत होता है वह अविनाशी नारायण तुम्हारे रक्षक हों ।२। नर नारायण, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके जप कीर्तन एवं पुराण आदि का पाठ करें ।३। एक समय की बात है महर्षि वेदव्यास के शिष्य महा तेजस्वी जैमिनी ने वेदादि के अध्ययन में परायण महातपस्वी मार्कण्डेयजी से प्रश्न किया ।१।

भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना ।
पूर्णमस्तमलैः शुभ्रै र्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥२
जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ।
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥३
त्रिदशानांयथाविष्णुर्द्विपदांब्राह्मणो यथा ।
भूषणानांचसर्वेषाँयथाचूड़ामणिवरः ॥४
यथायुधानांकुलिमशमिन्द्रियाणाँयथामनः ।
तथेहसर्वशास्त्राणाँमहाभारतमुत्तमम् ॥५
अत्राथश्चैवधर्मश्चकामोमोक्षश्चवर्ण्यते ।
परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्चतेपृथक् ॥६
धर्मशास्त्रामिदंश्रे ष्ठमर्थशास्त्रमिदंपरम् ।
कामशास्त्रामिदंचाग्रथ मोक्षशास्त्र तथोतमम् ॥७
चतुराश्रमधर्माणामाचारस्थितिसाधनम् ।
प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेनधीमता ॥८

हे भगवान् ! महात्मा वेदव्यास जी ने जिस 'भारत' ग्रन्थ को कहा है, वह अनेक शास्त्रों से धर्मार्थ वाला है ।२। पवित्र शब्द से युक्त, छन्दालकारों के सम्पन्न कानों को सुखप्रद है तथा उसमें यर्थार्थ प्रश्नों का उत्तर सन्निविष्ट हैं । जैसे देवगण में विष्णु मनुष्य में ब्राह्मण और आभूषणों में चूड़ामणि ।४। अस्त्रों में वज्र तथा इन्द्रियों में मन प्रमुख है, वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रों में एक मात्र महाभारत ही है।५। इसमें धर्म, अर्थ, काम मोक्ष का पारस्परिक सम्बन्ध है तथा वे प्रकट और पृथक्-पृथक् कहे गये है ।६। इसलिए यही धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र कामशास्त्र, और मोक्षशास्त्र हैं ।७। महाभाग ! महर्षि वेदव्यास ने इसमें चारों आश्रम, उनका आचार अवस्थान तथा साधन, सभी कुछ विशेष रूप से कहा है ।८।

तथातात कृतं ह्येतत्व्यासेनोदारकर्मणा।
यथा व्याप्तं महाशास्त्रविरोधैर्नाभिभूयते ॥९
व्यासवाक्यजलौघेनकुतर्कतरुहारिणा ।
वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्कामहीकृता ॥१०
कलशब्दमहाहंसंमहाख्यानपराम्बुजम् ।
कथाविस्तीर्ण सलिलंकार्ष्णवेदमहाह्लदम् ॥११
तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थंश्रुतिविस्तरम्।
तत्वतोज्ञातुमामोऽहं भगवस्त्वामुपस्थित: ॥१२
कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः।
वासुदेवोजगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥१३
कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासद्रुपदात्मजा ।
पञ्चानांमहिषीकृष्णाह्यत्रनःसंशयोमहान् ॥१४

उन उदारकर्मा व्यासजी ने इस महाशास्त्र को इस प्रकार रचा है कि उसके अत्यन्त विस्तृत होने परभी इससे कोई स्थल किसी भी स्थल का परस्पर विरोधी नहीं।९। व्यास की वचन रूप जल राशि वेद रूप पर्वत से प्रकट हुई और उसने कुतर्क रूप को उखाड़ कर भूमि को रजहीन बना दिया।१०। यह पंचम वेदरूप जलाशय महाशब्द रूप हसों और महानआख्यान रूप अरविन्दों से सुशोभित तथा विस्तीर्ण कथा नीर के द्वारा परिपूर्ण हुआ है।११। हे प्रभो ! जो महाभारत शास्त्र वेदार्थऔर श्रुतियोंसे सम्पन्नहै। उसका यथार्थ जाननेके निमित्त ही आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ।१२। विश्व सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता जनार्दन वासुदेव निर्गुण होते हुए भी मनुष्यत्वको किसलिए प्राप्त हुए।१३। द्रुपद सुता द्रोपदी एक ही पाँच पाँडवों की पत्नी कैसे हुई, इस विषय में मुझे अत्यन्तशंका हैं।१४।

भेषजंब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबल: ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गे नकस्माच्क्रेहलायुध: ॥१५
कथंचद्रौपदेयास्तेकृतदारामहारथा: ।
पाण्डुनाथामहात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥१६
एतत्सर्वं विस्तरशामेमाख्यातुमिहार्हसि ।
भवन्तोमूढबुद्धीनामवबोधकरा: सदा ॥१७
इतितस्यववच:श्रुत्वामार्कण्डेयो महामुनि: ।
दशाष्टदोसरहितोवक्तुं समुपचक्रमे ॥१८
क्रियाकालोऽयमस्माकं सम्प्राप्तो मुनिसत्तम् ।
विस्तरेचापि वक्तव्येनैषकाल: प्रशस्यते ॥१९
येतु वक्ष्यन्तिवक्ष्येऽद्यतानंह जैमिनेतिव ।
तथाचनष्टसन्देहत्वांकरिष्यान्तिपक्षिण: ॥२०
पिङ्गाक्षश्चविनोधश्चसुपुत्र:सुमुखस्तथा ।
द्रोणपुत्रा: खगश्रेष्ठास्यत्वज्ञा: शास्त्रचिन्तका: ॥२१

तथा महाबली बल्देवजी ने तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में कैसे ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित किया ? ।१५। पाण्डवोंसे रक्षित द्रोपदी के महारथी पुत्रों ने अनाथ के समान ही अविवाहितावस्था में ही कैसे प्राण छोड़ दिये ? ।१६। यह सब मेरे प्रति विस्तार सहित कहिये, क्योंकि आप ही अज्ञानियों को ज्ञानोत्पन्न करनेमें समर्थ हैं ।१७। योग शास्त्रमें वर्णित अठारह दोषों से बचे हुए महर्षि मार्कण्डेयजी ने मुनि श्रेष्ठ जैमिनि के यह सुनकर कहा ।१८। मार्कण्डेयजी बोले—यह समय मेरे संध्या वन्दनादि का है, विस्तार सहित कुछ कहने का नहीं है ।१९। परन्तु इस समय को तुम्हारे प्रति जो पक्षी कहेंगे और संदेह तुम्हारा नष्ट करेंगे, उनका वर्णन तुम्हारे प्रति कहता हूं ।२०। पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि द्रोण पक्षी श्रेष्ठ, सब शास्त्रों का तत्व जानने वाले हैं ।२१।

वेदशास्त्रार्थविज्ञानेयेषामव्याहतामतिः ।
विन्ध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्या च पृच्छाच ॥२२
एवमुक्तस्तदातेनमार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रत्युवाचर्षिशार्दूलोविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२३
अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्खगवागिवमानुषी ।
यत्पक्षिणस्तेविज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४
तिर्य्यग्योन्यांय दिभवस्तेषांज्ञानंकुतोऽभवत् ।
कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्तेपतत्रिणः ॥२५
कश्च द्रोणः प्रविख्यातोयस्यपुत्रचतुष्टयम् ।
जातं गुणवतांतेषांधर्मज्ञानंमहात्मानम् ॥२६
शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्द नेपुरा ।
शक्रस्याप्सरसांचैवनारदस्या च संगमे ॥२७

वे विंध्याचल की कन्दरामें निवास करते हैं, उनकी बुद्धि वेदशास्त्र के अर्थ में कमी अवरुद्ध नहीं होती, उनकी उपासना करके प्रश्न करोगे तो सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान तुम्हें हो सकेगा ।२२। मेधावी मार्कण्डेयजी के यह वचन सुनकर उन मुनि शार्दूल जैमिनि ने विस्मयसे विस्फारित हुए नेत्रों से प्रश्न किया ।२३। जैमिनि बोले-प्रथम तो यही आश्चर्य की बात है कि पक्षी भी मनुष्य के समान वार्ता कर सकते हैं फिर अत्यन्त आश्चर्य यह है कि उन्हें अलभ्य ज्ञान प्राप्त हो चुका हैं ।२४। उनका जन्म यदि तिर्यग्योनि में हुआ है तो ऐसे ज्ञान की उपलब्धि उन्हें कहाँ से हुई और वे द्रोणपुत्र किस प्रकार कहे जाते हैं ? ।२५। यह द्रोण कौन है, जिसके पुत्र यह चार पक्षी हैं तथा इन गुणज्ञ एवं महात्मा पक्षियों को धर्म-ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हुई ? ।२६। मार्कण्डेयजी ने कहा- हे जैमिने ! प्राचीन काल के इन्द्र, नारद तथा अप्सराओं के नन्दन वन में एकत्र मिलन होने पर जो घटना हुई, उसे एकाग्र मन होकर श्रवण करो ।२७।

नारदोनन्दनेऽपश्यत्पुं श्चलींगणमक्ष्यगम् ।
शक्रंसुराधिराजानतन्मुखासक्तलोचनम् ॥२८
सतिनर्षिवरिष्ठनदृष्टमात्र:शचीपति: ।
समुत्तस्थौस्वकचास्त्मैददावासनमादराम् ॥२९
तदृष्टावनवत्रध्वप्रतिथितत्रिदशाङ्गना: ।
द्रणे मुस्ताश्चदेवर्षिविनय वनता: स्थिता: ॥३०
ताभिरभ्यर्चति: सोऽथ उपविष्टेशततक्रतौ ।
यथार्हंकृतसंभाष: कथाश्चक्रे मनोरमा: ॥३१
तत: कथान्तरेशक्रस्तमुवाचमहामुनिम ।
देह्याज्ञाँनृत्यतामासांतवयाभिमतेतिवै ॥३२
रम्भावाकर्कशावाथउर्वश्यथ तिलोत्तमा ।
घृताचीमेनकावापियत्रवाभववतोरुचि: ॥३३
एतच्छ्रुत्वाद्विजश्रेष्ठोर्वाचंशक्रस्यनारद: ।
विचिन्त्याप्सरस: प्राहविनयावनता: स्थिता: ॥३४

एक दिन नारदजी ने वहाँ पहुँचकर देखा कि देवराज इन्द्र अनेक वाराङ्गनाओं से घिरे हुये उनके ही मुख देख रहे हैं ।२८। शचीपति इन्द्र महर्षि श्रेष्ठ नारद को देखते ही उठे और अत्यन्त आदर पूर्वक उनके निमित्त अपना आसन दिया ।२९। इन्द्र को उठता हुआ देखकर उन वाराङ्गनाओं ने भी उठकर महर्षि नारद को प्रणाम किया और विनयपूर्वक नतमस्तक हुई खड़ी रहीं ।३०। उनके द्वारा इसप्रकार पूजित हुए नारदजी इन्द्र के सहित बैठकर परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने लगे ।३१। इसी मध्य उन महर्षि से इन्द्र बोले-हे महाभाग ! यदि आपकी इच्छा हो तो नृत्यगान की आज्ञा दीजिए ।३२। रभा मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची या मेनका में से जिसे आप चाहें उसी को नृत्य करने का आदेश दें ।३३। द्विजोत्तम नारद जी ने इन्द्रकी यह बात सुनी तो कुछ समय विचार कर उन्होंने विनय से झुकी हुई उन अप्स-राओं से कहा ।३३।

युष्माकविहसर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् ।
आत्मानं मन्यतेयातुसानृत्यतुममाग्रतः ॥३५
गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्यनास्तिवै ।
चार्वधिष्ठान्नृत्यनृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥३६
तद्वाक्यसमकालंचएकैकास्तामतास्ततः ।
अहं गुणाधिकानत्वंचान्यान्ब्रवीदिदम् ॥३७
तासांमंभ्रममालोक्य भगवान्पाकशासनः ।
पृच्छयतांमुनिरित्याहनत्तायांवोगुणाधिकाम् ॥३८
शक्रच्छन्दानुयाताभि पृष्ठस्ताभिः सनारदः ।
प्रोवाचयत्तदावाक्यं जैमिनेतन्निबोधमे ॥३९
तपस्यंतंनगेन्दस्थंयाः वशोभायतेवलात् ।
दुर्वाससं मुनिश्रेष्ठं तांवोमन्येगुणाधिकाम् ॥४०
तस्यतद्वचनंश्रूत्वासदर्दादेपितिकन्धराः ।
अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चक्रिरेकथाः ॥४१

देखो तुम्हारे मध्य जो अधिक रूपवती हो, तथा जो अपने में उदारता आदि गुणों को पाती हो वही मेरे समक्ष नृत्य करे ।३५। क्योंकि नाट्यशास्त्र में रूपवती और गुणवती नारी के अतिरिक्त किसी अन्य की सिद्धि नहीं तथा हाव, भाव कटाक्ष, विक्षेपादि से सम्पन्न नृत्य ही नृत्य कहा जाता हैं ।३३। मार्कण्डेयजी ने कहा—नारदजी की यह बात सुनकर अप्सरायें परस्पर में विवाद करने लगी सब गुणों से विभूषित विशिष्ट में ही हूँ तुम नहीं हो ।३७। उनमें इस प्रकार विवाद होता देखकर इन्द्र बोले-इन मुनि से ही पूछो कि तुम में से गुणवती कौन-सी है ? इस बात को वही कह सकते हैं ।३५। हे जैमिने ! इन्द्र इच्छा पर उद्यत कहने वाली अप्सराओं द्वारा पूछने पर उस समय नारद जी ने कहा वह कहताहूँ ।३६। नारदजी ने कहा-पर्वत पर मुनिवर दुर्वासा तप करते हैं तुम में से जो कोई उन्हें मोहित कर सकेगी, वही अधिक गुणवती होगी ।४०। मार्कण्डेयजी ने कहा—उनकी बात

सुनकर सब अप्सराओं का मस्तक घूम गया और वे बोलीं कि हम इस कार्य में समर्थ नहीं है ।४१।

तत्राप्सरावपुर्नाममुनिक्षोभणगर्विता ।
प्रत्युवाचानुयास्यामित्रासौसंस्तितोमुनिः ।।४२
अद्यतंदेहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ।
स्मरशस्तगलद्रश्मिं करिष्यामिकुसारथिम् ।।४३
ब्रह्माजनार्दनोवापियदिवानीललोहितः ।
तमप्यद्यकरिष्यामिकामवाणक्षतान्तरम् ।।४४
इत्युक्ताप्रजगामाथप्रालेयाद्रिवपुस्तदा ।
मुनेस्तपःप्रभावेणप्रशान्तश्वापदाश्रमम् ।।४५
सापुस्कोकिलमाधुर्ययत्रास्तेसमहामुनिः ।
क्रोशमात्र स्थितातस्मादगायतवराप्सराः ।।४६
तद्गीतिध्वनिमाकर्ण्यमुनिर्विस्मितमानसः ।
जगामतत्रयत्रास्तेसावालारुचिराननः ।।४७
तांदृष्ट्र वाचारुसर्वाङ्गीं मुनि ज्ञंस्तभ्तमानसम् ।
क्षोभणायागतांज्ञात्वाकोपामर्षसमन्वितः ।।४८

परन्तु उनमें वपु नाम की एक अप्सरा अनेक मुनियों का तप भंग कर चुकी थी, इसलिए उसने सगर्व कहा कि आप मुझे आज्ञा करे, दुर्वासाजी जहाँ निवास करते हैं, मैं वहाँ जाने को उद्यत हूँ ।४२। मैं उनकी मन रूप लगाम को काम वाण से काट कर इन्द्रिय रूप अश्वों को उल्टीं दिशा में फेरकर देह रूप रथ को बुद्धि रूप सारथी से विहीन कर डालूँगी ।४३। यदि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी हों, तो भी मैं उन के अन्तर को काम वाण से अवश्य ही जर्जर कर डालूँगी । ४४। यह अप्सरा हिमालय में पहुँची, वहाँ दुर्वासा के तप के प्रभाव से आश्रम के सिंहक जीव भी अत्यन्त शान्त रहते थे ।५। वहाँ दुर्वासा रहते थे, वहाँ से एक कोस दूर रह कर अप्सरा श्रेष्ठ वपु अपने कोकिल कण्ठ से

गायन करने लगी ।४६। जहाँ पर वह कौंकिल कन्ठी गा रही थी वहाँ उस गान को सुनकर आश्चर्यान्वित हुए दुर्वासा पहुँचे ।४७। और उन्होंने उस सर्वाङ्ग सुन्दरी को देखकर मन को रोकते हुए सोचा कि यह मेरी तपस्या में विघ्न करने को उपस्थित हुई हैं और क्रोध से भर कर बोले ।४८।

उवाचेदततोवाक्यं महर्षिस्तांमहातपा: ।।४९
यस्माद्दु:खार्जितस्येहतपसाविघ्नकारणात् ।
आगतासिमन्दोन्मते ममदु:खावखेचरि ।।५०
तस्मात्सुपर्णगोत्रत्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
जन्मप्राप्स्यसिदुष्प्रज्ञ यावद्वर्षाणिषोडश ।।५१
निजरूपंपन्त्यिज्यपक्षिणीरूपधारिणी ।
चत्वारस्तेचतनयाजनिष्यन्तेऽधमाप्सर: ।।५२
अप्राप्यतेषुचप्रीतिंशस्त्रपूतापूर्नदिवि ।
वासमाप्स्यसिवक्तव्यंनोत्तन्तेकथंचन ।।५३

इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टिचलकवलयांतांमनिनीं श्रावयित्वा । तरलतरतरङ्गं गांपरित्यज्यविप्र: प्रथितगुणगणौघांसंप्रयात: खगङ्गाम् ।।५४

उन महातपस्वी महर्षि ने उसके प्रति कहा ।४९। अरी मदोन्मत्त खेचरी ! कष्टों से उपार्जित मेरे इस तप में विघ्न करने के लिए ही तू यहाँ आई हैं ।५०। हे दुर्बुद्धि वाली ! तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर पक्षी कुल में जन्म लेकर सोलह वर्ष तक रहेगी ।५१। अरी अधम अप्सरे ! अपने इस रूपको छोड़कर पक्षी रूप धारण करेंगी, उस समय तेरे चार पुत्र होंगे ।५२। पुत्रोत्पत्ति की प्रीति से वंचित रहेगी और शास्त्र के आघात न पापों से छूटकर पुन: स्वर्ग को प्राप्त होगी अब इसमें किसी प्रश्नोत्तर की आवश्यकता नहीं है ।५३। विप्र श्रेष्ठ दुर्वासा क्रोधपूर्ण रक्त नयनों से मनोरम कंकण को धारण करने वाली मानवती वपु से, इतना कहकर पृथ्वी को त्यागकर, प्रसिद्ध गुणों वाली आकाश गंगा को चले गये ।५४।

प्रकरण-२ महाभारत संग्राम में पक्षी शावकों का जन्म

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूगरुडोनामपक्षिराट् ।
गरुडस्याखवत्पुत्रः सम्पतिरितिविश्रुतः ॥१
तस्याप्यासीत्सुतः शूरः सुपार्श्वोवायुविक्रमः ।
सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥२
तस्यापितनतयावास्तांकङ्ककन्धरएव च ॥३
कङ्कः कैलासशिखरेविद्युद्रूपेति विश्रुतम् ।
ददर्शाम्बुजपत्राक्षराक्षसं धनदानुगम् ॥४
आपानासक्तममलस्तग्दामाम्वरधारिणम् ।
भार्यासहायमासीनंशिला ट्टेऽमलेशुभे ॥५
तद्दृष्टमात्रं कङ्केनरक्षः क्रोधसमन्वितम् ।
प्रोवाचकस्मादायास्त्वमितोह्यण्डजाधम ॥६
स्त्रीसन्निकर्षेतिष्ठन्तंकस्मान्मान्मामुपसर्पसि ।
नैषधर्मः सुबुद्धीनांमिथोनिष्पाद्यवस्तुषु ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—अरिष्टनेमि के पुत्र पक्षिराज गरुड़ हुए तथा गरुड़ का सम्पत्ति हुआ ।१। उस सम्पत्ति का अत्यन्त बली एवं वायु के समान विक्रम वाला पुत्र सुपार्श्व हुआ सुपार्श्व का पुत्र कुन्ति और कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ।२। प्रलोलुप के कंक और कन्धर नाम के दो पुत्र हुए ।३। कंक एक दिन कैलाश पर्वत में गया और वहाँ उसने कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले कुतेर किंकर विद्युद्रूप नाम के राक्षस को देखा । वह राक्षस उस समय स्वच्छ माला और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये एक स्वछ शिला पर अपनी पत्नी के सहित बैठा हुआ मद्य पी रहा था ।५। कंक को देखते ही वह राक्षस अत्यन्त क्रोध पूर्वक बोला—हे पक्षिय अधम ! तू यहाँ किसलिए उपस्थित हुआ है ? ।६। मैं इस समय अपनी भार्या के साथ बैठा हूँ अब तू मेरे पास क्यों

आया है ? रहस्य कार्य में बुद्धिमान को ऐसा आचरण उचित नहीं है ।७।

साधारणोऽयंशलेन्द्रीयथावत्तणाममा ।
अन्येषांचेवजेन्तूनाँमता भवतोऽत्रका ॥८
ब्रूवाणमित्थंखड़गेनङ्कचिच्चेदराक्षसः ।
क्षरत्क्षतजबीभत्संविस्फुरन्तमचेतनम् ॥९
कङ्कं विनिहतश्रुत्वाकन्धरः क्रोधमूर्च्छितः ।
विद्युद्रूपवधायाशुमनश्चक्रण्डजेश्वरः ॥१०
सगत्वाशैलशिखिरकङ्कोयत्रहतः स्थितः ।
तस्यसकलनचक्रेभ्रातुर्ज्यैष्ठस्यखेचरः ।
कोपामर्षविबृद्धाक्षो नागेन्द्रद्रवनिःश्वसन् ॥११
जगामाथसयत्रास्तेभ्रानृहातस्यराक्षसः ।
पक्षवातेनमहता चालयन्भूधरान्वरान् ॥१२
वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षणः ।
क्षणात्क्षयितशत्रः सपक्षाभ्यांक्रांतभूधरः ॥१३
पानासक्तपतितत्रतंददशनिशाचरम् ।
आताम्र कुप्रयनहेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥१४

कंक बोला—इस पर्वत पर सभी का समान अधिकार है जैसा तुम्हारा अधिकार है, वैसा ही मेरा तथा अन्य-अन्य जीवों का है, फिर तुम्हें इसके प्रति इतना ममत्व क्यों है ? ।८। मार्कण्डेयजी ने कहा—कंक की यह बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए उस राक्षस ने खड्ग से उसका शीश काट डाला, उस समय अधिक रक्त गिरने से अति भयानक कार्य हुआ और कंक की मृत्यु होगई ।९। फिर पक्षिय श्रेष्ठ कन्धरने कंक का मरण सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर अपने विद्युद्रूप राक्षस को मार डालन का विचार किया ।१०। फिर कंक के ज्येष्ठ भ्राता कन्धर ने कैलाश में जहाँ कंक की मृत्य हुई थी वहाँ पहुँचकर उसकी अन्त्येष्टि की और विस्फारित नेत्रो से सर्प के समान श्वांस लेने लगा ।११। और जहां कंक का हत्यारा वह विधूद्रप राक्षस था, वहाँ

पहुँचा उसके जाते समय अनेक पंखों की हवा के वेग से बड़े पर्वत हिलने लगे।१२। और समुद्र का जल भी बधर उधर फैलने लगा। एकमात्र पंखों के बल से ही कन्धर ने पर्वत पर आक्रमण किया।१४। उसने वहाँ जाकर देखा कि सुवर्णमय शैया पर स्थित वह राक्षस मद्य-पान कर रहा है।१५।

स्रग्दामापूरितशिखंहरिचन्दनभूषितम्
केतकीपत्रगर्भादिर्दतैर्घोरतरानम् ॥१५
वामोरुमाश्रितांचास्यददर्शाऽऽयतलोचनाम् ।
पत्नींमदनिकांनामपुंसकोकिलकलस्वनाम् ॥१६
ततोरोषपरीतात्माकन्धरः कन्दस्थितम् ।
तमुवाचसुदुष्टात्मन्नेहियुध्यस्ववैमया ॥१७
यस्माज्जेष्ठोममभ्राताविश्रब्धोघातितस्त्वया ।
तस्मात्वांमदसंक्त नयिष्येयसानदम् ॥१८
विश्वस्तघातिनांलोकायेचस्त्रीबालघातिनाम् ।
यास्यसे निरयान्सर्वास्त्वमद्यमयाहतः ॥१९
इत्येवंपतगेन्द्रेणप्रोक्तं स्त्रीसन्निधौतदा ।
रक्षः क्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषतपक्षिणम् ॥२०

जिसका मुख मण्डल और दोनों नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे हैं उनके मस्तकमें माला पड़ी है तथा वह सर्वाङ्ग चन्दनसे चर्चित है और उसका मुख मण्डल केतकी पुष्प के गर्भ पुत्रके तुल्य श्वेत दन्त पंक्तिसे सुशोभित है।१५। तथा उसने यह भी देखा कि एक सर्वाङ्ग सुन्दरी, कोकिलकण्ठ वाली नारी उसके समीप बैठीहैं, उसके दोनों नेत्र विशाल है वह उसकी पत्नी हैं, जिसका नाम मदनिका है।१६। फिर पक्षिय श्रेष्ठ कन्धर ने पर्वत कादरा में स्थित उस राक्षस को क्रोवपूर्वक बुलाकर कहा—अरे दुष्ट आत्मा वाले ! शीघ्र यहाँ,आकर मुझसे संग्राम कर ।१७। तू ने मदोन्मत्त होकर मेरे भाई की हत्या की है, इसलिए मैं तुझे अवश्य ही

यम सदन को भेज दूंगा।१८। जिन नरकों को विश्वासघात करने वाले स्त्री और बालकों के हत्यारे प्राप्त होते हैं उन्हीं नरकों में तू भी मेरे हाथ से प्राणत्याग करना पड़ेगा।१९। मार्कण्डेयजी ने कहा—कन्धर के ऐसे वचन सुनकर वह राक्षस अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस पक्षिराज से कहने लगा।२०।

यदितेनिहतोभ्रातापौरुषंतद्धिदर्शितम् ।
त्वामप्यद्यहनिष्येऽहखड्गेनानेनखेचर: ॥२१
तिष्ठक्षणंनात्रजीवन्पतगाधमयास्यसि ।
इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभंविमलंखड्गमाददे ॥२२
ततः पतंगराजस्यक्षाधिपटभटस्य च ।
बभूवयुद्धमतुलंयथागरुडशक्रयो: ॥२३
ततः सराक्षसः क्रोधात्खड्गमाविध्यलेगवत् ।
चिक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारुवर्चसम् ॥२४
पतगेन्द्रश्चतंखड्गंकिञ्चिदुप्लुत्यभूतलात् ।
वक्त्रेणजग्राहतदागरुणः पन्नगं यथा ॥२५
वक्त्रेमादतलैर्नङ्क्त्वाचक्रे क्षोभमथाण्डजः ।
तस्मिन्भग्नेततः खगेबाहुयुद्धमवर्त्तत ॥२६

अरे तेरे भाई की मृत्यु से मेरा पौरुष ही प्रकट हुआ है, इसलिए अब इस खड्ग द्वारा तेरा वध करूंगा।२१। अरे अधम ! तू क्षणभर ठहर मेरे पास से अब तू जीवित कदापि नहीं जा सकता यह कह उस राक्षस ने निर्मल खड्ग को हाथ में ग्रहण किया।२२। जिस प्रकार प्राचीन कालमें इन्द्र गरुड़ का तुमुल संग्राम हुआ था, उसी तरह राक्षस में और कन्धर में युद्ध होने लगा।२३। फिर अत्यन्त क्रोध में भरकर उस राक्षस ने अग्नि के समान चमचमाते हुए उस खड्ग को वेगपूर्वक कन्धर के ऊपर चलाया।२४। परन्तु जिस प्रकार गरुड़ सर्पों को चोंच में दाब लेता है, उस खड्ग को पाँव के प्रहार से तोड़कर अत्यन्त क्रोधित हुआ और अब उन दोनों में बाहु युद्ध होने लगा।२२-२६।

ततः पतंगराजेनवक्षस्याक्रम्यराक्षस ।
हस्तपादकरैराशुशिरसाचवियोजितः ॥२७
तस्मिन्विनिहितेसास्त्रीखगशरणभ्यगात् ।
किञ्चिन्सञ्जातसन्त्रासाप्राहभार्याभवाविते ॥२८
तामादायखगश्रेष्ठः स्वकग्रहपगात्पुनः ।
गत्वासनिष्कृतिभ्रातुर्विद्यु दूपनिपानात् ॥२९
कन्धरस्यचसावेशमप्राप्येच्छारूपधारिणी ।
मेनकातनयासुभ्रुः सौपर्णरूपमावदे ॥३०
तस्यांसजनयामासताक्षींनामसुतांतदा ।
मुनिसापाग्निविप्लुष्टांवपुमप्सरसांवराम् ।
तस्यानासतदाचक्रेताक्षीमितिविहंगमः ॥३१
मन्दपालसुताश्चासञ्चत्वारोऽमितबुद्धयः ।
जरितारिप्रभृतयोद्रोणान्ताद्विजसत्तमाः ॥३२
तेषांजघन्यधर्मात्मावेदवेदांगपारगः ।
उपयेमेसताक्षींकन्धघरानुमतेशुभाम् ॥३३

फिर वह राक्षस कन्धर के द्वारा वक्षस्थल में चोट मारे जाने से जर्जर होगया और उसकी नाड़ी हाथ, पांव मस्तक शरीर से अलग हो गये ।२७। उस राक्षस कीं मृत्यु होने पर उसकी पत्नी भय से व्याकुल होकर उसकी शरण में गई और बोली कि, मैं आपकी पत्नी होती हूँ, ।२८। पक्षिवर कन्धर राक्षस को मारकर भाई के शोक में निवृत्त हो गये ओर मदनिका को साथ लेकर अपने घर पहुँचे ।२९। वह राक्षसी मदनिका इच्छानुसार रूप ग्रहण करने वाली मेनका की पुत्री थी, वह कन्धर के घर में पक्षिय रूप धारण कर रहने लगी ।३०। दुर्वासा की शापाग्नि से पीड़ित वपु नाम की अप्सरा ने इसी के उदर में जन्म पाया और कन्धर ने उसका नाम तार्क्षी रखा ।३१। हे ब्रह्मन् ! मन्दपाल नामक एक ब्राह्मण था, उसके चार पुत्र थे, उनमें बड़े का नाम जरितारि और छोटे पुत्र का नाम द्रोण था, वे सभी अत्यन्त मेधावी

थे ।३२। वेद वेदान्तों के तत्वज्ञाता द्रोण के साथ पक्षीराज कन्धर की अनुमति से वह सर्वाङ्ग सुन्दरी तार्क्षी विवाही गयी थी ।३३।

कस्यचित्वथकालस्यतार्क्षीगर्भमवापह ।
सब्तपक्षाहितेगर्भेकुरुक्षंत्रंजगामसा ।।३४
कुरुपाण्डवयोयुंद्धेवर्तमानेसुदारुणे ।
भावित्वाच्चैवकार्यस्यरथमध्यविवेशसा ।।३५
तत्रापश्यत्तदायुद्धं भगदत्तकिरीटनो: ।
निरंतरंशरैराद्सीदाकाशशलभैरिव ।।३७
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ।
तस्याभल्लमहिश्यामत्वचंचिच्छेदजाठरीम् ।।३८
भिन्नेकोष्ठेशशङ्काभभूमावण्डचतुष्टयम् ।
आयुष: सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ।।३९
तत्पातसमकालचप्रतीकाद्वजोक्तमात् ।
पामतमहतीघण्टावाणसंछिन्नबन्धना ।।४०

कुछ समय व्यतीत होने पर तार्क्षी गर्भवती हुई, गर्भ धारण के दिन से सात खवारे व्यतीत होने पर तार्क्षी कुरुक्षेत्र गई ।३३। उस समय वहाँ कौरव पाण्डवों का भीषण संग्राम चल रहा था, परन्तु भवितव्य को कोई वहीं मिटा सकता इसलिए तार्क्षी उस संग्राम भूमिमें षहुँच गई ।३५। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगदत्त और अर्जुन में घोर युद्ध हो रहा है और उनके द्वारा निरन्तर छोड़े जाने वाले वाणों से ब्योम टीढ़ीदल के समान ब्याप्त है ।३६-३७। पार्थ के धनुष से वेग पूर्वक निकले हुए एक बाण ने तार्क्षी के जठर की त्वचा बींध दी ।३८। उसकी कोष्ठ विदीर्ण होने पर चन्द्रमा के समान शुभ्र चार अण्डे ऊपर से गिरकर भी आयु होने के कारण रुई के समान सुख पूर्वक पृथिवी में आ गिरे।३९। उसी समय भगदत्त के सुप्रतीक नामक हाथी के कन्ठ का घण्टा वाण से कटकर भूमि पर गिरा ।४०।

यद्यपि दोनों एक समय ही पृथ्वी पर गिरे थे, परन्तु दैववश माँस पिण्ड के सब अन्डों को चारों ओर ऊपर से ढकता हुआ वह घन्टा ढक्कन के समान हो गया ।४१। राजाओं में श्रेष्ठ भगदत्त के वध होने पर भी कौरव पांडव सेनाओं में बहुत समय तक युद्ध चलता रहा ।४२ जब युद्ध समाप्त हो गया तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर अनेक प्रकार के धर्म विषयक उपदेश सुनने के लिए शान्तनु पुत्र भीष्म के पास गए ।४२।

समंसमन्तात्प्राप्तातुनिर्भिन्नधरणीतला ।
चादयन्तीखगाण्डानिस्थितानिपिशतोपरि ॥४१
हतेचतस्मिन्नृपतौभगदत्तेनरेश्वरे ।
बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥४२
वृत्ते युद्धे धर्मपुत्रो गतेशान्तनवान्तिकम् ।
भीष्मस्यगदतोऽशेषान्श्रोतुं धमान्महात्मनः ॥४३
घण्टागतानिनिष्ठिन्तियत्राण्डानिद्विजोत्तम ।
आजगामतमुद्दे शं शमीकोनामसयमी ॥४४
सतत्रशब्दमश्रृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम् ।
वस्ल्यादस्फटवाक्यानांयिज्ञानेऽपि परेसति ॥४५
अथार्षिः शिष्यसहितोघण्टामुत्पाट्यविस्मितः ।
अमातृपितृपक्षाणिशिमूकानिददर्शहः ॥४६

फिर संयम चित्त वाले विप्र ज्येष्ठ शमीर मुनि जहाँ घन्टे से ढके हुए पक्षी के बालक थे वहाँ सहसा जा पहुँचे ।४४। और उन्होंने घन्टे के भीतर उन बालकों का चिची कुची शब्द सुना। यद्यपि बालकों को बहुत ज्ञान हो गया था, फिरभी वह वाल्यावस्था के कारण समझ में न आने वाले शब्द ही बोल रहे थे ।४५। फिर शिष्यों सहित उन ऋषि ने पक्षि वालकों का शब्द सुनकर आश्चर्य सहित घन्टे को भूमि से उठाया तब उन्हें माता, पिता तथा पंखों से रहित वे बालक दिखाई दिए ।४६। उन शमीक मुनि ने पृथिवी पर उन वालकों को यथावत् देखकर आश्चर्य सहित अपने साथी व्राह्मणों से कहा ।४६।

तानितत्रथाभूमीशकोभगवान्मुनिः ।
दृष्ट्वासाविस्मयाविष्टः प्रोवाचाऽनुगतान्द्विजान् ॥४७
सम्यक्तयुं द्विजाग्रयेणशुक्रेणोशनसास्वयम् ।
पलायनपरंदृष्ट्वादैत्यसैन्यंसुरार्दितम् ॥४८
नगन्तव्यंनिवर्तध्व कम्मादृव्रजतकातराः ।
उत्सृज्यशौर्य्ययशसीक्वगतानमरिष्यथ ॥४९
नश्यतोयुध्यतोवापितावदभवतिजीवितम् ।
यावद्धातानृजत्पूर्वंनयावन्मनसेप्सितम् ॥५०
एकेम्रियन्तेस्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः ।
भुञ्जन्तोऽन्नंतथैवापः पिवन्तोनिधनंगताः ॥५१
विलासिनस्तथैवान्तेकामयानानिरामयाः
अविक्षतांगाः शस्त्रैश्चप्रेतराजवशगताः ॥५२
अन्येतपस्यभिरतानीताः प्रेतनृपानुगैः ।
योगाभ्याभ्यासेरताश्चा येनैवप्रापुरमृत्युताम् ॥५३
शम्बरापुराक्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना ।
हृदतेऽभिहतस्तेनतथापिनमृतोसुरः ॥५४
तेनैवखलुवज्रेणतेनैवेन्द्रैणदानवाः ।
प्राप्तेकालेहतादैत्यास्तत्क्षणान्निधनगताः ॥५५
विदित्वैवंनसंत्रासः कर्त्तव्योविनिदतंत ।
तो निवृत्तस्तेदैत्यास्त्यक्त्वामरणजंभयम् ॥५६

हे ब्राह्मणों ! पुराकाल में देवताओं द्वारा ताड़ित दैत्य सेना के इधर उधर भागने पर द्विजोतम शुक्राचार्य जी ने उससे स्वयं ही कहा था ।४७। हे दैत्यों ! तुम मत भागो, रुको, इस प्रकार कातर होकर क्यों भागते हो ? शौर्य और यश को छोड़कर कहाँ जाओगे ? क्या तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी ? जिस विधाता ने तुम्हें उत्पन्न किया है उसकी जब तक इच्छा न हो,तब तक मत भागो मत संग्राम करो इससे तुम किसी भी प्रकार मृत्यु को प्राप्त न होंगे ।४८-४९। घर रहते हुए भी कोई मर जाता है, कोई भाग कर भी मर जाता है तथा कोई भोजन करते हुए या पान करते हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है

।५०। कोई काम का अनुगत होकर कोई स्वस्थ रह कर कोई दिव्य भोग विलास करता हुआ, कोई शस्त्र आदि से घायल न होने पर भी काल के कराल गाल में जा पड़ता है ।५१। कोई तपस्या से रत रहता हुआ तथा कोई योगाभ्यास करता हुआ ही यमपुर को प्राप्त हो गया परन्तु अमर कोई भी नही हो सका ।५२। पुराकाल में वज्रपाणि इन्द्रने शम्वर पर वज्र आघात किया और हृदय विदीर्ण हो जाने पर भी वह असुर नहीं मर सका ।५३। उसी इन्द्र ने उसी से सब असुरों पर आघात किया और उनका काल था, इसलिए वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गए ।५४। इसलिए यह सब जानकर भी तुम त्रास क्यों करते हो ? उससे निवृत्त होओ, यह सुनकर दैत्योंने मृत्यु भय त्याग दिया और वे भागने से रुक गये ।५५। हे ब्राह्मणो ! पक्षी के इन बालकों ने शुक्राचार्य के वे वचन सत्य कर दिये । अहो, इस अद्‌भुत युद्ध में भी इसके प्राण नहीं गये ।५६-५७।

इतिशुक्रवचः सत्यं कृतमेभिः खगोत्तमैः ।
येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥५७
काण्डानांपतनं विप्राः क्वघण्टापतनं समम् ।
कवचमांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥५८
केऽप्येतेसर्वथाविप्रानैतेसामान्यप्रक्षिणः ।
दवानुकूलतालोंके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥५९
एवमुक्त्वासतान्वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् ।
निवर्तताश्रमयातगृहीत्वापक्षिबालकान् ॥६०
मार्जाराखुभयं यत्रनैषामण्डजजन्मनाम् ।
श्येनतोनकुलाविपिस्थाप्यं तांतत्र पक्षिणः ॥६१
द्विजार्किवातियन्नेनमार्यन्तेकर्मभि स्वकैः ।
रक्ष्यन्तेचाखिलाजीवायथैतेपक्षिबालकाः ॥६२
तथापियत्नः कर्तव्योनरः सर्वेषुकर्मसु ।
कुर्वन्पुरुषकारंतुवाच्यतांयातिनोसतम् ॥६३
इति मुनिवरचोदितारततस्तेमुनितनयाः परिगृह्यपक्षिणस्तान् ।
तरुविष्टपसमाश्रितालिसघंययुरथतातप रम्यमाश्रमस्वम् ॥६४

सचापिवन्यं मनसाभिकामितंप्रग्रह्यमूलकुसुममेंफलकुशान् ।
चकारचक्रायुधरुद्रबेध्रसांसुरेन्द्रवैवस्वतंजातवेदसाम: ।।६५
अपांततेगींष्पतित्तिरक्षिणो: । समीरणस्थापितथाद्विजोत्तम,।
धातुर्विधातुरत्नथवैश्वदेविका श्रुतियुक्ताविविधास्तूसत्क्रिया:६६

कितने आश्चर्य का विषय है कि कहाँ तो सब अण्डों का पृथ्वी पर गिरना और उसी समय घण्टे का गिरना और कहां मांस, रक्तऔर वसा से पृथिवी का ढका जाना, यह सब परस्पर भिन्न होते हुए भी, एकही समय में हो गया ।५८। हैं ब्राह्मणों ! वह कौन है ? प्रतीत होता है कि सामान्य पक्षी तो नही हैं, क्योंकि दैव की अनुकूलता से भाग्य भी अनुकूल होता है ।५९। इतना कहकर महर्षि शमीक उन्हें देखकर पुन: कहने लगे—हे ब्राह्मणों ! निवृत्त होकर पक्षी बालकों को ले लो और आश्रम में जाओ ।६०। जहाँ बिल्ली, नकुल, बाज आदि का भय न हो इन पक्षि शावकों को वहीं रखो ।६१। हे ब्राह्मणों ! अधिक यत्न की आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक जीव अपने कर्म से ही अवध्य और रक्षित होता है, यह बालक यहाँ किसके द्वारा रक्षित हुए थे ।६२। फिर भी सब कार्यों में मनुष्यको प्रयत्न करना चाहिये, यदि पुरुषार्थ न किया जाय तो साधुजनों के समक्ष निन्दनीय होना होता हैं ।६३। महर्षि के वचन सुनकर मुनि-बालकों ने पक्षि के उन बच्चों को उठा लिया और वे वृक्ष-शाखों में गुजारते हुए भ्रमरों से युक्त अपने रमणीय आश्रम को गये ।६४। इधर महर्षि शमीक ने उनसे फल,फूल, पुष्प और कुश लेकर ब्रह्मा, विष्णू, शिव, इन्द्र यम और अग्नि का पूजन किया । वरुण वृहस्पति, कुबेर, धाता और विधाता का पूजन तथा बेदोक्त विधान से हवन आदि कर्म किए ।६५-६६।

प्रकरण-३ पक्षियों का शाप वृत्तान्त

अहन्यनिविप्रेन्द्रसतेषांमुनिसत्तम् ।
चकाराहारपयसातथागुत्साचपोषणम् ।।१
मासात्रेणजग्मुस्तेभाना: स्यन्दन वर्तमान ।
कोतूहलविलोलाक्षदृष्टवामुनिकुमारकै: ।
दृष्ट्वा महीसनगरांसाम्भोनिधिसरिद्वरान् ।।२

रथचक्रप्रपाणांतेपुनराश्रममागताः ॥३
श्रमक्लांतंतरात्मानोमहात्मानोवियोनिजाः ।
ज्ञानचप्रकटीभूतं तत्रतेषांप्रभावतः ॥४
ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थवदतोधर्मनिश्चयम् ।
कृत्वाप्रदक्षिणं सर्वेचरणावभ्यवादयन् ॥५
ऊचुश्चमरणाद्घोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वयामुने ।
अवासभक्ष्यपयसांत्वंनोदातापितागुरुः ॥६
गर्भस्थानांमृतामातापित्रानैवापिपालिताः ।
त्वयानोजीवितदत्तं शिशवोयेनरक्षिताः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा-हे विप्रेन्द्र ! मुनीवर शमीक नित्यप्रति उन पक्षि शावकों आहार देकर रक्षा एवं पोषण करने लगे ।१। मुनि के द्वारा इस प्रकार पोषण को प्राप्त हुये, वे बालक एक मास के भीतरही आकाश मार्ग में उड़ने लगे और कौतूहल में भर मुनि बालक उनको देखने लगे ।२। वे तिर्यक योनि में उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी सागर. नगर आदि में रथ-चक्र के समान घूमते हुए पृथिवी को देखते और क्रमशः ज्ञान प्राप्त हुआ ।३-४। एक समय अपने शिष्यों पर कृपा करके महर्षि शमीक धर्मोपदेश कर रहे थे, तभी उन पक्षियोंने प्रदक्षिणा करके मुनि चरणों में प्रणाम किया ।५। और कहने लगे—हे मुने ! आपने घोर मृत्यु कष्टसे हमारी रक्षा की है, आपने ही हमको निवास आहार, और जल प्रदान किया है, इसलिए आप ही हमारे पिता एवं गुरु हैं, ।६। हमारी माता का गर्भवास के समय ही देहान्त होगया और पिता द्वारा भी हमारा पालन नहीं हो सका, आपने ही हमारी उस समय से अब तक रक्षा की है ।७।

क्षितावक्षततेजास्त्वंक्मीणामिवशुष्यताम् ।
गजाघण्टांसमुत्पाट्यकृतवान्दुःखरेचनम् ॥८
कथंवर्द्धेयुरबला खस्थान्द्रक्ष्याम्यहं कदा ।
कदाभूमेद्रु मंप्राप्तान्प्रथेवृक्षांतरं गतान् ॥९
कदामेसहजाकान्तिः पांसुनानाशमेष्यति ।

एषांपक्षानिलोत्थेनमत्समीपविचारिणाम् ।।१०
इतिचिन्तयतात भवताप्रतिपालिताः ।
ते सांप्रतंप्रबृद्धाः स्मः प्रबुद्धाः करवामकिम् ।।११
इत्यृषिवचनतेषां श्रूत्वासंस्कारवत्स्फुटम् ।
शिष्यैः परिवृतः सवः सहपुत्रेणश्रृङ्गिणा ।।१२
कौतूहलपरोभूत्वारोमांचटसंवृतः ।
उवाचतत्वतोब्रूतप्रवृत्तेः कारणंगिरः ।।१३
कस्य शापादियं प्राप्ता भवदभिर्विक्रियापरा ।
रूपस्यवचसश्चै वतन्मेवक्तुमिहार्हथ ।।१४

हे अक्षय तेज वाले मुनिवर ! जब पृथिवी में पड़े हुए हम कृमिके समान सूख रहे थे, तभी आपने घण्टा उठाकर हमारा संकट दूर कर दिया ।८। यह दुर्बल पक्षि शावक किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त हों, कब पृथिवी से वृक्ष पर पहुँचे और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जांये तथा आकाश में उड़ने लगे ।९। तथा मेरे पास विचरण करते हुए कब उड़ेंगे और कब इनके पंख चलाने से निकलीं हुई वायु से उड़ी हुई धूलि द्वारा मेरी सहज कान्ति नष्ट होगी ।१०। आपने इसप्रकार विचार करते हुए हमारा पालन किया है, अब हम बड़े हो गए, और आपकी कृपासे हमें ज्ञान भी प्राप्त हो गया है, अब हम क्या करें, वह आज्ञा करिए ।११। शिष्यों सहित महर्षि शमीक उनके इस प्रकार संस्कारमय वचन सुनकर अपने पुत्र श्रृङ्गी सहित अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए ।१२। अत्यन्त कूतूहल से पुलकायमान शरीर होकर उन पक्षियों के प्रति बोले ।१३। हमें सत्य बताओ कि तुमने ऐसे स्पष्ट वचनों का उच्चारण किस प्रकार किया है ? किस के शाप से तुम्हारे रूप वाणी की ऐसी विक्रिवा हुई है ।१४।

विपुलस्वानितिख्यातः प्रागासीन्सुनिसत्तमः ।
तस्यपुत्रगयंजज्ञे सुकृषस्तुम्बुरुस्तथा ।।१५
सुकृषस्यवयं पुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः ।
तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तितनम्राः सदैवहि ।।१६
तपश्चरणशक्तस्यशास्यमानेन्द्रियस्य च ।

यथाभिमतमस्माभिस्तदातस्थोपदितम् ॥१७
समित्पुष्पादिकसर्वंयच्चवाभ्यवहारिकम् ।
एवंतत्राथवसतांतस्यास्मार्कचकानने ॥१८
आजगाममहावर्ष्मभग्नपक्षोजरान्वितः ।
आताम्रनेत्रः स्रस्तात्मापक्षीभूत्वासुरेश्वरः ॥१९
सत्यशौचक्षमाचारमतींवोदारमानसम् ।
जिज्ञासुस्तमुषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च ॥२०
द्विजेन्द्रमांक्षुधाविष्ट परित्रातुमिहार्हसि ।
भक्षणार्थोमहाभागगतिर्भवममातुला ॥२१

पक्षियों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! पुरकाल में विपुलस्वान नामक एक मुनि थे उनके सुकृष और तुम्बरु नामक दो पुत्र हुए ।१५। उन जितेन्द्रिय महात्मा सुकृष के हम पुत्र हैं, सदा विनय, आचार भक्तिऔर नम्रता पूर्वक ही उनके पास रहते थे।१६। जब वे सयतचित्त से तपस्या में लगे रहते, तब हम उनकी स्वेच्छा के अनुसार वस्तु ला देते थे ।१७। हम ही उनके समिधा, पुष्प, तथा भोजन की सम्पूर्ण साम्रगी ले आते थे, इस प्रकाम वह हमारे साथ वन में रहते थे ।१८। एक दिन देवराज इन्द्र एक विशालकार पक्षी के रूप में हमारे पास आये, उनके सभी पंख टूटे हुए तथा ताम्रवर्ण के हो रहे थे और उनकी आत्मा शिथिल हो रही थी ।१९। वह उन सत्य, शोच, क्षमा आचार युक्त मुनि से कोई बात पूछने लगे, हम समझते हैं कि,हमारे प्रति पितृ-शाप होनेके कारण ही वहां उनका आगमन हुआ था ।२०। पक्षा ने कहा—हे द्विजेन्द्रि ! मैं क्षुधा के अत्यन्त आतुर एवं नितान्त भक्षणार्थी हूँ आपही मेरी गति हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिए ।२१।

विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन्पत्रेरितेनवै ।
पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरंहसा ॥२२
सोऽहंमोहसमाविष्टोभूमौसप्ताहमस्मृतिः ।
स्थितस्तत्राष्टमेनाहाचेतनांप्राप्तवाहनम् ॥२३
प्राप्तचेताः क्षुधातिष्टोभवतशरणागतः ।
भक्ष्यार्थीविगयानंदो दूयमानेनचेतसा ॥२४

तत्कुरुष्वामलतमित्त्राणायाचलां मतिम् ।
प्रयच्छभक्ष्यं विप्रर्षे प्राणायात्राक्षमंमम ॥२५
सएवमुक्तः प्रोवाचतंमिन्द्रं पक्षिरूपिणम् ।
प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यतवेच्सितम् ॥२६
इत्युक्त्वापुनरप्येनमपृच्छत्सद्विजोत्तमः ।
आहारः कस्तवार्थायउपकल्प्योभवेन्मया ।
सऽऽचाहरमांसेन तृप्तिर्भवतिमेपरा ॥२७

हे महाभाग मैं विन्ध्याचल के शिखर में रहता हूँ और पक्षिराज गरुड़ के पङ्खों की वायु के वेग से यहाँ गिर कर मूर्च्छित हो गया था ।२२। उसी अवस्था में पड़े हुए मुझे एक सप्ताह हो गया और आठवें दिन मूर्छा नष्ट होकर चैतन्यता प्राप्त हुई ।१३। कुछ देर मैं जब स्वस्थ हुआ, तब भूख से आतुर होक आपकी शरण में आ गया । मेरा हृदय भूख से अत्यन्त कातर होने के कारण सम्पूर्ण आनन्द का हरण किये लेता है ।२४। हे ब्रह्मर्षे ! मेरी रक्षा का प्रयत्न करिये, जिससे मेरी भूख मिट सके, ऐसा भोजन मुझे दीजिए ।२५। पक्षी रूप धारी इन्द्रकी ऐसी बात सुनकर महर्षि ने कहा—हे खग ! तुम अपने प्राण धारण के लिए उपयोगी किस आहार को चाहते हो मैं तुम्हारे भोजनार्थ किस द्रव्य को उपस्थित करूँ ? ।२६। हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर मुनि ने पुनः कहा—कहो क्या भोजन करोगे ? तुम्हारे लिए क्या आहार को लाऊँ इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरी परम तृप्ति मनुष्य के माँस खानेसे ही होगी ।२७।

कौमारतेव्यतिक्रांतमतीतयौवनचते ।
वयसःपरिणामस्तेवर्ततेननमंडजः ॥२८
यस्मिन्नराणांसर्वेषामशेषेच्छानिवर्त्तते ।
सकस्माद्वृद्धभावेऽपिसुनृशसात्मकोभवान् ॥२९
क्वमानुषस्यपिशितंक्ववयश्चरमतव ।
सर्वथादुष्टभावानां प्रथमोनोपपद्यते ॥३०
अथवाकिंमयैतेनप्रोक्तेनास्तिप्रयोजनम् ।
प्रतिश्रुत्यसदादेयमितिनोभावितमनः ॥३१

इत्युक्त्वातंसविप्रेन्द्रस्तयेतिकृतनिश्चयः।
शीघ्र स्मान्समाहूयगुणतोऽनुप्रशस्य च ॥३२
उवाचक्षुब्धहृदयोमुनिर्वाक्यसुनिष्ठरम्।
विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृतांजलीन् ॥३३
कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठाऋृयुक्तामयासह।
जातंश्रेष्ठमपत्यं वोयूयं ममयथाद्विजाः ॥३४
गुरुः पूज्योयदिमतोभवतां परमः पिताः।
ततःकुरुतमेवाक्यं निर्व्यलीकेनचेतसा ॥३५

ऋषि ने कहा तुम्हारी कौमारावस्था जाकर युवावस्था आई और वह भी व्यतीत होकर वृद्धावस्था आ गई है।२८। जिसमें सभी कामनाएँ अशेष हो जाती है, फिर भी तुम वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर इतने नृशंश क्यों हो ?।२९। मनुष्य मांस के भक्षण और वृद्धावस्था दोनों में अन्तर है, तो भी दुष्ट जीवों की दुराशा नहीं मिट पाती।३०। परन्तु मुझे इस सब की आलोचना क्यों करनी चाहिए ? अङ्गीकृत विषय का दान करना चाहिए ऐसा सोचना ही ठीक है।३१। उस पक्षी से इतना कहकर निश्चय को कार्य रूप देने वाले पिता ने तुरन्त हमें बुलाकर हमारे गुणों की प्रशंसा की।३२। तथा हमारे विनय और भक्ति पूर्वक हाथ जोड़ खड़े होनेपर अत्यन्त क्षोभ सहित हमारे पिताने यह निष्ठुर वचन कहे।३३। तुम सब विद्वान हो, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा मेरे समान ही ऋण-मुक्त हो चुकेहो। जैसे श्रेष्ठ तुम मेरे पुत्र हो, वैसे ही श्रेष्ठ पुत्र तुम्हारे हो चुके हैं।३४। मैं तुम्हारा पिताहूँ, तुम यदि मुझे बड़ा और पूज्य मानते हो तो कपट रहित हृदय से मेरे वचनों का पालन करो।३५।

तद्वाक्यसमकालंचप्रोक्तमस्माभिरादृतैः।
यद्वक्ष्यतिभवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम् ॥३६
मामेषशरणप्राप्तोविहगः क्षुत्तृषान्वितः।
युष्मन्मांसेनयेनास्यक्षणं तृप्तिर्भवेतवै ॥३७
तृष्णाक्षयंचरक्तेनतथाशीघ्रं विधीयताम्।
ततोवयं प्रव्यथिताः प्रकम्पोदक्षूतसाध्वसाः ॥३८

कष्टं कष्टमितिप्रोच्यनैनत्कर्मेतिचाब्रुवन् ॥३८
कथपरशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकन्बुध: ।
विनाशयेद्घातयेद्वायथाह्यात्मातथासुत: ॥३९
पितृदेवमनुष्याणांयान्युक्तानिऋणानिवै ।
तान्यपाकुरुतेपुत्रोनशरीरप्रद: सुत: ॥४०
तस्मान्नेतत्करिष्यामोनोचीर्णयत्पुरातन: ।
जीवन्भद्राण्यवाप्नोतिजीवन्पुण्यं करोति च ॥४१
मृतस्यदेहनाशश्चधर्माद्यु परतिस्तथा ।
आत्मानं सर्वतोरक्ष्यमाहुर्धर्मविदीजना: ॥४२

यह सुनकर हमनेभी आदर सहित कहा—आपकी जो आज्ञा होगी उसका समाधान हमारे द्वारा हुआ ही समझिए ।३६। तब उन्होंने कहा-पुत्रों ! यह पक्षी भूख-प्यास से आतुर होकर यहाँ आया है, इस समय तुम्हारे मांस का आहार करके इसकी क्षुधामिटेगी ।३७। तब वे रक्त पान द्वारा भय से काँप उठे और बोले कि यह अत्यन्त कष्टप्रद कार्य हमसे होना सम्भव नहीं है ।३८। कौनसा मनुष्य विद्वान होकर पराये शरीर की पूर्ति के लिव अपने जीवन का नाश करेगा ? क्योंकि आत्मा की भी सन्तान के समान रक्षा करनी उचित है ।३९। शास्त्र में जिस पितृऋण, देवऋण का आदेश हैं उसी को सन्तान चुकाती है, परन्तु शरीर दान नहीं किया जा सकता ।४०। इसलिए यह कार्य हमारे द्वारा संभव नहीं है, पहिले भी कभी किसी के द्वारा ऐसा आचरण नहीं मिलता, जीवन है तो पुण्यादि के आचरण द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, ।४१। मर जाने पर शरीर नष्ट हो जाने से धर्माचरण आदि नष्ट हो जाते हैं, इसीलिए धर्मज्ञाता पंडितों ने आत्मा की सदा रक्षा करने का उपदेश दिया ।४२।

इत्थं श्रुत्वावचोऽस्मकं मुनि: क्रोधादिवज्वलन् ।
प्रोवाचपुनरप्यस्मान्निर्दहन्निवलोचनै: ॥४३
प्रतिज्ञातवचोमह्यं यस्मान्नैतकरिष्गथ ।
तस्मान्मछापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौप्रयास्यथ ॥४४

एवमुक्त्वातदासोस्माँसस्तं विहगममब्रवीत ।
अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वाश स्नतश्चौर्ध्वदेहिकम् ॥४५
भक्षयत्वसुविश्रब्धोमामत्रद्विजसत्तम ।
आहारीकृतमेतत्ते मयादेहमिहात्मनः ॥४६
एतावदेवविप्रस्यब्राह्मणत्वंप्रचक्ष्यते ।
वायत्पतगजात्यग्रयस्वसत्यपरिपालनम् ॥४७
नयज्ञै दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यंप्राप्ययेमहत् ।
कर्मणान्येनवाप्रिर्यत्सत्यपरिपालनान् ॥४८

हमारे इन वचनों को सुनकर मुनि श्रेष्ठ क्रोधानल से दग्ध होने लगे और क्रोध से हुए लाल नेत्रों से जैसे हमको भस्म करना चाहते हों देखते हुए पुनः कहने लगे ।४६। अरे दुर्वृतों ! मैंने इससे प्रतिज्ञा की है, और तुम मेरा वचन पालन नहीं कर रहे हो,इसलिए मेरे शापसे भस्म होकर तिर्यंक् योनि को प्राप्ति हो जाओगे ।४४। हे द्विजोत्तम ! इतना कहकर हीं उन्होंने शास्त्र विधि से अपनी उर्व्वदैहिक अन्त्येष्टि क्रिया का सम्पादान किया और पक्षी से बोले ।४५। हे पक्षी ! तुम विश्वस्त चित्त से मेरा भक्षण करो मैंने अपना ही शरीर तुम्हारे आहार के निमित्त दिया ।४६। हे खगश्रेष्ठ ! जब तक ब्राह्मण अपने सत्य के पालन में दृढ़ है, तभी तक ब्राह्मण कहलाता है ।४७। जितना पुण्य सत्य के प्रति पालन में होता है, उतना दक्षिणा बाले यज्ञ के अथवा किसी अन्य कर्म के द्वारा भी नहीं होता ।४८।

इत्युषेर्वचनं श्रुत्वासोऽन्तर्विस्मयनिभरः ।
षत्युवाचमुर्निशक्रः पक्षिरूपधरस्तदा ॥४९
योगमास्थायविप्रेन्द्रात्जेदस्वंकलेवरम् ।
जीवज्जंतुंहिवप्रेंस्द्रनभक्षामिकदाचन ॥५०
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनिः ।
ततस्यात्नश्चयंयात्वाशक्रोऽप्य हृस्वदेहभत ॥५१
भोभोविप्रेन्द्रायुध्यस्वबुद्ध वोध्यबुधात्मक ! ।
जिज्ञासार्थमयाऽयते अपराधः कृतोऽनघ ॥५२
तत्क्षमस्वामलमतेकाचेच्छाक्रियतांतव ।

पालनात्सत्यवाक्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि ॥५३
अद्यप्रभृतितेज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति ।
तपस्यथतथाधर्मेनतेविघ्नोभविष्यति ॥५४
इत्युक्त्वातुगतेशक्रेपिताकापसमन्वितः ।
प्रणम्यशिरसास्क्षाभिरदमुक्तोमहामुनिः ॥५५

ऋषिवर के यह वचन सुनकर उस खग रूपी इन्द्र ने अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर उनसे कहा ।४। हे ब्रह्मन् ! आप पहिले योग के अवलम्बन से अपने शरीर का त्याग कर दें तब मैं आपके मांस को खाऊँगा क्योंकि जीवित प्राणी के मांस का मैंने कभी आहार नहीं किया ।५०। पक्षी की यह बात सुनकर मुनि ने योग अवलम्बन किया और उन को अपने संकल्प में दृढ़ देखकर इन्द्र ने अपना देह धारण करके कहा ।५१। हे पंडितों में अग्रणी ब्रह्मर्षे ! ज्ञानव्य विषय को बुद्धि से जानिए, हे पाप रहित ! आपको भलीप्रकार जानने के लिए ही मैंने आपके प्रति यह अपराध किया है ।५२। हे स्वच्छचित ! मुझे क्षमा कीजिए, आपकी जो अभिलाषा हो वह मेरे प्रति कहिए सत्य वचन के प्रतिपालनार्थ आपके प्रति मुझको अत्यन्त प्रीति हुई ।५३। अब आपको इन्द्रज्ञान की उत्पत्ति होगी और तपस्या के आचरण में कभी भी विघ्न उपस्थित न होगा ।५४। देवराज इन्द्रके इस प्रकार कह कर वहाँ से चले जाने पर हमने उन क्रोधयुक्त महामुनि, अपने पिता, के चरणों में प्रणाम करके कहा ।३५।

विभ्यतांमरणात्तात त्वमस्भाकंमहामते ।
क्षत्तुमहसिदीनानांजीवितप्रियताहिनः ॥५६
त्वगस्थिमाँससंघातेपूयशोणितपुरिते ।
कर्त्तव्यानरतिर्यत्नमूस्माकमियरतिः ॥५७
श्रूयतांचमहाभाग यथालोकोविमुह्यति ।
कामक्रोधादिभिर्दोषस्वशः प्रबलारिभिः ॥५८
प्रज्ञाप्रकारसंयुक्यमस्थिस्थुणपुरं महत् ।
चर्माभितिमहारौघमांसशोणितलेपनम् ॥५९
नवद्वारंमहायासं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् ।
नृपश्चपुरुषस्तत्रचेत नावानवस्थितः ॥६०

मन्त्रिणौतस्यबुद्धिश्चमनश्चैवविरोधिनौ ।
यतेतेवैरनाशायतावुभावितरेतरम् ॥६१
नृपस्यतस्यचत्वारोनाशभिच्छति विद्धिशः ।
कामः क्रोधस्तथालोभोमोहश्चान्यस्तथारिपुः ॥६२
यदातुसनृपस्ताविद्वाराण्यावृत्यतिष्ठति ।
तदासुत्थबलश्चैवनिरातकश्चजायते ॥६३

हे पिता हे महामुने ! मृत्यु के भय से अत्यन्त डर कर हमने अपने जीवन के प्रति मोह करके ऐसा कहा था इसलिए हमको क्षमा कर दीजिए ।५६। यह शरीर, हड्डी, मांस, त्वचा रक्त आदि से भरा हुआ है इसके प्रति किञ्चित भी मोह न करे परन्तु उसी शरीरके प्रतिहमारा मोह बढ़ा हुआ है ।५७। हे महाभाग ! प्रवल शत्रु रूप काम क्रोधादि दोषों के द्वारा ही सब लोक मोहित हुए सुने जाते हैं ।४८। हे पिता ! प्रज्ञा रूप प्राचीरों वाली इस देह अस्थि ही स्तम्भ है, जो चर्म रूप भित्ति से रुद्ध और रक्त मांस रूप कीचड़ मे लिप रही हैं ।५६। उसे नसें चारों ओर से घेरे हुए हैं, उसके नौ बड़े द्वार हैं और चैन्तन्य रूपी पुरुष उसमें राज्य करता है ।१०। उस राजा के दो मन्त्री मन बुद्धि रूपी हैं, परन्तु वे परस्पर विरोधी होने के कारण एक दूसरे के विनाश के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं ।६१। काम, क्रोध, लोभ मोह नामक चार शत्रु उस राजा को नष्ट करने की चेष्ट में लगे रहते हैं ।६२। जब वह राजा नौ द्वारों को रोककर स्थित होता है, तब वह अत्यन्त स्वस्थ और आतंक रहित होता है ।६३।

जातानुरागोभवतिशत्रुभिनाभिभ्यते ॥६४
यदातुसर्वद्वाराभिवितुतानिसमुंचति ।
रागोनामामतदाशत्रुर्तत्रादिद्वारमृच्छति ॥६५
सर्वव्यापीमहायामः पश्चद्वारप्रवेशनः ।
तस्यानुमार्ग वेशतिद्वै घोरं रिपुत्रयम ॥६६
प्रविश्याथसर्वैतत्रद्वारैरिन्द्रियसंक्षकैः ।
रागः संश्लेषमायातिसनाचसहेतरैः ॥६७
इन्द्रियामिनश्चैववशेकृत्वादुरासदः ।

द्वाराणिचबशेकृत्वाप्राकारनाशयत्यथ ॥६८
मनस्तस्याश्रितंदृष्ट्वाबुद्धिर्नश्यतितत्क्षणात् ।
अमात्यरहितस्तत्रपौरवर्गोज्झतस्तथा ॥६९
रिपुभिर्लब्धविवरः सनृपोनाशमृच्छति ।
एवंरागस्तथामोहोलोभः क्रोधस्तथैव च ॥७०
प्रवर्ततेदुरात्मानोमनुष्यस्मृतिनाशकाः ।
रागात्क्रोधः प्रभवतिक्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥७१

तथा उस समय उसके प्रीतिमान् होने के कारण उसके शत्रु उसे अविभूत करने में समर्थ नहीं होते ।६४। वहीं जब सभी द्वारों को खोल कर अवस्थान करता है,तब नेत्रादि सब द्वारों पर अनुराग नामक शत्रु आक्रमण कर देता है ।६५। यह अत्यन्त बलवान् शत्रु सर्वत्र व्यापी है, जब यह अनुराग रूप शत्रु चक्षु आदि द्वारों में प्रविष्ट होता है, तब उसके पीछे-पीछे लोभ, मोह और क्रोध रूप तीनों शत्रु दौड़ पड़ते हैं ।६६। अनुराग रूप वह शत्रु इन्द्रियादि सब द्वारों से पुरी में प्रवेश कर के मन और बुद्धि से संगति करने की इच्छा करता है।६७। वह इन्द्रियों को और मन को अपने वश में करके बुद्धि रूपी परकोटे को तोड़ डालता है ।६८। मन को उसके आश्रित हुआ देखकर बुद्धि भी तत्काल नाश को प्राप्त होती हैं, इस कार मन्त्रियों और प्रजावर्ग से हीन हुआ ।६९। वह राजा शत्रुओं के आक्रमण से विवर होने के कारण नष्ट हो जाता है तब काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी ।७०। दुरात्मा उस पुरी में बास करने लगते हैं । उस समय मनुष्यकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, अनुराग से क्रोध से लोभ की उत्पत्ति होती है ।७१।

लोभाद्भवतिसम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥७२
एवंप्रणष्टबुद्धीनांरागलोभावनुर्त्तिनाम् ।
जीवितेचसलोभानांप्रसादकुरुसत्तम् ॥७३
योऽयशापोभगवतादत्तः सन भवेत्तथा ।
नतामसीगांतिकष्टांब्रजेममुनिसत्तम ॥७४
यन्मयोक्तं ततन्मिथ्याभविष्यति कदाचनः ।

नमेवागनृतंप्राहयादद्ये तिपुत्रका: ॥७५
दैवमत्रपरमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ।
अकार्यंकारितोयेमवलादहमचिन्तितम् ॥७६
यस्माच्चयुष्माभिरहंप्रणिपत्यप्रमादित: ।
तस्मात्तिर्य्यक्त्यमापन्ना: परं ज्ञानमवाप्स्यथ: ॥७७
ज्ञानदर्शितमार्गाश्चनिर्धूतक्लेशकल्मषा: ।
मतप्रसादादसन्दिग्धा: परांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥७८

लोभ से मोह उत्पन्न होता और मोह स्मृति को नष्ट कर देताहै, स्मृति के नष्ट होनेसे बुद्धि नष्ट होती है और जब बुद्धि नष्ट हो जाती है तो मृत्यु हो जाती है ।७२। रोग और लोभ के वश में पड़ करही हमारी बुद्धि नष्ट हो गयी, इसलिए जीवन के प्रति इतना मोह हम में है अत: आप प्रसन्न हों ।७३। आपका दिया हुआ शाप हम पर फलित न हो, हम पर प्रसन्न होकर ऐसा ही करें, जिससे हमको यह कष्ट देने वाली गति न मिले ।७४। ऋषि ने कहा हे पुत्रो ! मेरा कथन कभी मिथ्या नहीं होगा, मेरे मुखसे कभी भी कोई मिथ्या वचन नहीं निकला ।७५। अनर्थक पौरुष को धिक्कार है, मैं समझता हूं कि दैव बलवान् है, उसी ने मुझे इस प्रकार के अकार्य में प्रवृत किया है ।७६। तुमने जिस प्रकार प्रणामादि से मुझें प्रसन्न किया है, उससे तिर्यंक योनि में उत्पन्न होकर भी अत्यन्त ज्ञानी होंगे ।७७। मेरे अनुग्रह से ज्ञान के द्वारा तुम सन्मार्ग को देखते हुए अपने पापों को नष्ट करते हुए सिद्धि को पा सकोगे ७८।

एवंशप्ता:स्मभगवन्पित्रादैववशात्पुरा ।
तत:कालेनमहतायोन्यन्तरमुपागता: ॥७९
जाताश्चरणयध्येवैभवतापरिपालिता: ।
वयमित्थंद्विजश्रेष्ठखगत्वसमुपागता: ॥८०
नास्त्यसाविहसंसारेयोनदिष्टेयबाध्यते ।
इतितेषांवच: श्रेत्वाशमीकोभगवान्मुनि: ॥८१
प्रत्युवाचमहाभाग: समीपस्थायिनोद्विजान् ।

पूर्वमेवमयाप्रोक्तं भवतांसुन्निधाग्विदम् ॥८२
सामान्यपक्षिणोनैतेकेऽप्येतेद्विजसत्तमाः ।
येयुद्धऽपिनसंप्राप्ताः पचत्वमतिमानुषे ॥८३
ततःप्रीतिमतातेनतेष्नुज्ञःतामहात्मना ।
जग्मुशिखरिणाँश्रेष्ठ विध्यंद्रुमलतायुतम् ॥८४
यावदद्यस्थितास्तस्मिन्नचलेधर्मपक्षिणः ।
तपः स्वाध्यायनिरताः समाधौकृतनिश्चयाः ॥८५
इतिमुनिवरलब्धसक्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेताः ।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमनमोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे।८६

हे भगवन् ! पुराकाल में दैववश हमारे पिता ने हमको इस प्रकार शाप दिया था तथा कुछ समय व्यतीत होने पर हमने पक्षी योनि में जन्म लिया ।९। हे द्विजोत्तम ! हमारा जन्म रणभूमि में हुआ, आपने यहाँ लाकर हमारा पालन किया और हम आकाश मार्ग में विचरण करने योग्य हो गए हैं ।८०। हे मुने ! विश्व में ऐसा जीव कोईभी नहीं है, जो प्रारब्ध के वश में न हो प्राणियों की जितनी भी चेष्टायें हैं वह सब दैवाधीन ही हैं ।८१। मार्कण्डेय ने कहा—पक्षियों की यह बात सुन षडगुण सम्पन्न तपर्षि वर शमीक ने अपने पास बैठे हुए ब्राह्मणों से कहा ।८२। हे ब्राह्मणों! मैं पहिले ही कह चुकाहूँ कि जब यह युद्ध भूमि में भी मृत्यु मुख में नहीं जा सके, तो यह सामान्य पक्षी नहीं अवश्य ही कोई ब्राह्मण पुत्र हैं ।८३। फिर बह पक्षी प्रसन्न होते हुए महर्षि शमीक की आज्ञा पाकर वृक्ष लता आदि से परिपूर्ण बिन्ध्याचल पर्वत को चले गए ।८४। वह धर्मखग उस पर्वत में रहते हुए तप और स्वाध्याय निरत रहकर समाधि में रहने के लिए तत्पर हुए ।८५। शमीक मुनि से समस्त क्रिया का उपदेश ग्रहण करके, उनकी आज्ञासे वह खग रूपी मुनि कुमार उस अत्यन्त स्वच्छ जल से परिपूर्ण गिरि-शिखर पर आनन्द सहित रहने लगे ।८३।

प्रकरण-४ भगवान् का चतुर्व्यूहावतार

एवंतेद्रोणतनयाः पक्षिणोज्ञानिनोऽभवन् ।
वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्बचपृच्छच ॥१

इत्यर्षैर्वचनश्र ुत्वामार्कण्डेयस्यजैमिनिः ।
जगामविन्ध्यशिखरयत्रतेधर्मपक्षिणः ॥२
तन्नगासन्नभूतश्चशुश्रावपठताँध्वनिम् ।
श्र ुत्वाचविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासजैमिनि ॥३
स्थानसौष्ठवसम्पन्नजितश्वासमविश्रमम् ।
विस्पष्टमपदोषं पठ्यतेद्विजसत्तमैः ॥४
वियोनिमपिसंप्राप्त नेतान्मुनिकुमारकान् ।
चित्रनेतदहमन्येनजहातिसरस्वती ॥५
वन्धवर्गस्तथामित्रंयच्चेष्टमपरगृहे ।
त्यक्त्वागच्छतितत्सर्वंनजहातिसरस्वती ॥६
इतिसचिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् ।
प्रविश्यचददर्शासौशिलापट्टगतान्द्विजान् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे जैमिने ! वह सब ज्ञानवान पक्षी इस प्रकार द्रोण पुत्र हुए और अब वह विन्ध्याचल में निवास करते हैं, तुम उनकी उपासना करके प्रसन्न करो । मुनिवर मार्कण्डेय के वचन सुन कर महर्षि जैमिनि उन धर्मपक्षियों के निवास स्थान विन्ध्य पर्वत को चले ।२। विंध्य पर्वत के समीप पहुँचने ही उन पक्षियों द्वारा वेदपाठ करने का शब्द सुनाई पड़ा तब वे अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक विचार करने लगे ।३। अहो, कैसा आश्चर्य है कि विप्रगण पक्षी होकर भी स्थान कीं श्रेष्ठता ने श्वांस को जीत कर दोष रहित, विश्राम रहित एवं स्पष्ट रूपसे वेदपाठ करते हैं ।४। इन बालकें तिर्यक् योनि प्राप्ति होने परभी सरस्वती ने उनको नही, छोडा, वह आश्चर्य की बात है ।५। इससे प्रतीत होता है कि बन्धु, मित्र या घर की सभी इच्छित वस्तुयें त्याग कर चली जाती हैं परन्तु सरस्वती कभी त्याग नहीं करती है ।६। ऐसा बिचार करते करते करते मुनिवर जैमिनि पर्वत की कन्दरा में घुसे और वहाँ देखा कि वे ब्राह्मण पाषाण-शिला पर विराजमान है ।७।

पठतस्तान्समालोक्यमुखदोषविवर्जितान् ।
सोऽथशोकेनहर्षेणसर्वानिवाभ्यभाषत ॥८
स्वस्त्यस्तुवोद्विजश्रेष्ठाजैमिनिंमांनिबोधत ।

व्यासशिष्यमनुप्राप्तं मततांदर्शनोत्सुकम् ॥९
मन्युर्नखलुकर्त्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना ।
शप्ता स्वगत्वम, पन्ना: सर्वथादिष्टमेवतत् ॥१०
स्फीतद्रव्येकुलेचिज्जाताकिलमनस्विन: ।
द्रव्यनाशेद्विजेन्द्रास्तेशबरेणसुसान्त्विता ॥११
दत्वायाचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे ।
पातयित्वाचपास्यन्तेनएवतपसाक्षयात् ॥१२
एतद्दृष्टं सुवहुशोविपरीतंतथामया ।
भावाभावससुमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलंजगत् ॥१३
इतिसंचिन्त्यमनसानशोकं कर्तु मर्हश्व ।
ज्ञानस्यफलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४

जैमिनी ने उन सब दोषों से रहित पक्षियों को वेदपाठ करते देखकर हर्ष शोक मिश्रित कहा ।८। हे श्रेष्ठ द्विजो ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं व्यास शिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शन की इच्छा से इस स्थान में उपस्थित हुआ हूँ ।९। तुम्हें अत्यन्त कुपित पिता के शाप वश पक्षि रूप ग्रहण करना पड़ा परन्तु इसके प्रतिशोक न करना चाहिए क्योंकि यह प्रारब्ध का ही परिणाम हैं ।१०। धन, सम्मान आदि युक्त ऐश्वर्य सम्पन्न उत्तम वंश में कोई महात्मा जन्म लेता है, और द्रव्यादि के नष्ट होने पर भीलों के द्वारा उसी को सान्त्वता प्राप्त होती है ।१०। कोई दानी भी भिखारी हो जाता है, कोई हत्या करके भी अवध्य रहता है, कोई दूसरे की मृत्यु से रक्षा करके भी दूसरों के द्वारा मारा जाता है, तप के क्षीण होने पर ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं ।१२। मैं अनेक बार ऐसी घटनाएँ देख चुका हूँ, इस प्रकार भाव और अभाव की परम्परा से सम्पूर्ण विश्व व्याकुल है । निरन्तर ऐसा विचार कर शोक मत करो, क्योंकि हर्ष या शोक से अभिभूत न होना ही तप का फल है ।१३-१४।

ततस्तेजैमिनिसर्वेपाद्याध्र्याभ्यामपूजयत् ।
अनामयंचपन्नच्छु प्रणिपत्यमहामुनिम् ॥१५
अथोदु:खगता: सर्वेव्यासशिष्यंतपोनिधिम् ।
सुखोपविष्टं विश्रांन्त पक्षानिलहृतबलमम् ॥१६

अद्यातः सफलं जन्मजीवितचसुजीवितम् ।
यत्पस्याम सुरैर्बन्द्य तवपादाम्बुजद्वयम् ॥१७
पितृकोपाग्निरुद्घूतोयोदेहेषुवर्त्तते ।
सोऽद्यशान्तिगतोविप्र युष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८
कच्चित्तौ कुशलंब्रह्मन्नाश्रमेमृगपक्षिषुः ।
बृक्षेष्वथलतागुल्मत्वसारतृणजातिषु ॥१९
अथवानैतदुक्तं हसम्यगगस्माभिराहृतैः ।
भवतासंगमोयेषांतेषामकुशलंकुतः ॥२०
प्रसादंचकुरुष्वाश्रत्र ह्यागमनकारणम् ।
देवानामिवसंसर्गोभवतोऽभ्युदयोमहान् ।
केनाऽस्मद्भाग्यगुणाआनीतोदृष्टिगोचरम् ॥२१
श्रूयतांद्विजशार्दूलाः कारणयेनकन्दरम् ।
विन्ध्यस्येहागतोरम्यरेवावारिकणोक्षितम् ।
संदेहान्भारतेशास्त्रोतान्प्रष्टुं गतवानहम् ॥२२
माकण्डेयंमहात्मानपूर्वंभृगुकुलोद्वहम् ।

इसके पश्चात् इन धर्मपक्षियों ने पाद्यार्घ्य आदि से महामुनि का पूजन किया तथा प्रणाम के पश्चात कुशल-प्रश्न किया ।१५। उनके पंखों की हवा से व्यास शिष्य जैमिनि का श्रम दूर हुआ और वे सुख पूर्वक बैठे, तबवे पक्षिगण इनसे बोले ।१६। पक्षियों ने कहा—हे महाभाग ! हमारा जन्म और जीवन सब सफल हो गया क्योंकि देवताओं द्वारा पूजित आपके चरणारविन्दोंका हमें दर्शन प्राप्त हुआ है।१७। हे ब्रह्मन् ! हमारे पिता की जो क्रोधाग्नि हमारे शरीर में अत्यन्त प्रबल रूप से रहती है, वह आपके दर्शन रूप जल से शान्त हो गई है ।१८।हे विप्र । आपके आश्रम के मृग, परिबृन्द, लतादि सब कुशल पूर्वक तो हैं ।१९। अथवा हमारा यह प्रश्न ही उचित नहीं है, क्योंकि आपके समीप निवास करने वालों के लिए अमङ्गल ही कैसा ? ।२०। अब आप यहाँ किस लिए पधारे हैं, यह हमको कृपा पूर्वक बताईये, आपका आगमन और देवताओं का संसर्ग तप समान ही है, यह समझ में नही आता कि भाग्य की किस प्रबलता से आपका दर्शन प्राप्त हो सका है ।२१।

तमहपृष्ट्वान्प्राप्यसन्देहान्भारतप्रति ॥२३
सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले ।
द्रौणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यथविस्तरम् ॥२४
तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम् ।
तत्श्रृणुध्वमशेषेणश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥२५
विषयेसतिवक्ष्यामोनिर्विशङ्कःश्रृणुष्वतत् ।
कथंतन्नवदिष्यामोयदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥२६
चतुर्ष्वपिहिवेदेषुधर्मशास्त्रषुकैवहि ।
समस्तेषुतथाङ्गेषुयच्चान्यद्वेदसमन्वितम् ॥२७
एतेषुगोचरोऽस्तादबुद्धे ब्राह्मणोत्तम ।
प्रतिज्ञांन्तुसमावोढुंतथापिनहिशक्नुमः ॥२८

जैमिनि ने कहा रेवा नदी के जलकणों द्वारा सींचे हुए इस विन्ध्य पर्वत की मनोहर कन्दरा में, मैं जिस लिए उपस्थित हुआ हूँ वह सुन! हे विप्रगण ! महाभारत शास्त्र में अनेक संदेह होने के कारण उसके समाधानार्थं ।२२। मैं महात्मा मार्कण्डेयजी के पास गया था और उनसे यह भारत के प्रति सन्देह-प्रश्न किये थे ।२३। उन्होंने कहा कि विन्ध्य पर्वत में महात्मा द्रौण के पुत्र रहते हैं । वहाँ जाकर उनसे ही यह बात पूछो इन प्रश्नों का सविस्तार वर्णन वही करेंगे ।२४। उन्हीं के आदेश से मैं इस महापर्वत में उपस्थित हुआ हूँ । मेरे उन प्रश्नोंको भले प्रकार सुनकर उनकी व्याख्या करदो ।२५। पक्षी बोले यदि कहने योग्य होगा तो अवश्य कहेंगे आप शंका रहित चित्त से कहे जो हमारी बुद्धि में आयेगा उसे क्यों न बतायेंगे ? ।२६। चारोंवेद सभी धर्मशास्त्र, वेदांग अथवा अन्य कोई भी वेद सम्मत शास्त्र ।२६। यद्यपि हमारी बुद्धि के लिए गोचर हैं, फिर भी हम इसकी प्रतिज्ञा नहीं करेगे ।२८।

तस्माद्वदस्वविश्रब्धंसन्दिग्धंयद्धिभारते ।
वक्ष्यामस्तबधमज्ञनचेन्माहोभविष्यति ॥२९
सन्दिग्धानोहवस्तूनिभारतंप्रतियानिमे ।
श्रृणुध्वममलास्तानिश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥३०
कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः ।

वासुदेवोऽखिलाधारःसर्वकारणकारणम् ॥३१
कस्माच्चपाण्डुवाणामेकासाद्रुपदात्मजा।
पञ्चानांमहिषीकृष्णासुमहानत्रसंशय ॥३२
भेषजब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबलः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्क्रेहलायुधः ॥३३
कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः।
पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥३४
एतत्सर्वंकथ्यतांमेसन्दिग्धं भारतंप्रति।
कृतार्थोऽहं सुखंयेनगच्छेयंनिजमाश्रम् ॥३५

इसलिए आपको महाभारत के प्रति जो शँका है, उसे व्यक्त कीजिए, हे धर्मज्ञ ! यदि मोह न हुआ उसे तो आपके प्रति अवश्य ही कहेंगे ।२०। जैमिनि ने कहा— स्वच्छ चित्त खगगण ! महारत के जिन स्थलों ये मुझे संदेह है, उन्हें सुनो और व्याख्या करो ।३०। मेरी शंका है कि सम्पूर्ण कारणों के कारण और समस्त ब्रह्माण्ड के आधार जनार्दन वासुदेव गुण रहित होकर भी मनुष्य किस कारण हुए ।३१। तथा द्रुपद की एक ही कन्या पाँच पांडवों की महिषी किस प्रकार हुई, यह अत्यन्त संशय है ।३२। महाबली बलरामजी तीर्थयात्रा के प्रसंग में ब्रह्म हत्या के पाप से किस प्रकार मुक्त हुए थे ? ।३३। तथा युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडवों द्वारा राक्षस द्रोपदी के अविवाहित पुत्र अनाथ के समान मृत्यु को किस प्रकार प्राप्त हुए थे।३४। इन सब विषयों के प्रति मुझे अत्यन्त सन्देह है, इन सन्देहों का अपने उत्तर से समाधान करके मुझे कृतार्थ करो तो मैं सुख पूर्वक अपने आश्रम को लौट सकूंगा।३५।

नमस्कृत्यसुरेशायविष्णवेप्रभविष्णवे।
पुरुषायाऽप्रमेयायशाश्वतायाऽव्ययायच ॥३६
चतुर्व्यूहात्मनेतस्मैत्रिगुणायाऽगुणायच।
वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायाऽमृताय च ॥३७
यस्मादणुतरंनास्तियस्मान्नास्तिबृहत्तरम्।
येनविश्वमिदंव्याप्तमजेनजगदादिना ॥३८

आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षम् ।
वदन्तियत्सृष्टिमिदतथैवान्तेचसंहृतम् ॥३९
ब्रह्मणेचादिदेवावनमस्कृत्यसमाधिना ।
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैयैः पुनातिजागत्त्रयम् ॥४०
प्रणिपत्यतथेशानमेकबाणविनिर्जितैः ।
यस्यासुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्तेनयज्विनाम् ॥४१
प्रवक्ष्यामोमतंकृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
येनभारतमुद्दिश्यधर्माद्याः प्रकटीकृता ॥४२

पक्षियों ने कहा—जो देवताओं के अधीश्वर, सर्वव्यापी, अत्यन्त प्रभावशाली, आत्मा, अप्रमेय शाश्वत एवं अव्यय स्वरूप हैं ।३६। तथा जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप हैं, जो त्रिगुण अथवा निर्गुण हैं, जो उरुमें, वरिष्ठ, वरेण्य एवं अमृत हैं ।३७। जो यज्ञाङ्ग तथा चराचर विश्वात्मक हैं,वेदान्त शास्त्र से जिनके स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन हुआ है, सम्पूर्ण संसार में जिनके समान सूक्ष्मत्तर या वृहत्तर नहीं है, सम्पूर्ण जगत् जिससे व्याप्त है जो भगत् के आदि तथा अजन्मा हैं ।३८। जिन भगवान् विष्णु के द्वारा आविर्भाव, तिरोभाव दर्शन, अदर्शन आदि सभी कार्य सम्पन्न होते हैं, और जो उन से अतीत,सृष्टि कर्त्ता और संहारकर्त्ता कहलाते हैं।३९। जो आदिदेवहैं तथा अपने चारों मुखोंसे चारों वेद प्रकट करके, त्रैलोक्य को पवित्र करते हैं उन ब्रह्माजी को ध्यान पूर्वक नमस्कार है ।४०। जिनके एक वाण से ही सम्पूर्ण असुर परास्त होकर यज्ञियों के यज्ञ को नष्ट करने में असमर्थ होते हैं, उन देवाधिदेव महादेव के चरणारविन्दों में प्रणाम करके ।४१। अद्भुत कर्म युक्त महर्षि बादरायण द्वारा महाभारत रूप से प्रकट हुए धर्मादि को महर्षि व्यास के मतानुसार सम्पूर्ण विषय आपको कहेंगे ।४२।

आपोनाराइतिप्रोक्तामुनिमिस्तत्वदर्शिभिः ।
अयनतस्यताः पूर्वतेननारायणः स्मृतः ॥४३
सदेवोभगवान्सर्वध्याप्यनारायणीविभुः ।
चतुर्धासस्थितोब्रह्मन्सगुणोनिर्गुणस्तथा ॥४४
एकामूर्तिरनिर्देश्याशुक्लांपश्यन्तितांवुधाः ।

ज्वालामालोपरुद्धांगीनिष्ठासायोगिनांपरा ॥४५
दूरस्याचान्तिकस्था चविज्ञेयासागुणातिगा।
वासुदेवाभिधानोऽसौनिर्ममत्वेनदृश्यते ॥४६
रूपवर्णादियस्तस्यातभाव: कल्पनामया:।
अस्त्येवसासदाशुद्धाप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥४७
द्वितीयापृथिवीमूर्ध्नाशेषाख्याधारयत्यध: ।
तामसीसमाख्यातातिर्यक्त्वंसमुपश्रिता ॥४८
तृतीयाकर्मकुरुतेप्रजपालनतत्परा।
सत्वोद्रिक्तातुसाजेयाधर्मसंस्थानकारिणी ॥४९
चतुर्थीजलमध्यस्थाशेतेपन्नगतल्पगा।
रजस्तस्यागुण:सर्गसारकरोतिसदैवहि: ॥५०

तत्वदर्शी मुनियों ने कहा—'नीर' का अर्थ जल हैं, यह जल ही जिसका अत्यन्त एकमात्र 'अयन' अर्थात् गृहहै इसलिए वे नारायण कहे जाते हैं।४६। हे भगवन्! अनन्त लीलामय भगवान् नारायण सगुण तथा निर्गुण दोनों प्रकार से चार मूर्ति से अवस्थित हैं।४७। उनको जो एक मूर्ति वाणीं से परे हैं उसे ज्ञानीजन शुक्लवर्ण कहते हैं जो योगियों की एक मात्र आश्रय है तथा चन्द्र सूर्य आदि सम्पूर्ण तेजोमय पदार्थ स्वरूप ज्वालमाल से जिनके सब अङ्ग आच्छादित हैं ।४५। जो नित्य मूर्ति तीनों गुणोंका अतिक्रम करके दूर तथा समीप स्थित रहतीहै उस प्रधान मूर्तिका नाम वासुदेव है इसमें ममता किंचित भी नहीं है।४६। उसके रूप, वर्ण आदि कल्पनात्मक हैं वह सर्व काल में विराजमान, एक रूप तथा परम पवित्र है।४७। जो मूर्ति पाताल में निवास करके पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण करती है। उस दूसरी मूर्ति को संकर्षण कहते हैं तामसी होने के कारण यह मूर्ति तिर्यगयोनि वाली है।४८। नारायण के जिस मूर्ति से सभी कर्म भले प्रकार से साध्य होते हैं। और प्रजा-पालन आदि सब कार्य सम्पादन होते हैं तथा जो धर्म की रक्षा करने वाली सतोगुणी मूर्ति हैं उसे प्रद्यूम्न कहते हैं।४९। चौथी मूर्ति जल में पन्नग शय्या पर शयन करती है, यह रजोगुणी है, उसी द्वारा सृष्टि कार्य सम्पन्न होता है उसका नाम अनिरुद्ध है।५०।

यातृतीयाहरे मूर्तिः प्रजापालनतत्परा ।
साधुधर्मव्यवस्थानंकरोतिनियतंभुवि ॥५१
प्रोद्भूतानसुरान्हन्तिधर्मविच्छित्तिकारिणः ।
पातिदेवान्सतश्चान्यानधर्मरक्षापरायणान् ॥५२
यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने ।
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजत्यसौ ॥५३
भूत्वापुरावराहेण तुण्डेनायोनिरस्य च ।
एकयादंष्ट्रयोत्खातानलिनीवबसुन्धरा ॥५४
कृत्वानृसिंहरूपंचहिरण्यकशिपुहृतः ।
विप्रचित्तिदुःखाश्चान्येदानवाविनिपातिताः ॥५५
वामनादींस्तथैवान्यान्नसंख्यातुमिहोत्सहे ।
अवतारांश्चतस्येहमाथुरः साँप्रतत्वयम् ॥५६
इतिसासात्त्विकीमूर्तिरवतारान्करोति वै ।
प्रद्युम्नेतिचसाख्या नरक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥५७
देवत्वेऽथमनुष्यत्वेतिर्यग्योनौचसंस्थिता ।
गृह्णाति तत्स्वभावचवासुदेवेच्छयायासदा ॥५८
इत्येतत्ते समाख्यातंकृतकृत्योऽपियत्प्रभुः ।
मानुषत्वंगतोविष्णुःशृणुष्वाष्वास्योत्तरं पुनः ॥५९

प्रजा का पालन करने वाली तीसरी मूर्ति के द्वारा ही पृथ्वी में सदैव धर्म संस्थापन कार्य होता ।५१। धर्मको नष्ट करने वाले असुरों के गथ उसी मूर्ति द्वारा नाश को प्राप्त होते हैं तथा उसी के द्वारा धर्म रत साधुओं की रक्षा होती ।५२। हे जैमिने ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की बुद्धि होती है, तब तब यह मूर्ति धर्म के अभ्युत्थानार्थ प्रकट होती है ।१६: प्राचीन समय में इसी मूर्ति से वराह रूप धारण को निकला और पहिले के समान स्थित किया ।५४। उसी ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का संहार किया और उसी ने विप्रचित्ति इत्यादि दैत्यों का तारा ।५५। उसने वामनादि अन्यान्य बहुत से अव-तार हुए जिनकी गणना नहीं कर सकते, इसी समय वह मूर्ति श्रीकृष्ण

के रूप में उत्पन्न हुई हैं ।५६। इस प्रकार उस सतोगुणी मूर्ति के अद्भुत होने पर उसकी रक्षा प्रद्युम्न मूर्ति करती है ।५७। वह देवत्व मनुष्यत्व अथवा तिर्यक् आदि योनियों में अवस्थान कर वासुदेव की इच्छानुसार उनके स्वभाव का अवलम्बन करती है ।५८। आपके प्रति हमने यह सब कहा अब भगवान् विष्णु ने मनुष्य शरीर किसलिए धारण किया, उसे कहते हैं ।५९।

५- द्रौपदी के पाँच पति

त्वष्ट्रपुत्रेहतेपूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्यतेजसः ।
ब्रह्महत्याभिभुतस्यपराहानिरजायत ॥१
तद्धर्मंप्रविवेशाथशाक्रतेजोऽपचारतः ।
निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मेतेनसिनिर्गते ॥२
ततःपुत्रेहतंश्रु त्वात्वष्टाक्रुद्धं प्रजापतिः ।
अवलु ंचयजटामेकामिदंवचनमब्रवीत ॥३
अद्यपश्यन्तुमेवीर्यंत्रयोलोकाः स देवताः ।
सचपश्यतुदुर्बु द्धिर्ब्रह्मघ्नमहापाकशासनः ॥४
स्वकर्माभिरतोयेनमत्सुतोविनिपातितः ।
इत्युक्त्वाकोपरक्ताक्षोजटाभग्नौजुहावताम् ॥५
ततोवृत्रः समुत्तस्थौज्वालामालीमहासुरः ।
महाकायोमहादंष्ट्रोभिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥६
इन्द्रशत्रुरमेयात्मात्वष्ट्रतेजोपवृं हितः ।
अहन्यहनिसोऽवर्द्धंहिषुपातंमहाबलः ॥७

पक्षियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रजापति त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तप कर रहा था, उसके तप से डर कर इंद्र ने उसे मार डाला, उसके मारने से ब्रह्महत्या से उत्पन्न पातक से इन्द्र का तेज नष्ट हो गया ।१। अधर्म का आचरण करने से इन्द्रके तेज ने अधर्म में प्रवेश किया और इस कारण इन्द्र निस्तेज हो गए ।२। त्रिशिरा की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर त्वष्टा अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने अपने मस्तक की एक जटा उखाड़ कर कहा ।३। देवगण सहित स्वर्ग और पाताल में निवास करने वाले सभी लोग इस समय मेरे तेज को

देखे तथा मेरे पुत्र का हत्यारा दुर्बुद्धि वाला इन्द्र भी मेरे विक्रम को देखें ।४। जिसने अपने कर्म में लगे हुए मेरे पुत्र का वध किया है, यह कह कर उन्होंने रक्त नेत्र किये हुए क्रोध पूर्वक उस जटा को अग्नि में होम दिया ।५। तब तत्काल ज्वालमालायुक्त विशालकाय, विशाल दंष्ट्राओं से युक्त, अंजनपिण्ड जैसा रूप धारण किये वृत्र नामक एक घोर असुर अग्नि से प्रकट हुआ ।६। त्वष्टा के तेज से उत्पन्न हुआ वह शक्रारि वृत्र धनुष से छूटे हुए वाण की ऊँचाई के समान नित्य वृद्धिको प्राप्त होने लगा ।

बधायचात्मनोदृष्ट्वावृत्रं शक्रोमहासुरम् ।
प्रेषयामाससप्तर्षीन्सन्धिच्छिन्भयातुरः ॥८
सख्यन्चक्रुस्ततस्तस्यवत्रेणसमयांस्तथा ।
ऋषय प्रीतवनसः सर्वभूतहितेरताः ॥९
संसयस्थितिमुल्लध्ययदाक्रंणघातितः ।
वृत्रोहत्याभिभूतस्यतदाबलमशीर्यतः ॥१०
तच्छक्रदेहविभ्रष्टंबलमारुतमाविशत् ।
सर्वंव्यापिननव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११
अहल्यांचयदाशक्रोगौतमरूपमास्थितः ।
धर्षयामादेवेन्द्रस्तस्तदारूपमहीयत ॥१२
अङ्गप्रत्यंङ्गलावण्यंयदतीवमनीरमम् ।
विहायदुष्टदेवेन्द्रंनासत्यावगवत्ततः ॥१३
धर्मणतेजसात्यक्तंवलहीनमरूपिणम् ।
ज्ञात्वासुरेशदैतेयास्तज्जयेचक्रुरुद्यमम् ॥१४

अपने वध के लिए उस घोर असुरवृत्र को उत्पन्न हुआ देखकर इन्द्र भय से अत्यन्त आतुर हुए और उन्होंने उससे सन्धि करने के उद्देश्य से मरीच्यादि से सप्त ऋषियों को भेजा ।८। सब जीवों की कल्याणकामना वाले सप्तऋषियों ने इन्द्र, और वृत्रासुर के मध्य परस्पर प्रतिज्ञा करके मित्रता कराई ।९। प्रतिज्ञा की मर्यादा का उल्लधन करके अब वृत्रासुर इन्द्र के द्वारा वधको प्राप्त हुआ तब उसी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप के कारण इन्द्र का बल नष्ट हो गया ।१०। यह बल

इन्द्र के देह से निकल कर बल के मात्र अधिदेव सर्वव्यापी एवं अव्यक्त पवन देवता में प्रविष्ट हो गया ।११। और जब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर अहिल्या से सङ्गति की तब भी उसका स्वरूप श्री हीन हो गया ।१२। उस समय उस दुरात्मा इन्द्र के अङ्ग प्रत्यङ्ग का सम्पूर्ण लावण्य उसका त्याग करके दोनों अश्विनी कुमारों में प्रवेश कर गया ।१३। उस समय इन्द्र को धर्म और तेज के द्वारा त्याग हुआ तथा वल और रूप से भी हीन समझ दैत्यों न उस पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया ।१४।

राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणांदेवेन्द्र विजिगीषव: ।
कुलेष्वतिबलादैत्याअजायन्तमहामुने ॥१५
कस्यचित्वथकालस्यधरणीभारपीडिता ।
जगाममेरुशिखरंसदोयत्रदिवौकसाम ॥१६
तेषाँसाकथयामासभूरिभारावपीड़िता ।
दनुजात्मजदैत्योत्थखेदकारणमात्मनः ॥१७
एतेभवद्भिरसुरानिहता: पृथुलौजस: ।
ते सर्वेमानुषेलोकेजातागेहेषुभूभताम् ॥१८
अक्षौहिण्योहिवहुलास्तद्भारार्त्ताव्रजाम्यध: ।
तथाकुरुध्वत्रिदशाययथाशांतिर्भवेन्मम् ॥१९
तेजोभागैस्ततोदेवाअवतेर्रुदिवोमहिम् ।
प्रजानामुपकारार्थभूभारहरणाय च: ॥२०

हे महामुने ! महान् बल वाले दैत्योंने इन्द्र पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से, बल, वीर्य और मद युद्ध राजाओं के वंश में जन्म लिया ।२१। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर दैत्यों के भार से पृथ्वी बोझिल हो गई और वह सुमेरु पर्वत में देवताओं की सभा में पहुँची ।१६। और वह अत्यन्त बोझकी पीड़ा वाली देवी वसुन्धरा दैत्य-दानवों के कारण होने वाले अपने दुःखका सम्पूर्ण कारण वहाँ कहने लगी ।१७। हे देवगण ! तुमने अत्यन्त वली असुरो का संहार किया था, उन्होंने अव मृत्युलोक के राजवंशों में जन्म धारण कियाहै ।१८। वे दैत्य असंख्य अक्षौहिणी संख्यक हैं, इसलिए उनके भार से अत्यन्त पीड़ित हुई मैं

नीचे की ओर झुकी जा रही हूँ, देवगण ! मुझे जिसप्रकार शान्ति मिल सके, वही करो ।१९। पक्षियों ने कहा मुनिवर ! इसके पश्चात् प्रजा के उपकार और पृथिवी के भार हरणार्थ देवताओं ने अपने-अपने तेजांश से भू-मण्डल पर जन्म लिया ।२०।

यदिन्द्रदेहजतेजस्तन्मुमोचस्वयंवृष ।
कुन्त्यांजातोमहातेजास्ततोराजायुधिष्ठिरः ॥२१
बलं मुमोचपवनस्ततोभीमोव्यजायत ।
शक्रवीर्यार्द्धतश्चैवजज्ञे पार्थोधनञ्जयः ॥२२
उत्पनौयमजौसाद्रयाँशक्ररूपौमहाद्युती ।
पञ्चधाभगवानित्थमवतीर्णः शतक्रतुः ॥२३
तस्योत्पन्नामहाभागापत्नीकृष्णाहुताशनात् ॥२४
शक्रस्यैक्रस्यसापत्नीकृष्णानान्यस्यकस्यचित् ।
योगीश्वराः शरीराणिकुर्वतिबहूलान्यपि ॥२५
पंचानमेकपत्नीत्वमित्येतत्कथिततत्व ।
श्रूयतांबलदेवोऽपियथायात.सरस्वतीम् ॥२६

तब इन्द्र के शरीर से उत्पन्न उस तेज को स्वयं धर्म ने कुन्ती के गर्भ में स्थापित किया, उसीसे अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठर की उत्पत्ति हुई ।२१। और देवताओं में श्रेष्ठ वायु ने इन्द्र के जिस तेज को कुन्ती के गर्भ में स्थापित किया उसके भीमसेन और इन्द्र के आधे बलसे कुन्ती के गर्भ से ही अर्जुन उत्पन्न हुए ।२२। इन्द्रके आधे बलको धारण करने वाले दोनों अश्विनी कुमारोंने माद्री में गर्भ धारण कर दो (यमल) कुमारों को उत्पन्न किया, इस प्रकार इन्द्र ही इन पांचों रूपों में प्रकट हुए ।२३। तथा उन्हीं इन्द्र की भार्या शची यज्ञभाग एवं याज्ञसेनी रूप से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुई ।२४। इससे निश्चय हुआ कि द्रौपदी केवल एक इन्द्रकी ही महिषीथी क्योंकि महात्मा एवं योगीश्वर अपने देह के अनेक विभाग करने में समर्थ हैं ।२५। जैसे वह द्रौपदी पाँच व्यक्तियों की एक ही पत्नी हुई वह कारण बता दिया, अब बलदेवजी जिसप्रकार सरस्वती में पहुँचे, वह श्रवण करो ।२६।

६- बलदेव द्वारा ब्रह्महत्या

रामः पार्थपरांप्रीतिंज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली ।
चिन्तयामासबहुधाकिंकृतंसुकृतं भवेत् ॥१
कृष्णेनहिवनानाऽहं यास्येदुर्योधनान्तिकम् ।
पाण्डवान्वासमश्रित्यथदुर्योधननृपम ॥२
जामातर तथाशिष्यघातयिष्येनरेश्वम् ।
तस्मान्नमार्थंतास्यामिनापिदुर्योधननृपम् ॥३
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामितावदात्मात्मना ।
कुरूणाँपाण्डवानांचयावदन्त संकल्पते ॥४
इत्यामन्त्रयहृषीकेशंपार्थंदुर्योधनावपि ।
जगामद्वारकांशौरिः स्वसैन्यपरिवीरितः ॥५
गत्वाद्वारवतींरामोहृष्टपुष्टजनाकुलाम् ।
श्वोगन्तव्येषुतीर्थेषुपयौपानं हलायुधः ॥६
पीतपानोजगामाथरैवतोद्यानमृद्धिमत् ।
हस्तेग्रहीत्वासमदांरेवतीनप्सरोपमाम् ॥७

पक्षियों ने कहा—अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रीति देखकर बलरामजी क्या करनेसे मङ्गल होगा इस विषयपर अनेक प्रकार विचार करने लगे ।१। श्रीकृष्ण को साथ लिए बिना ही मैं एकाकी दुर्योधन के पास नहीं जाऊँगा इन पांडवों का पक्ष लेकर ।२। अपने ही जामाता और शिष्य राजा दुर्योधन का किस प्रकार वध करूँ ! अतएव मैं राजा दुर्योधन और अर्जुन दोनों में से किसी के पास नही जाऊँगा ।३। इस लिए कौरव पाडवों का जब तक नाश न हो जाय तब मैं अकेलाही तीर्थयात्रा करता हुआ अपनी आत्मा को पवित्र करूँ ।४।ऐसा निश्चय करके बलरामजी ने हृषीकेष, अर्जुन और दुर्योधन को आमन्त्रण करते हुए अपनी सेना से घिरे हुए द्वारका को प्रस्थान किया ।५। जब से हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों वाली द्वारका नगरी में पहुँचे तब तीर्थ यात्रा का विचार करते हुए उन्होंने ताड़ी के रस का पान किया ।६। रस पीने के उपरान्त अप्सरा के समान गर्वित रेवती जी को कर ग्रहण करते हुए

अनेक वैभवों से युक्त रैवत उद्यान में पहुँचे।

स्त्रीकदम्बकमध्यस्थोययौमत्त:पदास्खलन्।
ददर्शंचवनंवीरोरमणीयमनुत्तमम् ॥८
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम्।
पुण्यपद्मवनोपेतंसपल्लवमहावनम् ॥९
सशृण्वन्प्रीतिजननान्वहून्मदकलांनशुभान्।
श्रोत्ररम्यान्सूमधुराज्शब्दा:खगमुखेरितान् ॥१०
सर्वर्तुफलभाराढया सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान्।
अपश्यत्पादपांस्तत्रविहगैरनुनादितान् ॥११
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान्।
आबिल्वकांस्तथाजीरान्दाड़िमान्बीजपूरकान् ॥१२
पनसान्लकुचान्मीतान्नीपांश्चातिमनोहरान्।
पारावतांश्चकङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ॥१३
भल्लातकानामलकाँस्तिन्दुकाँश्चमहाफलान्।
इंगुदान्करमर्दाश्चहरीतकविभीतकान् ॥१४
एतानन्यांश्चसतरून्ददर्शयदुनन्दन:।
तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥१५

मद्यपान से उन्मत्त होने के कारण स्त्रियों से घिरे रहकर क्रीड़ा रत होने पर उनके पांव डगमगाने लगे फिर स्वस्थ होकर उन्होंने फिर अत्यन्त रमणीक रैवत वन देखा।८। वह समस्त ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फलों, पुष्पों से सुशोभित, मृगों व्याप्त, कमलवन से सम्पन्न तथा छोटे सरोवर और महावन से सम्पन्न था।९। रेवती जी के साथ उस वन में प्रविष्ट होकर बलरामजी आह्लाद उत्पन्न करने वाले तथा कानों का सुख देने वाले विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी का मधुर कूजन सुनने लगे।१०। वहाँ वृक्षों में सब ऋतुओं के फल लगे हैं, उन वृक्षों पर प्रसन्न पक्षी चहचहा रहे हैं तथा सभी ऋतुओं के पुष्प प्रफुल्लित हो रहे हैं और सभी रक्षों के फल शोभा दे रहे हैं।११। आम, अम्रातक, नारियल, बिन्दु वेल अन्जीर, अनार, निम्बु।१२। कटहल बड़हल, मोचरस, कदम्ब, पारावत, कोल, नलिनी अम्ल, वेत।१३।

मिलाचा, तिल, तँदू, हिंगोंट, करौंदा, हरड़, बहेड़ा, ।१४। वहाँ इन सब वृक्षों को बलरामजी ने देखा तथा अशोक, पुन्नाग, केतकी मौलश्री ।१५।

चम्पकान्सप्तपूर्णाश्चकर्णिकारान्समालतीन् ।
पारिजातान्कोविदारान्मदारानृच्छवदरांस्तथा ।।१६
पाटलान्पुष्तिनृरम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ।
सालांस्तालास्तमालाँश्चकिंशुकान्वजुलान्वरान् ।।१७
चकोरैशातपत्रैश्चभृंगराजैस्तथाशुकः ।
कोकिलैः कलविङ्कैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः ।।१८
प्रियपुत्रैश्चातकश्चतथान्यैर्विविधंखगैः ।
श्रोत्ररम्यंसुमधुरंकूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ।।१९
सरांसिचमनोज्ञानिप्रसन्नसलिलानि च ।
कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथनीलोत्पलै शुभैः ।।२०
कह्लारैःकमलैश्चापिआचितानिसमततः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्चतथवजलकुक्कुटैः ।।२१
कारण्डवैप्लवैर्हंसैकूर्मैर्मद्गुरेवच ।
एभिश्चान्यैश्चकीर्थानिसमन्ताज्जलचारिभिः ।।२२

चम्पा, कन्नेर, सप्तवर्ण पारिजात, मालती, कोविदार, मान्दर, बेर ।१६। पाटल, देवदार सुखुआ, ताल, तमाल, पलाश और वंजुल आदि उत्तमोत्तम फल पुष्पो से सम्पन्न वृक्षों से वह वन सुशोभित है । ।१७। उन वृक्षों पर चकोर जातपत्र, भृङ्गराज, शुक्र, सारिका, कोकिला रैल जीव जीव. जीवक ।१८।प्रियपुत्र तथा चातक आदि विभिन्न प्रकार के पक्षी सुनने में मनोहर शब्द करते हुए इन सब वृक्षों की शाखाओंके आश्रय में निवास करते हैं ।१९। उस रैवतक वन में स्वच्छ जल वाले सुशोभित हैं, जिन्हें देखते ही चित्त प्रसन्न होता है कुमुद, पुण्डरीक, नील-पद्मा ।२०। कह्लार और कमल आदि पुष्पोंसे सर्वत्र शोभायमान रथा कलहंस, चदवा और जल कुक्कुट ।२१। प्लव, हंस तथा कारण्डव आदि जलचर आदि के सहित अत्यन्त सुशोभित ।२२।

क्रमेणेत्थंवननशौरिर्वीक्षमाणोमनोरमम् ।
जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥२३
सददर्श द्विजांस्तश्चवेदवेदांगपारगान् ।
कौशिकान्भार्गवांश्चैवभारद्वाजान्सगौतमान् ॥२४
त्रिविधेषुचसंभूतान्वशेषकुशेचुद्विजत्तमान् ।
कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सूच ॥२५
कृष्णाजिनोत्तरीयेषुकुशेचुयुचबृषीषुच ।
सूतचतेषांमध्यस्थं कथयान कथाःशुभाः ॥२६
पौराणिकीः सुरर्षीमाद्यानांचरिताश्रयाः ।
दृष्टवारांमंद्विजाःसर्वेमधुपानारुणेक्षणम् ॥२७
मत्तोऽयमितिमन्वानाः समुत्तास्थुस्त्वरान्विताः
पूजयंत्तोहलधरमृतेतं सूतवंशजम् ॥२८

उस वन को देखते हुए बलरामजी स्त्रियों के सहित एक अत्यन्त श्रेष्ठ लतागृह में पहुँचे ।२३। वहाँ उन्होंने देखाकि अनेकों वेदवेदांग ज्ञाता ब्राह्मण, कौशिक वंशी भृगुवंशी तथा भारद्वाज और गौतम के वंशधर ।२४। तथा अन्यान्य देशों के पवित्र ब्राह्मण और श्रेष्ठ मनुष्य कुशाओं पर और कोई घास पर बैठे हैं तथा उनके मध्य में पुराण की कथा कहने वाले सूतजी कल्याणमयी कथा कह रहे हैं ।२६। उस कथा में देवताओं और ऋषियों का वर्णन था । उसी समय उन ब्राह्मणों ने मदिरा के मद से लाल हुए नेत्रों वाले बलरामजी को देखा ।२७। सब मुनियों ने उन्हें मदोन्मत्त देख उस समय सूतजीके अतिरिक्त अन्य सभी ने उठकर अत्यन्त आदरपूर्वक बलरामजी का पूजन किया ।२८।

ततः क्रोधसमाविष्टोहलीसूत महाबलः ।
निजघानविवृत्ताक्षोभिताशषदानवः ॥२९
अक्ष्यस्यतिदब्राह्मं तस्मिन्सूतोनिपातिते ।
निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वेवनात्कृष्णाजिनाम्बर ॥३०
अवधूततथात्मानमन्यमानोहलायुधः ।
चिन्तयामाससुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥३१
ब्राह्मं स्थानंगतोह्येषयत्सूतोविनिपातितः ।

तथाहिमेद्विजाःसर्वेमामवेक्ष्यविनिर्गताः ॥३२
शरीरस्यचमेवन्धोलोहस्तेवाऽसुखावहः ।
आत्मानंचावगच्चाभिब्रह्मघ्नमिवकुत्सितम् ॥३३
धिगमर्षंतथामद्यमतिमानमभीरुताम् ।
यैराविष्टेनसुमहन्मयापापमिदक्कृतम् ॥३४
तत्क्षयार्यंचरिण्यामिव्रतंद्वादशवार्षिकम् ।
स्वकर्मख्यापनंकुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५
अथयेयसमारब्धातीर्थयात्रामयाऽधुना ।
एतामेवद्रयास्याभिप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥३६
अतोजगामरामोसौप्रतिलोमांसरस्तीम् ।
ततःपरंश्रृणुष्वेमंपाण्डवेयकथाश्रयम् । ३७

फिर दानवों के हन्ता महान् पराक्रमी वलरामजी ने सूतजी के द्वारा अपना तिरस्कार समझकर अत्यन्त क्रोध के लाल नेत्र कर सूतजी को मार डाला ।२६। पुराणवेत्ता सूतजी के मर-कर स्वर्ग में पहुंचने पर मृगछालाओं पर बैठे हुए सभी ब्राह्मण वहाँ से उठकर चले गये ।३०। तव जिन वलराभजी की देह पर पाप प्रतीत हो रहा था, वह चिन्ता ओर पश्चाताप करने लगे कि मैं ऐसा घोर पाप क्यों कर बैठा ? ।३१। मैंने जिन सूतजी को मारा वह ब्रह्म स्थान को प्राप्त हुये और सभी ब्राह्मण मुझे देखते ही चले जाते हैं ।३२। मेरे देह से असुरत्व प्रदर्शित करने वाली लौह तुल्य गन्ध निकल रहीहै और आत्मा भी ब्रह्महत्या के अत्यन्त पाप से कलुषित प्रतीत होती है ।३३। अरे अमर्ष ! तुझे धिक्कार है, अरे मद्य तुझे भी धिक्कार हैं अत्यन्त सम्मान और साहस को भी धिक्कार हैं क्योंकि इन्ही के बशीभूत होकर मैं ऐसा घोर पातक कर बैठा । ३४ । अब इस ब्रह्महत्या से उत्पन्न महापातक को दूर करने के लिए बारह वर्ष तक व्रत करता हुआ अपने पाप को सर्वत्र विख्यात करके इसका प्रायश्चित करूँगा ।३५। अथवा जिस तीर्थ यात्रा का जो उद्यम मैं कर रहा हूँ उसी यात्रा में प्रतिलोमा सरस्वती

में जाऊँगा ।३६। हे भुने ! ऐसा कहकर यदुकुल धुरन्धर बलराम जी प्रतिलोमा सरस्वती को जाकर प्राप्त हुए अब तुम्हारे प्रति पाण्डव पुत्रों का वृत्तान्त कहते हैं, उसे श्रवण करो ।२७।

७—द्रौपदी के पाँच पुत्रों की मृत्यु

हरिश्चन्द्रे तिराजर्षिरासीत्वेतायुगेपुरा ।
धर्मात्मापृथिवींपाल: प्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः ।।१
न दुर्भिक्षनचव्याधिर्नाकालमरणंनृणाम् ।
नाधर्मरुचय: पौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे ।।२
वभूवुर्नतथान्मत्ताधनवीर्यतपोमदै: ।
नाजानयन्त स्त्रियश्चैवकाश्विदप्राप्तयौवना: ।।३
सकदाचिन्महाबाहुरण्येऽनुसरन्मृगम् ।
शुश्रावशब्दमसकृत्त्रायस्वेतिचयोषिताम् ।।४
सविहायमृगराजामाभैषीरित्यभाषत ।
मयिशासतिदुर्मेधा: कोऽयमन्यायवृत्तिमान ।।५
तत्क्रन्दितानुसारीचसर्वारम्भविधातकृत ।
एतस्मिन्नतरेरौद्रोविघ्नराट्समचिन्तयत् ।।६
विश्वामित्रोऽयमतुलतपआस्यायवीर्यवान् ।
प्रागसिद्धाभवादीनांविद्यासाधयतिव्रती ।।७

धर्मात्मा पक्षियों ने कहा—हे जैमिनी ! पुराकाल में त्रेता में हरिश्चन्द्र नाम के एक धार्मिक नरेश हुए वह अत्यन्त कीर्ति से युक्त पृथिवी का पालन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष थे ।१। उनके शासन काल में दुर्भिक्ष नहीं पड़ा और प्रजा को रोग, काल मृत्यु का फल तथा अधर्म फल नहीं भोगना पड़ता था ।२। उनकी प्रजा भी धन, बल या धर्म के मद से उन्मत्त नहीं होती थीं, स्त्रियाँ भी यौवनावस्था प्राप्त किये बिना सन्तानवती नही होती थी ।३। एक समय की बात है वह आखेट के लिए वन में गये, उसी समय उन्होंने अनेक स्त्रियों के कंठ से 'रक्षा करो, रक्षा करो' का शब्द सुना ।४। तब राजा मृगया छोड़ कर, 'डरो मत' कहते हुए बोले कि मेरे शासनकाल में कौन दुर्बुद्धि अन्याय का आचरण करता है ? ।५। यह कर कर उन्होंने उस करुण स्वर का अनु-

सरण किया, उसी समय सब कार्योंको नष्ट करने वाला भयंकर विघ्न-राग सोचने लगा।३। इस वनमें जिन साधनों को पहिले कोई नहीं साध सका उन्हें भवादि सम्पूर्ण विद्याओं के साधन का आलम्बन एवं घोर तप द्वारा महामुनि विश्वामित्रजी कर रहे हैं।७।

साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसयमिनाऽमुना।
तावैभयार्त्ताः क्रन्दन्तिकथंकार्यमिदमया ॥८
तेजस्वी काशिकश्चे छोवयमस्यसुदुर्बलाः।
क्रोशन्त्येताःस्तथाभंतादृष्पार प्रतिभातिमे ॥९
अथवाऽयनूप प्राप्तोमाभैरितिवदन्मूहुः।
इदमेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम् ॥१०
इतिसंचिन्त्य रौद्रणविघ्नराजेनववैततः।
तेनाविष्येनृपः क्रोधादिदवचनमब्रवीत् ॥११
कोऽयंबध्नातिवस्न्नान्तेपावक पापकृन्नरः।
बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्यावुपस्थिते ॥१२
सोऽद्यमत्कामुर्काक्षेपविदीपितदिगन्तरैः।
शरैविभन्नसर्वागोदीर्घनिद्रांप्रवेक्ष्यते ॥१३
विश्वामित्रत्ततः क्रुद्धाश्रुत्वातन्नुपहृतेर्वचः।
क्रुद्धेचर्षवरेतस्मिन्नेशुविद्याः क्षण नताः ॥१४

क्षमा, मौन और चित्त के द्वारा वे मुनिवर जिन विद्याओं के साधन में अहर्निश श्रद्धा से रत हैं वे विद्याएँ अत्यन्त भयभीत हो नारी रूप में 'रक्षा करो कहती हुई रोती है, अब मेरा यह कर्तव्य है कि।८। क्योंकि विश्वामित्रजी अत्यन्त तेजस्वी हैं और इनके समक्ष में अत्यन्त दुर्बलहूँ और यह विद्याएँ भी भयसे रुदन कर रही हैं, इसप्रकार अत्यन्त कठिन वार्ता उपस्थित है।९। अथवा मुझे किसी प्रकार चिन्तित नहीं होना चाहिए, राजा हरिश्चन्द्र 'डरो मत' कहता हुआ आ पहुँचा है,इस लिए इस राजा के देहमें घुसकर ही अपनी इच्छा पूर्ण करताहूँ।१०।उस समय भयंकर विघ्नराज ने इस प्रकार विचार कर राजा के देहमें प्रवेश किया, तब राजा ने और भी क्रोध पूर्वक कहा।११। यह कौन पापी,

वस्त्र में अग्नि को बांध रहा है। जब मैं साक्षात् बल रूप अत्यन्त तेजस्वी भूपति हरिश्चन्द्र यहाँ आ गया हूँ।१२। इस समय कौन मूर्ख धनुष से छूटकर दिशाओं में प्रकाश करने वाले मेरे बाणों से छिदकर योग निद्रा प्राप्त होगा।१३। तब राजा हरिश्चन्द्र के यह अहंकार मय वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी क्रोधित हो उठे और उनके क्रोध करते ही सब विद्या नष्ट हो गई।१४।

सचापिराजातंदृष्ट्वा विश्वामित्र तपोनिधिम् ।
भीमत: प्रात्नेपतात्यर्थं सहसाश्वत्थपर्णवमु ॥१५
सदुरात्मन्नितियदामुनिस्तिष्ठेतिचाब्रवीत् ।
तत: सराजाविनयात्प्रणिपत्याऽभ्यभाषत: ॥१६
भगवन्नेषधर्म्मोमेनापराधोममप्रभो ।
नक्रोद्धमर्हसिमुनेनिजधर्मंरतस्यमे ॥१७
दातव्यरक्षितव्यंचधर्मयेनमहीक्षिता ।
चापचौद्दम्ययोद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारत: ॥१८
दातव्यंकस्यकेरक्ष्या: कैयद्धिव्यंचतेनृप ।
क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्मभयंतव: ॥१९
दातव्यंविप्रमुख्येभ्यीयेचान्येकृशवृत्तय: ।
रक्ष्याभीता: सदायुद्धं कर्तव्यं परिपन्थिभि: ॥२०
यदिराजाभवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ।
निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहं दीयतमिष्टदक्षिणा ॥२१

सहसा तपोनिधि विश्वामित्रजीको देखकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त भयभीत होकर पीपल पत्र के समान काँपने लगे।१५। उसी समय मुनिवर विश्वामित्र ने कहा 'दुरात्मन! ठहर यह सुनकर राजा ने उनको प्रणाम किया और विनयपूर्वक बोले।१६। हे भगवन! मेरा धर्म यही है आप मेरे अपराध को न मानिए, मैंने अपने धर्म का त्याग नही कियाहै, इसलिए मेरे प्रति क्रोध न करिये।१७। धर्मज्ञनरेशों का कर्त्तव्यही धर्मानुसार दान, रक्षा और धनुष धारण करके युद्ध करना है।१८। विश्वामित्र बोले—राजन् यदि तुम्हें अधर्म से भय है तो यह बताओ कि

दान किसको करना चाहिए,किसकी रक्षा और किसके साथ युद्ध करना उचित है ? ।१९। हरिश्चन्द्र बोले—जो सदैव व्रत अनुष्ठान में तत्पर और ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी के लिए दान करे, भयभीत की रक्षा करे और शत्रुओं के साथ युद्ध करे ।२०। विश्वामित्र ने कहा कि राजन् ! यदि तुम्हें सम्पूर्ण राजधर्म का ज्ञान है तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूँ मुझे इच्छित दक्षिणा प्रदान करो ।२१।

एतद्राजावचःश्रुत्वाप्रहृष्टेनांतरात्मा ।
पुनर्जातमिवात्मानंमेनेप्राह चकौशिकम् ॥२२
उच्यतांभगवनयत्ते दातव्यमविशङ्कितम ।
दत्तमित्येवतद्विद्धियद्यपिस्यात्सुदुर्यभम् ॥२३
हिरण्यंवासुर्णं वापुत्रः स्त्रीकलेवरम् ।
प्राणाराज्यं पुर लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥२४
राजन्प्रमिग्रहीतोऽययस्तेदत्ताः प्रतिग्रहः ।
प्रयच्छप्रथमतावद्दक्षिणांराजसूयिकीम् ॥२५
ब्रह्मंस्तामपिदास्यामिदक्षिणंभवतोह्यहम् ।
संसारगरांधरामेतांसभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ॥२६
राज्यंचसल वीर ! रथाश्वगजरंकुलम् ॥२७
क्रौष्टागारं चकोषंचयच्चान्यद्विद्यतेतव ।
विनाभार्याचपुत्रं मस्ते च शरीरंचतवानघ ॥२८
धर्मं चसर्वंधर्मज्ञयोवान्तमनुगच्छति ।
बहुनावाकिमुक्तेनसर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥२९

पक्षियों ने कहा है जैमिने—राजा हरिश्चन्द्र ने यह बात सुनकर आह्लाद और प्रफुल्लतायुक्त होकर अपना नया जन्म समझते हुए मुनि से कहा ।२२। हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहें, मैं उसे देने के लिए तत्पर हूँ तथा प्रतिज्ञा करता हूँ कि कठिन से कठिन बात को भी करूँगा।२३। आपको स्वर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, देह प्राण, राज्य, ग्राम,धन जिस वस्तु की इच्छा हो वही बतलाइए ।२४। विश्वामित्र ने कहा-आप

को देंगे, वही मैंने ग्रहण कर लिया समझो, परन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मुझे दो ।२५। राजा बोले—ब्रह्मन् ! देने को मैं तत्पर हूं; राजसूय यज्ञ की दक्षिणा के रूप में आपकी जो इच्छा हो सो आज्ञा करे ।२६। विश्वामित्र ने कहा समस्त नगर, ग्राम पर्वत, सागर आदि से युक्त पृथिवी एवं रथ, अश्व, हाथी सहित सम्पूर्ण राज्य ।२७। अन्तर्ग्रह, राजकोश आदि तुम्हारी वस्तुयें बिना भार्या, पुत्र तथा अपने शरीर के ।२८। तथा धर्मशास्त्र के अनुसार तुम्हारे पास जो कुछ है, सब कुछ मुझे दे दो ।२९।

ब्रह्मष्टेनैवमनसासोऽविकारमृखोनृपः ।
तस्यर्षेवचनं श्रुत्वातथेत्याहकृताञ्जलिः ॥३०
सर्वस्वयंदिमेदत्तं राज्यमुर्वाबलं धनम् ।
प्रभुत्वंकस्यराजर्षे राज्यस्थेतापसेमयि ॥३१
यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ।
तस्मिन्नपिभवान्स्वामीकिमुताद्यमहीपतिः ॥३२
यदिराजंस्त्वादत्ताममसर्वा बसुन्धरा ।
यत्रमेविषयेस्वाम्यं तस्मान्निष्क्रांतुमर्हति ॥३३
तरुवल्कलमावध्यसहपत्न्यासुतेन च ॥३४
वथातिचौक्त्वाकृत्वाचराजा गन्तु प्रचक्रमे ।
स्वपत्न्याशैब्ययासार्द्धं वाकेनात्मजेनच ॥३५

पक्षियों ने कहा—मुनि के वचन सुनकर राजा ने प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़कर 'जो आज्ञा, 'ऐसा ही होगा' मुखसे कहा ।३० विश्वामित्र ने कहा-तुमने पृथिवी,बन, धन इत्यादि सर्वस्व ही मुझे अर्पण कर दिया है, तब तपस्वी होकर राज्य करने से किसका प्रभुत्व रहेंगा ? ।३१। हरिशचन्द्र बोले—ब्रह्मन् ? जब से मैंने यह बसुन्धरा आपको दे दी, तभी से आप इसके स्वामी हैं, फिर आप प्रमुत्व का प्रश्न क्यों करते है ।३२ विश्वामित्र ने कहा-राजन् ! तुमने जब यह वसुन्धरा मुझे दे दी और मेरा स्वामित्व हो गया तो तुम इस राज्य से चले जाओ ।३३। कटि-

भूषण आदि तुम्हारी भार्या और पुत्र के देह में हैं, उन सबको उतार कर वृक्षों की छाल धारण करके पत्नी पुत्र सहित मेरे राज्य से निकल जाओ।३४। पक्षियों ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र ने मुनि विश्वामित्र की आज्ञा के अनुसार कार्य किए और अपनी भार्या शैव्या और पुत्र के सहित जाने लगे।३५।

व्रजतः सततोरुद्धापन्थानं प्राहतंनृपम् ।
क्वयास्यसीत्यदत्वामेदक्षिणांराजसूर्यकीम् ॥३६
भगवन्राजमेतत्ते दत्तं निहतकण्ठकम् ।
अवशिष्टमिदंब्रह्मन्नद्यदेहत्रयमम ॥३७
तथापिखलुदातव्यात्वयामेयज्ञदक्षिणा ।
विशेषतो ब्र हणानांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम् ॥३८
तावदेवतुदातव्य दक्षिणाराजसूयिकी ॥३९
प्रतिश्रुत्यचदातव्यं योद्धव्यं चातडडतायिभिः ।
रक्षितव्यास्तथाचार्त्ता सत्वयैवप्राक्प्रतिश्रुतम् ॥४०
भगवन्साम्प्रतंनास्तिदास्येकाफमेणते ।
प्रसादंकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच ॥४१
किप्रमाणोमया कालः प्रतीक्ष्यस्तेजनाधिप ।
शीघ्रम चक्ष्वशापाग्निरन्यथात्वांप्रयक्ष्यति ॥४२

तभी विश्वामित्र ने उनका मार्ग रोका और कहने लगे हे राजन् राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दिए बिना कहाँ जा रहे हो।३६। हरीश्चन्द्र ने कहा-हे भगवान मैंने आपको अपना सम्पूर्ण राज्य निष्कंटक रूप से दे दिया है, अब तीन प्राणियों के शरीर के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है।३७। विश्वामित्र बोले—यदि इन तीनों शरीर के अतिरिक्त कुछ और नहीं है तो भी यज्ञ की दक्षिणा तो देनी ही होगी क्योंकि ब्राह्मण से कही वस्तु न देने से सब कुछ नष्ट हो जाता हैं।३२। हे नरेश राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण जिस वस्तु से सन्तुष्ट हो वही उसकी यज्ञ दक्षिणा है।३९। तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि अङ्गीकृत दान आततायी से युद्ध और आर्त्त पुरुष की रक्षा करनी चाहिए।४०। हरिश्चन्द्र बोले—

हे ब्रह्मर्षे ! आप साधुत्व का अवलम्बन करके प्रसन्न हों इस समय मेरे पास कुछ नहीं हैं, काल क्रम से आपको दूँगा ।४१। विश्वामित्र ने कहा—हे राजन् ! मैं कब तक प्रतीक्षा करूँ ? मुझे शीघ्र बताओ नहीं तो शापानल में भस्म हो जाओगे ।४२।

मासेनतवविप्रर्षे प्रदास्येदक्षिणाधनम् ।
साम्प्रतंनान्तिमेक्तिमनुज्ञांदातुमर्हसि ॥४३
गच्छगच्छनृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ।
शिवश्चतेऽध्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिनः ॥४४
अनुज्ञातः सगच्छेतिजगामवसुवाधिपः ।
पद्भयामनुचितागन्तुमन्वगच्छततं प्रिया ॥४५
तसभार्यं नृपश्रेष्ठं निर्यान्तंससुतंतुरात् ।
दृष्ट्वाप्रचुक्रुशुः पौरराज्ञश्चैवानुयायिनः ॥४६
हानाथकिजहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ।
त्वंधर्मतत्पराजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ॥४७
नया डस्मानपि राजर्ष यदिधर्ममवेक्षसे ।
मुहूर्त तिष्ठराजेन्द्रह्मवतोमुखपङ्कजम् ॥४८
पिवामोनेत्राभ्रमरैः कदाद्रक्ष्यामहेपुनः ।
यस्यप्रयातस्यपुरोयान्तिपृष्ठे च पार्थिवाः ॥४९
तस्यानुयातिभार्येयंग्रहीत्वाबालकसुतम् ।
यस्यभत्याः प्रयातस्ययान्त्यग्रकुञ्जरस्थिताः ॥५०
सएषद्भयारोजेन्द्रोहरिश्चन्द्रोद्यगच्छतिः ।
हाराजन्सुकुमारं तेसुभ्रसुत्वचमुन्नसम् ॥५१

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे पास कुछ भी नहीं है, एक मासमें आपकी दक्षिणा उपस्थित कर दूँगा, इसलिए आज्ञा दीजिए।४३ विश्वामित्र ने कहा-हे भूपश्रेष्ठ! जाओ, अपने धर्मके पालनार्थ गमनकरो तुम्हारे विघ्न दूर हो और तुम्हारा कल्याण हो ।४४। पक्षियों ने कहा-हे मुनिश्रेष्ठ जैमिने ! फिर वह राजर्षि हरिश्चन्द्र मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र द्वारा जानेका अनुमोदन प्राप्तकर चल दिए, रानी शैव्याभी उनके पीछे-२

चली ।४५। इधर नगर में रहने वाले प्रजाजन पुत्रादि के सहित राजा को जाता देखकर ऊँचे स्वर से रोते हुए उनके पीछे चलने लगे ।४६। हे महाराज ! यदि आप धर्म में रहने वाले और अनुग्रह पूर्वक प्रजा के पालन में तत्पर रहने वाले हैं तो अपनी प्रजा का किस लिए त्यागकर रहे हैं ? ।४७। हे राजर्षि ! यदि आप धर्म की ओर देखें तो हमको भी साथ ले चलें, हे राजेन्द्र ! कुछ समय के लिए तो ठहरिए हम एक बार आपके मुखारविन्द को । ८। भौंरों के समान पान कर सकें फिर कब आपका दर्शन हो सकेगा ? जिनके चलते समय भूमण्डल के सभी नरेश आगे पीछे गमन करते थे ।४९। उन्हीं राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी आज अपने बालक को लिए उनका अनुगमन कर रही है जिनके चलते समय सभी भृत्य हाथियों के मस्तक पर चढ़कर आगे आगे दौड़ते थे । आज वे राजेन्द्र स्वयं पदयात्रा कर रहे हैं ।५०-५१।

पथिपांसुपरिक्लिष्टं मुखकीदृग्भविष्यति ।
तिष्ठतिष्ठनृपश्रे ष्ठस्वधर्ममनुपालय ॥५२
अ नृशंस्यं परोधर्मः क्षत्रियाणांविशेषतः ।
किदारैः- किंसुतैनाथिध नैर्धन्यैरथापिवा ॥५३
सर्वमेतत्परित्यज्यच्छायाभूतावयतव ।
हानाथहामहाराजषास्वामिन्किजहासिनः ॥५४
यत्रत्वतत्रहिवयं तत्सुखंयत्रवभवान् ।
नगरंतद्वान्यत्रसस्वर्गीयत्रनोनृपः ॥५५
इतिपौरवचःश्रुत्वाराजाशोकपरिप्लुतः ।
अतिष्ठत्सतदामार्गेतेषामेवानुकम्पया ॥५६

आपका यह शोभायमान मुख मण्डल मार्ग में धूल धूसरित हो जायगा, उस समय कितनी ही शोचनीय अवस्था ? इसलिए आप मत जाइए यहीं अपना धर्म पालन कीजिए ।५२। क्षत्रियों का मुख्यधर्म हमको पुत्र धन अथवा भृत्यादि किसी वस्तु की भी आवश्यकता नहींहै ।५६। हम भी सर्वस्व त्याग कर आपके साथ छाया के समान रहेंगे, इसलिए हे प्रभो आप हमारा त्याग न कीजिए ।५४। जहाँ आप जायेंगे, वहीं हम जायेंगे, जहाँ आपको सुख है हमको भी होगा जहाँ

आप रहेंगे, वही हमारा नगर है, जहाँ राजा निवास हो वही स्वर्ग है ।५५। प्रजा के इस प्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शोक मग्न हो गए और उनकी दशा को देखकर कुछ समय मार्ग में खड़े रहे ।५६।

विश्वामित्रोऽपितंदृष्ट वापौरवाक्याकुलीकृतम् ।
रोषामर्षविवृताक्षः समागम्यवचोऽब्रवीत् ।।५७
धिक्त्वांदुष्टसमाचारमनृतजिह्मभाषितम् ।
ममराज्यंचदत्थावः प्राक्रष्टुमिच्छसि ।।५८
इत्युक्तः परुषंतेनगच्छामीतिसवेपथुः ।
ब्रुवन्नेवययौशीघ्रमाकर्षन्दयितांकरे ।।५९
कर्षतस्तांततो भार्यासुकुमारींश्रमातुराम् ।
महसादण्डकाष्ठेनताड़यामासकौशिकः ।।६०
तांतथाताडितांदृष्टावाहरिश्चन्द्रोमहीपतिः ।
गच्छामीत्याहदुःखार्ता नान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ।।६१
अथविश्वेतदादेवाः पंचबाहुः कृपालवः ।
विश्वामित्रः सुपात्रोऽयं लोकान्कान्समवाप्स्यति ।।६२
ये वयंयज्यवनाँश्चे ष्ठः स्वराज्यादवरोपित
कस्यवाश्रृद्धयापूतंसुतंसोमंमहाध्वरे ।
पीत्वावयंप्रयास्यामोमुदं मन्त्रपुरः सरम् ।।६३

तभी प्रजा के वचनों से राजा को आकुल हुआ देखकर विश्वामित्र आ पहुँचे और रोष पूर्वक घूरते हुए कहने लगे ५७। अरे ! मिथ्या-वादिन ! इस सम्पूर्ण राजस्व को अब मुझ से लेना चाहता है, तुझे धिक्कार है ।५८। इस प्रकार विश्वामित्र के वचन सुनकर 'जाता हूँ' । कहते हुए राजा हरिश्चन्द्र कम्पित गात से चलने को उद्यत हुए और उन्होंने शैव्या का हाथ खींचा ।५९। कोमलांगी शैव्या अत्यन्त थक गई थी, राजा उसे चलने को खींच रहे थे फिर भी विश्वामित्र अपने डंडा से रानी की पीठ में आघात करने लगे ।६०।पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र शैव्या को इस प्रकार ताड़ित हुआ देखकर अत्यन्त दुःखी हुए फिर भी इतना ही बोले कि 'भगवान् मैं जा रहा हूँ' ।६१। यह देखकर पाँच जल लोक-

पाल, विश्वादेवा देवताओं ने दया पूर्वक कहा—इस पापात्मा विश्वामित्र ने श्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र को राज्य से भ्रष्ट कर दिया, इसकी कौन सी गति होगी ? अब हम किसके यज्ञ में सोम पान करके आनन्द को प्राप्त होंगे ? ।६२-६३।

इतितेषांवचः श्रुत्वाकौशिकोऽतिरुषान्वितः ।
शशापतान्मनुष्यत्वसर्वे यूयमवाप्स्यथ ॥६४
प्रसादितंचतैः प्राहपुनरेदमहामुनिः ।
मानुषत्वेऽपि भर्ता भवित्रीनैवसन्ततिः ॥६५
नदारसंग्रहश्चैवभवितानचमत्सरः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथसुराः पुन ॥६६
ततोऽवतेरुरांशैः स्वैर्देवास्तेकुरुवेश्मनिविराम ।
द्रोपदीगर्भसंशभूता पंचवैपाण्डुनन्दनाः ॥६७
एतस्मात्कारणात्पचपाण्डवेयामहारथाः ।
नदारसग्रहद्राप्ताः शापात्तस्यमहामुनेः ॥६८
एतत्ते सर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् ।
प्रश्नंचतुष्टयंगीतकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९

पक्षियों ने कहा—कि उन पाँचों विश्वेदेवों के वचन से रुष्ट होकर विश्वामित्र ने शाप दिया कि अरे पापात्माओं ! तुम सब मनुष्य योनि ग्रहण करोगे ।६४। इस पर विश्वेदेवों के प्रार्थना करने पर विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम यद्यपि मनुष्य तो होगे परन्तु स्त्री सम्पर्क और सन्तानोत्पत्ति से दूर रहोगे ।६५। तुम मात्सर्य से बचे रहोगे और काम क्रोधादि से परे रहोगे ।६६। फिर वही विश्वदेवा द्रोपदी के गर्भ से पाण्डवों की सन्तान रूप में उत्पन्न हुए ।६७। हे महामुने ! विश्वामित्र के शापवश ही उन पाँचों महारथी द्रोपदी-पुत्रों का विवाह नहीं हुआ ।३८। पांडवों की कथा के आश्रय से तुम्हारे चारों प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका अब और क्या सुनना चाहते हो सो कहिए ।६९।

॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे द्रोपदेत्योत्पत्ति कथन ॥

८—राजा की हरिश्चन्द्र की कथा

भवद्भिरिदमाख्यातंयथाप्रश्नमनुक्रमात् ।
महत्कौतूहलमऽस्तिहरिश्चन्द्रकथांप्रति ॥१
अपोमहात्मनातेनप्राप्तंकृच्चनुत्तमम् ।
कच्चित्सुखमनुप्राप्तताहगेवद्विजोत्तमाः ॥२
विश्वामित्रवचःश्रुत्वासराजाप्रययौशनैः ।
शैव्ययानुगतोदुःखोभार्ययाबलपुत्रया ॥३
सगत्वावसुधापालोभिव्यांवाराणसींपुरीम् ।
नैषाननुष्यभोग्येतिशशूपाणे परिग्रहः ॥४
जगामपद्भचादुःखार्त्त सहपत्न्याऽनुकूलया ।
पुरीप्रविशद्दशेविश्वामित्रमुपस्थितम् ॥५
तद्दष्टववासमनुप्राप्त विनयावनतोऽभवत् ।
प्राहचैवाञ्जलिंकृत्बाहरिश्चन्द्रोमहामुनिम् ॥६
इमेप्राणाः सुतश्चयमियंपत्नीमुनेमम् ।
येनतेकृत्यमस्त्याशुतदग्रहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥७
यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥८

जैमिनी बोले-हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे प्रश्नों का आपने क्रमानुसार समाधान कर दिया । अब मुझे हरिश्चन्द्र की कथा में अत्यन्त कुतूहल है।१। उन महात्मा ने कितना कष्ट पाया ? क्या वैसे ही सुख की प्राप्ति भी हुई ? ।२। पक्षियों ने कहा—विश्वामित्र के वचन सुनकर राजा दुःखी हृदय से धीरे-धीरे चल पड़े तथा वालक पुत्र लिए हुए उनकी रानी भी साथ हो चली ।३। वह वहाँ से चलकर वाराणसी पहुँचे, क्योंकि शूलपाणि शङ्कर द्वारा निर्मित वह नगर मनुष्यों के लिए नहीं है।४। दुःखित चित्तसे चिन्ता करते हुए राजा पत्नीके सहित पैदल ही वाराणसीमें गये और उन्होंने वहाँ सामने ही मुनिवर विश्वामित्रको खड़े देखा ।५। राजा हरिश्चन्द्र ने उन महामुनिको वहाँ आया देखकर हाथ जोड़े औरविनय पूर्वक कहा ।६। हे प्रभो ! अब तो मेरा प्राण पत्नी और पुत्र यही शेष

हैं। इसमें से जिसे स्वीकार करना चाहे वही आपको अर्घ्य स्वरूप दिया जाय ।७। इसके अतिरिक्त आप जैसी आज्ञाकरें वैसे ही मैं करूं ।८।

पूर्णः समासोराजर्षे दीयतांममदक्षिणा।
राजसूयनिमित्तं हिस्मर्यंतेस्वबचोयादि ॥९
ब्रह्मन्नद्यै वसंपूर्णो मासोऽम्लानतपोधन।
शापं तवप्रद स्यामिनचेदद्यप्रदास्यति ॥११
इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोराजाचाऽर्चितयत्तदा।
कथयमस्मैप्रदास्यामिदक्षिणायाप्रतिश्रुया ॥१२
कुतः पुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थः सांप्रतंममः।
प्रतिग्रहः प्रदुष्टोमेनाहंयायामघः कथम् ॥१३
किमुप्राणान्विमुञ्चामिकांदिशंयाम्यंकिञ्चनः।
यदिनाशंगमिष्यामिअप्रदायप्रतिश्रुतम् ॥१४
ब्रह्मस्वहृन्कृमिः पापोभविष्याम्यधमाधमः।
अथवाप्रेष्यतांयास्येवरमेवात्मविक्रयः ॥१५

इस पर विश्वामित्र ने कहा—आपने राजसूय यज्ञ के उपलक्ष में जो दक्षिणा एक वर्ष बाद देने को कहा था उसका समय पूरा हो चुका अब उसे तत्काल दो ।९। हरिश्चन्द्र ने निवेदन किया हे ब्रह्मन् ! एक मास आज शाम तक परा होगा अभी आधा दिन शेष हैं। आप उतनी देर और प्रतीक्षा कीजिए उसी समय मैं चुका दूँगा ।१०। विश्वामित्रजी बोले-हे राजा यही हो महाराज ! मैं सन्ध्यां के समय आऊँगा यदि उस समय दक्षिणा नहीं दोगे तो तुम्हें शापग्रस्त होना पड़ेगा ।११। पक्षियों ने कहा कि इस प्रकार कहकर विश्वामित्र तो चले गए और राजा यह चिन्ता करने लगे कि इनको वह दक्षिणा किस प्रकार दी जा सकती है। इस समय न तो मेरा कोई अर्थ सम्पन्न वन्धु है और न सम्पदा में से कुछ शेष रहा है। ऐसी दशा में क्या मुझे दान न चुकाने के लिए पतित होना पड़ेगा ।१२-१३। अव तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहा। मैं कहाँ जाऊँ। अगर अङ्गीकार की हुई वस्तु को दिए बिना मैं

प्राण भी त्याग दूँ तो वह भी एक पापकर्म होगा और ब्रह्म अंश को हर करने के पाप से या तो मैं कृमि योनि में जाऊँगा अथवा आत्मा को बेचकर सन्यासी होना पड़ेगा ।५।

राजानंव्याकुलदीनं चिन्तयानमधोमुखम् ।
प्रत्युवाचतदापत्नीवाष्पद्गदयांगिरा ॥१६
त्यजचिन्तांमहाराजस्वसत्यमनुपालय ।
श्मशानवद्वर्जनायोनरः सत्यवहिष्कृतः ॥१७
नातः परतरं धर्मं वदन्तिपुरुषस्यतु ।
यादृमंपुरुषव्याघ्र ! स्वसत्यपरिपालनम् ॥१८
अग्निहोत्रमधीतवादानाद्यश्चाखिलाः क्रियाः ।
भजन्तेतस्यवैफल्यवस्यवाक्यमकारणम् ॥१९
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रे सुधीमताम् ।
तारणायानृततद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥२०
सप्ताश्वमेधानाहृत्यरासूयंचपार्थिवः ।
कृतिर्नामच्युतः स्वर्गादसत्यवचनात्सकृत् ॥२१
राञ्जातमपत्यं मेइत्युक्त्वाप्ररुरोदह ।
वाष्पाम्बुप्लुतनेत्रान्तामुवाचेदं महीपतिः ॥२२

पक्षियों ने कहा हे मुने! इस प्रकार राजाको नीचा मुख किये घोर चिन्ता में देखकर रानी शैव्या ने आँसू बहाते गद्‌गद कण्ठ से कहा—हे महाराज ! चिन्ता मत कीजिए और जो वचन दिया है उसका पालन कीजिए । क्योंकि असत्य व्यवहार करने वाला व्यक्ति श्मशान के समान त्याज्य है ।१६-१७। वचन के असत्य होने पर अग्निहोत्र, फल वेद-पठन और दान आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं, हे महावीर ! विद्वानों का कथन है कि सत्य-पालन का जितना महान् धर्म होता हैं । वैसा किसी अन्य प्रकार नहीं होता है ।१८। धर्म-शास्त्रों का यही मत है कि सत्य वचन मनुष्य को तारने वाला और असत्य नीचे गिराने वाला है ।१९-२०। हे पृथिवी नाथ ! आपने सात अश्वमेध करके राजसूय यज्ञ किया है इस समय पर क्यों एक छोटी-सी बात के लिए उस सब को नष्ट करने पर स्वर्ग से वंचित होंगे ।२१। हे महाराज ! मेरे सन्तान हो

चुकी हैं इतना कहकर वह रोने लगी । तब राजा अश्रु वर्षा करती हुई रानी से कहने लगे ।२२।

विमुञ्चभद्रे संतापमयतिष्ठति बालक ।
उच्यतांवक्तुकामासिद्वात्वंगजगामिनि ॥२३
राजञ्जातमपत्यमेसतांपुत्रफलाः स्त्रियः ।
समांप्रदायवितेनदेहिविप्रस्यदक्षिणाम् ॥२४
एतद्वाक्यमुपश्रुत्ययौमोहं महीपतिः ।
प्रतिलभ्यचसंज्ञासविललापातिदुःखितः ॥२५
महद्दुःखमिदंभद्रे त्वमेवंब्रवीषिमाम् ।
किंतवस्मितसल्लापावमपापस्यविस्मृताः ॥२६
हाहा कथंत्वयाशक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते ।
दुर्वाच्यमेतद्वचनकत्तुशक्तयोम्यहंकथम् ॥२७
इत्युक्त्वासनरश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृदब्रुवन् ।
निपपातमहीपृष्ठेमूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥२८

राजा हरिश्चन्द्र ने रानी से कहा-शोक को त्यागकर जो कहने की इच्छाहो कहो । तुम्हारी सन्तान तो यह मौजूदही है ।२३। रानी बोली हे महाराज ! मेरे सन्तान हो गई है इसी उद्‌देश्य से साधु पुरुषों को पत्नी की आवश्यकता होती है । इससे अब आप मुझे बेचकर ऋषिकी दक्षिणा चुकादें ।२४। पक्षियों ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या का ऐसा वचन सुनकर शोकसे मूर्छित से हो गए । फिर चैतन्य होकर दुःख प्रकट करते हुए कहने लगे हे प्रिये ! जो कुछ कहा वह अत्यन्त कष्टदायक है वह पापी हरिश्चन्द्र क्या स्थितपूर्वक भाषण करना भूल, गया ।२५-२६। नहीं तो तुम्हारे मुख से ऐसी अशुभ बात क्यों निकलती और मैं ऐसे वचन सुनकर किस प्रकार सहन करता ।२७। राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार अपने को धिक्कारते हुए पृथ्वी पर गिर कर बेसुधहो गये ।२८।

शयानं भुवितं दृष्ट्वाहरिश्चन्द्रं महीपतिम् ।
उवाचेदसकरुणंराजपत्नीसुदुःखिता ॥२९

हामहाराज ! कस्येदमपध्यानमुपस्थितम् ।
यत्वनिपतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचित: ॥३०
येनकोटयग्रागोवित्तंविप्राणामपवर्जितम् ।
सएषपृथिवीनाथोभूमौस्वपितिमेपति: ॥३१
हाकष्टंकितवानेनकृतंदेव ! महीक्षिता ।
यदिंद्रोपेन्द्रतुल्योऽयनीत: प्रास्वापनींदशाम् ॥३२
भर्तृ दु:खमहाभारेणासह्ये ननिपीडिता ॥३३
तौतथापतितौभूमावनाथौपितरौशिशु: ।
दृष्ट्वात्यतक्षुधाविष्ट: प्राहवाक्यंसुदु:खित: ॥३४
ताततातस्वान्नमम्बाम्भोजनंदद ।
क्षुन्मेबलवतीजाताजिह्वाग्रं शुष्यतेतथा ॥३५

महाराज हरिश्चन्द्र को इस प्रकार पृथ्वी पर लेटते देखकर महा रानी शैव्या अत्यन्त दु:खी हुई और करुण स्वर से कहने लगी कि आज कैसे कष्ट का दृश्य देख रही हूँ कि जो महाराज मृग चर्म की कोमल शैय्या पर शयन करते थे वे आज इस प्रकार कठोर भूमि पर पड़े हैं ।२९-३०। जिन्होंने करोड़ों गौऐं ब्राह्मणों को दान दी यही पृथ्वी नाथ हरिश्चन्द्र भूमि पर पड़े हैं ।३१। हा देव ! इन्होंने कौनासा ऐसा भयानक अपराध किया है, जिसमें एक उपेन्द्र की समता वाले पुरुष की सी दुर्दशा हो रही है ।३२। इस प्रकार महरानी शैव्या शोक संतप्त होती हुई अचेत होकर मूर्च्छित हो गई । जब राज पुत्र ने माता और पिताको इस प्रकार बेसुध पड़े और उसे भूख भी लगी तो रोकर कहने लगा । हे तात ! हे माता ! मुझको बड़ी भूख लगी है, भोजन दो । मेरी जीभ सूख रही है ।३३-४५।

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपा: ।
दृष्ट्वातुतंहरिश्चन्द्रंपतितोभुविमूर्च्छितम् ॥३६
सवारिणासमभ्युक्ष्यराजानमिदमब्रवीत् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेन्द्रातांदमस्वेष्टदक्षिणाम् ॥३७
ऋ णधारयतोदु:खमहन्यहनिवर्द्धते ।

अप्याय्यमानः सतदाहिमतीर्थनवारिणा ॥३८
अवाप्यचेतनाँराजाविश्वामित्रवेक्ष्य च ।
पुनर्मोहंसमापेदेसचक्रोधययौमुनि ॥३९
ससमाश्वास्यराजानं वाक्यगहद्विजोत्तमः ।
दीयतांदक्षिणासामेयदिलर्ममवेक्षसे ॥४०
सत्यचोक्तंपरोधर्मः स्वर्गः सत्येतप्रतिष्ठितः ॥४१
अश्वमेधसहस्रं च सायंतुलयाधृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमेवविशिष्यते ॥४२

पक्षियों ने कहा कि उसी समय महात्मा विश्वामित्र अत्यन्त क्रोध प्रकट करते हुए वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने जब राजाको मूर्च्छित अवस्था में पृथ्वी पर पड़े देखा तो जल के छींटे देकर उसे चैतन्य किया और कहा—राजन् ! उठकर मेरी दक्षिणा दो, क्योंकि जब कि तुम पर यह ऋण बना रहेगा तब तक दुःख इसी प्रकार बढ़ता रहेगा । शीतल जल के स्पर्श से राजा हरिश्चन्द्र चैतन्य हुए, पर सामने ही विश्वामित्र को खड़ा देखकर फिर मूर्च्छित हो गए तब विश्वामित्रजी ने कहा—हे राजा यदि तुम धर्म की रक्षा करना चाहते हो तो मेरी दक्षिणा देनेमें विलम्ब न करो ।३६-४०। सूर्य सत्य के बल ही से ही तपते हैं पृथ्वी सत्य की महिमा से ही टिकी है सत्य ही सबसे बड़ा धर्म है और स्वर्ग भी एक मात्र सत्य के ऊपर ही स्थित है ।४१। अगर एक तराजू के पलड़े पर सत्य को रखा जाय और दूसरे पर हजार अश्वमेघ यज्ञोंके फल को तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा ।४२।

अथवार्किममैतेनसाम्नाप्रोक्तेनकारणम् ।
अनार्ये पापसंकल्पेक्रूरेचानृतवादिनि ॥४३
त्वयिराज्ञिप्रभवतिसद्भावः श्रूयतामयम् ।
अद्यमेदक्षिणाँराजन्नदास्यतिभवान्यदि ॥४४
अस्ताचलंप्रयातेऽर्केशप्स्यामित्वांततीध्रुवम् ।
इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुरः ॥४५
कदिग्भूतोधमोनिस्वोनशसधनिनादितः ।

भार्येपास्यभूयः प्राहेदंक्रियतांवचनंमम ॥४६
माशापानलनिर्दग्धः पञ्चत्वमुपयास्यसि ।
सतथाचोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुनः पुनः ॥४७
प्राहभद्रे करोषयेविक्रयंतवनिर्घृणिः ।
नृशंसैरपियतकर्तनशक्यंतत्करोम्यहम् ॥४८
यदिमेशक्यतेवाणीवक्तुमीदृक्सुदुर्वचः ।
एवमुक्त्वाततोभार्यागत्वानगरमातुरः ।
बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततोवचनमब्रवीत् ॥४९

पर जाने दो मुझे अनार्य, पापी, क्रूर, मिथ्यावादी राजा को समझाने बुझाने की आवश्यकता ही क्या है ।४३। मैं स्पष्ट रूप से कहे देता हूँ कि यदि तुम आज मेरी दक्षिणा नहीं दोगे,तो सूर्य के अस्ताचल गामी होते ही मैं निश्चय रूप से शाप दे दूँगा ? विश्वामित्र ऐसा कह वहाँ से चले गये और राजा ब्रह्म शापकी आशंका से अत्यन्त घबराने लगे कि अब दक्षिणा कहाँ से और कैसे चुकाऊँ। मैं तो इससमय पूर्णतः निर्धन हूँ और धन वाले बड़े कठोर हैं । अब किस प्रकार करने से ठीक होगा ? हम कहाँ जायें ? यह देखकर रानी शैव्या ने कहाकि महाराज मैंने आपसे कहा हैं वह कीजिये ।४४-४६। जब यह उपाय मौजूद हैं तो ऋषि के शाप में ग्रस्त होकर नाश को प्राप्त होने की क्या आवश्यकता है । इस प्रकार पत्नि के बार-बार आग्रह करने पर हरिशचन्द्र ने कहा अच्छा मैं इस घृणित कार्य को भी करूँगा, यद्यपि यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है तो भी यही करूँगा ।४७-४८। देखता हूँ कि मैं ऐसे कठोर वचन कह भी सकता हूँ या नहीं ? तब नगर में गये और आँसुओं को जबर्दस्ती रोक कर कहने लगे ।४९।

भोभोनागरिकाः सर्वेश्रृणु ध्वंवचनंमम ।
किमांपृच्छथकस्त्मभोनृशसोऽहममानुषः ॥५०
राक्षसोवऽतिकठिनस्ततः पापतरोऽपिबा ।
विक्रेतुं दयितांप्राप्तोयोनप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥५१
यदिवः कस्यचित्कार्यदास्याप्राणेष्टयामम ।
सब्रीवीतुत्वरायुक्तोयावत्सन्धारयाम्यहम् ॥५२

अथवृद्धोद्विजः कश्चिदागत्याहनराधिपम् ।
समर्पयस्वमेदासीमहक्रेताधनप्रदः ।।५३
अस्तिमेवित्तमस्तोकंसुकुमारीचमेप्रिया ।
गहकर्मंनशक्नोतिकर्त्तु मस्मात्प्रयच्छमे ।।५४
कर्मण्यतावयोरूपशीलातवयोषितः ।
अनुरूपामिदंवित्तं गृहाणार्पयमेऽवलाम् ।।५५
एवमुक्तस्यविप्रेणहरिश्चन्द्रस्यभूपतेः ।
व्यदीर्य्यतमनोदुःखान्नचैनर्किचिदब्रवीत् ।।५६

राजा कहने लगे—यदि आप जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ, तो मैं बतलाऊँगा कि एक नृशंस अत्याचारी हूँ, मनुष्य नहीं हूँ, मैं राक्षस हूँ या उससेभी अधिक निर्दयी हूँ,पापात्मा हूँ । क्योंकि प्राणप्यारी पत्नी को बेचने के लिए तैयार होने पर भी मेरा प्राण नहीं निकला ।५०-५१ अस्तु जब तक संध्या न हो, और मेरा प्राण देह के भीतर रहे तब तक इस मेरी प्राणों से प्यारी दासी को यदि खरीदना चाहो तो कहो ।५२। पक्षी बोले—उसी अवसर पर एक बूढ़े ब्राह्मण ने वहां आकर कहा—मुझे दासी की आवश्यकता है मैं उसका मूल्य देने को तैयार हूँ । मेरे पास पर्याप्त धन-सम्पत्ति है और मेरी स्त्री बडी कोमल है जिससे घर का काम नहीं कर सकतीं अतएव यह दासी मुझे दे दो ।५३-५४। तुम इस अपनी स्त्री की कार्य दक्षता, अवस्था, रूप और स्वभाव के अनुरूम यह अर्थ राशि लेकर इसे मुझे दो ।५५। ब्राह्मण के वचनों को सुनकर शोक से राजा का हृदय फटने लगा और उससे कुछ उत्तर नहीं दिया जा सका ।५६।

ततः सविप्रोनृपतेर्वल्कलान्तेदृढधनम् ।
बद्धाकेशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत् ।।५७
रुरोदरोहितास्वोऽपिदृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ।
हस्तेनवस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरः शिशुः ।।५८
मुंचार्यमुञ्चतावन्मांयावत्पश्याम्यहंशिशुम् ।
दुर्लभंदर्शनंतातपनरस्यभविष्यति ।।५९

पश्यैहिवत्समामेवमातरदास्यतांगताम् ।
माँमास्प्रक्षीराजपुत्रअस्पृश्याहंतवाऽधुना ॥६०
ततः सवालः सहसाद्दृष्ट्वाकृष्टांन्तुमातरम् ।
समभ्यथावदम्बेतिरुदन्सास्राविलेक्षणः ॥६१
तमागतद्विजः क्रीताबालमभ्याहनत्पदा ।
वदस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामुंचतमातरम् ॥६२
प्रसादकुरुमेनाथक्रीणीष्वेमंचबालकम् ।
क्रीतापिमहं भवतोविनैनकार्य्यंसाधिका ॥६३
इत्थममाल्पभाग्यायाः प्रसादसुमुखोभव ।
मांसंयोजयबालेनवत्सेनेवपयस्विनीम् ॥६४

तब उस ब्राह्मण ने दासी के मूल्य स्वरूप वह धनराशि राजा के वस्त्र से वांध दी रानी को वह पकड़कर ले जाने लगा ।५७। यह देख कर उसका पुत्र रोहिताश्व उसका आंचल खींचता रोने लगा ।५८। रानी ने ब्राह्मण से कहा-हे आर्य ! मुझे जरा देर के लिए अपने पुत्र को प्यार कर लेने दो, फिर मैं इसे कहां देख सकूंगी ? हे पुत्र ! अब मैं तुम्हारी माता दासी हुई, इससे अब मुझे मत छूना, मैं अब इस योग्य नहीं रही ।५९-६०। इसके पश्चात बालक माता को खिचती हुई जाती देखकर रोते-रोते 'माँ-माँ कहता हुआ उसके पीछे दौड़ा ।६१। वृद्ध ब्राह्मण ने गुस्सा होकर उसे जोर से एक लात मारी पर वह बालक माँ-माँ कहकर दौड़ता ही रहा और उसने किसी प्रकार माता को न छोड़ा ।६२। रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे स्वामी! कृपा करके इस बालक को भी खरीद लीजिये, क्योंकि यद्यपि मैं बिक चुकी, पर इस बालक के विना मुझसे काम नहीं किया जायगा । इसलिए आप मुझ अभागिनी पर दया कीजिये कि जिस प्रकार दूध देने वाली गाय को बछड़े के सङ्ग ही लाया जाता है उसी प्रकार इस बालक को भी मेरे साथ ही रहने दीजिए ।६३-६४।

गृह्यतावित्तमेतत्त दीयतांबालकोमम् ।
स्त्रीपुंसोर्धमशास्त्रज्ञैः कृतमेवहिवेतनम् ।
शतसहस्रं लक्षंचकोटिमूल्यतथापरैः ॥६५
तथैवतस्यतद्वित्तबद्धोत्तरपटेततः ।

प्रगृह्यबालकंमात्रासहैकस्थमवन्धयत् ॥६६
नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्य्यापुत्रौसपार्थिवः ।
विललापसुदुःखार्त्तोनिः स्वस्थोष्णंपुनः पुनः ॥६७
मांनवायुनंचादित्योनेन्दुर्नंचपृथग्जनः ।
दृष्टवंतः पुरापत्नीसेयंदासीत्वमागता ॥६८
सूर्यवंशप्रसूतोऽयसुकुमारकरांगुलिः ।
संप्राप्तोविक्रयंबालोधिङ्मामस्तुसुदुर्मतिम् ॥६९
हाप्रिये हाशिशो वत्स ममनार्यस्यदुर्नयैः ।
दैवाधीनांदशांप्राप्तोनमृतोऽस्मितथापिधिक् ॥७०

ब्राह्मण ने कहा अच्छा, बालक को भी मुझे दो और उसके बदले में यह धन ग्रहण करो । धर्म शास्त्रों में स्त्री पुरुष दोनों का ही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष व करोड़ मुद्रा बतलाया हैं ।६५। पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! यह कह कर उस ब्राह्मण ने वह धन भी राजा के वस्त्रों में बाँध दिया और रानी तथा उसके पुत्र दोनों को बाँध कर ले गया।६६। राजा हरिश्चन्द्र पत्नी और पुत्र को इस प्रकार विक्रय होता हुआ देख कर लम्बी साँस लेकर अत्यन्त शोक करने लगे कि जिसको वायु, सूर्य चन्द्र व बाहरी व्यक्ति भी अभी तक नहीं देख पाते थे उसको आज इस प्रकार दासी बनना पड़ा ।६७-६८। जिस छोटे बालक ने सूर्य वंश में जन्म लिया और जो अभी अत्यन्त कोमल है उसको भी बिकना पड़ा यह मेरी दुर्बुद्धि है जिसके लिए मैं निन्दा का पात्रहूँ ।६९। मेरे अन्याय युक्त आचरण के कारण ही इन निर्दोषों की ऐसी गति हुई, पर खेद है अब भी मेरे प्राण नहीं निकलते ।७०।

एवविलपतोराज्ञः सविप्रोऽन्तरधीयत ।
वक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादायत्वरान्वितः ॥७१
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तोनृपवित्तमयाचतमयाचत ।
तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम् ॥७२
तद्वित्तंस्तोकमालोक्यदारविकयसंभवम् ।
शोकाभिभूतंराजानंकुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥७३
क्षत्रबंधोसमेमांत्वंसदृशींयज्ञदक्षिणाम् ।

मन्यसेयदितत्क्षिप्रं पश्यत्वंमेबलपरम् ॥७४
तपसोऽत्रसुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्य च ।
सत्प्रभावस्यचोग्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्य च ॥७५
अन्याँदास्यामिभगवन्काल: कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।
साम्प्रतंनास्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चबालक: ॥७६
चतुर्भाग: स्थितोयोऽयंदिवसस्यनराधिप ।
एषएवंप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यनोत्तरं त्वया ॥७७

पक्षियों ने फिर कहा—राजा हरिश्चन्द्र तो इसप्रकार विलाप करते रहे और उधर वह ब्राह्मण रानी और कुमार को लेकर वृक्षों और महलों की ओट में चला गया ।७१। उससमय विश्वामित्र मुनिने आकर राजा से दक्षिणा का धन देने को कहा तो जितनी मुद्रायें उसके पास थीं वे उन्होंने अर्पित कर दीं । विश्वामित्र उतने धन को बहुत थोड़ा देखकर बड़े क्रोध से कहने लगे कि हे नीच ! क्या मेरे यज्ञ करने की उपयुक्त दक्षिणा यही हैं ? यदि तू ऐसा विचारता है तो मैं तुझे अपनी तपस्या की शक्ति दिखलाता हूँ । तुझे मालूम जायेगा कि मेरे ब्रह्मतेज और अध्ययन का कितना प्रभाव है ।७२-७५। राजा ने विनय पूर्वक कहा—महर्षि ! दक्षिणा के लिए मैंने पत्नी और पुत्रको भी बेच दिया और उससे जो धन मिला वह यही है । अब आप थोड़ी देर ठहरे तो मैं शेष दक्षिणा भी देने की व्यवस्था करता हूँ । विश्वामित्र ने कहा कि अब दिन का केवल चौथा भाग शेष है, इतनी देर मैं प्रतीक्षा करूँगा । इसके पश्चात मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनूँगा ।७६-७७।

तमेवमुक्त्वाराजेन्द्रं निष्ठुरं निर्घृणवच: ।
तदादायधनंतूर्णकुपित: कौशिकोययौ ॥७८
विश्वामित्रे गतेराजाभयशोकाब्धिमध्यव: ।
सर्वाकारं विनिश्चित्यप्रोवाचोच्चैरधोमुख: ॥७९
वित्तक्रीतेनयोह्यर्थीमयाप्रेष्येणमानव: ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्तपतिभास्कर: ॥८०
अथाजगामत्वरितोधर्मश्चण्डालरूपधृक ।
दुर्गन्धोविकृतोरूक्ष: श्मश्रुलोदन्तुरोघृणी ॥८१

कृष्णोलम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः ।
गृहीतपक्षिपुञ्जश्चशवमाल्यैरलंकृतः ॥८२
कपालहस्तोदीर्घास्थोभैरवोऽतिवदन्मुहुः ।
श्वगणाभिवृतोघोरोयष्टिहस्तोनिराकृतिः ॥८३
अहमर्थीत्वयाशीघ्र कथयस्वात्मवेतनम् ।
स्तोकेनबहुनावापियेनवैलभ्यतेभवान् ॥८४

पक्षियों ने कहा—विश्वामित्र मुनि राजा से ऐसे कठोर और क्रोध युक्त वचन कह कर उस धनको लेकर चले गये। तत्पश्चात राजा हरिश्चन्द्र भय और शोक से अभिभूत होकर और अन्तिम निश्चय करके उच्च स्वरसे कहने लगे कि यदि किसी को सेवक खरीदने की इच्छा हो तो यह मुझे सूर्यास्त से पहले ही क्रय करले।७८-८०। उस समय चाण्डाल के रूप में धर्म वहाँ उपस्थित हुआ। उसके शरीर से बुरीगन्ध आती थी आकृति बड़ी रूखी, डाढ़ी मूछों से युक्त थी। स्वभाव बड़ा भयंकर दांत ऊँचे और रूमैं घृणा उत्पन्न करने वाला था। काले रङ्ग का, लम्बे पेटका, पिंगल, रूप नेत्र वाला कर्कश था। उसके हाथ में कितने ही पक्षी थे, गले में मुडों की माला एक, हाथमें करकपाल और दूसरे में लाया हुआ मृग शरीर था बड़ा दुबला-पतला, बहुत से कुत्तोंको साथ लिए और ऊँट-पटांग, बकता था।८१-८३। वह धर्मराज इस प्रकार चाण्डाल के वेश में आकर राजासे कहने लगे-मैं तुमको खरीदना चाहता हूँ। तुम्हारा जो कुछ कम या अधिक मूल्य हो वह बतलाओ? ।८४।

तंतादृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिसुनिष्ठुरम् ।
वदन्तमतिदु श लंकस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥८५
चण्डालोऽहमिहख्यातः प्रवीरेतिपुरोत्तमे ।
विख्यातोवध्य धकोमृतकम्बलहारकः ॥८६
नाहं चडालदासत्वमिच्छेयसुविगर्हितम् ।
वरशापाग्निनादग्धोनचण्डालवंशगतः ॥८७
तस्यैववदतः प्राप्तोविश्व मित्रस्तपोनिधिः ।
कोपामर्षविवृत्ताक्षः प्राहचेदंनराधिपम् ॥८८

चण्डालोऽयमनल्पंतेदातुं वित्तमुपस्थितः ।
कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥८९
भगवन्सूर्यवशोत्यमात्मानंवेद्मिकौशिक ।
कथंचण्डालदासत्वंगमिष्येवित्तकामुकः ॥९०
यदिचण्डालवित्तं त्वमात्म वक्रयजंमम ।
नप्रदास्यसिकालेनशप्स्यामित्वामसंशयम् ॥९१

पक्षियों ने कहा बहुत कठोर बोलने वाले, क्रूर दृष्टि और कर्कश व्यवहार वाले उस चाण्डाल को देखकर राजा ने जिज्ञासा की कि तुम कौन हो ? ।८५। उसने उत्तर दिया मैं चांडाल हूँ और इस महानगरीमें मेरा निवास स्थान हैं । मेरा नाम प्रवीर है और पेशा वध करने योग्य पुरुषों को मारने का हैं । मैं मरे हुए पुरुषोंका कम्बल (कफन) भी लेता हूँ ।८६। राजा ने कहा—चांडाल के वहाँ दास कार्य करना तो बहुत ही बुरा है, इस कारण में इसे स्वीकार नहीं कर सकता । मेरे ऊपर तो पहले ही शाप रूपी कोप पड़ा हुआ हैं, पर यह चांडाल का दासत्व तो और भी नीचे है ।८७। पक्षियों ने कहा-राजा ने इतना कहा ही था, तभी विश्वामित्र वहाँ आगये और क्रोधपूर्वक लालनेत्र करके बोले।८८। विश्वामित्र ने कहा—राजन् यह चाँडाल तुम्हें बहुत सा धन दे रहा है, तो तुम मेरी दक्षिणा क्यों नहीं देते ? ।८९। राजा ने कहा-हे भगवन् ! मैं अपने को सूर्यवंशी मानता हूँ इसलिए धनके लोभ से चाँडाल का दासत्व कैसे स्वीकार करूँ ।९०। विश्वामित्र बोले यदि तुम अपने को इस चांडाल के हाथ बेचकर मुझे समय के भीतर धन नहीं दोगे तो मैं तुम्हें अवश्य ही शाप दूंगा ।९१।

हरिश्चन्द्रस्ततोराजाचिन्तावस्थितजीवितः ।
प्रसीदेतिवदन्पादावृषेर्जग्राहविह्वलः ॥९२
दासोस्म्यार्त्तोऽस्मिभीतोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषतः ।
कुरु सादंविप्रर्षेकष्टश्चण्डालसङ्करः ॥९३
भवेयंवित्तशेषेणसर्वकर्मकरोवशः ।
तवैवमुनिशार्दूल ! प्रेष्यश्चितानुवर्त्तकः ॥९४

यदिप्रेष्योममभवान्चण्डालायतोमया ।
दासभाव मनुप्राप्तोदत्तोवित्तार्बुदनवै ॥६५

पक्षियों ने कहा—फिर राजा हरिश्चन्द्र ने व्याकुल मनसे भगवन ! प्रसन्न हो कहते हुए विश्वामित्र के दोनों चरण पकड़ लिए ।६२। मैं आपका दास इस समय अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हूँ, मैं आपका ही भक्त हूँ, ब्रह्मर्षे ! कृपा करिए चाण्डाल का दास होना अत्यन्त ही कष्ट-दायक होगा ।६३। हे प्रभो मेरेपास धन नहीं है फिर भी मैं आपका दास होकर रहूँगा, आप जो आज्ञा देंगे वही करूँगा तथा सदा आपके चित्त के अनुसार ही कार्य करूँगा ।६४। विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! यदि तुम मेरे अधीन होते तो मैंने तुम्हें इस चाण्डाल को एक अर्बुद मुद्रा में बेच दिया है, अब तुम इसके ही दास बनो ।६५।

एकमुक्तेतदातेनश्वपकोहृष्टमानसः ।
विश्वामित्रायतद्द्रव्यंदत्त्वाबद्ध्वानरेश्वरम् ॥६८
दण्डप्रहा संभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् ।
इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन्निजपत्तनम् ॥६६
हरिश्चन्द्रोस्ततोराजावसंश्चण्डालपत्तने ।
प्रातर्मध्य ह्नसमयेसायंचैतदगायत ॥१००
बालादीनमुखोदृष्ट्वाबालंदीनमुखंपुरः ।
मांस्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनौनृपः ॥१०१
उपात्तरित्ताविप्रायदत्वावित्तमतोऽधिकम् ।
मसमांमृगशावाक्षोवेत्तिपापतरंकृतम् ॥१०२
राज्यनाशः सुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः ।
प्राप्ताचण्डालताचेयमहोदुःखपरम्परा ॥१०३
एवंसनिवसन्नित्यंसस्मारदयितंसुतम् ।
भार्याचात्मसमाविष्टांहृतसर्वस्वआतुरः ॥१०४

कस्यचित्त्वथकालस्यमृतचैलापहारकः ।
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजाश्मशानेतद्वशानुगः ॥१०५

पक्षियों ने कहा—फिर राजा के मुख से जो आज्ञा शब्द निकलते ही चाण्डाल रूपी धर्म ने विश्वामित्र को वह धन देकर राजा को बाँध लिया और अपने निवास को गया ।९८। राजा हरिश्चन्द्र भार्या तथा पुत्र के वियोग से पहिले ही अत्यन्त कातर थे, फिर चाण्डाल द्वारा डंडे मारने से वे और भी व्याकुल हो गये ।९९। फिर चाण्डाल के यहाँ रहते हुए वे प्रातः मध्याह्न, सायंकाल आदि सब समय इसी प्रकार कहते रहते थे ।१००। वह दीन मुख वाली रानी, अपने दीनमुख बालक को देखकर दुःखी चित्त से सोचती होगी कि धनोपार्जन कर राजा इस ब्राह्मण को अधिक धन देकर हमें छुड़ा लेंगे, परन्तु उसे यह क्या मालुम होगा कि मैं चाण्डाल के दासत्व रूपी पाप की दशा में गिर गया हूँ ।१०१-१०२। राज्य का नाश सुहृदों से बिछोह, पत्नी पुत्र का विक्रय और अन्त में चाण्डालत्व की प्राप्ति अहो, दुःख मिल रहा है ।१०३। सर्वस्व से भ्रष्ट वह राजा चाण्डाल के घर रहता हुआ दुःखित चित्त से प्रिय पुत्र भार्या का स्मरण करने लगा ।१०४। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर चाण्डाल के दास राजा हरिश्चन्द्र को श्मशान में मृतकों से वस्त्र लेने के कार्य पर नियुक्त किया गया ।१०५।

चण्डालेनानुशिष्टश्चमृतचैलापहारिणा ।
शवागमनेमन्विच्छन्निहतिष्ठदवानिशम् ॥१०६
इदराज्ञेऽपिदेयश्चषड्भागांतुशवंप्रति ।
त्रयस्तुममभागाः स्युर्द्वाभागौतववेतनम् ॥१०७
इतिप्रतिसमादिष्टोजगामशवमदिरम् ।
दिशंदक्षिणांयत्रवाराणस्यांस्थिततदा ॥१०८
श्मशानंघोरसंनादंशिवाशतसमाकुलम् ।
शवमोलिसमाकीर्णदुर्गन्धबहुधूमकम् ॥१०९
पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसकुलम् ।
गध्रगोमायुसकीर्णश्वबृंदपरिवारितम् ॥११०

अस्थिसंघातसंकीर्णमहादुर्गन्धसंकुलम् ॥१११
नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ।
हापुत्र मित्र हाबन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्यमे ॥११२
हापते भगिनि मातर्हामातुल पितामह !।
मातामहपितः पौत्रक्वगतोऽस्येहिबान्धवः ॥११३

मृतकों के वस्त्र का अपहरण करने वाले चाण्डाल ने आदेश किया कि दिनरात श्मशान में रहकर कौन मुर्दा जाता है,यह देखो तथा।१०६ प्रत्येक मृतक से जो धन प्राप्त हो, उसका छटा भाग राजा को तीन भाग मेरे लिए और दो भाग अपने वेतन में लो।१०७। इस प्रकार चाण्डाल की आज्ञा प्राप्त कर राजा हरिश्चन्द्र दक्षिण दिशा में स्थित श्मशान में गये—।१०८। उसकी चारों दिशायें घोर शब्द में प्रतिध्वनित हो रही थी, गीदड़ियों युक्त, मृत मस्तकोंसे व्याप्त तथा दुर्गन्धित धूम्र से आच्छन्न ।१०९। भूत, पिशाच, डाकनी, यक्ष, गृध्र आदि से युक्त और उनके शब्दों से निनादित था तथा इधर-उधर अनेक श्वान घूमरहे थे वह स्थान अस्थियों और महा दुर्गन्ध के भर रहा था।११०-१११। मृत व्यक्तियों के आर्त्तनाद के कारण अत्यन्त कोलाहलमय था यहाँ हा मित्र हा पुत्र, हा वत्स, हा बन्धु, हा प्रिये, हा नाथ, हा बहिन, हा माता, हा मामा, हा पिता, हा पितामह, हा मातामह, हा पौत्र आज किधर गए, एक बार तो आओ।११३।

इत्येववदतांयत्रध्वनिः संश्रूयतेमहान् ॥११४
ज्वलन्मांसवासमेदच्छमितसंकुलम् ॥११५
अर्द्धदग्धाः शवाः श्यामाविकसद्दन्तपंक्तयः।
हसन्तीवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयंदशात्विति: ॥११६
अग्नेश्चटचट शब्दोवायसामस्थिपंक्तिषु।
बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुक्कसेषुप्रहर्षजः ॥११७
गायतांभूतवेतालपिशाचगणरणक्षसाम्।

श्रूयतेसुमहान्घोरः कल्पान्तइवनिः स्वनः ॥११८
महामहिषाकारीषगोशकृद्राशिसं कुलम्।
तदुत्थभस्मकटैश्च्वृतसास्थिभिरुन्नते ॥११९

इस भांति अनेक प्रकार के विलाप युक्त आर्त्त स्वर वहाँ सुनाई पड़ते थे, मांस मज्जा मेद के दग्ध होने पर छनछन शब्द निकलता था उससे चारों दिशाएँ व्याप्त होती थीं।११४। कोई शव अग्नि में पड़कर अधजला होने पर काला हो गया, दन्तपंक्ति निकल गई। उसे देखने से लगता उस देह की यह दशा ! जैसे विचार उसी की हँसी उड़ा रहे हों।११६। हड्डियों पर बैठे हुए कौओं के विभिन्न प्रकार के शब्द हो रहे थे, मरे हुओं के बांधव आर्तनाद कर रहे थे, अग्नि के चटचट और चांडालों के आनन्द-सूचक शब्दोंसे श्मशान भर रहा था। ।११७। कहीं भूत, पिशाच वैताल और राक्षसों के नाच गान के स्वर उठ रहे थे जिनसे वह स्थान भयंकर प्रलयात्मक प्रतीत होता था।११८ कहीं-कहीं भस्म के और गोवर के ढेर दिखाई दे रहे थे, वे भस्म कण कभी उड़ उड़ कर अस्थियों पर गिरते हुए पर्वत जैसे सुन्दरता दिखाते थे।१-९।

नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपकालिकम्।
अनेकशब्दबहुलश्मशानं नरकायते ॥१२०
सवह्निगर्भेरशिवैः शिवारुतैर्निना दतंभीषणरावगह्वरम्।
भयभयस्थाप्यु सज्जनैर्भृ शश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम्।१२१
सराजायत्रसंप्राप्तोदुःखितः शौचनोद्यतः।
हाभृत्यामन्त्रिणोविप्राःक्वतप्राज्यविधेगतम् ॥१२२
हाशैव्येपुत्रहाबालमांत्यक्त्वामन्दभाग्यकम्।
विश्वामित्रस्यदोषेणगताः कुत्रपितेमम ॥१२३
इत्येवचिन्तयंस्तत्रचण्डालोक्तपुनःपुनः।
मलिनोरूक्षसर्वांगः केशवान्गन्धवान्ध्वजी ॥१२४
लकुटीकालकल्पश्चधावंश्चापिततस्ततः।
अस्मिञ्शवइडंसूल्यंप्राप्स्यामिचाऽयुत ॥१२५

इदंममइदंराज्ञमुख्यचण्डालकेत्विदम् ।
इतिघावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरगतः ॥१२६

कहीं काकबली की माला और दीपक पड़े थे, कहीं सियार, अमंगल सूचक शब्द बोल रहे थे, इस कारण वह स्थान नरक तुल्य प्रतीत हो रहा था।१२०। कहीं सियारों का भयंकर शब्द, मनुष्यों की क्रंदन ध्वनि सुनाई पड़ रही थी,जिससे भयभी अत्यन्त भीत हो रहाहो।१२१। राजा हरिश्चन्द्र उस घोर श्मशान में आकर सोचने लगे वह सेवक गण मन्त्रिगण, विप्रगण और वह राज्य कहाँ गया।१२२। हा शैव्या!हा पुत्र! तुम इस अभागे को त्याग कर कहाँ गये ? देखा ! अकेले विश्वोमित्र के क्रोध से ही मेरा सर्वस्व छिन गया।१२३। इसप्रकार चिन्ता करते हुए भी चाण्डाल के वचन की चिन्ता अधिक थी। उसका मलिन वेश,रूखा शरीर सब देह में बाल और दुर्गन्ध तथा ध्वजा।१२४। और लाठी लेकर यमराज के समान तथा इस पर विचार करना कि इस मृत का इतना मूल्य हुआ, इसमें इतना मिल गया और इतना अभी लेना है।१२५। यह मेरा, यह राजा का, और यह उसी चाण्डाल का, ऐसी चिन्ता करते हुए इधर उधर घूमते तब प्रतीत होता कि जीवित ही प्रेत हो गए हैं।१२६।

जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ।
चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥१२७
नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् ।
नानाशवोदनकृताहारतृप्तिपरायणः ॥१२८
तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तमण्डनः ।
नरात्रौनदिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहुः ॥१२९
एवंद्वादशमासास्तुनीताः शतसमपमाः ।
सकदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान् ॥१३०
निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गो निश्चेष्ट सुप्तएव च ।
तत्रापिशयनीयेसदृष्ट्वानद्भुतमहत् ॥१३१
श्मशानाभ्याशयोगेनदैवस्यवयवत्तया ।

अन्यदेहनदत्वातुगुरवेनगुरुदक्षिणाम् ॥१३२
तदाद्वादशवर्षाणिदुःखदानात्तु निष्कृतिः ।
आत्मानंसददर्शाथपुल्कसीगर्भसवम् ॥१३३
तत्रस्थश्चाप्य सोराजासोऽचितयदिदतदा ।
इतोनिष्क्रान्तमाश्रोहिदानधर्मंकरोम्यहम् ॥१३४

फटे हुए वस्त्र में गाँठ लगाकर कन्धा धारण किये हुए तथा मुख भुजा उदर और पाँवों में चिता भस्म लगाये हुए ।१२७। हाथ की अंगुलियों में मेद, वसा और मज्जा लगी रहती थी और मृत पिंडों से शेष भात का अहार करके रहते थे ।१२८। मृतक की उतारी हुई माला को धारण कर 'हा हा, शब्द कहते हुए दिन या रात्रि कभी भी नहीं सोते ।१२९। इस प्रकार श्मशान में रहते हुए उनका एक वर्ष सौ वर्षों के समान व्यतीत हुआ फिर किसी दिन वे बन्धु वियोग से श्रान्त होकर ।१३०। रूखे शरीर से निचेष्ट सो गए, तब स्वप्न में उन्हें एक अत्यन्त अद्भूत बात दिखाई पड़ी ।१३१। श्मशान के अभ्यास या दैवेच्छा से उन्होंने देखा कि अन्य देह धारण करके गुरु को दक्षिणा देकर ।१३२। बारह वर्ष दुःख भोग लेनेपर मुझे मुक्ति मिलेगी, फिर उन्होंने देखा कि मैं डोमनी के गर्भ में स्थित हूँ ।१३३। उस डोमनी के गर्भ में पड़े हुएही वे सोचने लगे कि इस गर्भ से निकलते ही दान धर्म का आचरण करूंगा ।१३४।

अनन्तरंसंजातस्तुतद पुल्कसवालकः ।
श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः ॥१३५
प्राप्तेतुसप्तमेवर्षेश्मश नेऽथमृतोद्विजः ।
आनीतोबन्धुभिर्दृष्टिस्तेनतत्राधनोगुणी ॥१३६
मुख्यार्थिनातुतेनापिपरिभूतास्तुब्राह्मणाः ।
ऊचुस्तेब्राह्मणास्तत्रविश्वामित्रस्यतेष्टितम् ॥१३७
पापिष्ठमशुभकर्मंकुरुत्वैपापकारक !
हरिश्चन्द्रपुराजाविश्वामित्रेणपुल्कसः ॥१३८
कृतः पुण्यविनाशेनब्राह्मणस्वापनाशनात् ।
यदानक्षमतेतेषांतैः सशप्तौरुषातदा ॥१३९

तभी पुनः दिखाई दिया कि उसी गर्भसे उत्पन्न होकर उसी जाति कर्म से उद्यत हूँ।१३४। जब चाँडाल के बालक रूप में सात वर्ष की आयु हुई तब किसी गुणज्ञ एवं अनाथ ब्राह्मण के शवको लोग श्मशान में लाये।१३६। उस समय दाह करने का मूल्य देने में असमर्थ ब्राह्मण उनसे अत्यन्त तिरस्कृत होते हुए बोले कि विश्वामित्र का कौन सा पापमय कर्म था? अरे पापकर्मा! तू ऐसे ही अशुभ कर्म करता रहता है, पूर्व जन्म में तू राजा हरिश्चन्द्र था, तुझे विश्वामित्र ने चांडाल बना दिया है।१३७-१३८। तूने ब्रह्मस्व न देकर पुण्य नष्ट किया इससे विश्वामित्र के द्वारा तुझे चांडाल योनि में आना पड़ा। जब वे ब्राह्मण शवदाह का मूल्य न देने के कारण दाह न कर सके, तब उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक राजा को शाप दिया।१३९।

गच्छत्वनरकम्घोरमधुनैवनराधम्।
इत्युक्तमात्रेवचनेस्वप्नस्थः सनृपस्तदा ॥१४०
अपश्यद्यमदूतान्वैपाशहस्तान्भयावहान्।
तैः संग्रहीतमात्माननीयमानं तदाबलात् ॥१४१
पश्यतिस्मभृशंखिन्नोहामतः पितरद्यमे।
एवंवादोसनरकेतैलद्रोण्यांनिपातितः ॥१४२
क्रकचैः पाटयमानस्तुक्षुरधारिष्यघः।
अन्धेतमसिदुःखार्त्तयपूयशोणितभोजनः ॥१४३
सप्तवर्षमृतात्मानपुच्यसत्वेददर्शह।
दिनदिनंतुनरकेदह्यतेपच्यतेऽण्यतः ॥१४४
खिद्यतेक्षोभ्यतेऽन्यत्रमार्यतेपाटयतेऽन्तः।
क्षार्यतेदीप्यतेऽन्यत्रशीतवाताहतोऽन्यतः ॥१४५
इकदिनवर्षशतंप्रमाणनरकेऽभत्।
तथावर्षशतंतत्रश्राविंतनरकेभटैः ॥१४६
ततोनिपातितोभूमौविष्ठाशीश्वाव्यजायत।
वान्ताशीशीतदग्धश्च मासमात्रेमृतोऽपिसः ॥१४७

अरे नराधम ! तू अभी घोर नरक को प्राप्त हो, ब्राह्मणों की बात सुनकर स्वप्न देखते हुए उस राजा ने ।१४०। देखाकि भयंकर यमदूत अपने हाथों में पाश लिए हुए चले आते हैं और बलपूर्वक मेरी आत्मा को बांध ले चले ।१४१। तब वे खेदपूर्वक हा माता, हा पिता, आज मेरी ऐसी दशा हो गई इस प्रकार विलाप करने लगे। तभी यमदूत ने उन्हें नरक में ले जाकर तैल द्रोणी में डालकर ।१४२ तीक्ष्ण धार वाले आरी से चीरकर अन्यन्तम नरक में गिराकर पीव और रक्तका आहार दिया ।१४३। इस प्रकार वह आत्मा सात वर्ष तक नरक में पड़ी हुई दिखाई देने लगी, कभी जलता हूँ, कभी कोल्हू में पिलता हूँ ।४४। कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूँ, कभी चीरा जाता, कभी खायी में फेंका जाता और कभी शीत वायु से आहत होता हूँ ।१४५। उसका एक-एक दिन सौ-सौ वर्ष के समान व्यतीत हो रहा था, इस प्रकार दुःख भोग करते-२ एक दिन नरक रक्षकों ने सुना कि सौ वर्ष पूरे हो गए हैं ।१४६। तब उन्हें यमदूतों ने पृथिवी पर गिराया और उन्होंने विष्टा खाने वाले श्वान की योनि से जन्म लिया और एक दिन भयङ्कर शीत से व्याकुल होकर एक मास में ही मर गये ।१४७।

छागविडालकङ्कचमगामविपक्षिणंक्रमिम् ॥१४८
मत्स्यकूर्मवराहचश्वाविधंकुक्कुटशुकम् ।
शरिकास्थावरांश्चवसर्पमन्यांश्चदेहिनः ॥१४९
दिवसेदिवसेजन्मप्राणिनः प्राणिनस्तदा ।
अपश्यद्दुःखसन्तप्तादिनं वर्षशतंतथा ॥१५०
एववर्ष शतंपूर्णं गतंतत्रकुयोनिषु ।
अपश्यच्चकदाचित्सराजातत्स्वकुलोद्भवम् ॥१५१
तत्रस्थितस्यतस्यापि राज्यं द्यूतेनहारितम् ।
भार्य्याहृताचपुत्रश्चसचैकाकीवनं गतः ॥१५२
तत्रापश्यत्सहिं वैव्यादित स्यंभयावहम् ।
विभक्षयिषुसायातं शरभेणसमन्वितम् ॥१५३

पुनश्चभक्षि : सोऽपिभार्याशोचितुमुद्यतः ।
हाशैव्येक्वगतास्यद्यमामिहापास्यदुःखितम् ॥१५४
अपश्यत्पुनरेवापिभार्यास्वांसहपुत्रकाम् ।
त्रायस्वत्वंहरिचन्द्रकिद्यूतेनतवप्रभो ॥१५५
पुत्रस्तेशोच्यतांप्राप्तोभार्य्ययाशैव्ययासह ।
सनापश्यत्पुनरपिधावमानः पुनः पुनः ॥१५६

फिर गधे की योनिमें, फिर हाथी, बन्दर, छाग, बिलाय, कौआ, गौ मैंढ़ा, पक्षी और कृमि ।१४८। फिर मछली, कछुआ, शूकर, मृग, मुर्गा, तोता, मैंना, ऋक्ष, अजगर आदि विभिन्न योनियों में।१४६। तथा अन्य कुयोनियों में जन्म लेकर महान दुःख भोगते हुए सौवर्ष व्यतीत हो गए ।१५०। फिर देखाकि वह पुनः अपने ही कुलमें उत्पन्न होकर राजा बने हैं ।१५१। वहाँ कभी जुआ खेलकर राज्य, स्त्री और पुत्रादि को हार गये और एकाकी वन गये ।१५२। वहाँ देखा कि एक भयानक सिंह मुख फैलाये हुए उसका भक्षण करने के निमित्त उनकी ओर आरहा है ।१५३। फिर उसके द्वारा खाये जाते हुए शैव्ये ! इस दुःखी हृदय को त्यागकर तुम कहाँ जाती हो इस प्रकार वैसेही शोक विह्वल हुए ।१५४। वैसे ही देखा कि रानी शैव्या पुत्र सहित वहाँ आकर हा राजन् ! हमारी रक्षा करो, जुआ खेलने से आपका क्या कार्य है ।१५५ देखिए आपकी पत्नी शैब्या अपने पुत्र के सहित किसी शोचनीय दशामें पड़ गयीं है, इस प्रकार विलाप कर रही है, वे बार-बार उसे देखने के लिए इधर-उधर जाते हैं, परन्तु उसे देख नहीं पाते ।१५६।

अथांपश्यत्पुनरपिस्वर्गस्थः सनराधिपः ।
नीयतेमुक्तकेशीसादीनाविवसनाबलात् ॥१५७
हाहावाक्यं प्रमुञ्चन्तीत्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।
अथापश्यत्पुनरतत्रधर्मराजस्यसनात् ॥१५८
आक्रन्दन्स्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप ।
विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजस्तवार्थतः ॥१५६
इत्युक्त्वासर्पपाशैस्तुनीयतेबलवद्भिभुः ।

श्राद्धदेवेनकणितं विश्वामित्रायचेष्टितम् ॥१६०
तथापितस्यविकृतिर्नाधिर्मोत्थाव्यवर्द्धत ।
एता: सर्वादशास्तस्यया: स्वप्नेसम्प्रदर्शिता: ॥१६१
सर्वान्स्तस्तेनसम्भुक्त्वायावद्वर्षाणिद्वादश ।
अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात् ॥१६२

फिर राजा हरिश्चन्द्र ने अपने को स्वर्ग में वास करते हुए देखा तथा दीन, वस्त्र विहीन और खुले केश वाली रानी शैव्या का किसी पुरुष द्वारा बल पूर्वक हरण करते हुए देखा।१५७। वह 'महाराज रक्षा करो, रक्षा करो' कहती हुई बारम्बार चिल्ला रही है, फिर देखा कि यमराज के शासन में स्थित यमदूत।१५८। आकाश में कह रहे है कि राजन्! विश्वामित्र ने यमराज को आपके विषय में सूचना दी है अत: आप यहाँ आये, ऐसा कहकर घोर शब्द करते हैं,।१५९। फिर देखा कि इतना कहने के पश्चात् यमदूत मुझे नागपाश में दृढ़ता से बांध कर ले चले और यमराज तथा विश्वामित्र के चरित्र को कहते हैं।१६० यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र विभिन्न प्रकार की यन्त्रणा भोग रहे थे फिरभी उनके चित्त में कोई अधार्मिक विकार नहीं आया। इस भाँति जो जो दशा उन्होंने स्वप्न में देखी।१६१। वह सब उन्होंने इस बारह वर्ष के समय में निरन्तर भोगी थी, बारह वर्ष व्यतीत होने पर यमदूतों के द्वारा बलपूर्वक ले जाये गये।१६२।

यमंसोऽपश्यदाकारादुवाचचनराधिपम् ।
विश्वामित्रस्यकोपेऽयंदुर्निवार्य्योमहात्मान: ॥१६३
पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यतिसकौशिक: ।
गच्छत्वंमानुषकोलदु:खमेषचभुक्ष्ववै: ।
गतम्यतत्रराजेन्द्रश्श्र यस्तवभविष्यति :।१६४
व्यतीतेद्वादशेवर्षेदु:खस्यान्तेनराधिप: ।
अन्तरिक्षाच्चपतितोयमदूतै: प्रणोदित: ॥१६५
पतितोयमलोकाच्चतिबुद्धोभयसंभ्रमात् ।
अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतक्षारावसेचनम् ॥१६६
स्वप्नेदु:खंमहद्दृष्टंयस्यान्तोनोपलभ्यते ।

स्वप्नेदृष्टंमयाथत्तु किन्तुमेद्वादशाः समाः ॥१६७
गतेत्यपृच्चवस्थानुपुक्कमांस्तुससभ्रमात् ।
नेत्युचः केचित्तत्रस्थाएवमेवापरेऽब्रुवन् ॥१६८

वहाँ उन्होंने धर्मराज का दर्शन किया तब यमराज बोले-राजन् ! यह महात्मा विश्वामित्रजी के क्रोध के दुनिवार्य का फल है ।१६३। वे विश्वामित्रजी आपके पुत्र की मृत्यु करायेंगे, इसलिए आप मृत्युलोक में जाकर शेष दुःखों को भोगिये, वहाँ जाने पर तुम्हारा कल्याण होगा ।१६४। वहाँ बारह वर्ष व्यतीत होने पर दुःखों का अन्त हो जायेगा, यमराज के ऐसा कहने पर यमदूतों ने उन्हें आकाशमें फेंक दिया ।१६५ यमलोक से गिरते ही भय और भ्रम से वे सहसा जाग पड़े और सोचने लगे कि घाव में नमक लगाने के समान अब क्या हुआ ।१६६। जैसे स्वप्न में घोर दुःख दिखाई दिये हैं, वे तो असीमित ही है मैंने स्वप्न में जो देखा क्या वे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके ।१६७। यह कहकर उन्होंने अपने पास के चांडालों से पूछा तो उनमें से किसी ने कहा कि अभी १२ वर्ष व्यतीत नहीं हुए और किसी ने कहा बीत भी सकते हैं ।१६८।

श्रुत्वादुःखीतदाराजादेवाञ्शरणमीयिवान् ।
स्वस्तिकुर्वं तुमेदेवा शैव्यायाबालकस्यच ॥१६९
नमाधर्मायमहतेनमः कृष्णायवेधसे ।
परावरायशुद्धयपुराणायाव्ययायच ॥१७०
नमोबृहस्पतेतुभ्याँनमस्तेवासवायच ।
एवमुक्त्वासराजातुयुक्तः पक्कसकर्मणि ॥१७१
शवानांमूल्यकरणेपुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ।
मलिनोजटिलः कृष्णोलकुटीविह्वलोनृपः ॥१७२
नैवपुत्रोनभार्य्यातुतस्यवैस्मृतिगोचरे ।
नष्टोत्साहोराज्यनाशाच्छमशानेनिवनंस्तदा ॥१७३
अथाजगामस्वसुतंमृतमादायलापिनी ।
भार्यातस्यनरेन्द्रस्यसर्पदण्ट हिबालकम् ॥१७४
हावत्सहापुत्रशिशोइत्येवंबदतीमुहुः ।
कृशाविवर्णाविमनाः पांशुध्वस्तशिरोरुहा ॥१७५

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने देवताओं की शरण लेते हुए कहा—हे देवगण ! आप मेरी रानी शैव्या और पुत्र का मंगल करें ।१६९। सत्य प्रधान धर्म को नमस्कार है, विधाता रूप कृष्ण को नमस्कार है, सर्व श्रेष्ठ अव्यय एवं पुराण पुरुष को नमस्कार है ।१७०। हे बृहस्पते! आपको नमस्कार है, हे वासव ! आपको नमस्कार है, ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र पुनः चाण्डाल रूप कार्य ।१७१। मृतक का मूल्य निर्धारण करने में लगे और उसी प्रकार मलिनवेष, जटा धारण किये हुए लकुटिधारीकृष्णवर्ण युक्त स्मृति को भुलाये हुए विह्वल हो उठे ।१७२। उस समय उनकी स्मृति में भार्या या पुत्र कोई भी नहीं आया, क्योंकि राज्य से भ्रष्ट होकर श्मशान में उत्साह हीन रहते थे ।१७३। तभी उनका जो पुत्र सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हो गया था,उसे लेकर उनकी पत्नी रोती हुई श्मशान में आयी ।१७४। वह अत्यन्त कृश देह दुःखी हृदय वाली शिर से धूलि धूसरित थी, वह बारम्बार, हा पुत्र पुकारती हुई रुदन कर रही थी ।१७५।

हाराजन्नाद्यबालत्वंपश्यसीमंमहीतले ।
रममाणंपुराहृष्टं दष्टपुष्टाहिनामृतम् ॥१७६
तस्याविलापशब्दतमाकर्ण्यसनराधिपः ।
जगामत्वरितोऽत्रेतिभवितामृतकम्बलः ॥१७७
सँतारोरुदतींभार्यानाभ्यजानात्तु पार्थिवः ।
चिरप्रवाससन्तांपुनर्जातामिवालाम् ॥१७८
सापितंघारुकेशान्तंपुराहृष्टयाजटालकम् ।
नाभ्यजानान्नपसुताशुष्कवृक्षोपमंनृपम् ॥१७९
सोऽपिकृष्णपटेबालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम् ।
नरेन्प्रलक्षणोपेतंचिन्तामापनरेश्वरः ॥१८०

रानी कहने लगी राजन् ! जिस चन्द्रमा के समान बालक को आप खिलाते थे, उसने आज सर्पदश से प्राण छोड़ दिया हैं उसे एक बार तो देखो ।१७६। उस विलापको सुनकर 'मृतक-वस्त्र प्राप्त होगा' ऐसा विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रता पूर्वक वहां पहुँचे ।१२७। वे प्रवास के सन्ताप से और पुत्रशोक से दुःखित हुई अबला पत्नी को न

पहिचान सके ।१७८। रानी शैव्या ने भी राजा को मनोहर केश युक्त देखा था और अब वे जटिल तथा शुष्क वृक्ष के समान रहे थे, इसलिए वह भी उन्हें न पहचान सकी ।१७९। उस समय सर्प दश से मृत उस बाल को काले वस्त्र से लपेटा हुआ, परन्तु राजचिह्नों से युक्त देखकर राजा विचार करने लगे ।१८०।

तस्याचन्द्रबिंबाभंसुभ्ररम्यंसमुन्नतम् ।
नीलाकेशाः कुंचिताश्चसमादीर्घास्तरंगिताः ॥१८१
राजीवनेत्रयुगुलोविम्बाष्ठपुटसंवृतः ।
चतुर्दंष्ट्रश्चतुः क्रिष्कुर्दीघास्योदीर्घबाहुकः ॥१८२
चतुर्लेखकरोमत्स्ययुक्चैवपर्वतः ।
शिरालुपादोगभीरः सूक्ष्मत्वकत्रिबलीधरः ।।१८३
अहोकष्टं नरेन्द्रस्यकस्याप्येषकेलेशिशुः ।
जातोनीतः कृतान्तेनकामप्याशांदुरात्मनाः ॥१८४
एवंदृष्ट्वाहिमेबालंमातुरुत्सङ्गशायिनम् ।
स्मृतिमभ्यागतोवालोरोहिताश्वोब्जलोचनः ॥१८५
सोऽप्येतामेवमेवत्सोवयोऽवस्थामुपागतः ।
नीतोयदिनघोरेणकृतान्तेनात्मनोवशम् ॥१८६
हावन्सकस्यपापस्यअपध्यानादिदमहत् ।
दुःखमापतितंघोरंयस्यान्तोनोपलभ्यते ॥१८७
हानाथराजन्भवतामामनाश्वास्युदुःखिताम् ।
क्वापिसन्तिष्ठतास्थानेकिंत्रव्वैरणीयतेकथम् ॥१८८
राज्यनाशः सुहृत्यागोभार्य्येतिनयविक्रयः ।
हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेः किंविधेनकृतत्वया ॥१८९

जिसका चन्द्र के समान मुख, सुन्दर भौं उच्च नासिका घुँघराले केश के समान दीर्घ तरङ्ग युक्त ।१८१। पद्म जैसे दोनों ओष्ठ, चार दाढ़ें, सुशोभित मुख और विशाल भुजायें ।१८२। हाथ में मत्स्य 'जौ युक्त तथा पर्वत रेखा कंठ के पीछे की नाड़ी और पैर गम्भीर, पतली

त्वचा एवं उदर कंठ में त्रिवली रेखा का दिखाई देना ।१८३। इससे किसी राजकुल में जन्म लिया प्रतीत होता है अहो, कालने इसकी क्या दशा कर दी है ।१८४। फिर माता की गोद में पड़े हुए उस बालक को भली प्रकार देखने पर उन्हें रोहिताश्व की याद आ गई ।१८५। उन्होंने सोचा कि यदि दुरात्मा काल के वशीभूत न हुआ हो तो मेरा रोहिताश्व भी इतनी अवस्था को ही गया होगा ।१८६। इधर रानी बोली हा पुत्र ! किस पाप के कारण इस असीम घोर दुःख की प्राप्ति हुई हैं ।१८७। हे नाथ हे राजन ! तुम इस संतप्ता को त्यागकर निष्ठुर चित्त से कहाँ किस प्रकार रहते हो ।१८८। एक राज्य का छिनना, उस पर भी बन्धुओं से वियोग, फिर पत्नी पुत्र का विक्रय, हा विधाता ! क्या तूने राजर्षि हरिश्चन्द्र का सर्वनाश ही नहीं कर डाला ? ।१८९।

इतितस्यावचः श्रुत्वाराजास्वस्थानतश्च्युतः ।
प्रत्यभिज्ञायदयिमांपुत्र चनिधनंगतम् ॥१९०
कैषानामगृहेयुक्ताममयोषिद्वराभवेत् ।
बालश्चसमृतः कः स्यादितिराजाविचारयन् ॥१९१
कष्टं शैव्येयमेषाहिसबालोऽयमितीरयन् ।
रुरोददुःखसन्तप्तोमूर्च्छामभिजसामच ॥१९२
साचतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ।
मूर्च्छितानिपपातातीनिश्चेष्टाधरणीतले ॥१९३
चेतः संप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् ।
विलेपतुः सुसन्तप्तौशोकभारावपीडितौ ॥१९४
हावत्ससुकुमारं तेस्वक्षिभ्रूनासिकालकम् ।
पश्यतोमेमुखंदीनं हृदयंकिंनदीयतः ॥१९५
ताततातेतिमधुरंब्रुवाणस्वयमागतम् ।
वपगुह्यवदिष्येकंवत्सवत्ससेतिसोहृदा ॥१९६

उसके वचन सुनकर राजाने अपने पुत्रऔर स्त्रीको पहिचानलिया, तथा अपने स्थानसे गिर पड़े।१९०। यह स्त्री कौनहै क्या मेरी पत्नीहै? यह मृत बालक कौन है ? इस विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र व्या-

कुल हो उठे ।१६१। हा कैसा दुःख है ? यही वह शैव्या है और यही वह बालक है ऐसा कहते हुए अत्यन्त सन्ताप से रोने लगे और मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ।१६२। रानी भी राजा को पहिचान कर मूर्छा को प्राप्त होकर पृथिवी में गिर पड़ी ।१६३। फिर दोनों ही चैतन्य होकर शोक से संतप्त होकर अत्यन्त विलाप करने लगे ।१६४। राजा ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारी सुन्दर नेत्रादिसे युक्त सुकोमल वदन को इस प्रकार मलीन देखकर हृदय फट क्यों नहीं जाता ? ।१६५। मीठे स्वरों से तात, तात, कहता हुआ अब मेरे कौन पास आयेगा? अब मैं किसे स्नेह पूर्वक गोदी में लेकर वत्स कहूँगा ।१६६।

कस्यजानुप्रणीतेनपिङ्गेनक्षितिरेणना ।
ममोत्तरीयमुत्सङ्गंतथाङ्कमलशेष्यति ॥१६७
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतोमनोहृदयनन्दनः ।
मयाकुपित्राहावत्सविक्रीतोयेनवस्तुवत् ॥१६८
हृत्वाराज्यमशेषमेसबांधवधनंमहत् ।
दैवाहिनानृशंसेयदष्टोमेतनयस्तनः ॥१६९
अहंदैवाहिदष्टस्यपुत्रस्याननपङ्कजम् ।
निरीक्षन्नपिघोरेणविषेणान्धीकतोऽधुना ॥२००
एवमुक्त्वातमादायवालकंवाष्पगद्गदः ।
परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातहः ॥२०१
अयंपुरुषव्याघ्रः स्वरेणोवोपलक्ष्यते ।
विद्वज्जनमयश्चन्द्रोहरिश्चन्द्रोनसँशयः ।२०२
तथास्यनासिकातुङ्गाअग्रतोऽधोमुखगता ।
दीताश्चमुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मना ।।२०३
श्मशानमांगतः कस्माद्द्यैषनरेश्वरः ।
अपहायपुत्रशोकंसापश्यत्पतितपतिम् ।।२०४

अब किसकी जांघमें लगी धूलसे मेरा उत्तरीय और शरीर मैल होगा ? ।१६८।हा तुम मेरे अङ्ग प्रत्यङ्गसे उत्पन्न होकर मत औरहृदय के लिए आनन्द देने वाले थे, तो भी मैंने तुम्हें सामान्यवस्तु के समान

बेच दिया।१९८। हा देव रूपी दुष्ट नाग ने मेरा राज्य, साधन तथा सर्वस्वहरण करके अन्त में तुम्हें भी डस लिया।१९९। देव रूपी सर्प द्वारा इस पुत्रका मुखारविन्द देखाते हुए मैं भी उसके भीषण विष से अन्धा हो रहा हूँ।२००। राजा ने गद्‌गद् कण्ठ से इस प्रकार विलाप करते हुए बालक को अपनी गोद में उठाया और तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर गये।२०१। रानी बोली-स्वर से प्रतीत होता है कि यही पुरुषसिंह महाराज हरिश्चन्द्र है इसमें संशय नहीं।२०२। इनकी ऊँची तालिका अग्रभाग में उन्हीं के समान अधोमुख हुई है,इनकी दन्त पंक्ति भी उन्हीं के समान कली जैसी है।२०३। परन्तु वह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशान में क्यों है यह कहती हुई रानी मूर्छित पड़े हुए अपने स्वामी को देखने लगी।२०४।

प्रहृष्टाविस्मितादीनाभर्तृपुत्राधिपीडिता।
वीक्षन्तोक्षाततोऽपश्यत्भर्तृदण्डजगुच्सितम् ॥२०५
श्वपाकाहंमतोमोहंजगामायतलोचना।
प्राप्यचेतश्चशनकैःसगदगदमभाषत ॥२०६
धिक्त्वांदैवातिकरुणंनिर्मयार्दजुगुप्सितम्।
येनायममरप्रख्योनीतोराजश्वपाकताम् ॥२०७
राज्यनाशंसुहृत्यागंभार्यातनयविक्रयम्।
प्रापयित्वाऽपिनोमुक्तश्चण्डालोऽयंकृतोनृपः ॥२०८
हाराञ्जातसँतापामित्थंमांधपणीतलात्।
उत्थाप्यनाद्यपर्यङ्कमारेहेतिकिमुच्यते ॥२०९
नाद्यपश्यामितेच्छत्रंशृङ्गारमथवापुनः।
चामरंव्यंजनंचापिकोऽयंविधिविपर्ययः ॥२१०

उस दुर्बलांगी शैव्या ने विस्मय पूर्वक पीड़ा से इधर-उधर देखातेहुए राजा के उस चाण्डाल दण्ड को देखा।२०५। मैं चाण्डाल की पत्नी हूँ कहती हुई रानीमोहित होकर गदगद कण्ठ से बोली।२०६।अरे मर्यादा हीन, निन्दित, नृशंश दैव तुझे धिक्कार है,जो तूने मेरे देव-तुल्य स्वामी को चांडाल बनाया है।२०७।तू राज्यसे भ्रष्ट, करके,बन्धुओं से वियोग कर तथा पत्नी-पुत्रको बिकवाकरभी शान्त न हुआ और अब चांडालत्व

प्राप्त कर दिया ।२०८।हे राजन् ! इस प्रकार सन्ताप ग्रस्त हुए इस पृथ्वी पर पड़ी हूँ, आज वहाँ से उठाकर पलङ्ग पर बैठनें को क्यों नहीं कहते ।२०९। आज आपका छत्र और भृङ्गार दिखाई क्यों नहीं देता ? वह चमर वह पंखा कहाँ है ? दैव की कैसी विडम्बना है ।२१०।

यस्याग्रे व्रजतः पुर्वं राजानोभृत्यतांगताः ।
स्वत्तरीयैरकुर्वन्तनीरजस्कमहीतलम् ॥२११
सोऽयंकपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे ।
मृतनिर्माल्यसूत्रान्तगूढकेशेसुदारुणे ॥२१२
वसानिष्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते ।
भस्माङ्गाराद्धंदग्धास्थिमज्जसघट्टभीषणे ॥२१३
गध्रगोमायुनदार्तनष्टक्षुद्रविहगमे ।
चिताधमाततिरुचानीलीकृतदिगन्तरे ॥२१४
कुणपास्वादनमुदासंप्रहृष्टानिशाचरे
चरत्यमेध्येराभेन्द्रः श्मशानेदुःखपीडियः ॥२१५
एवमुक्त्वासवाश्लिष्यकण्ठंराज्ञोनृपात्मजा ।
कष्टशोकशताधाराविलल पाऽऽर्तयांगिरा ॥२१६

जिन राजा हरिश्चन्द्र के चलते समय राजा लोग मार्ग की धूल अपने दुपट्टे से झाड़ते थे वही आज असह्य दुःख से दुःखित हुए इस अपवित्र श्मशान में एकांकी घूमते हैं ।२११। जहाँ मृतकों के कपोलों के साथ खाड़े चारों दिशाओं में पड़े हैं तथा मृतकोंके निर्माल्य सूत्रमें बहुत से बाल लगे रहने के कारण जो घोर दिखाई दे रहा है ।२१२। मृतदेह से टपकती बसा और शुष्क काष्ठ से चारों दिशाएँ भर रही है और भस्म, अङ्गार और अधजली हड्डी और मज्जा के कारण अत्यन्त भयंकर हो गया है ।२१३। गृध्र तथा कोमायु के शब्द से छोटे-छोटे पक्षी जहाँ से भागते हैं तथा जहाँ चिता से धूम्र से दिशा-विदिशा नील वर्ण की हो गई है ।२१४। और माँस से प्रसन्न हुए राक्षस इधर-उधर घूमते हैं उसी स्थान में यह महाराज सतप्त हुए एकांकी फिरते हैं ।२१५। इस प्रकार कहती हुई रानी शैव्या राजा के कण्ठ से लिपट कर विलाप करने लगी ।२१६।

राजन्स्वप्नोऽथतथ्यवायदेतमन्यते भवात् ।
तत्कथ्यतांमहाभागमनोवैमुह्यतेसम् ॥२१७
यद्ये तदेयंधर्मज्ञास्तिधर्मेसहायता ।
तथैवविप्रदेवादिपूजनेपालनेभुवः ॥२१८
नास्तिधर्मः कुत सत्यमाजंवचानृशंसता ।
यत्रत्वधर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥२१९
इतितस्यावचः श्रुत्वानिश्वस्योष्णसगदगदम् ।
कथयामासतन्वंग्याथथाप्राप्ताश्वपाकता ॥२२०
रुदित्वासापिरुचिरंति श्वस्योष्णचदुःखिता ।
स्वपुत्रमरणंभोरुर्यथावृत्तंन्यवेदयत् ॥२२१
श्रुत्वाराजातदावाक्यंनिपपातमहीतले ।
मृतस्यपुत्रस्यतथाजिह्वायालेलिहन्मुखम् ॥२२२
यगस्यभिक्षांयाचावः कृपणौपुत्रगद्धनौ ।
तस्माच्छीघ्रं व्रजावोद्यपुत्रोयत्रप्रियोगतः ॥२२३
प्रियेनरोचयेदीर्घकालक्लेशमुपासितुम ।
नात्मायत्तश्चतन्यङ्क्पिश्यमेमन्दभाग्यताम् ॥२२४

रानी बोली—हे राजन् ! मैं जो देख रही हूँ यह स्वप्न है अथवा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो वह बताइये,क्योंकि मैं तो मोहवश विचार शक्ति को खोचुकी हूँ ।२१७। यदि यह सत्य है तो धर्म सहायक नहीं हुआ तथा देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन भी निष्फल हुआ तथा पृथिवी का पालन भी व्यर्थ ही रहा ।२१८। इसलिए धर्म नहीं, सत्य नहीं सरलता और सदयता भी नहीं, आपका तो धर्म ही परम धन है फिर क्यों राज्य से भ्रष्ट हो गये ।२१९। रानी शैव्या की वात सुनकर उष्ण श्वांस छोड़ते हुए राजा ने चांडलत्व प्राप्ति का यथावत वर्णन किया । ।२२०। उसका वृत्तान्त सुनकर रानी भी बहुत समय तक रोती रही और पुत्र मरने का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ।२२१। रानी की बात सुन राजा पृथिवी पर गिर पड़े और अपने मेरे पुत्र के मुख को चाटने लगे ।२२२। राजा ने कहा—हम उस पुत्र की लोभी यमराज से भिक्षा माँगें । हमारा पुत्र जहाँ गया है,हम भी अब वहीं चलें ।२२३। हे प्रिये!

मैं जब अधिक क्लेश नहीं सहना चाहता परन्तु मैं कैसा मन्द हूँ कि मेरी आत्मा भी मेरे वश में नहीं हैं ।२२४।

चण्डालेनानज्ञातः प्रवेक्ष्येज्वलनयदि ।
चण्डालदासतांयास्येपुनरप्यन्यजन्मनि ॥२२५
नरकेचपतिष्यामिकीटकः कृमिभोजनः ।
वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिल ॥२२६
असिपत्रवनेप्राप्यच्छेदंप्राप्स्यामिदारुणम् ।
तातंप्राप्स्यामिवाप्राप्यमहारौरवरौरवौ ॥२२७
मग्नस्यदुःखजलधौपारः प्राणवियोजनम् ।
एकोऽपिवालकोयोऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥२२८
ममदैवाम्बुवेगेमग्न सोऽपिवलीयसा ।
कथं प्राणान्विमुंचाभिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः ॥२२९
अथवानार्तिनाक्लिष्टोनरः पापमवेक्षते ।
तिर्यक्त्वेनास्तितद्दुःखनासिपत्रवनेतथा ॥२३०
वैतरण्यांकुतस्ताहृमपुत्रविप्लवे ।
सोऽहंसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने ॥२३१
निपतिष्यामितन्वंगिक्षन्तं चुक्तमम् ।
अनुज्ञावाचगच्छत्वविप्रवेशमभुच्रिस्मिते ॥२३२

यदि मैं चांडाल की आज्ञा के विना अग्नि प्रवेश करूंगा तो मुझें पुनर्जन्म में भी चांडाल का दास होना होगा ।२२५। अथवा कृमि भक्षक कीड़ा होकर नरक में रहना होगा अथवा वैतरणी पीव वसा रुधिर आदि से युक्त नरक की यातना भोगनी होगी ।२२३।अथवा आंस वन को प्राप्त होकर दारुण छेदन यन्त्रण भोगूंगा या रौरव अथवा महारौरव में दुःसह ताप में पड़ूंगा ।२२७। दुःख रूपी सागर में डूबने वाले के लिए पार भूमि प्राण त्याग ही हैं अहो मेरा जो एक बालक वश की वृद्धि वाला था ।२२८। वह भी देव रूपी जल में डूब गया, इस असीम दुर्गति रूप भोग के होते हुए भी पराधीन होने के कारण प्राण भी कैसे त्याग सकता हूं ।२२९। अथवा आर्त्त पुरुष को पाप का क्या देखना ? जो असह्य दुःख पुत्र का है, वैसा तिर्यग योनि असि

पुत्र वन ।२३०। अथवा वैतरणी में भी नहीं हैं, इसलिए पुत्र देहके साथ मैं भी प्रज्जवलित अग्नि में जल जाऊँगा, हे तन्वङ्गी ! मेरे द्वारा हुए अन्याय आचरण को क्षमा करो और मेरी आज्ञा से ब्राह्मण के घर जाओ ।२३१-२३२।

ममवाक्यंच तन्वंगिनिबोधाहृतमानसा ।
यदिदत्तं यदिहुतगुरवोयदितोषिता ।।२३३
परत्रसंगमोभूयात्पुत्रेऽसहचत्त्वया ।
इहलोकेकुत्तस्त्वेतद्भविष्यतिममेङ्गितम् ।।२३४
त्वयासहममश्रुयोगमनपुत्रमार्गणे ।
यन्मयाहसताकिंचिद्रहस्येबाशुचिस्मिते ।।२३५
अश्लीलमृक्तंतत्सर्वं क्षन्तव्य ममयाचता ।
राजपत्नीतिगर्वेणनावज्ञेयः सतेद्विज ।
सर्वयत्नेनतेतोष्यः स्वामिदैवतवच्छुभे ।।२३६
अहमप्यत्रराजर्षेदोप्यभानेहुताशते ।
दुःखभारासहाद्यैवसहयास्यामिवैष्वया ।।२३७
सहस्वर्गंचनरकहैवावांहिभुंक्ष्वहे ।
श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ।।२३८

मेरे कथन को आदर पूर्वक सुनो यदि मैंने दान, हवन अथवा गुरुजनों की सन्तुष्टि की है ।२३३। तो इस पुत्र और तुम्हारे साथ पुनर्जन्म में भेंट करूँगा, अब इस लोक में मेरा यह अभिप्राय सिद्ध होना सम्भव नहीं है।२३४। अथवा तुम्हें भी मेरे साथपुत्रके मार्गका अनुसरण करना चाहिए, बात हास्य के रूप में इस निर्जन स्थानमें।२३५ कुछअनुचित बात निकल गई हो तो उसे क्षमा करना, उस ब्राह्मणकाराजपत्नी होने के अहंमें निरादर मत करना उसको स्वामी अथवा देवताके समान सन्तुष्ट रखना ।२३६। रानी बोली-हे राजर्षे ! मैं भी जब इस दुःखभार को सहन करने में समर्थ नहींहूँ, इसलिए इस प्रज्वलित अग्निमें आपके साथ हीप्रवेश करूँगी ।२३७। वहां मैं पुत्र, और आप हम तीनोंही एक स्थानमें रहकर स्वर्ग या नरकका भोग करेंगे,रानीकी बातसुनकर राजा ने कहा २३८।

ततः कृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयंस्वकम् ।
भार्ययासहितश्चाँसौबद्धांजलिपुटस्तदा ॥२३९
चिन्तयन्परमात्मानमीशनारायणंहरिम् ।
अमादिनिधनंब्रह्मकृष्णंपीताम्बरशुभम् ॥२४०
तस्यचिन्तयमानस्तसर्वे देवः सवासवाः ।
धर्मं प्रमुखयः कृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥२४१
आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराञ्श्रृणुप्रभो ।
अयपितामहः साक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम् ॥२४२
साध्याश्चविश्वेमरुतोलोकपालाः सचारणा ।
नागाः सिद्धः सगन्धर्वारुद्राश्चैवतथाऽश्विनो ॥२४३
एतेचान्येचवहवोविश्वामित्रस्तथैव च ।
विश्वत्रयेणयोमित्र कर्त्तु नशकितः पुरा ॥२४४
विश्वामित्रस्तुतेमैत्रीमिष्टचाहर्तुं मिच्छति ।
आरुहोततः प्राप्तोधर्मः शक्रोऽथगाधिजः ॥२४५

पक्षियों ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र ने चिता बनाकर अपने पुत्र को उस पर रखा और पत्नी के सहित हाथ जोड़कर जैसे ही ।२३९। परमात्मा, ईश, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म,कृष्ण, पीताम्बरधारी,शुभदायक हृदय में वास करने बाले, अनादि, निधन, नारायण, हरि का चिन्तन किया ।२४०। वैसे ही धर्म को आगे करके इन्द्रादि देवगण शीघ्रतापूर्वक वहाँ पहुँचे ।२४१। वे सभी देवता कहने लगे-हे राजन् ! यह साक्षात् ब्रह्मा हैं, यह साक्षात् धर्म हैं।१४२। यह साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा सब लोकपाल नागगण, सिद्धगण गन्धर्वों सहित रुद्रगण तथा दोनों अश्विनीकुमार ।२४३। अथवा अन्यान्यासभी देवता अपने अपने वाहन सहित उपस्थित हैं और जो त्रैलोक्य के साथ मित्रता नहीं कर सकते वह विश्वामित्र भी आये हैं ।२४४। यह सभी आपके साथ मित्रता करने को आये हैं, धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीनों राजाके पास आये।२४५

मा राजन्साहसंकार्षीर्धर्मोऽहंत्वामुपागतः ।
तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ॥२४६
हरिश्चन्द्रमहाभागप्राप्तः शक्रोऽस्मितेऽन्तिकम् ।
त्वायास्भाय पुत्रेणजितालोकाः सनातनाः ॥२४७
आरोहत्रिदिवंराजन्भार्यापुत्रसमिन्वतः ।
सुदुष्प्रापनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥२४८
ततोऽमृतमयवर्षमपमृत्युविनाशनम् ।
इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः ॥२४९
पुष्पवर्षं चसुमहद्देवदुन्दुभिनिस्वनम ।
ततस्ततोवर्तमानेसमाजेदेवसंकुले ॥२५०
समुत्तस्थौततः पुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः ।
सुकुमारतनुः सुस्थः प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥२५१
ततो राजाहरिश्चन्द्रः परिष्वज्यसुतंक्षणात् ।
सभार्य्यः सश्रियायुक्तोदिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥२५२

धर्म बोला—राजन् ! अब इस सहासिक कार्य से निवृत्त होइए। मैं धर्म हूँ, मुझे आपने तितिक्षा, दम, सत्य इत्यादि गुणों से सन्तुष्ट किया है। इसलिए स्वयं यहाँ उपस्थित हूँ।२४६। इन्द्र बोले-हे महाभाग ! मैं इन्द्र हूँ आपने पत्नी पुत्र के सहित सभी सनातन लोकों को जीता है।२४७। इसलिए आप अन्य मनुष्य को दुर्लभ स्वर्ग में पत्नी और पुत्र के सहित चलो।२४८। पक्षियों ने कहा—इसके पश्चात् इन्द्र पिता स्थान में गए और वहीं उन्होंने अपमृत्यु का क्षय करने वाले अमृत की वर्षा की।२४९। तथा उस सभा में देवताओं न पुण्य वृष्टि की और दुन्दुभी वजने लगी।२५०। फिर उस महात्मा राजा का कोमल अङ्ग वाला पुत्र रोहिताश्व भी स्वस्थ होकर प्रसन्न मन से उठ बैठा।२४१। उस समय क्षण भर को राजा ने पुत्र का आलिगन किया तथा दिव्य वस्त्र और माला धारण कर पत्नी सहित सुशोभित हुए।२५२।

सुस्थः सम्पूणहृदयोमुदापरमयायुतः ।
बभूवतत्क्षणादिन्द्रोभूयश्चैनमभाषतम् ॥२५३

सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिपराम् ।
समारोहमाभागनिजानांकर्मणांफल: ॥२५४
देवराजाननुज्ञात: स्वामिनाश्पचेनवै ।
अगत्वानिष्कृतितव्यनारोक्ष्येऽहसुरालयम् ॥२५५
तवैनंभाविनक्लेवमगम्यात्ममायवा ।
आत्माश्वपाकतांनीतोदर्शितंतश्चचापलम् ॥२५६
प्रार्थ्यतेतत्पपंस्थानंसमस्तैर्मनुजैर्भुवि ।
तदारोहहरिश्चन्प्रस्थानंपुण्यंकृतांमणाम् ॥२५७
देवराजनमस्तुभ्यवाक्यन्चैतन्निबोधमे ।
प्रसादसुमुखयत्वांब्रवीमिप्रश्रयान्वित: ॥२५८
मच्छोकमग्नमनस: कोसलानगरेजना: ।
तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथयास्याम्यहंदिवम् ॥२५६

तथा भली प्रकार स्वस्थ और आनन्दित हुए तव इन्द्र ने उससे कहा ।२५३। हे महाभाग! आप पत्नी पुत्री सहित परम सद्गति पायेंगे इसलिए अपने कर्मफल के द्वारा स्वर्ग में निवास कीजिए ।२५४। हरिश्चन्द्र ने कहा मैं अपने स्वामी चाण्डाल की अनुमति के स्वर्ग में नहीं जा सकता ।२५५। धर्म ने कहा—राजन् ! तुम्हारे भावी क्लेश को जानकर मैंने ही चांडाल का रूप धारण किया था ।२५६। इन्द्र ने कहा जिस परम स्थान में पहुँचने के लिए पृथिवी के सब मनुष्य प्रार्थना करते हैं, तुम उस स्थान का गमन करो ।२५७। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरपते ! आपको नमस्कार है, मैं आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ, उसे सुनिए ।२५८। नगर के सभी मनुष्य मेरे शोक में पड़े हैं, मैं उन्हें छोड़कर स्वर्ग में कैसे जाऊँ ।२५९।

ब्रह्महत्यागुरोर्घातांगेवध: स्त्रीवधस्तथा ।
तुल्यमेभिमहापापभक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ॥२६०
भजन्तभक्तमत्याज्यमदुष्टत्यजत: सुखम् ।
नेहनामुत्रपश्यामितस्माच्छक्रादिवव्रज ॥२६१
यदितेसहिता: स्वर्गं मयायान्तिसुरेश्वर ।

ततो हर्मापयास्यामिनरकंवापितैः सह ॥२६२
बहूनिपुण्यपापानितेषांभिन्नानिवैपृथम् ।
कथसंघातभोग्यंत्वंभूयः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥२६३
शक्रखक्तेनृपोराज्यंप्रभावेणकुटुम्बिनाम् ।
यजतेचमहायज्ञैः कर्मपौर्त्तं करोति च ॥२६४
तच्चतेषांप्रभावेणमयासर्वमनुष्ठितम् ।
उपकर्तॄन्नसन्त्यक्ष्येतानहं स्वर्गलिप्सया ॥२६५
तस्माद्यन्ममदेवेशकिंचिदस्ति सुचेष्टितम् ।
दत्तभिष्टमणोजप्तंसामान्यतैस्तुनः ॥२६६
वहुकालोपभोग्यंहिफलंयन्ममकर्मणः ।
तदस्तुदिनमप्येकंतै समत्वत्प्रसादतः ॥२६७

ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या अथवा स्त्री हत्या का जो पाप होता है, वही पाप भक्त का त्याग करने में है ।२६०। अपने भक्तों का त्याग करने पर लोक परलोक में कोई सुख नहीं हैं, अतः आप स्वर्गको गमन करे ।२६१। हे देवेश्वर ! मेरे साथ वह भी स्वर्ग में जाय तो भी मैं भी वहां जाऊँगा अन्यथा उनके साथ नरक में भी निवास करूँगा ।२६२। इन्द्र बोले उन प्रजाजनों द्वारा विभिन्न प्रकार के पाप पुण्य हुए हैं, तो वे आपके साथ स्वर्ग में कैसे जा सकते हैं ।२६३। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरेश्वर ! कुटुम्बियों के प्रभाव से ही राजा राज भोगता है वावड़ी, कुए आदि बनाता है ।२६४। मैंने भी जो धर्म कार्य किए हैं, वह उनके सहयोग से किए हैं, इसलिए सामान्य स्वर्ग के लोभ में उन उपकार करने वालों का त्याग नहीं करूँगा ।२६५। इसलिए मैंने जो कुछ भी जप, दान पुण्य किया है, वह उनके सहित सब में समान हो ।२६६। मेरे पुण्य फल का जो भोग बहुत समय तक भोग के योग्य हो वह उन के साथ चाहे एक दिन को ही भोग सकूं ऐसा कीजिए ।२६७।

एवंभवित्यतीत्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रसन्नचेताधर्मश्च विश्वामित्रश्चगाधिजः ॥२६८
गत्वाऽशुनगरम्सर्वैचातुर्वर्ण्यसमायुतम् ।

हरिश्चन्द्रस्यनिकटेप्रोवाचविबुधाधिपः ॥२६६
आगच्छतुजनाः शीघ्रं स्वर्गलोकसुदुर्लभम् ।
धर्मप्रसादात्सम्प्राप्तंसर्वैर्युत्माभिरेवतुः ॥२७०
विमानकोटिसम्बद्धंस्वर्गलोकान्महीतलम् ।
गत्वाऽयोध्याजनं प्राहादिवमारुह्यतामिति ॥२७१
तदिन्द्रस्यवचःश्रुत्वाप्रीत्यातम्बचभूपते ।
आनीयरोहिताश्वश्वविश्वामित्रोमहतपाः ॥२७२
अयोध्याख्येपुरेरम्येसोऽभ्यर्षिचन्नृपान्मजम् ।
देवैश्चमुनिभिः सिद्धैरभिषिच्यनराधिरम् ॥२७३
राज्ञासहतदासर्वेहृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ।
सुपुत्रभृत्यदारास्तेदिवामारुरुहुर्जनाः ॥२७४

पक्षियों ने कहा—'ऐसा ही होगा' कहकर इन्द्र धर्म और विश्वामित्रजी ।२६७। सभी उस नगर में गये और सब प्रजाजनों को राजा हरिश्चन्द्र के सहित एकत्र किया, तब इन्द्र बोले ।२६८। हे मनुष्यो ! तुमने धर्म के प्रसाद से अत्यन्त कठिनता से प्राप्त स्वर्ग लोक को प्राप्त किया, इसलिए वहीं चलो ।२६०। इसके पश्चात् स्वर्ग से करोड़ों बिमान वहाँ आये और अयोध्यावासियों से कहा गया कि स्वर्गमें जाने के लिए इन विमानों पर शीघ्र चढ़ो ।२३१। फिर विश्वामित्र राजाको प्रसन्न करने के निमित्त इन्द्र के वचन से रोहिताश्व को वहाँ लाये२७२ और उसे अयोध्यानगरी के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया, उस समय सब वन्धु बाँधव सिद्ध, मुनि और देवगणों के समक्ष अभिषेक कर भार्या पुत्र सेवक आदि से मिलकर सभी स्वर्ग को चले ।२७३-२७४।

पदेपदेविमानातेविमानगमन्नराः ।
तदासंभूतहर्षोऽसौहरिश्चन्द्रश्चपार्थिवः ॥२७५
सप्राप्यभूतिमतुलाँविमानैः समहीपतिः ।
आसांचक्र पुराकारेव प्राकारसंवृते ॥२७६
ततस्तयद्धिमालोक्यश्लोकतत्रोशनाजगौ ।
दैत्याचार्योमहाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥२७७

हरिश्चन्द्रसमोराजानभूतोनभविष्यति ।
यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्यानैरन्तर्येणमानवः ॥२७८
तेनवेदाः पुराणानिसर्वेमन्त्रा सुसंग्रहाः ।
घुष्टाः स्यु पुष्करेतीर्थ प्रयागेसिन्धसागदे ॥२७९
देवागारेकुरुत्रो थे वाराणस्याविशेषतः ।
विषुवदग्रहणेचवयत्फलाजपतोलभेत् ॥२८०

मार्ग में वे एक दूसरे विमान में चढ़ रहे थे, उस समय राजा हरिश्चन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए ।२७५। तब उन्हें विमान में चढ़ने की महान् विभूति का अनुभव हुआ और वे बलयाकार परकोटे से संयुक्त स्थित रहे ।२७६। उस समय सब शास्त्रों के तत्वज्ञाता दैत्यों के आचार्य शुक्राचार्य जी ने राजा के ऐश्वर्य को देखकर प्रशस्ति गान किया ।२७७। वे बोले—राजा हरिश्चन्द्र के समान विश्व में न कोई हुआ न भविष्य में न होगा, क्योंकि वे तितिक्षा और दान के फल से अपने नगर निवासियों को भी स्वर्ग में ले गये इन राजा हरिश्चन्द्र की कथा को भक्ति सहित जो कोई श्रवण करेगा ।२७८। वह वेद पुराण, तथा सभी मन्त्रों के फल को पावेगा । जो कोई पुष्कर, प्रयाग, सिंधु सागर देव मन्दिर, कुरुक्षेत्र और वाराणसी में पाठ करेगा उसे विशेष फल मिलेगा तथा जो फल विषुवती और ग्रहण में जप करने से होता है ।२७९-२८०।

तत्फल द्विगुणं चैवसंयतात्माश्रृणोतियः ।
श्रुत्वातुपूजयेद्भक्त्यापुराणज्ञाद्विजोत्तमम् ॥२८१
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्चतयैवाऽन्नेनजैमिने ।
येनेव यत्कृतपुण्यतच्छक्यनमयोदितुम् ॥२८२
अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलमहत् ।
यदागतोहरिश्चन्द्रः पुरीन्चेन्द्रत्वमाप्तवान् ॥२८३
एततेसर्वमाख्यातंहरिश्चन्द्रविचेष्टितम् ।
यः श्रृणोतिसुदुःखार्तः ससुखमहदाप्नुयात् ॥२८४
स्वर्चार्थीप्राप्नुयात्स्वर्गं पुत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात् ।
भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्याराज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥२८५

अतः परंकथाशेषः श्रू यतांमुनिसत्तम ।
विपाकोराजसूयस्यपृथिवीक्षयकराणम् ।
तद्विपाकनिमितश्चयुद्धमाडिबकमहत् ॥२८६

उसने द्विगुण फल उसे इन्द्रिय के संयम पूर्वक सुनने से होता है इस कथा को सुनकर पुराण ज्ञाता, ब्राह्मण को सन्तुष्ट करे ।२८१। उसे गौ, भूमि स्वर्ण वस्त्र तथा अन्न प्रदान करने से जो गुण होता है, यह श्रवणंमीय है ।२८२। तितिक्षा और दान का महान् फल होता है उसी के प्रभाव से राजा हरिश्चन्द्र की इन्द्रत्व की प्राप्ति हुई और वे अपने नगर निवासियों सहित स्वर्ग को प्राप्त हुए ।२८३। पक्षियों ने कहा—हे जैमिने! आपसे हरिश्चन्द्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा गया, दुःखों से मनुष्यों को इसके श्रवण से अत्यन्त सुखकी प्राप्ति होती है ।२८४। इससे स्वर्ग-कांक्षी को स्वर्ग पुत्रेच्छु को पुत्र, पत्नी की कामना वाले को पत्नी तथा राज्य की इच्छा वाले को राज्य की प्राप्ति होती है ।२८५। हे मुनि-श्रेष्ठ ! अब तुम्हारे प्रति पृथ्वी के क्षय कारण, राजसूय यज्ञका विपाक तथा उस विपाक से महत् 'आड़िवक' युद्ध स्वरूप शेष कथा को कहते श्रवण करो ।२८६।
हैं,॥ इति श्रीमार्कंण्डेय पुराण हरिश्चन्द्रोपाख्यान नाम अष्टमोऽयायः ॥

९—आडि और वक युद्ध

राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रे गतेचत्रिदशालयम् ।
निश्चक्रामामहातेजाजलवासात्पुरोहितः ॥१
वसिष्ठोद्वादशाब्दान्तेगङ्गापर्यु षितोमुनिः ।
शुश्रावचसमस्तंतुविश्वामित्रविचेष्टितम् ॥२
हरिश्चन्द्रस्यनासश्चराज्ञश्चोदारकर्मणः ।
चाण्डालसंप्रयोगश्चमार्यातनयविक्रयम् ॥३
सश्रु त्वासुमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौः ।
चकारकोपंतेजस्वीविश्वामित्रमृषिम्प्रति ॥४
ममपुत्रशतंतेनविश्वामित्रेणखातितम् ।
तत्रापिनाभवत्क्रोधस्तादृशोयादृशोऽद्यमे ॥५
श्रु त्वानराधिपमिमंस्वराज्यादवरोपितम् ।

महात्मानंमहाभागंदेवब्राह्मणपूजकम् ॥६
यस्मात्ससत्यवाक्छान्तः यत्रावपिविमत्सरः ।
अनागाश्चैवधर्मात्माअप्रमत्तोयदाश्रयः ॥७
सपत्नीभृत्यपुत्रस्तुप्रापितोऽन्त्यांदशांनृपः ।
सराज्याच्च्यावितोऽनेनबहुश्चखिलीकृतः ॥८
तस्माद्दुरात्माब्रह्मद्विटप्राज्ञावनामवरोपितः ।
मच्छ.पापहतोमूढः सवकत्वमवाप्स्यति ॥९

पक्षियों ने कहा---जब राजा हरिश्चन्द्र राज्य से मुक्त होकर स्वर्ग को गये, उसके पश्चात राजाके पुरोहित महातेज वाले वसिष्ठजी जलसे बाहर निकले ।१। वसिष्ठजी बारह वष जलवास करके निकले थे, उन्होंने बाहर निकल कर विश्वामित्र का वृत्तान्त सुना ।२। उदारकर्मा हरिश्चन्द्र जिस प्रकार राज्यसे भ्रष्ट हुए और उन्हें चाण्डालत्व की प्राप्ति हुई तथा उनके पुत्र का विक्रय हुआ ।३। यह सब वृत्तान्त सुनकर वसिष्ठजी ने बिश्वामित्र पर अत्यन्त क्रोध किया क्योंकि वह राजा से बड़े प्रसन्न थे ।४। वसिष्ठजी ने कहा इतना क्रोध, उस विश्वामित्र के हाथसे अपने सौ पुत्रों के मरने पर भी मुझे नहीं हुआ था, जितना कि देवब्राह्मणों का पूजन करने वाले राजा के राज्य से भ्रष्ट होने का वृत्तान्त सुनकर हुआ है ।५। मेरे आश्रित सत्यावादी निवर निरहकारी, अप्रमत्त और धर्मात्मा राजा को ।६। भार्या, पुत्र तथा सेवकों के सहित दुर्दशा को पहुँचाया, अपने राज्य से च्युत करके भांति-भांति के दुःख दिये है ।७। इसलिए वह ब्रह्मद्वेषो, दुरात्मा मूर्ख याज्ञियों के यज्ञको नष्ट करने वाला विश्वामित्र मेरे शाप से अन्त को प्राप्त होकर वगुल की योनिको प्राप्त हो ।८।

श्रुत्वाशाप महातेजाविश्वामित्रोऽपिकौशिकः ।
त्वमप्याडिर्भवस्वेतिप्रशामवच्छत ॥१०.
अन्योन्यशापात्तौप्राप्तेत्रिर्पक्त्वंपरमद्युती ।
वसिष्ठः समहातेजाविश्वामित्रश्चकौशिकः ॥११
अन्यजातिसमायोगगतावष्यमितौजसौ ।
युयुधातेऽसिरब्धौमहाबलपराक्रमौ ॥१२

योजनानांसहस्रे द्वप्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः ।
यन्नवत्यधिकब्रह्मन्सहस्रत्रितयबकः ॥१३
तौतुपक्षयाहाराभ्यामन्योन्यस्योर्विक्रमी ।
प्रहरन्तौभयतोव्रं प्रजानांचकतुस्तदा ॥१४

पक्षियों ने कहा—विश्वामित्र जी ने शाप की बात सुनकर वशिष्ठ-जी को शाप दिया-तुझे चील की योनि प्राप्त हो ।१०। वशिष्ठ एवं विश्वामित्र दोनों ही अत्यन्त तेजस्वी थे, इसलिए पारपरिक शाप के वश दोनो ही खग-योनि को प्राप्त हुए ।११। वे दोनों अत्यन्त तेजस्वी महान् बली थे, अतः अत्यन्त क्रोधपूर्वक परस्पर युद्ध करने लगे ।१२। हे ब्रह्मन् ! आदि रूपी वशिष्ठ दो हजार योजन ऊँचा और बगुला रूपी विश्वामित्र तीस हजार छियानवे योजन ऊँचा उड़ा ।१३। उन दोनों अत्यन्त पराक्रमी पक्षियों के परस्पर प्रहारोंको देखकर प्रजाको अत्यन्त भय प्राप्त हुआ ।१४।

विधूयपक्षाणिवकोपक्तोवृत्ताक्षिराहनत् ।
आडिसोऽप्युन्नतग्रीवावकपद्भयामताडयत् ॥१५
तयोः पक्षानिलापास्ताः प्रपेतुगिरयोभुवि ।
गिरिप्रपाताभिहताचकम्पेचवसुन्धरा ॥१६
क्ष्माकम्पमानाजलधीनुद्वृत्ताम्भूंश्चकार च ।
ननामचेकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी ॥१७
कचिदगिरिनिपातेनकेचिदंभोधिवारिणा ।
केचिन्महीसँचलनात्प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥१८
इतिसर्वं परित्रस्तंहाहाभूतमचेतनम् ।
जगदासीत्सुसंभ्रान्तं पर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥१६
हावत्सहाकांतशिशोप्रयाह्ये षोऽस्मिसँस्थितः ।
हाप्रिपेकाँतशैलोऽयंपतत्याशुपलायताम् ॥२०
इत्याकुलीकृतेलोके संत्रासविमुखेतदा ।
सुरैः परिवृतः सर्वेराजगामपितामहः ॥२१

बगुले ने रक्तवर्ण वाले नेत्रों से सभी फैलाए हुए पंखों को चलाकर

चील को आहत किया,तभी चीलने कण्ठ उठाकर अपने पैर से बगुलेपर आघात किवा ।१५। उनके पंखों की हवा से अनेक पर्वत टूट कर गिरने लगे जिससे पृथ्वी भी कम्पायमान हो उठी ।१६। पृथिवी के कांपने से समद्र का जल उछलने लगा तथा पृथिवी पार्श्वकी ओर झुक गये ।१७। उस समय भूमण्डल के सभी जीव कोई पर्वत के गिरने से, कोई समुद्र की तरङ्गों से नष्ट होने लगें ।१८। इसप्रकार त्रास को प्राप्त विश्व-हाहाकार करता हुआ भ्रान्त हो उठा और पृथिवीमें विपरीतता होने पर, ।१९। सभी मनुष्य व्याकुल चित्त से स्वजनों को पुकारते हुए 'भागो' भागो' कहने लगे ।२०। भय से इस प्रकार चिल्लाते हुए कोई कहीं, कोई कहीं गये तब पितामह ब्रह्माजी स्वयं ही सब देवताओं के सहित वहाँ गये ।२१।

प्रत्युवाचचविश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ।
युद्धं वांविरमप्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यंव्रजन्तु च ।।२२
श्रृण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः ।।२३
ततः पितामहोडेवस्तद्दष्ट्वालोकसक्षयम् ।
तयोश्चहितमन्विच्छन्यिर्यग्भावमपानुदत् ।।२४
ततस्वौपूर्वदेहस्थौप्राहदेवः प्रजापतिः ।
व्युद्स्तेतामसेभावेवसिष्ठकौशिकार्षभौ ।।२५
जहिवत्सवसिष्ठत्दंन्वचकौशिकसत्तम ।
तामसंभवमाश्रित्यईद्दग्युद्धं चिकीर्षितम् ।।२६
राजयविपाकोऽयंहरिश्चन्द्रभूयतेः ।
युवयोर्विग्रहश्चाऽयंपृथिवीक्ष्यकारकः ।।२७
नचापिकौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्याते ।
स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकरापदेस्थितः ।।२८

और कुपित हुए दोनों पक्षियों से बोले कि तुम्हारा युद्ध समाप्तहों और भूमण्डल के सभी जीव स्वस्थ हों ।२२। ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर भी दोनों पक्षी युद्ध करने से किसी प्रकार न रुके ।२३।तब ब्रह्माजी

ने प्रजाका संहार देखकर उसके हितार्थ दोनोंका खगत्व हर लिया।२४। जब उन्हें पूर्व देह की प्राप्ति हुई तब उनका तमोगुण मिटा, यह देखकर ब्रह्माजी ने उन दोनों से कहा।२५। हे वसिष्ठ ! विश्वामित्र ! तुम तमोगुण के अवलम्बन से जो युद्ध करते थे, उसे छोड़ो।२६। पृथिवीको नष्ट करने वाले जिस युद्ध को तुम कर रहे थे वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ करने का फल है।२७। इन विश्वामित्र ने राजा का कोई अपराध नही किया, इसके विपरीत उनको स्वर्ग प्राप्त कराकर उपकार किया है।२८।

तपोविघ्नस्तकर्त्तारौकामक्रोधवशंगतौ।
परित्यजतभद्रंवीब्रह्महिचरबलम् ॥२९
एवमुक्तौयतस्तेनलज्जियौतावुभावपि।
क्षमयामासतुःप्रोत्या परिष्वज्यपरस्परम् ॥३०
ततः सुरैवन्द्यमानोब्रह्मालोकनिजययौ।
वसिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कोविकोऽपिस्वमाश्रयम् ॥३१
एतदाडिबकंयुद्धं हरिश्चन्द्रकथांतथा।
कथिष्यन्यितयेमर्त्याः सम्यक्श्रोष्यन्तिकैवये ॥३२
तेषांपापापनोदंतुश्र ुतंह्येवकरिष्यति।
नचेवविघ्नकार्याणिभविष्यन्तिकदाचन ॥३३

तुम काम, क्रोध के वश में पड़कर तप में विघ्न कर रहे हो, इसलिए इन दोनों का त्याग करो, ब्रह्मत्व से बढ़कर अन्य कोई वल नहीं है, तुम्हारा कल्याण हो।२९। ब्रह्माजी की बात सुनकर दोनों अत्यन्त लज्जित हुए और परस्पर क्षमा माँगते हुए आलिंगन करने लगे।३०। फिर देवताओं से पूजित हुए ब्रह्माजी अपने लोक को गए और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र ने भी अपने-अपने स्थान को गमन किया।३१। जो व्यक्ति आड़िबक युद्ध और हरिश्चन्द्रकी कथा कहेगा अथवा करेगा।३२। उसके सभी पाप नष्ट होंगे इसे सुनकर कार्यारम्भ करेगा तो उसके कार्य में कभी बिघ्न उपस्थित न होगा।३३।

१०—मृत्यु दशा वर्णन

संशयंद्विजशार्दूला प्रब्रूतममपृच्छतः।
आविर्भावतिरोभावोतानां यत्रसंस्थितौ ॥१
कथंसञ्जायतेजन्तुः कथं वासविवर्द्धते ।
कथवोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ॥२
निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्यकथं बावृद्धिमृच्छति ।
उत्क्रान्तिकालेचकथंचिद्भावेनवियुज्यते ॥३
कुतस्दोमृतस्तथाश्नातिउभेसुकृतदुष्कृते ।
कथंतेचतथातस्यफलंसम्पादयन्त्युत ॥४
कथ नजीर्यंतेमत्रपिण्डोकृतइवाशये ।
स्त्रीकोष्ठेयत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरूण्यपि ॥५
भक्ष्याणितत्रनोजन्कुर्जीर्य्यतेकथमल्पकः ।
कथंभोक्तासस्वर्वस्यकर्मणः सुकृतस्यवै ॥६
एयन्मेब्र तसकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम् ।
तदेतत्परमंगुह्ययत्रमुह्यतिजन्तवः ॥७

जैमिनि बोले—हे द्विजशार्दूल ! जिसमें प्राणियों का जन्म मरण संघटित है उस विषय से मेरे सन्देह को दूर करिये ।१। जीवकी उत्पत्ति और वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वह पीड़ा को सहन करता हुआ गर्भ में किस प्रकार रहता हैं ।२। फिर गर्भ से निकल कर वृद्धि को प्राप्त होता, मृत्यु के समय उसका प्राण कैसे निकल जाता है ? ।३। काल के गाल में जाकर जीव पुण्य पाप कैसे भोगता है और पाप पुण्य अपने-अपने फल का सम्पादन किस प्रकार करते हैं ।४। जठरानल में जाकर कठिनता से पाक वस्तु भी पच जातीहैं तो साधारण पिण्डीबाला हुआ जीव स्त्री के जठर में क्यों नहीं पच जाता ? ।५। जठराग्नि मेंपच कर जीव नष्ट क्यों होता है तथा सुकृत के फलको किस प्रकार भोगता है ।६। जिस प्रकार मेरा सन्देह दूर हो सके, उस प्रकार मुझे बताइये । इस गूढ़ रहस्य में प्राणी मोहित है ।६।

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासुनिवेशितः ।

दुर्भाव्व: सर्वभूतानाभावसमाश्रित: ॥८
तश्शृणुष्वमहाभागयथाप्राहपितु: पुरा ।
पुत्र: परमधर्म्मात्मासुमतिनर्विनामत: ॥९
ब्राह्मणोभार्गव: कश्चित्सुतमहामति: ।
कृतोपनयनंशान्तंसुमतिजडरूपिणम् ॥१०
वेदानधीस्वसुमतेयथानुक्रममादित: ।
गुरुशुश्रूषणेव्यग्रोभैक्षान्नकृतभोजन: ॥११
ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्टवायज्ञानमुत्तमम् ।
इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेणावनंतत: ॥१२
वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राट्‌निष्परिग्रह: ।
एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥१३

पक्षियों ने कहा---अपने प्राणियों के भावाभाव वाला जो प्रश्न किया है, वह अत्यन्त गूढ़ है ।८। पुराकाल में अपने पिता के प्रति सुमति नामक एक धर्मात्मा पुत्र ने जो कहा था, वह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, ध्यान से सुनो ।९। एक समय भार्गव वंश के किसी महामति नामक ब्राह्मण ने अपने जड़ भाव युक्त पुत्र सुमति से कहा ।१०। हे सुमते ! गुरु की सेवा में रहकर भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करता हुआ प्रथम वेदाध्ययन कर ।११। फिर गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ इच्छित पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वन को प्राप्त हो ।१२। वन में वास करके सन्यासी होकर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति होने पर सोच नहीं रहता ।१३।

इत्येवमुक्त बहुशीजडत्यान्नाऽऽहकिञ्चन ।
पिताऽपितसुवहुश: प्राहप्रीत्यापुन: पुन: ॥१४
इतिपित्रासुतस्तहाष्प्रलोभिमधुराक्षरम् ।
सचाद्यमानोबहुश: प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥१५
तातैतद्बहुशोऽम्यस्तयत्वयाऽद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानिशास्त्राणिशिल्पानिविविधानि च ॥१६
जन्मनामयुतसाग्र ममस्मृतिपथगतम् ।
उत्पन्नज्ञानबोधस्यवेदै: किंमेप्रयोजनम् ॥१७

निर्वेद परितोषाश्चक्षययुद्धयुदयेरता: ॥१७
शत्रु मित्रकलत्राणाँवियोगा सङ्गमास्तथा ।
मातरोविविधाद्रष्टा: पितरोविविधास्तथा ॥१८
अनुभूतानिसौख्यानिदु खानिवहसहस्रश: ।
बान्धवाबहव: प्राप्ता: पितरश्चपृथग्विधा: ॥१९
विण्मूत्रपिच्छिलेस्त्रीणांतथाकोष्ठमयोषितम् ।
पीड़ाश्चसुभूतारोगाणाश्चसहस्रांश: ॥२०
गर्भदु:खान्यनेकानिवालत्वेयौवनेतथा ।
वृद्धतायांतथाप्तानितानिसर्वाणिसंस्मरे ॥२१

पक्षियों ने कहा—इस प्रकार पिता द्वारा वहुत-सी बातें कहने पर भी जड़ता प्राप्त पुत्र ने कोई उत्तर न दिया, परन्तु स्नेह के वशीभूत हुए पिता सबसे बारम्बार कहने लगे ।१४। पिताके प्रलोभन युक्त वचनों को बारम्बार सुनकर सुमति कुछ हँसा और उसने पिता से कहा ।१५। आप इस समय जिस विषय का उपदेश मुझे दे रहे है, उसका अनेक बार अभ्यास कर चुका हैं, उसके अतिरिक्त अनेकों शास्त्र एवं शिल्प शास्त्र का भी अभ्यास कर चुका हूँ ।१६। कुछ अधिक दश हजार वर्ष की बात मुझे याद हैं, मैं अनेक बार दु:ख पा चुका हूँ, अनेक वार सन्तुष्ट हुआ हूँ, अनेक बार क्षीणता और बार दु:ख पा चुका हूँ, । अब मुझे ज्ञान उपलब्ध है तो वेदाध्ययन से क्या लाभ है ? ।१७। अनेक वार मेरा शत्रु, मित्र, कलत्र सहित संयोग और वियोग हो चुका हैं,मैंने अपने अनेक माता-पिता देखे हैं ।१८। सहस्रों प्रकार के सुख दु:ख का मुझे अनुभव है वांधव और पिता सभी अनेक प्रकार से देख चुका हूँ ।१९। मैंने अनेक बार मल मूत्र युक्त नारी-जठर में निवास किया है, तथा हजारों बार रोगों की यन्त्रणा प्राप्त की है ।२०। गर्भ की यन्त्रणा बाल्यकाल, युवावस्था तथा वृद्धावस्था में जितनी बार जो दु:ख प्राप्त किया, वह सब मुझें याद है ।२१।

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांश्चापियोनिषु ।
पुनश्चपशुकीटानांमृगाणामथपक्षिणाम् ॥२२
तथैवराजभृत्यानांराज्ञांचाहरुशालिनाम् ।

समुत्पन्नोऽस्मिगेहेषुतथैवतववेश्मनि ॥२३
भृत्यतांदासताँचैवगतोऽस्मिबहुशोनृणाम् ।
स्वामित्वमीश्वरत्वंचदिद्रत्वंतथागतः ॥२४
हत्वातमयाहतश्चान्यैर्हतमेघावितंतथा ।
दत्तममान्यैरन्येभ्यामयादत्तमनेकशः ॥२५
पितृभातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च ।
तुष्टोऽसकुत्तथादैत्यमप्रुधौताननोसतः ॥२६
एवंसमारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतातसङ्कटे ।
ज्ञानयेत न्मयाप्राप्तमोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥२७
विज्ञातेयत्रसर्वोऽयमग्यजुःसामसंज्ञितः ।
कियाकलापोविगुणोनसम्यक्प्रतिभातिमे ॥२८

मैं बहुत बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, पशु, कीट, पक्षी आदि आदि योनियों में उत्पत्न हो चुका हूँ ।२२।जैसे आपके यहाँ उत्पन्नहुआ हूँ, वैसे ही अनेकों बार राजसेवकों तथा वीरों के यहाँ उत्पन्न हो चुका हूँ ।२३। मैं अनेक बार सेवक एवं भृत्य हुआ हूँ,अनेक वार स्वामी तथा प्रधान हुआ हूँ और अनेक बार दरिद्रता भोग चुका हूँ ।२४। मैंने बहुत से मनुष्यों को मारा और बहुतों ने मुझे भी मारा है, मैंने अनेक बार दान दिया तथा अनेक बार दान ग्रहण किया है ।२५।पिता माता,भ्राता सुहृद, भार्या आदिसे अनेक बार सन्तुष्ट हुआ और अनेक बार दीनदशा को प्राप्त होकर अश्रु बहाता रहा ।२६। इस प्रकार इस संकट से परिपूर्ण संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करते करते मुझे मोक्ष के देने वाले ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी हैं ।२७। इस प्रकार ज्ञान मिलने से ऋक यजुसाम नामक सम्पूर्ण क्रियाकलाप का मुझे भली प्रकार ज्ञान है ।२८।

तस्मादुत्पन्नबोधस्यवेदैः किमेप्रयोजनम् ।
गुरुविज्ञानतुप्तस्यनिरीहस्यसच्छात्मनः ॥२९
षटप्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्चयत् ।
गुणेश्चवर्जितब्रह्मतत्प्राप्स्यामिपरंपदम् ॥३०
रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजरातुराम् ।

विज्ञातास्यमग्रग्राहिसंघपाशशताकुलाम् ॥३१
तस्माद्यास्याम्यहंतातत्यक्त्वेमांदुःखसन्तितम् ।
त्रयीधर्मपधर्माढ्किपापफलसन्निभम् ॥३२
तस्यतद्वचनंश्रु त्वाहर्षविस्मयगद्गदम ।
पिताप्राहमहाभागः स्वसुतहृष्टमानसः ॥३३
किमेतद्वदसेवत्सकुतस्तेज्ञानसम्भवः ।
केनतेजड़तः पूर्वमिदानीनुप्रबुद्धता ॥३४
किन्नशापविकारोऽयमुनिदेवकृतस्तवः ।
यते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥३५

इसलिए जब मुझे ज्ञान प्राप्त ही हैं और मैं गुरु विज्ञानमें तृप्ततथा चेष्टाहीन और सदात्मा हूँ तो वेदज्ञान से क्या प्रयोजन है ? ।२९। मैं सुख दुख, हर्ष, रस तथा निर्गुण ब्रह्म पद को प्राप्त हूँ ।३०। तथा रस हर्ष भय, उद्वेग क्रोध अमर्ष और वृद्धावस्था द्वारा नितांत व्याकुल और सैकड़ों बन्धों से व्याप्त रहा हूँ ।३१। अतः इस दुःखरूपी प्रवाह का त्याग करके मुझे जाना है स्त्री विद्या का धर्म अधर्म जैसा लगता है मैं इसे छोड़कर ब्रह्मपद पाऊँगा ।३२। पक्षियों ने कहा पुत्रके वचनको सुन कर प्रसन्न चित्तहुए पिताने हर्ष विस्मयसे युक्त गद्गद् वचन कहे ।३३। पिता ने कहा—हे पुत्र ! तुम यह क्या कहते हो? तुम्हें ऐसा ज्ञान कहाँसे प्राप्त हुआ? तुम तो जड़स्वभाव वाले थे,अब ऐसी ज्ञान बुद्धि किसप्रकार उत्पन्न हो गई ?३४। तुम्हारा जो छिपा हुआ ज्ञान अब प्रकट हुआ है, वह क्या किसी मुनि या देवता के शाप से अप्रकट था ? ।३५।

शृणुतातयथावृत्तममेदंसुखदुःखदम् ।
यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मस्मत्परन्तुयत् ॥३६
अहमासंपुराविप्रोन्यस्त तत्मापरमात्मनि ।
आत्मविद्याविचारेषुपरांनिष्मापागतः ॥३७
सततंयोगयुक्तस्यसततभ्याससङ्गमात् ।
सत्सँयोगात्स्वभावाद्विचारविधशोधनात् ॥३८
तस्मिन्नेवपराप्रोतिर्ममासोद्यु ंजतः सदा ।

आचार्यतांचसंप्राप्तः शिष्यसन्देहहृतम् ॥३९
ततः कालेनमहताएकान्तिकमुप गतः ।
आज्ञानाकृष्टसद्‌भावोविपन्नश्चप्रमादतः ॥४०
उत्क्रान्तिकालादारभ्यस्मृतिलोपोनमेऽभवत् ।
यावदव्दंगतंचैवजन्मनांस्मृतिमागतम् ॥४१

पुत्र बोला, मैं अपने सुख दुःख को देने वाले सभी वृत्तान्तों को कहता हूं, उन्हें सुनो ।३६। मैं पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण था, उस समय ब्रह्म में आत्मा को लीन करके मैंने आत्म विद्या प्राप्त की थी ।३७। सदैव योगरत होने के कारण अभ्यास, सत्सङ्ग, सत्स्वभाव विचार एवं विधियों का उद्धार ।३८। तथा निरन्तर ब्रह्म में रत रहने के कारण मैं उस समय में अत्यन्त प्रसन्न था तथा शिष्यों के सन्देहों का निवारण करने वाला आचार्य था ।३९। कुछ समय व्यतीत होने पर एकांत में रहने लगा, फिर अज्ञान वश प्रमादी होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ ।४०। फिर भी मरण पर्यन्त मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई, इसलिए जन्म समय में जितने बर्ष व्यतीत हुए उन सभी का मुझे स्मरण है ।४१।

पूर्वाभ्यासेनतेतंवसोऽहंतातजितेन्द्रियः ।
यतिष्ययामितथाकर्तुं नभविष्येयथापुनः ॥४२
ज्ञानदानफलंह्ये तद्यज्जातिस्मरणमम् ।
नाह्येतत्प्राप्यतेतातत्रयाधर्माश्रितैर्नरैः ॥४३
सोऽहपूर्वाश्रमादेवनिष्ठाधर्ममुपाश्रितः ।
एकान्तिकत्वमुप गम्ययतिष्याम्यात्ममोक्षणे ॥४४
तद्‌ब्रूहित्वमहाभागयत्ते सांशयेकंहृदि ।
एकानतापिटेप्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमानुयाम् ॥४५
पिताप्राहततः पुत्रं श्रद्दधतस्यतद्वचः ।
भवतायद्वयं पृष्टाः संसारग्रहणाश्रयम् ॥४६
शृणुतातयथामत्वमनुमयाऽसकृत् ।
संसारचक्रमजर स्थितिर्यस्यनविद्यते ॥४७
सोऽहं वदामितेसर्वंतवैवानुज्ञयापितः ।

उत्क्रान्तिकालादारभ्ययथानान्योवदिष्यति ॥४८

पूर्वाभ्यास के कारण मैं जितेन्द्रिय होकर अब पुनः उसी प्रकार का यत्न करूँगा ।४२।जिससे ज्ञान और दानके फल-स्वरूप मुझे सब जन्मों का वृत्तान्त याद है, परन्तु क्षत्री धर्मके आश्रयवालों को जन्म-जन्मांतर वृत्त याद नहीं रह सकता ।४३। पूर्व जन्म में अर्जित निष्ठा धर्मसे ही मैं मोक्ष में यत्न करने वाला हुआ हूं ।४४। इसलिए आपके हृदय में जो संशय है, उसे कहिए, मैं एक उपाय के उस विषय में आपको प्रीतिमान् करके उऋण हो जाऊँगा ।४५। पक्षियों ने कहा कि पिता ने यह बात सुनकर, जो प्रश्न आपने किया है, वही श्रद्धा सहित अपने पुत्र से किया ।४६। पुत्र बोला—इसका जो बारम्बार मुझे अनुभव हुआ है, वह यथावत कहता हूँ—इस संसार चक्र की स्थिति कहीं भी नहीं है।४७ हे पिता ! आपकी आज्ञा से वह सब वृत्तान्त कहता हूँ जिसका वर्णन करने में अन्य कोई भी समर्थ नहीं होगा ।४८।

ऊष्माप्रकुपितः कायेतीव्रवायुसमीरतः ।
भिनत्तिममस्थानानिदीप्यमानोनिरिन्धनः ॥४९
उदानोनामपवनस्ततश्चोद्ध्वं प्रवर्तते ।
भुक्तानामम्बुक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥५०
ततोयेनाम्बुदानानिकृतान्यन्तरसास्तथा ।
दत्ताः सतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते ॥५१
अन्नानियेनदत्तानिश्रद्धापूतेन चेतसा ।
सोऽपितृप्तिमवाप्तोविनाप्यन्नेनवंतदा ॥५२
येनानृतानिनोक्तानिप्रीतिभेदेः कृतोचन ।
आस्तिकः श्रद्दधानश्चसुखमृत्पुमृच्छति ॥५३
देवब्राह्मणपूजायाँयेरतानाऽनसूयव
मुल्लावदान्याह्रीमन्तस्तनराः सुखमृत्यवः ॥५४
योनकामान्नसरम्भान्नद्वेषाद्धंखन्सृजेत् ।
यथोक्तकारीसौम्यचससुखमृत्युमृच्छति ॥५५
अवारिदायिनोताह क्षुधांचानन्नदायिनः ।

प्राप्नुवन्तिनराः कालेतस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥५६

देह स्थित पित्त कुपित होकर बिना ईंधन के ही तीव्रवायुके चलने से दीप्त होकर सब मर्म स्थान को भेदता है।४६। और देह का उदान वायु उस पर वर्तमान होकर सब जलीय भक्ष्य वस्तु की अधोगति को रोकता है, उस समय प्राणी का आत्मा वियुक्त होता है।५०। जिसने जल अन्न रस का दान किया है, वही उस मरण रूप आपत्काल में प्रसन्न रहता है।५१। जो पवित्र मन और श्रद्धा पूर्वक अन्नदान करते हैं, वह उस समय बिना अन्न के भी तृप्त रहते हैं।५२। जो पुरुष कभी मिथ्या भाषण नहीं करते किसीकी प्रीतिमें मन मुटाव नहीं कराते यथा जो आस्तिक एवं श्रद्धालु है, उनकी ही सुख पूर्वक मृत्यु होती है।१३। जो देव ब्राह्मण का पूजन करते हैं, असूया रहित शुद्ध चित्त वाले एवं श्रेष्ठ वचन कहने वाले तथा लज्जावान् हैं वे सुख से प्राण त्यागते हैं तथा जो काम क्रोध, द्वेष से धर्म का त्याग नहीं करते, सत्य वचन कहते हैं तथा जो सौम्य स्वरूप हैं, उनका प्राण त्याग सुख पूर्वक होता है।५५। जो प्यासे को जल और क्षुधार्त्त को अन्न नहीं देते वह मरण काल में भूख प्यास से पीड़ित होते हैं।५६।

शीतंजयन्तिधनदास्तापंचन्दतदायिनः।
प्राणघ्नींवेदनांकष्टांयेचानुद्वेगकारिण ॥५७
मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्तिमहद्भयम्।
वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपीड्यन्तेऽधमानराः ॥५८
कूटसाक्षीमृषावादीश्चासदनुशास्तिवै।
तेभाहमृत्यवः सर्वेतथान्येवेदविनिन्दकाः ॥५९
विभीषणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः।
आगच्छन्तिदुरात्मान्नीयमस्यपुरुषास्तदा ॥६०
प्राप्तेषुदृक्पथतेषुजायतेतस्यवेपथुः।
क्रन्दत्यावरतं सोऽथभ्रातृमातृसुतानथ ॥६१
साऽस्यवागस्फुटातातएकवर्णविभाव्यते।
दृष्टिश्चभ्राम्यतेत्रासाच्छ्वासाच्खुष्यत्यथःननम् ॥६२

उदर्ध्वंश्वासिन्व:सोऽयथष्टिभ ग्रसमन्वित: ।
तत: सवेनाविष्टस्तच्छरीरं विमुञ्चति ॥६३

कोष्ठका दान करने वालों को मरण कालमें शीत तथा चन्दनदान करने वालों को ताप नहीं सताता तथा प्राणियों को भयभीत करने वालों को उस समय अत्यन्त यन्त्रणा भोगनी होती हैं ।५७। जो मोह और अज्ञान की शिक्षा देते है, उन अधर्मों को अत्यन्त भय तथा घोर पीड़ा की प्राप्ति होती है ।५८। मिथ्या साक्षी देने वाले, मृषावादी, वेद निन्दक तथा कुशासका की अज्ञान से मृत्यु होती है ।५९। तथा उनके मरणकाल में अत्यन्त घृणित वेश वाले भयंकर यमदूत मुद्गर हाथ में लिए हुए आते हैं ।६०। जैसे ही उन्हें यमदूत दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही वे कम्पित शरीर से भ्राता माता और पुत्र को पुकारते हुए रुदन करते हैं ।६१। उस समय उसकी बात समझने भी नहीं आती, वर्ण विकृत होता है और दृष्टि घूमने लगती है, त्रास और उच्छवास से मुख भी सूख जाता है ।६२। फिर ऊर्ध्वश्वांस चलती है, नेत्र की दृष्टि नष्ट होती है और वेदना से ग्रसित होकर प्राण छूट जाते हैं ।६३।

वाय्यग्रसारीतदूपदेहमन्यत्प्रपद्यते ।
तत्कर्मजंयातनार्थंनमातृपितृसम्भवम् ।
पत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानै: प्राग्भवैयथा ॥६४
ततोदूतोयमस्याशुपाशैर्बध्नातिदारुणै: ।
दण्डप्रहारसंभ्रान्तंकर्षतेदक्षिणादेशम् ॥६५
कुशकण्टकवल्मीकशंकुपाषाणकर्कशे ।
तथा प्रदीप्तज्वलनेवह्विवभ्रशतोत्कटे ॥६६
प्रदीप्तादित्यद्रप्तेचदह्यमानेतदशूभि: ।
कृष्यतेयमदूतैश्चाशिवासन्नादिभीषणे ॥६७
विक्रष्यमाणस्तेघोरैर्भभ्ययमाण:शिवाशतै: ।
प्रयातिदारुणोमार्गेपापकर्मायमक्षयम् ॥६८
छत्रापावत्प्रदातारोयेचवस्त्रप्रदानरा: ।
तेयान्तिमनुजामार्गंतंसुखेनतथान्नदा: ॥६९

विमानैः सेज्ज्वलैयान्तिभूमिदानप्रदानराः ।
एवंक्लेशाननुभवन्नवशः पापपीड़ितः ।
नीयतेद्वादशाहेन धर्मराजपुरनरः ॥७०

फिर वायु के आगे होकर कर्मफल रूप यंत्रणा का भोग करने के लिए बिना माता-पिता के होने वाले अन्य शरीर को धारण करते हैं, वह शरीर पहिले के समान वय, अवस्था और संख्या वाला होता है । ।६४। फिर यमदूत उन्हें दारुण पाश में बाँध, दण्ड प्रहार करते हुए दक्षिण की ओर खींचते हैं ।६५। कुश, काँटे वाल्मीकि शकु तथा पत्थर से भी कठोर एवं प्रज्वलित अग्नि से व्याप्त, कहीं सैंकड़ों गर्त से युक्त ।६६। सूर्य की अत्यन्त उष्णता से जलते हुए, कहीं सैंकड़ों गीदड़ों के शब्द से व्याप्त तथा यमदूतों, से खींचे जाते हुए ।६७। इस प्रकार उस प्राणी को सैंकड़ों गीदड़ खाते हैं ऐसे मार्ग से पापी पुरुषों को यमलोक में जाना होता है ।६८। जिन्होंने छत्री, जूता, वस्त्र अन्न दिया है वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं।६९। जो भूमिदान करते हैं, वे शुभ बिमान में बैठकर वहाँ पहुँचते हैं, पापी मनुष्य क्लेशों को पाते हुए बारहवें धर्मराज के पुर में पहुँचते हैं ।७०।

कलेवरेदह्यमानेमहान्तंदाहमृच्छति ।
ताड्यमानेतथैवातिछिद्यमानेचदारुणाम् ॥७१
क्लिद्यमानेचिरजन्तुर्दुःखमवाप्नुते ।
स्वेनकर्मविपाकेन देहास्तरमतोऽपिसन् ॥७२
तक्षयद्वन्धवास्तोयं प्रयचघन्तितिलः सह ।
यच्चपिण्डयप्रयच्छन्तिनीयमानस्तदृश्नुते ॥७३
तैलाभ्यङ्गोबन्धवानामंगसंवाहनचयत् ।
तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिसवान्धवाः ॥७४
भूमौस्वपद्भिर्न्नात्यत्तंक्लेशमाप्नोतिवान्धवैः ।
दानंददद्भिश्चत्यथाजन्तुराप्याय्यतेद्यतः ॥७५
नीयमानःस्वकगेहंद्वादशाहं सपश्यति ।
उपभुङ्क्तेतथादतंयोयपिण्डादिकं भुवि ॥७६

द्वादशाहात्परघोरमावासंभीषणाकृतिम् ।

याम्यंपश्यन्यथोजन्तुः कृष्यमाणः पुर ततः ।।७७

शरीर के जलने पर भीषण जलन तथा ताड़ित या छेदित होनेपर घोर वेदना भोगनी होती है ।७१। यह शरीर जब जल में भीगता है, तब देहान्त आ य में भी कर्म फल से सदा दुःख का अनुभव होता है ।७२। उसके निमित्त उसके बांधव जिस तिल जौ को जल सहित देतेहैं, उस समय वह उसी का भोजन करता है।७३। बांधवों को तेल या उबटन लगाना इसलिए वर्जित है कि मृतक के लिए भोजन में वही वस्तु मिलती है ।७४। बांधवों के धरती में सोने से उसका क्लेश मिटता है और दान करने से उसे प्रसन्नता होती है ।७५। बारहवें दिन उनको फिर उसी घरमें जाना होताहै और वहाँ उसके निमित्तजो जलपिण्डादि दिया जाता है, उसका भोजन करता है ।७६। बारहवां दिन बीतन पर पुनः यमदूतों द्वारा खींचा जाकर अत्यन्त भीषण आकार वाले लोहमय यमपुर को जाता है ।७७।

गतमात्रोऽतिरक्ताक्षं भिन्नाज्जनचयप्रभम् ।

मृत्युकालान्तकादीनांमध्येपश्यतिवैयमम् ।।७८

दंष्ट्राकरालवदनंभ्रुकुटि दारुणाकृतिम् ।

विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतंव्याधिशतैः प्रभुम् ।।७९

दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तंसुभैरवम् ।

तन्निर्दिष्टांततोयातिगतिजन्तुः शुभाशुभाम् ।।८०

रौरवेकूटसाक्षीतुयातियश्चानृतीनरः ।

ब्रह्मघ्नोहत्ययादष्टोगोघ्नश्चपितृघातकः । ८१

क्षत्रदारापहारीचसीमानिक्षेपहारकः ।

पुरुषपत्न्यभिगामीचकन्यागामीतथैव च ८२

तस्यस्वरूपंगदनोरौरवस्यनिशामय ।

योजनानां सहस्रेद्वे रौरवोहिप्रमाणतः ।

जानुमात्रप्रमाणश्चततःश्वभ्रःसुदुस्तरः ।।८३

तत्रांगारचयोपेतकृतचधरणासमम् ।

जाज्वल्यमानस्तोव्रेणतापिताङ्गारभूमिना ।।८४

वहाँ पहुँच कर मृत्यु, काल, अन्तक आदि पार्षदों के सहित यमराज के दर्शन करना है ।७८। वह यमराज अत्यन्त विकराल वदन, भीषणाकार, विरूप तथा वक्र आकृति के असंख्य व्याधियों से घिरे हुए हैं ।७९। वह दण्ड और पाश धारण किये हुए अत्यन्त भयंकर आकार वाले हैं उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ अथवा निम्न गतिको प्राणी प्राप्त करते हैं, ।८०। मिथ्यावादी तथा मिथ्यासाक्षी देने वालों को रौरव नरक में डाला जाता है, ब्रह्म हत्यारे, गौ हत्यारे तथा पिता की हत्या करने वाले ।८१। खेत, सीमा, धरोहर या स्त्री का हरण करने वाले, गुरु पत्नी या कन्यासे समागम करने वालेभी उसी रौरव नरकको प्राप्त होते हैं ।८२। अब उस रौरव नरक का स्वरूप बताता हूँ उसे सुनो । वह दो सहस्र योजन लम्बा है, उसके जंघा के बारबर गहरा गर्त है । ।८३। उस गर्त में मिट्टी जैसे अङ्गारे भरे हैं, उन अङ्गारों के ताप से प्राणी सदा जलता रहता है ।८४।

तन्मध्येपापकर्माणिविमुञ्चन्तियमानुगाः ।
संदह्यमानस्ताँब्रेणवह्ननातत्रधावति ।।८५
पदेपदेचपादोऽस्यश यतेजीर्यतेपनः ।
अहोरात्रैणीद्धरणपादन्यासचगच्छति ।।८६
एवंसहस्रमुत्तीर्णोयोजनानाँविमुच्यते ।
ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतातृङ् निरयमृच्छति ।।८७
तत सर्वेषुनिस्तीर्णः पापीतिर्यक्त्वमश्नुते ।
कृमिकीटपतङ्गेषु श्वापदेमशकादिषु ।।८८
गत्व गजद्रुमाद्येषुगोष्वश्वेषुतथैच ।
अन्यासुचैवपापसुदुःखदासुचयोनिषु ।।८९
मानुषं प्राप्यकुब्जोकृतिसतोवामनोऽपिवा ।
चाण्डालपुल्कसासुनरोयोनिषुजायते ।।९०

पापी मनुष्यों को यमदूत उसमें फेंकते है, वे उस तीव्र अग्निमें दाह को प्राप्त हुए इधर-उधर भागते हैं।८५। इसप्रकार पग-पग पर उनके पाँव अग्निसे जलकर फटते और नष्ट होते हैं, दिन रात्रि में केवल एक

बार पैर रखने और उठाने की सामर्थ्य उनमें होती है ।८६। इस प्रकार पैर रखने पर हजार योजन चलने पर वहाँ से मुक्त होकर उसी जैसे अन्य नरक को प्राप्त होता है ।८७। इस प्रकार सब नरकों को भोगकर तिर्यक योनि में जन्म लेता है, क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग श्वापद, और मच्छरें होता ।८८। फिर गौ, अश्व, गज, वृक्ष, लता आदि अनेक पाप योनियों को प्राप्त होता हुआ, मनुष्य जन्म ग्रहण करता है । उसमें भी कुबड़, कुत्सित, बौना, चाण्डाल, पुल्कस आदि निन्दनीय योनियों में उत्पन्न होता है ।८९-९०।

अविशिष्टेनपापेनपुण्येनचसमन्वितः ।
ततश्चारोहणोजातिशूद्रवैश्यमुपादिकाम् ।।९१
विप्रदेवेन्द्रताश्चापिकाचिदवरोहणीम् ।
एवन्तुपापकर्म्मणोनककेषुवत त्यधः ।।९२
यथापुण्यकृतोयान्तितन्मेनिगदतः शृणु ।
तेयमेनविनिर्दिष्टाँयान्तिपुण्यांगतिनराः ।।९३
प्रगीनगन्धर्वगणैः प्रवृत्ताप्सरसागणाः ।
हारनूपुरमावुर्यशोभितान्युतमानि च ।।९४
प्रयान्त्याशुविमानानिनानाद्रिव्यस्रगुज्ज्वला ।
तस्माच्चप्रच्युताराजामन्येषांचमहात्मनाम् ।।९५
जायन्तेचकलेतत्रसद्वृत्तारिपालकाः ।
भोगान्म प्राप्नुवन्त्युग्रांस्ततोयान्त्युर्व्वमन्यथा ।।९६
अवरोहिणीश्चसस्प्राप्यपूर्वंवद्यान्तिमानवाः ।
एतत्ते सर्वमाख्यतयथाजन्तुर्निपद्यते ।।९७

फिर शेष रहे पुण्य से मनुष्य योनि में क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ।९१। ब्राह्मण होता हुआ सुरपति तक हो सकता है और पाप कर्म करे तो अवरोहिणी गतिसे क्रमपूर्वक उन्हीं योनियों में गिरता है ।९२। अब उस गति को कहता हूँ, जिसे पुण्यवान् मनुष्य पाते हैं । वहभी यमराज के द्वारा निर्दिष्ट गति को प्राप्त करते हैं ।९३। उसके गमन काल में

उसके चारों ओर गन्धर्व गान करते और अप्सरायें नृत्य करती हैं, तथा हारनूपुर माधुर्य आदि से युक्त अति श्रेष्ठ ।६४। विमान उनके पास आते हैं और वे दिव्य मालादि धारण पूर्वक उनमें चढ़कर जाते हैं,फिर पुण्य शेष होने पर विमान से पतित होकर महात्मा ।६५। या राजवंशमें उत्पन्न होकर सदाचार का पालन करते और अनेक प्रकार के सुखभोग कर क्रमशः ऊर्ध्व गति को पाते हैं ।६६। यदि अवरोहिणी दशाको प्राप्त होते हैं तो प्रथम पूर्वोक्त सब भोग करते हैं, हे तात ! जीवों की जिस प्रकार मृत्यु होती है, वह कह दिया, अब गर्भ धारण का प्रकार सुनिये ।६७।

११—गर्भस्थिति वर्णन

निषेकँमानवस्त्रीणांवीजांप्रोक्तरजस्यथ ।
विमुक्तमात्रोनरकात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते ॥१
तेनाभिभूतंतत्स्थैर्यंयातिबीजद्वयंपितः ।
कललत्वँ बुदवेत्वंततःपेशित्वमेव च ॥२
पेष्यां यथाणु बीजाँस्यादंकुरस्तद्वदुच्यते ।
अङ्गानाँचतथोत्पत्ति पंचानामनुभागश ॥३
उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनामास्थश्रवभानिच ।
पुरोह यान्तिचाँगेभ्यस्तद्वत्तेभ्योनखादिकम् ॥४
त्वचिरोमाणिजायन्तेकेशाश्चैवततः परम् ।
नारिकेलफलाँयद्वत्सकोषंवृद्धिमृच्यति ॥५
तद्वप्प्रयात्यसौबुद्धिसकोषोऽधोमुखः स्थितः ॥६

पुत्र ने कहा—स्त्री-पुरुष के रज वीर्य मिश्रण कालमें स्वर्ग या नरक से छूटते ही मनुष्य उसका अवलम्बन करता है ।१। तथा उससे अभिभूत होकर दोनों बीज स्थिर होकर बुलबुले के लम्बे या गोल आकार को प्राप्त होते हैं ।२। उस अण्डाकार स्थित सूक्ष्म बीजको अंकुर कहते हैं, उस अंकुर के विभाग से पाँचों अङ्ग उत्पन्न होते हैं ।३। फिर सभी उपाङ्ग उत्पन्न होकर उनसे अंकुर और उससे सुखादि उत्पन्न होते हैं ।४। फिर त्वचा पर रोमावली और केशों की उत्पत्ति होती है, और

फिर सब अङ्ग और उद्भबकोशों की समान भाव से वृद्धि होती है ।५। अर्थात् जैसे नारियल का फल कोष सहित वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही गर्भकोष सहित नीचे की ओर मस्तक लिए बढ़ता है ।६।

तलेतुजानुपार्श्वाभ्यांकरौन्यस्यसवर्द्धते ।
अंगुष्ठोचोपरिन्यस्तोजान्वोरग्रे तिणांगुलौ ।।७
जानुपृष्ठेतथानेत्रेणानुमध्येचनासिका ।
स्फिचोपार्ष्णिद्वयस्थेवबाहुजंघेबहिः स्थिते ।।८
एवं वृद्धिक्रमाद्यातिजन्तुस्त्रीगर्भसंस्थितिः ।
अन्यसत्त्वोदरेजन्तोर्यथारूपंतथास्थितिः ।।९
काठिन्यमग्निनायातिभुक्तपीतेनजीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयींस्थितिर्जन्तोस्तथोत्तरे ।।१०
नाड़ीचाप्यायनीनामनाभ्यांतस्यनिबध्यते ।
स्त्रीणांतथान्नशुषिरेसातिबद्धोप जायते ।।११
क्रामन्तिभुक्तपीतानिस्त्रीणांगर्भोदरे यथा ।
तैराप्यायितदेहोऽसौजंन्तुवृद्धिमुपैतिवै ।।१२
स्मृतौस्तस्यप्रचान्त्यस्यवह्नद्यः ससारभूमयः ।
ततोनिर्वेदमायातिपीडचमानइतस्ततः ।।१३

जब निम्न मुख किये प्राणी गर्भ काष में रहता है, तब जानु और पार्श्व सहितदोनों हाथ नीचेके भागमें रहतेहैं, दोनों अंगूठे जानुपरतथा सब अंगुलियां जानु के अगले भाग में फैली रहतीहैं ।७। दोनों चक्षुजानु के पीछे और नासिका जानुके मध्यमें रहती है दोनों कूल्हे पार्ष्णिपर तथा बाहु और जंघा बाहरी भाग में रहती हैं ।८। गर्भ में प्राणी इस प्रकार बढ़ता है, अन्यान्य जीवोंमें अपनी-अपनी आकृतिके अनुसार वहां रहता हुआ बढ़ता है ।९। उदर की अग्नि मे कठिन होता जाता है ओर खाये पीये पदार्थ द्वारा जीवन धारण होता है। पाप और पुण्य की अधिकता के भेद से गर्भ वास भी विभिन्न प्रकार का है ।१०। उनकी नाभि में निबद्ध आप्यायनी नामक नाड़ी स्त्री की आंत से लगी रहती है ।११। उसी के छिद्र से सब खाये-पिये हुए पदार्थ उसकी देहमें जाकर

देह को तृप्त करते हुए बढ़ाते हैं ।१२। उस समय उसे संसार के अनेक जन्म याद आते हैं और तब वह अत्यन्त दुःखित होता है ।१३।

पुनर्नैवकरिष्यामिमुक्तमात्रइहोदरात् ।
तथातथायतिष्यामिगर्भंन प्स्याम्यहयथा ॥१४
इति चिन्तयतेस्मृत्वाजन्मदुःखशतानिवै ।
यानिपूर्वानुभूतानिदैवभूतानिय निवै ॥१५
ततः कालक्रमाज्जन्तु परिवर्तत्यधोमुखः ।
नवमेदशमेवापिमासिसञ्जायतेततः ॥१६
निष्क्राज्यमाणोवातेनप्राजापत्येनपीड्यते ।
निष्क्राम्यतेचविलपव्हृदिदखनिपीडितः ॥१७
निष्क्रान्तश्चोदरान्ममूर्च्छमसह्यांप्रतिपद्यते ।
प्राप्नोति चेतनांचाऽसौवायुस्पर्शसमन्वितः ॥१८
ततस्तंवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी ।
तयांविमोहितात्मासौज्ञानभ्रशमवाप्न्ते ॥१९
भ्रष्टज्ञानोबालभावततोजन्तुःप्रपद्यते ।
ततः कौमारकावस्थाँयौवनबृद्धतामपि ॥२०
पुनश्चमरथद्वज्जन्मचाप्नोतिम नवः ।
ततः संसारचक्रेत्स्मिन्भ्राम्यतेघटियन्त्रवत् ॥२१

दैव प्रदत्त शत-शत जन्म के दुःखों को याद कर वह सोचता हैं कि उदरसे निकलकर फिर कभी ऐसे कार्य न करूँगा, जिनसे फिर भी गर्भ में रहने का दुःख भोगना पड़े ।१४-१५। फिर उस अधोमुखी जींव का जन्म नौवे या दशवें महीने में होता है ।१६। उस समय प्राजापत्य वायु से अत्यन्त पीड़ाको प्राप्त हुआ, दुःखसे पीड़ित तथा विलाप करता हुआ बाहर निकलता है।१७। उदर से निकलते ही उसे मूर्छा होती और वायु के स्पर्श से चेत होता है ।१८। फिर मोहिनी माया उसे मोहित कर देती है, जिससे उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ।१९। ज्ञान के नष्ट होने पर बाल्य, कौमार, युवा और वृद्धावस्था आदि दशाओं को वह क्रमशः

प्राप्त करता है।२०। फिर मरकर उसी रूप में जन्म लेता है, इस प्रकार प्रकार संसार चक्र में वह उस घटीयन्त्र की भाँति निरन्तर घूमता रहता है।२१।

कदाचित्स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्निर यंनरः।
नरकचैवस्वर्गचकाचिध्दचमृतोश्नुते ॥२२
कदाँ चिद्भक्तकर्माचसूतः स्वल्पेनगच्छति ॥२३
कदाचिदल्पैश्चततोजयतिऽशुभैः।
स्वलोकेनरकेवापिभुक्तप्रस्योद्विजोत्तम् ॥२४
नरकेषुमहद्दुःखमेतद्यत्स्वर्गवासिनः।
दृश्यन्तेचातमोदन्तेपात्यमानाश्चनारकाः ॥२५
स्वर्गेपिदुःखमतुलाँयदारोहणकालतः।
प्रभृत्यहँपतिष्यामीत्येतन्मनसिवर्त्तते ॥२६
करकांश्चैवसंप्रेक्ष्यमहद्दुखमवाथ्यते।
एतांगतिमहँगतेत्यहनिशमनिर्बृतः ॥२७
गर्भवासेमहाद्दुःखजयमानस्ययोनितः।
जातस्यबालभावेचवृद्धत्वेदुःखमेवच ॥२८

कभी स्वर्ग कभी नरक तथा कभी दोनों स्थानों में जाता रहता है।२२। कभी पुनः इसी स्थानमें जन्म धारण पूर्वक कर्मफल भोगता और कभी सव कर्मों का भोग कर लेने पर अल्पकाल में ही प्राण छोड़ देता।२३। कभी साधारण से शुभ या अशुभ कर्म से स्वल्प काल को स्वर्ग या नरक में पड़ता है।२४। स्वर्ग में निवास करने वालोंको अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद करते देखकर पापियों की बड़ा दुःख होता है।२५। परन्तु स्वर्ग में भी असीमित दुःख है, वहाँ के निवास काल में भय लगा रहता है कि पुण्यके क्षीण होने पर पुनः उसी में गिरना पड़ेगा।२६। उन नरकवासियों की गति देखकर वे सोचते हैं कि हम भी फिर ऐसी गति को पायेंगे ऐसा विचार कर उन्हें अत्यन्त दुःख होता रहता है।२७ प्रथम तो गर्भवास ही अत्यन्त दुःखपूर्ण हैं, फिर-योनि छिद्र द्वारा बाहर

निकलना तो नितान्त ही कष्टमय हैं और जन्म होने पर बाल्यावस्था और वृद्धावस्था यह दोनों ही कष्ट देने वाली है।२८।

कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धयौवनचाऽति दुःसहम्।
दुःखप्रायावृद्धताचमरणेदुःखमुत्तमम् ॥२९
कृष्णमाणश्चयाम्यैश्चनरकेषुच्चपात्यतः।
पुनश्चगर्भोजन्माऽथमरणनरकस्तथा ॥३०
एवसंसारचक्रेऽस्मिञ्जन्तवोघटियन्त्रवत्।
भ्राम्यन्तेप्राकृतर्बन्धैर्बद्ध्वावध्यन्तिचामकृत्ण ॥३१
नास्तितातासुखकिंचिदत्रदुःखसताकुले।
तस्मान्मोक्षायतताकथसेव्यामयात्रयी ॥३२

काम, क्रोध, ईर्ष्या आदिसे परिपूर्ण युवावस्था तो अत्यन्त ही दुःख मयहे, उस प भा वृद्धावस्था को तो दुःख की खान ही समझिये, उससे भी बढ़कर मरण मे तो अत्यन्त घोर दुःख है :२९। इसके पश्चात् जब यमदूत खींचकर नरक मे ढकेलते है, तब तो दुःखों की सीमा ही नहीं रहती फिर भी गर्भ में रहना जन्म लेता मरना और पुनः नरक की प्राप्ति होती है।३०। इस प्रकार प्राणी इस संसार चक्र में घटी यन्त्रके समान निरन्तर घूमते हुए बन्धन के दुःख को बारम्बार भोगते हैं।३१ असंख्य दुःखो वाले इस ससार मे लेश मात्र भी सुख नही है। इसलिए जब मोक्ष प्राप्त के लिए प्रयत्नशील हूँ तो त्रयीविद्या धर्मका क्यों सेवन करूँ? मुझे तो अपरा विद्या को प्राप्त करना है।३२।

१२—महारौरवादि नरक वर्णन

साधुवत्सत्वयाख्यातसंसारगहनपरम्।
ज्ञानप्रदानसभूतंसमाश्रित्यमहाफलम् ॥१
तत्र तेनरका सर्वंयथाबरोरवस्तथा।
वर्णितास्तान्समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ॥२
रौरवस्तेसमाख्यातः प्रथमंनरकोमया।
महारौरवसंज्ञनतुश्लणुष्वनरकवितः ॥३
अगम्यागमनेयेचअभक्ष्यभक्षणेरताः।

मित्रद्रोहकराश्चैवस्वामिविश्रम्भघातका: ।।४
परदारताश्चैवस्वदारपरिवर्जिन: ।
मागभयंकारयेचतडागाग्रामभेदका: ।।५
एतेऽयेचदुराचारा दह्यन्तेतत्रकिंकरै: ।
योजनानांसहस्त्राणिसप्तपंचसमन्तत ।
तत्रताम्रमयीभूमिरधस्तस्यहुताशन: ।।६
तत्तापतप्तासासर्वाप्रोद्यदिन्दुसमप्रभा ।
विभात्यतिमहारौद्रादर्शनस्पर्शनादिषु ।७

पिता ने कहा—हे वत्स ! ज्ञान देने के रूप में महा फलदायक परम संसार-रहस्य का तुमने भलीप्रकार वर्णन किया है ।१। रौरव नरक तथा अन्यान्य नरकों का जो वर्णन किया, अब उसी को विस्तार सहित कहो ।२। पुत्र ने कहा पिताजी ! मैंने प्रथम आपको रौरव नरक का वर्णन किया था, अब महा रौरव नरक का वर्णन सुनिये ।३। गमन के अयोग्य मार्ग में जाने वाले अभक्ष्य भोजन करने वाले, मित्रद्रोही तथा स्वामी से विश्वास घात करने वाले ।४। पर स्त्री का सेवन करने वाले, अपनी पत्नी को त्यागने वाले, मार्ग तड़ाग और उपवनों को नष्ट करने वाले ।५। पापियोंको वहीं ले जाकर यमदूत दग्ध करते हैं,उसका प्रमाण चारों ओर बारह योजन है, उसकी भूमि ताम्रमयी तथा नीचे अग्निकी खान वाली है ।६। अग्नि के ताप से तप्त हुई वह ताम्र वर्ण वाली भूमि बिजली की चमक के समान सब दिशाओं को प्रकाशित करती है उस देखना या छूना अत्यन्त भयङ्कर है ।७।

तस्यांबद्ध: कराभ्यांचपद्भ्यांचैवयमानुगै: ।
मुच्यतेपापकृन्मध्येलुठयमाम: सगच्छति ।।८
काकैर्वकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा ।
भक्ष्यमाणस्तथागृध्रैर्द्रुतंमार्गेविकृष्यते ।।९
दह्यमान: पितर्मातर्भ्रातस्तातेतिचाकुल: ।
वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति ।।१०
एव वस्मान्नरै: मोक्षोह्यतिक्रान्तंरवाप्यते ।

वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतदुष्टबुद्धिभिः ॥११
तथान्यस्तुममानामसोऽतिशीतः स्वभावतः।
महारौरववद्दीर्घस्तथातितसमावृत्तः ॥१२
गोवधश्चकृतोयेनभ्रातृणांघ तएवच ।
अबन्नवालधातीचनीयतेशीतसकरे ॥१३
शीतार्त्तास्तधावन्नोवनरास्तमसिदारुणे ।
परस्परंसमासाद्यपरिरभ्याश्रयन्ति च ॥१४

पापियों के हाथ पाँव बाँधकर यमदूत उन्हें उसमें डालते हैं तब वे उसमें पड़े लेटते हैं ।८। मार्ग में काक, बगुले, भेड़िये, उलूक, बिच्छू मच्छर और गृघ्रादि द्वारा खाये जाते हैं ।९। फिर दग्ध होते, हुए, माता, पिता भ्राता इत्यादि चिल्लाते हुए अत्यन्त उद्विग्न तथा अशान्त रहते हैं ।२०।सदा पाप करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य हजार वर्षमें उसका अतिक्रमण करके मुक्त हो पाते हैं ।११। उसके पीछे ही घोर अन्धकार से आवृत तम नाम नरक है, वह महा रौरव के समान ही विशाल तथा अत्यन्त शीतल है ।१२। उसमें गौ-हत्यारे, भ्रातृ-हत्यारे और बालघातियों को डाला जाता है ।१३। इस नरक में गिरने वाले जीव उस महान् अन्धकार में शीतसे आर्त्त होकर इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं तथा दूसरे नारकीयों से मिलकर उनमें लिपट कर वहाँ रहते हैं ।१४।

दन्तास्तेसांचभज्यन्तेशीतार्तिपरिकम्पिताः ।
क्षुधात्तृष्णाप्रवलास्तत्रतथिवान्येऽप्युपद्रवाः ॥१५
हिमखण्डवहोवापुभिनत्यस्थीनिदारुणः ।
मज्जासृग्गलितस्मादश्नुवन्तिक्षुधान्विताः ॥१६
लेसिह्यमानाभ्राम्यन्तेपरस्परसमागमे ।
एवंतत्रापिसुमहान्क्लेशस्तमसिमानवैः ॥१७
प्राप्यतेब्राह्मणश्रेष्ठयावद्दुष्कृतसंशयः ।
निकृन्तनइयिख्यातस्तोऽन्योनरकोत्तमः ॥१८
तस्मिन्कुलालचक्राणिन्नाभ्यन्त्यविरतंपतिः ।
अदृष्टदृष्टवदब्रूयादश्रुतंश्रुतमेव च ॥१९

एकाक्षरैगुरुंयस्तुदुराचारोगमन्यते ।
न शृणोतिगुरोर्वाक्यशास्त्रवाक्यतथैव च ॥२०
एतोषांदुराचारास्तत्रतैर्यमपुरुषैः ।
तेष्वापोष्यनिकृत्यन्तेकालसूत्रेणमानवाः ॥२१
ययानुगांगुलिस्थेतआपादतलमस्तकम् ।
नचेषांजोमितभ्रशोजा तोद्विजसत्तम् ॥२२

शीत से काँपने रहने के कारण उनके दाँत टूट जाते हैं तथा भूख-प्यास आदि सभी उपद्रव प्रबल हो जाते हैं ।१४। हिम खण्डों को बहाने वाली दारुण वायु उनकी हड्डियों को तोड़ देती है जिससे मज्जा और रक्त गिरता है । वे प्राणी क्षुधातुर होकर उसी का भोजन करते है।१६। परस्पर मिल कर शरीरों के चाटते हुए घूमतेहैं इसप्रकार इन्हें अत्यन्त क्लेश रहता है ।१७। जब तक भली प्रकार पापों का क्षय नहीं हो जाता तब तक तम नामक नरक में महान् क्लेशों को भोगते हैं उनके पीछे निकृन्तन नामक एक प्रधान नरक है ।१८। वह कुम्हार के चाक के समान निरन्तर घूमता रहता हैं, उस चक्र में पापियों को काल सूत्र से काटा जाता है और न देखे हुए के समान तथा न सुने हुए को सुने हुए के समान ही वर्णन करता है ।१९। जो दुराचारी मनुष्य एकाक्षर दाता गुरु को ईश्वर के समान नहीं मानता या गुरु और शास्त्र के वचन को नहीं पालता ।२०। वे पापी मनुष्य उस चक्र पर चढ़ाये जाकर काल सूत्र से पैरों से मस्तक तक काटे जातेहै तो भी उनका जीवन नष्ट नहीं हो पाता ।२१-२२।

छिन्नामितोषांशतशः खण्डान्यैक्यंब्रजन्तिच ।
एववर्षसहस्राणिछिद्यतेंपापकर्मिणः ॥२३
तावद्यावदशेषवैतत्पापहिक्षयंगताम् ।
अप्रतिष्ठंचनरशृणष्वगदतोमम ॥२४
यत्रस्थैर्न्नारचैर्दंखमसह्यमनुभूयते ।
स्वधर्मरतविप्राणांविध्नंयरपुसमाचरेत् ॥२५
सबद्धैर्दारुणैःपांशैर्नीयतेचक्रसंकरैः ।
तान्येवतचक्राणिघटीयंत्राणिचान्यतः ॥२६

दुःखस्यहेतुभूतानिपापकर्मकृतांनृणाम् ।
चक्रेष्वारोपिताः केचिद्भ्राम्यन्तेत्रमानवाः ॥२७
यावद्वर्ष सहस्राणिन तेषाँस्थितिरन्तरा ।
घटीयन्त्रेषुचैवास्योवद्धस्तोयेयथाघटो ॥२८

फिर वह सौ-सौ टुकड़े होकर पूर्ववत् मिल जातेहैं और हजार वर्ष तक इसी प्रकार काटे और जोड़े जाते हैं ।२३। जब तक कि उनके पाप नष्ट नहीं हो जाते अब अप्रतिष्ठ नामक का वर्णन सुनो ।२४। जहां रह कर असह्य क्लेश होते हैं जो मनुष्य स्वधर्म तत्पर ब्राह्मणों के समक्ष विघ्न उपस्थित करता हैं ।२५। उसे दारुण पाश में बाँधकर चक्र लेकर नरक में डालते हैं वह चक्र और घटीयन्त्र ।२६। पत्तियों के लिए दुःखों के कारण रूप होते हैं । कुछ प्राणी उस चक्र पर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं ।२७। उनको सम नरक मे एक हजार वर्ष रहना होता हैं कोई पापी छोटे घड़े के समान बाँधा जाकर ।२८।

भ्राम्यन्तेमानवारक्तमुद्गिरन्तः पुनः पुनः ।
अन्त्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरस्रविलस्विभिः ॥२९
दुःखानितेप्राप्नुवन्तियान्यसह्यानिजन्तुभिः ।
आसिपत्रवनं नामनरकश्रणुचापरम् ॥३०
योजनानांसहस्रं योज्वलदग्न्यास्तृतावनिः ।
ब्रह्मचारिव्रतानांचतपसांविघ्नमाचरेत् ॥३१
असिपत्रवनंयांतियेसदोद्वेगकारिणः ।
तप्ताः सूर्यकरैश्चडैर्यत्रातीवसुदारुणैः ॥३२
प्रपतन्तिसदात्रप्राणिनोनरकौकसः ।
तन्मध्येचवनंरम्यंरस्निग्धपत्रं विभाव्यते ॥३३
पत्राणितत्रखड्गानाफलानिद्विजसत्तम् ।
श्वानश्चतत्रसबलाः स्वनन्त्ययुतशोभिताः ॥३४
महावक्त्रामहादंष्ट्राव्याघ्राइवभयानकाः ।
ततस्तद्वनमालोक्यशिशिरच्छातमग्रतः ॥३५

प्रप्रान्तिप्राणिनस्ततीव्रतृट्पपरिपीडिता:।
हामातर्हातातइतिक्रन्दन्तोऽतीवदुखिता: ॥३६

उसे घटी यन्त्र पर घुमाया जाता है जिससे वह वारम्बार रक्त वमन करता है। उसकी आँखें मुख द्वारा बाहर निकलती है, रक्त की धारा बहती है और आँखे निकल आती हैं।२९। वहाँसे अत्यन्त पीड़ित हो कर असह्य दुःख पाते हैं, इसके पीछे असिपत्र नामक एक दारुण नरक का वर्णन करता हूँ।३०। यह नरक पृथिवी को सहस्र योजना पार करके स्थित जलती हुई अग्नि से व्याप्तहै जो ब्रह्मचारी व्रत और तप से भ्रष्ट होते हैं।३१। वे उस असिपत्र वन को प्राप्त होते हैं, वे भयङ्कर एवं प्रकाण्ड सूर्य किरणों से तप कर इसमें पड़ते हैं।३२। उसमें एक अत्यन्त मनोहर-वन है, देखने में उसके सब पत्ते अत्यन्त चिकने प्रतीत होते हैं।३३। हे द्विजोत्तम! उसके सभी पत्रखड्गरे के फलक जैसे हैं, वहाँ अत्यन्त बलीं श्वान भौंकते रहते हैं।३४। वे व्याघ्र के समान विशाल दाड़ वाले थे. जिनकी दाढ़ें तीव्र थीं तथा वे अत्यन्त भयङ्कर थे। उस वन को शीतल छाया से युक्त देखकर।३५। क्षुधापिपासा से कातर जीव उसमें घुमकर दुःखित चित्त से 'हा माता, हा पिता' पुकारते, हुए रुदन करते हैं।३६।

दह्यमानाङ्घ्रियुगलधारणोस्थेनतवह्निता।
तेषांगतानांतत्रासिपत्रपातीसमीरण: ॥३७
प्रवातितेनपात्यन्तेतेषांखड्गास्तथोपरि।
तत: पतन्तितेभूमौज्वलत्पावकसंचये ॥३८
लेलिह्यमानेचान्यत्रप्तोऽशेषमहीतले।
सारमेयास्तत: शीघ्रं शातयन्तिशरीरत: ॥३९
तेषाभगानिरुदतांत्वचंश्चातीवभीषण:।
असिपत्रवनंतातमयैतत्कीर्त्तिततव ॥४०
अत: परंभीमतरंतप्त कुंम्भनिबोधमे।
समन्तस्तप्तकुम्भांवह्निज्वालासमावृता: ॥४१
ज्वलदग्निचयोवृत्तस्तैलायश्चूर्णपूरित:।
तेषुदुष्कृत कर्मणोयाम्य: क्षिप्ताह्यधोमुखा: ॥४२

अग्नि-युक्त पृथिवी से उनके पाँव दग्ध होते हैं तथा असिपत्रों को

गिराने वाला वायु चलता है ।३७। जिससे खड्गवत् गिरते हुए असिपत्र उन पर पड़ते हैं, फिर वे जलती गई अग्नि में गिराये जाते हैं ।३८। तब जीभ से चाटते हुए पृथिवी पर गिरते हैं और वहां अत्यन्त भयंकर श्वान उन रुदन करते हुए प्राणियों के सभी अङ्गों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। हे तात् ! आपसे असिपत्र वन नामक नरक का वर्णन किया गया है ।४०। इसके पीछे जो तप्त कुम्भ नामक भयङ्कर नरक है, अब उसके विषय में कहता हूं। इस नरक के चारों ओर अग्नि की लपटें उड़ती रहती हैं ।४१। प्रज्वलित अग्नि से तप्त होता हुआ तैल और लोहे से युक्त चूर्ण से युक्त उस नरक में पापी मनुष्य को यम के दूत अधोमुख करके गिराते हैं ।४२।

दूषयेद्धर्मशास्त्राणियेचान्येतीर्थदूषकाः ।
भुक्तभोगांतुयोनारींमिष्यमार्णप्रियांशुभाम् ॥४३
अदृष्टामपिदोषेणत्यजतेमूढचेतनः ।
तेसमानीयपच्यतेलोहकुम्भेषुशीघ्रतः ॥४४
क्वाथ्यन्तेविस्फुटद्गात्राज्वलन्मज्जजलाविलाः ।
स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमानाविभीषणे ॥४५
गृध्रै रुत्पाट्यनुच्यन्येपुनस्तेष्वेववेगितैः ।
द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः ॥४६
ततोया यैर्भरैराशुदर्व्याघट्टनघटटिताः ॥४७
कृतावर्तेमहातैलेमथ्यन्तेपापकर्मिणः ।
एषतेगिस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भोमयापितः ॥४८

जो धर्म शास्त्रों और तीर्थों को दूषित करने वाले हैं तथा जो जन शुभ लक्षण स्त्री को ।४३। बिना दोष देखे ही दोष देते है वह इस लोह कुम्भ में गिराये जाते हैं ।४४। उनके शरीर उसी समय फट जाते है और मज्जा, जल आदिसे जलकर शुष्क हो जाते हैं। इस प्रकार उनको पकाया जाताहै तथा उनके कपाल नेत्रएवं सम्पूर्ण अस्थियाँ भयङ्कर पूर्वक छिन्न-भिन्न करदी जातीहै ।४५। उसके पश्चात् अत्यन्त वेग वाले भयङ्करगृध्र उन्हें उठाकर पुनः उसी में डालते हैं, तथा वे पकते हुए तैल में मिलकर उसके समान हो जाते हैं।४६। मस्तक स्वायु,

मांस त्वचा, अस्थि आदि सभी द्रवी भूत होकर तैल में मिल जाते हैं तब उन पापियोंको दर्वी द्वारा कूटा जाकर ।४७। महा तैलके गढ़े में डाल कर मथा जाता है । इस प्रकार तप्त कुम्भ आदि नरकोंका सविस्तार वर्णन आपके प्रति किया है ।१८।

१३-गतलोक वर्णन

अहंवैश्यकुलजातोजन्मन्यस्मात्तु सप्तमे ।
समतीतेगवांरोधनिपानेकृतवान्पुरा ॥१
विपाकात्कर्मणस्तस्यनरकभृशदारुण ।
संप्राप्तोऽग्निशिखाघोरमयोमुखखगाकुलम् ॥२
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोबुभूतकर्दमम् ।
विशस्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकलम् ॥३
पात्यमानस्यमेतत्रसाग्रं वर्षं शतगयम् ।
महातापार्त्तितप्तस्यतृष्णादाहान्वियस्य च ॥४
तत्राह्लादकर: सद्य पवन: सुखशीतल: ।
करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थवैसमागत: ॥५
तत्सम्यर्कादशेषांनाभवद्यातनानृणा ।
ममचापियथास्वर्गेस्वर्गिणांनिवृति: परा ॥६
किमेतदिति चाह्लादविस्तारस्तिमितैक्षणै: ।
दृष्टमस्मभिरासन्नं नररत्नमनुत्तम ॥७

पुत्र बोला—हे तात ! इस जन्म से सात जन्म पूर्व में वैश्य योनि में उत्पन्न हुआ था, तब मैंने गौओं को जल पीने से रोका था।१। उसी के फलसे-दारुण नरक को प्राप्त हुआ, वह नरक अग्नि की शिखाओं और लोहे के मुख वाले पक्षियोंसे परिपूर्ण थीं।२। यन्त्रमें फैंके हुए जीवों के देह से निकले हुए रक्त के बहने से वहाँ कीचड़ रहता है तथा यन्त्र में पड़े हुए उन पापियोंके आर्त्तनाद से वह नरक गूँजता रहता था।३। उसमें महापाप की पीड़ासे उत्पन्न पिपासा पूर्वक मैंनेसौ से कुछ अधिक

वर्ष व्यतीत किये ।४। तभी एक दिन करम्भ बालु का वाले घड़े के बीच से प्रसन्नता प्रद ठंडी वायु चलने लगी ।५। उसके स्पर्श से मेरी तथा अन्य वासियों की यन्त्रणा मिट गई, उस समय हम सब स्वर्ग में रहने वालों के समान रमानन्द का अनुभव करने लगे ।३। हम प्रसन्नता से उत्पन्न हुए विस्मय के सहित इधर-उधर देखने लगे तभी हमें पास में ही एक श्रेष्ठ मनुष्य हमको दिखाई दिया ।७।

याम्यश्चपुरुषोघोरोदण्डहस्तोऽशनिप्रभः ।
पुरतोदर्श यन्मार्गमितएहीरिगथ ॥८
ततस्तेजन्तवः सर्वेमत्त्वातद्दर्शनात्सुखम्
ऊचुः प्रांजलयोभूपक्षणमात्रस्थिरोभव ॥९
त्वदगात्रसंगीपवनोह्यस्माकसुघकारकः ।
ततोऽसोनरकाभ्योशेउपविष्टः कृपान्वितः ॥१०
पुरुषः सतदाद्दष्ट्वायातनाशतसंकुलम् ।
नरकंप्राहतंयाम्यकिङ्करकृपयान्वितः ॥११
भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिंमयादुष्कृतम् ।
येनेदयातनाभीप्राप्तोऽस्मिनरकपरम् ॥१२
विपश्चिदितिविख्यातोजनकानांमहंकुले ।
जातोविदेहविषयेसम्यङ मनुजपालकः ॥१३
चाकुर्वर्ण्यस्वधर्मस्थं कृत्वासंरक्षितंमया ।
धर्मतोधर्मकल्पेनमनुनाऽत्रययापुरा ॥१४

उस समय वज्र के समान दण्ड हाथ में लिए हुए एक भयङ्कर यमदूत उसे मार्ग दिखा रहा था ।८। उस समय सभी प्राणी उसके दर्शन से सुखी होकर हाथ जोड़े हु बोले कि आप क्षण भर को यहां रुकें ।९। आपके शरीर के साथ चलने वाला वायु हमें सुख दे रहा है, तब वह मनुष्य अनुग्रह पूर्वक हमारे पास ठहर गये ।१०। फिर उसने सैकड़ों कष्टों वाले नरक को देखा और अनुग्रह भरे हृदय से यमदूतों से कहने लगा ।११। उसने कहा हे यमदूतों मैंने ऐसा कौन पाप किया है, जिसके कारण मुझे इस अत्यन्त भयानक नरक में लाया गया है, वह मुझे शीघ्र बताओ ।१२। मैं पितृकुल

में पण्डित कहा जाता था, इसलिए विदेह राज्य में प्रजा पालक था ।१३। चारो वर्णो की मैंने धर्म पूर्वक रक्षा की थी और सभी कार्य मनु के समान ही धर्म से किया था ।१४।

यज्ञर्मयेष्टंबहुभिर्घर्मतः पालितामही ।
नोत्सृष्टश्चैवसंग्रामोतिथिर्बिमुखोगतः ॥१५
पितृदेवर्षिमुत्यश्चितचापचरितामया ।
महातापर्तितप्तस्यतृष्णादाहार्जितस्य च ॥१६
कृतास्पृहाचनमयापरस्त्रीविभघादिषु ।।१७
पर्वकालेषुपितरस्तिथिफालेषुदेवताः ।
पुरुषस्वयमायान्तिनिपानमिवधेनवः ॥१८
यतस्तेविमुखायान्तिनि स्वस्यगृहमेघिनः ।
तस्मादिष्टश्चतत्तंश्चथमौद्वावपिनश्यतः ॥१६
पितृनिश्वासाविध्वस्तंसप्तजन्मार्जितधनम् ।
त्रिजन्मप्रभदैवीनिश्वासोहन्त्यसंशयम् ॥२०
तस्माद्दैवेचपित्र्येचनित्यमेवहितोऽभवम् ।
सोऽहंकथमिमप्राप्तोनरर्कभृशदारुणम् ॥२१

मैंने अनेक यज्ञों के अनुष्ठान पूर्वक धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन किया था, मैंने युद्धका त्याग कभी नहीं किया और कभी किसी अतिथि को विमुख नहीं किया ।१५। मैंने पितृ देव, ऋषि अथवा सेवकों को भी कभी दुःखी नहीं किया तथा महाताप से तप्त और प्यास से आतुर ।१६। प्राणियों की रक्षा में तत्पर सदा रहा हूँ, परधन या परनारी की कामना मैंने कभी नहीं की ।१७। जैसे गौऐं गोष्ठ में आती हैं, वैसे ही पूर्वकाल में पितरगण और तिथि गण में देवगण मेरे यहाँ आते थे ।१८ जिस गृहस्थ के यहाँसे पितर या देवता विमुख होते हैं, उसके यज्ञ और पूर्त्त का विनाश हो जाता है ।१६। पितरों के विमुख होनेसे सात जन्म का संचित पुण्य तथा देवताओं के बिमुख होने से तीन जन्म का एकत्र हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है ।२०। इस कारण मैं पितरों और देवताओं के कार्य सदा रहता था फिर इस दारुण नरकको क्यों प्राप्त हुआ हूँ२१

१०—कर्मफल की प्राप्ति

इतिपृष्टस्तदातेनश्रृण्वतांनोमहात्मना ।
उवाचपुरुषयाम्योघोरोऽपिप्रसृतवचः ॥१
महाराजयथाऽऽयवंतथैतन्नात्रासंशयः ।
किन्तुस्वल्पंकृतपापभवताःस्मारयामितत् ॥२
वैदर्भीतवयापत्नीर्पवरीनामनामतः ।
ऋतुऋ तुमत्यावंन्ध्यस्त्वयातस्या कृतः पुरा ॥३
सुशुभोनायांकैकेय्यामासक्तो नततोभवान् ।
ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तोनरकवीरमीदृशम् ॥४
होमकालेयथावह्निराज्यपातमवेक्षते ।
ऋतौप्रजापतिस्तद्वद्बीजप तमबेक्षते ॥५
यस्तुमुल्लङ्घ्यधर्मात्माकामेष्वासक्तिमान्भवेत् ।
सतुप्रित्याहृणात्पांपमवाप्यनरकं पतेत् ॥६
एतावदेवनेपापनान्यक्तिश्चनविद्यते ।
तदेह्यामचछपुण्यानामुपभोगायपार्थिव ॥७

पुत्र बोला—हे तात ! इस प्रकार उस पुरुष के प्रश्न करने पर यमदूत ने भयंकर होते हुए भी जिस नम्रता से उत्तर दिया, उसे मैंने सुना ।१। यमदूत ने कहा हे महाराज ! आप सत्य कहते हैं, परन्तु आपसे एक सामान्य पाप बन गया था उसे आपको स्मरण कराता हूँ ।२। आपकी एक पत्नी विदर्भ देश की थी, उसका नाम पोवरी था आपने उसके ऋतुमती होने पर ऋतु को बिफल किया था ।३। आप उस समय कैकेयी देश की रानी सुशोभना के प्रति अत्यन्त आसक्त थे, इसलिए ऋतुकाल का व्यक्तिक्रमण करने से आपको इस दारुण नरक की प्राप्ति हुई है ।४। जैसे होम काल में अग्नि आहुति की कामना करता है। वैसे ही प्रजापति ऋतुकाल में बीज की कामना करते हैं ।५ इसका उल्लंघन करने वाले धर्मात्मा पुरुष भी पितर-ऋण के पाप से लिप्त होकर नरक में पड़ते हैं ।६। आपने यही एक मात्र पाप किया

है, और कोई पाप आपसे नहीं हुआ सब आप सभी पुण्यों का फल भोगने के लिए चलिए।

यास्यामिदेवानुचरयत्रत्वैमाँनयिष्यसि।
किंचित्पृच्छामितन्मेत्वयथावद्वक्तुमर्हसि ॥८
वज्रतुण्डास्त्वमीकाकः पुसांनयनहरिणः।
पुनः पुनश्चनेत्राणितद्देषांभवन्ति हि ॥९
किंकमकृतवन्तश्चक्थयैतज्जुगुप्तितम्।
हरन्त्येषाँतथाजिह्वाँलायमानाँपुनर्नम् ॥१०
करपत्रेणपाट्थन्तेकस्मादेतेऽतिदुःखिताः।
करम्भवालुकास्तेतेथैपच्यन्तेतैलगोचराः ॥११
अयोमुखैःखगेश्चैतैकृष्यन्तेकिंविधावद।
विश्लिष्टदेहबन्धार्तिमहारावविराविणः ॥१२
अयश्चंचुनिपातेनसर्वाङ्गक्षतदुःखः।
किमेतेऽनिष्टकर्त्तारःरतुद्यन्तेऽहनिशनराः ॥१३
एताश्चान्याश्चदृश्यन्तेयातनाः पापकर्तिणम्।
येनकमविपाकेनतन्ममोद्दैशतोवद ॥१४

राजा बोले हे यमदूत ! आप मुझे जहां ले जाओगे, वही मैं जाऊँगा परन्तु मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर दो।८। यह वज्र के समान काक इन पुरुषों के नेत्रों का हरण करते हैं और उनके वे नेत्र पुनः उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसा बारम्बार हो रहा है।९। इन्होंने ऐसा कौनसा निन्दित कर्म किया है, जिससे इनके नेत्र निकाले जाने पर भी पुनः उत्पन्न होते हैं।१०। यह कर पत्रकी मार से क्यों इतना दुख भोग रहे हैं तथा तप्त बालू और तेल में भूने जा रहे हैं।११। लोहमुख पक्षियों द्वारा नीचे जाने पर उनके देह के बन्धन टूट रहे हैं जिससे पीड़ा के कारण वह आर्त्तनाद कर रहे हैं।१२। तथा पक्षियों की लौहमय चोंच आघात से इनके सभी अङ्ग छिन्न भिन्न हो रहे हैं, इन्होंने ऐसा क्या पाप किया है जिस निरन्तर ऐसी मन्त्रणा प्राप्त कर रहे हैं।१३। पापियों कों अन्य प्रकार की पीड़ा से मिलते हुए भी देख रहा

हैं, किस कर्म के कारण इन्हें इन दु:खों को प्राप्ति हो रही है, यह मुझे प्रारम्भ से अन्त तक बताओ ।१४।

यन्मांपृच्छसिभूपालपापकर्मफलोदयम् ।
तत्तेऽहंसप्रवक्ष्यामिसक्षैतेणयथातथम् ।।१५
पुण्यापुण्येहिपुरुष: पर्यायेणसमुश्नते ।
भुञ्जतश्चक्षययातिपापपुण्यमथापिवा ।।१६
नतुभोगादृतेपुण्यंपापंवाकममानव ।
वरित्यजतिभोगाञ्चपुण्योपुण्येनिबोधमे ।।१७
दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्षंक्लेशात्कलेमभयाभ्दयम् ।
मृनेभ्य: प्रमृनायान्तिदरिदा पापकर्मिण: ।।१८
गतिनानाविधाँयान्तिंणन्तव: कर्मबन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवयान्तिस्वर्गात्स्वर्गसुखम् ।।१९
श्रद्दधानाश्चदांन्ताश्चधगदा: शुभकारिण: ।
व्यालकुञ्जरदुर्गाणिसर्पचौरभयानितु ।।२०
हता: पापेनगच्छन्तिपापिन: किमत: परम् ।
सुगन्धिमाल्यसहस्रसाधुमानासनाशना: ।।२१
स्तूयमाना: सदायान्तिपुण्यै: पुण्याटवीष्वपि ।
अनेकशतसाहस्रजन्मसंचयसंचितम् ।।२२

यमदूतों ने कहा—हे राजन् ! पाप के फलोदय के विषय में जो प्रश्न आपने किया है, उसका वर्णन संक्षिप्त रूप से कहता हूँ ।१५। कर्मानुसार ही मनुष्यों को पाप-पुण्य भोगने होते हैं, उसीसे उनके पाप या पुण्य का क्षय होता है ।१६। बिना भोगे पुण्य या पाप से कभीं मनुष्य की शुद्धि नहीं होती है । भोगने से ही बह मिटता है उसी से मनुष्य क मुक्ति प्राप्त होती है । जो पापी हैं वे दरिद्री होते हैं वे दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु को पाते हैं ।१७-१८। कर्म के बन्धन से विभिन्न प्रकार की गतियाँ प्राप्त होती हैं पुण्यात्माओं को उत्सव, स्वर्ग तथा सुख पसुख मिलते रहते हैं ।१३। वही श्रद्धावान्, शान्तचेता, दानी और सुख करने वाले होते हैं, तथा पापी, मनुष्य व्याघ्र, हाथी, सर्प, चार आदि से भय युक्त स्थान में ।२०। पाप से मर कर जाते हैं

उनकी अन्य गति क्या हो सकती है ? तथा श्रेष्ठ वस्त्र सुगन्धित मालाएँ, विमान और भोजन ।२१। आदि की प्राप्ति महात्मा पुरुषों को अपने पुरुष के बल से होती है, वे प्रशंसित होते हुए पवित्र स्थानों को प्राप्त होते हैं ।२२।

पुण्यापुण्यैर्नृणांतद्वत्सुखदुःखांकुरोद्भवम् ।
यथाबीर्जंहिभूपालरयासिसमवेक्षते ॥२३
पुण्यापुण्येतथाकालदेशान्यकर्मकारकम् ।
खल्पपापकृतंपुंसांदेशकालोपपादितम् ॥२४
पादन्यासकृतंदुःखकण्टकोत्यप्रयच्छति ।
तत्प्रभूततरंस्थूलाँमूलकीलकसम्भवम् ॥२५
दुःखं यच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम् ।
अपथ्याशनशतोष्णश्रमता पादिकारकम् ॥२६
तथान्योयमपेक्षन्तेपापानिफलमङ्गमे ।
एवाँमहान्तिपापानिर्दीर्घरोगादिविक्रियाम् ॥२७
तद्वच्छास्त्राग्निकृच्छ्रातिबन्धनादिफलायवै ।
स्वल्पपुण्यंशुभंगन्धहेलयासम्प्रयच्छति ॥२८
स्पर्शंवाप्यथवाशब्दंरसँरूपमथापिवा ।
चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपिकालजम् ॥२९

अनेक शत सहस्र जन्मोंके पुण्य, पाप को प्राणी संचित करते रहते हैं, उसी उनके सुख-दुःख रूप से उत्पन्न होते हैं, जैसे सभी बीज जल की कामना करते हैं ।२३। उसी प्रकार के पुण्य, पाप भी काल, देश और पात्र की कामना करते हैं, यदि देश काल के अनुसार किंचित् भी पाप किया हो तो ।२४। पैर रखाने पर काँटा लगने से जैसे दुःख का ही अनुभव होता है, परन्तु अधिक पापों का आचरण करने पर शूल या कील आदि से उत्पन्न होने वाले ।२५। शिरो-रोग आदि दारुण दुःखों का भोग करना होता है जैसे अपथ्य अन्न, शीत ताप, श्रम आदि को उत्पन्न करता है ।२६। वैसे ही सब पाप फल के उत्पन्न होने के समय में परस्पर ही अपेक्षा करते हैं, महापाप कर्म से दीर्घ रोगादि

विकारों की बँधकादि के कष्ट भोगने होते हैं, क्रीड़ा के बहाने किंचित् पुण्य करने से भी श्रेष्ठ न था।२८। सुखमय स्पर्श, मधुर वाणी, मीठे रस और सुन्दर रूप का भोग अल्पकाल के लिए ही होता है तथा बहुत पुण्य करने पर काल क्रम से अधिक फल उपलब्ध होता है।२९।

एवंचसुखदु खानिपुण्योद्भवानिवे।
भुञ्जानाऽनेकसंसारमम्भवानीहतिष्ठति ॥३०
जातिदेशावरुद्धानिज्ञानाज्ञानफलानि च।
तिष्ठन्न्तितश्रयुक्तानिलिङ्गमात्रेणचात्मनि ॥३१
वपुषामनसावाचानकदाचित्क्वचिन्नरा।
अकुर्व पापकंकर्मपुण्यवाष्यवतिष्ठते ॥३२
यद्यत्प्राप्नोतिपुरुषोसुखदु:खमथापिवा।
प्रभृतमथवाऽस्दल्पविक्रियाकारकेतमः ॥३३
तावतातस्वपुण्यंवापापवाप्यथकेतरेत् ॥३४
उपभोगात्क्षयंयानिभुज्यमानमिवाशनम्।
एवमेतेमहापापयातनाभिरहद्विशिम् ॥३५

इस प्रकार प्राणी पाप-पुण्य से उत्पन्न दु:खया सुख का भोग करता हुआ संसार में बास करता है।३०। जाति, देश, काल आदि से अवरुद्ध ज्ञान-अज्ञान का सम्पूर्ण फल आत्मा में चिह्नित हो जाता है।३१। वाणी कर्म से कभी कोई पाप पुण्य किए बिना उसका फल उत्पन्न नहीं हो सकता।३२। यह जो कुछ सुख-दु:ख की प्राप्ति है, वह अल्प या अधिक चित्त का ही विकार है।३३। उसे उतने ही पाप पुण्य के फलकी प्राप्ति होती है।३४। जैसे भोजन किए हुए अन्न का क्षय उपभोग से ही होगा, वैसे ही भोगे बिना पाप का क्षय नहीं हो सकता।३५।

क्षपयन्तिनराघोरं नरकान्तवि-तिन:।
तथैवराज पुण्यानिस्वर्गलोकेऽमरै सह ॥३६
गन्धर्वसिद्धाप्सरसांगीताद्यै रुपभुंजते।
देवत्वेमानुषत्वेचतिर्यक्त्वेचशुभाशुभम् ॥३७
पुण्यपापोद्भवभुक्तसुखदु:खोपलक्षणम्।

यत्वंपृच्छसिमाँराजन्वातना: पापकर्मिणाम ॥३८
केनकेनेतिपापेनततेवक्ष्याम्यशेषत: ।
दुष्टेनचक्षुषादृष्टा: परदारानरधर्म: ॥३९
मानसेनचदुष्टेनपरद्रव्यंचसस्पृहै: ।
वज्रतुण्डा:खगास्तेषांहरंत्येतेविलोचनै ॥४०
पुन:पुनरचसंभूतिरक्षणोरेषांभवत्यय ।
यावतोऽक्षिनिमेषांस्तुपापमेभिर्नृभि:कृतम् ।।४१
ताद्वर्षसहस्राणिनेत्रातिप्राप्नुवंत्युत ।
असच्छास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तायैश्चमन्त्रिता: ॥४२
सम्याहृष्टेविनाशायरिपूणामपिमानवै: ।
यै:शास्त्रतन्यथाप्रोक्तंयैरसद्वागुदाहृता ॥४३

इसलिए नरक में रहकर जीव यातनायें प्राप्त करके ही महापापका क्षय करते रहतेहैं तथा इसी प्रकार पुण्यात्मा स्वर्गवासी भी देवोंके साथ रहकर पुण्य को भोगते हैं ।३६। इन्हें सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओं के गान आदि से पुण्य फल मिलता है तथा देवता, मनुष्य या खग-योनि पाकर शुभाशुभ ।३७। पुण्य और पाप से उत्पन्न सुख-दु:ख युक्तफल भोगते हैं, हे राजन् ! आपने प्रश्न किया कि पापीगण किस-२ पाप कर्म से ऐसी यंत्रणा भोगते हैं ।३८। अब मैं इसे पूर्ण रूप २ कहता हूँ जिन नरत्धम मनुष्य ने परनारी को दूषित नेत्रों से देखा है ।३९। अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रों से देखा है, उसके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं ।४०। तथा वही नेत्र वारम्वार उत्पन्न हो जाते हैं, इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक वह पाप किए हैं । ।४१। उतने ही सहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिए अन्याय पूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है ।४२-४३।

वेददेवद्विजादीनांगुरीनिन्दाचर्या: कृता ।
हरंतितेषाँजिह्वाश्चजायमाना:पुन:पुन: ॥४४
तावतावत्सरानेतेवज्रतुण्डा: सुदारुणा: ।

मित्रभेदंतथापित्रापुत्रस्यस्वजनस्यच ॥४५

यज्वोपाध्याययोर्मात्रासुतस्यसहचारिणः ।

भार्यापत्योश्चयेकेचिद्भेदचक्रुर्नराधमाः ॥४६

तइमेपश्यपाटर्चीन्तेकरपत्रैणपार्थिव ।

परोपतापकायेचह्लादर्निषेकधाः ॥४७

तालवृन्तानिलस्थानचन्दनोशीरहारिणः ।

प्राणान्तिकददस्तापभदुष्टानांचचयेऽधर्माः ॥४८

करम्भवालुकासस्थास्तइमेपापभागिनः ।

भुङ्क्ते श्राद्ध तुयोऽन्यस्यनगोऽन्येननिमन्त्रितः ॥४९

जिन्होंने वेद, देवता ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है, यह बज्रतुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी बार यह पाप किया है उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रोंमैया पिता-पुत्र में भेद डलवाया है।४४-४५। अथवा याज्ञिक यजमान में,माता पुत्र में या पति-पत्नी मे मनमुटाव करा दिया है।४६। वे इस कर पत्र से आहत होते हैं अथवा जो किसी को क्रोध दिलाते या किसी की प्रसन्नता को नष्ट करते हैं।४३। जो ताड का पंखा या खास या चन्दन हरण करते अथवा साधुओं को प्राणान्तक पीड़ा देते हैं।४८। वे पापी तप्तरेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथबा जो एक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते है।४९।

दैवेवाऽप्यथवापैत्र्येसद्विधाकृष्यतेद्यगैः ।

मर्माणियस्तुसाधनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ॥५०

तमिमेतुदमानास्तुखगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ।

यः करोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः ॥५१

पाटचतेहिद्विधाजिह्वातस्येत्यनिशितैः क्षुरैः ।

मातापित्रोगुरूणांचयेऽवज्ञाँचक्रुरुद्धताः ॥५२

तइमेपूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखाः ।

देवतातिथिभूतेषुभृत्येष्वभ्यागतेषुच ॥५३

अभुक्तवत्सुयेश्नन्तितद्वत्पित्रग्निपक्षिषु ।

दुष्टास्तेपूयनियाँसमुज सूचीमुखास्तुते ॥५४
जातन्ते गरिवष्मीणः पश्यैतेयादृशानराः ।
एकपक्त्यातुयेविप्रमथवेतरवर्णजम् ॥५५
विषमभोजयन्तीहविड्भुजस्ददमेयथा ।
एकसार्थप्रयातंयेनि स्वमर्थार्थिनंतरम् ॥५६

तथा जो झूँठी बात बना कर किसी की चुगली करते हैं ।५०। अथवा देवत या पितर कार्य में एक निमन्त्रण स्वीकार करके दूसरे का भोजन करते हैं ।५१। उनकी जिह्वा इस तीक्ष्ण छुरी के द्वारा दो टूक कर दी जाती है । जो मत्त होकर माता, पिता, तथा गुरुजनों का तिरस्कार करते हैं ।५२। वे पीव मल और मूत्र से परिपूर्ण कुण्ड में अधोमुख गिराये जाते हैं । देवता,अतिथि सेवक, अभ्यागत ।५३।पितरगण अग्नि और पक्षियों को भोजन दिये बिना स्वयं खा लेतेहैं वे सूचीमुख होकर पीव और गन्दगी हैं ।५४। उनका शरीर पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण और अन्य जाति वालों को एक पंक्ति में बैठाकर ।५५। असमान भोजन कराते हैं वह इनकी विष्ठा खाते हैं । व्यापार के लिए एक साथ जाते हुए भी अपने धनहीन साथी को छोड़ कर स्वयं भोजन कर लेते हैं, उन्हें यहां कफ का भोजन प्राप्त होता है ।५६।

अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः ।
गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ॥५७
तेषामेतेऽग्निकुम्भेषु लेलिहतन्त्याहिताः कराः ।
सूर्येन्दुतारकादृष्टायैरुच्छिष्टस्तुकामतः ।
तेषांताम्यैर्नरनेत्रन्यस्तोवह्निःसमिध्यते ।
गावोऽग्निर्जननींविप्रोज्येष्ठभ्रातापितास्वसा ॥५८
जामयोगुरवोवृद्धायैःस्पृष्टास्तुपदानृभिः ।
वद्धांघ्रयस्तेनिगडलौहेरग्निप्रतापितैः ॥६०
अङ्गारराशिध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजातुदाहिनः ।
पायसकृशरछागदेवान्नानिचयानिवैः ॥६१
भुक्तानियैरसंस्कृत्यतेषांनेत्राणिपापिनाम् ।

निपातितानांभूपुष्टेउद्वृत्ताक्षिनिरीक्षता ॥६२

जिन्होंने उच्छिष्ट रहकर गौ, ब्राह्मण या अग्नि का स्पर्श किया है ।४७। उनके हाथ अग्निकुण्ड में गिरकर दग्ध होतेहैं तथा उच्छिष्ट अवस्था में जिन्होंने सूर्य, चन्द्र या तारागण के दर्शन किये हैं ।५८। उनके नेत्रों पर यह यमदूत अग्नि रखते हैं, जिन्होंने गौ, ब्राह्मण, माता-पिता, ज्येष्ठ, भ्राता, भगिनी,अग्नि ।५९। वंशकी बहन गुरु अथवा वृद्ध ब्राह्मण का स्पर्श पाद से किया है, उनके पैर अग्निसे तपाई हुई लौह-बेड़ियों में जकड़े गये हैं ।६०। तथा वे जाँघ तक अङ्गारों के ढेरमें खड़े किए गये हैं। जिन पापियों ने खीर, खिचड़ी या छाछ अथवा अन्य किसी देवान्न को ।६१। संस्कार किए विना खा लिया है, उन पापात्माओं के नेत्र उखाड़ कर भूमि में डाले हुए दिखाई दे रहे हैं तथा दर्शन करने वाले यमदूतों के मुख में गिर रहे हैं ।६२।

सन्दर्भः पश्यकृषयन्तेतरैर्याम्यैर्मुखात्तातः ।
गुरुदेवद्विजातीनांवेदाँनांचनराधम् ॥६३
निन्दानिशामितायैश्चापापानामभिनन्दताम् ।
तेषांमयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनपुनाँ ॥६४
कर्णोपुप्रेरयन्त्येतेयाम्य विलपतामपि ।
ये प्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाःशुभा ॥६५
भुङ्क्त्वाविध्वंसमानीताःक्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ।
तेषामेतैःशितैःशस्त्रै मुंहुर्विलपताँत्वचः ॥६६
पृथक्कुर्वन्तिवेयाम्या शरीरादतिदारुणाः ।
गोब्राह्मणर्कमार्गास्तुयेऽवमेहन्तिमानवाः ॥६७
तेषाँमेतानिकृष्यन्तेगुदेनांत्राणिवायसैः ।
दत्वाकन्यांयएकस्मै द्वितीयायप्रयच्छति ॥६८
सत्वेवनैकधाछिन्नः क्षारनद्यांप्रवाह्यते ।
स्वपोषणपरोयस्तुपरित्यजतिमानवः ॥६९
पुत्रभृत्य कलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम् ।
दुर्भिक्षेसम्भ्रमेवापिसोऽप्येवंयमकिंरैः ॥७०
उत्कृत्यदत्तानिमुखेस्वमांसन्यश्नुतेक्षुधा ।

शरणागतान्यस्त्यजतिलोभादुत्दोचजीवित: ॥७१

जो गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदकी निन्दा सुनकर उसका अनुमोदन करते हैं अग्निवर्ण के लोहेकी कोलें यमदूत बार-बार ।६३-६४। उस विलाप करते हुए पापियों के कानों में घुमाते हैं। जिन्होंने देवालय, ब्राह्मण का ग्रह अथवा सभा भवन को ।३५। लोभ अथवा क्रोध के वश होकर विध्वंश किया है, उनका चर्म तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा ।६६।शरीर यमदूत अलग करते हैं तथा जो गो, ब्राह्मण और सूर्य के मार्ग में मल-मूत्र का त्याग करते हैं ।६७। उन पापियों की सब आतें गुह्य द्वार से कौए खींच लेते हैं, जो एक बार किसी को कन्या दान करक, वही कन्या किसी दूसरे को देते है ।६८। उनको इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े करके खारी नदी में प्रवाहित किया जाता है, जो अन्य मनुष्यों का पोषण न करके अपना ही करते हैं ।६६। दुर्भिक्ष या अन्य सङ्कट काल पुत्र सेवक, कलत्र तथा बन्धु-बांधव का त्याग करते हैं, यमदूत ।७०। उसके मांस को काट-काट कर उन्हीं के मुख में डालते हैं और वे क्षुधार्त्त हुए उसी को खाते हैं ।७१।

सौऽप्येवंयत्रपीडाभि:पीडपतेयमाकिंकरै: ।

सुकृतयेप्रयच्छन्तियावज्जमकृततरा: ॥७२

तेविष्यन्तोशिलापेषैर्यंथंतेपापकर्मिण: ।

क्षुत्क्षामारतृट्पतज्जिजह्वातालवोवेदनातुरा: ॥७३

दिवामैथुनिन:पाप:परदारभुजश्चये ।

तथैवकण्टकैदीर्यैरायसै: पश्यशाल्मलिम् ॥७४

आरोपिताविभिन्नांगा:प्रभूतासृवस्रवाविला: ।

मूषायामपिपश्यंतान्ध्माथानान्यमातुगै: ॥७५

पुरुषै:पुरूव्याघ्रपरदारावमर्शिण: ।

उपाध्यायमथ:कृत्वास्तब्धोयोऽध्ययनंनर: ॥७६

गृह्णातिशिल्पमथवासोऽप्येवंशिरलाम् ।

विभ्रत्क्लेशमवाप्मोतिजनमार्गेऽतिपीडित: ॥७७

जो लोभवश वेतन भोगी अथवा शरणागतका त्याग करतेहैं उनको इस प्रकार की यंत्रके पीड़ा दी जाती है, जो मनुष्य अपने सव जन्मों के

को मूल्य लेकर बेच देते हैं ।७२। वे इन पापियों के समान ही पाषाण कोल्हू में पेले जाते हैं, जो किसी की धरोहर हड़पते है उनकी सम्पूर्ण देह बन्धन में पड़ती हैं ।७३। उन्हें कृमि, वृश्चिक, काक, उल्लू आदि रातदिन चोटते रहते हैं तथा उनकी जिह्वा और तालु क्षुधा पिपासा से शुष्क हो जाते हैं ।७४। जिन्होंने दिन में नारी समागम अथवा पर स्त्री-गमन किया वह लोहे के तीक्ष्ण काटों वाले शाल्मलि वृक्षपर ।७५। चढ़ाये जाकर अंश भग पूर्वक रक्तपात से व्याकुल हो रहे हैं तथा वे धोंकना में रख कर जलाये जा रहे है ।७६। यह देखो, परस्त्री से समागम करने वालों की दशा ऐसी है तथा जो उपाध्याय को नीचा आसन देकर अहङ्कार पूर्वक अध्ययन ।७७। करते या शिल्प ग्रहण करते हैं,वह इसी प्रकार सिर पर शिला रख कर बोझ से अत्यन्ध क्लेश पाते है।७८

क्षत्क्षामोऽहनिशंमारपीडाव्यथितमस्तकः ।
मूत्रश्लेष्यपुरीषाणियैरुत्सृष्ठानिवारिणि ॥७९
तइमेश्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धनरकंगताः ।
परस्परं चपांसानिभक्षयन्तिक्षुधान्विताः ॥८०
भुक्तंनातिथ्यविधिनापूर्वमेभिःपरस्परम् ।
अपविद्धास्तुयैर्वेदावह्नयश्चाहिताग्निभिः ॥८१
तइमेशैलशृङ्गाग्रात्पात्यन्तोऽधः पुनःपुनः ।
पुनर्भूपतयोजीर्णायावज्जीवंतियेनराः ॥८२
इमेकृमित्वमापन्नाभक्ष्यन्तोऽत्रपिपीलिकैः ।
नीचप्रतिग्रहदानद्याजनान्नित्यसेवनात् ॥८३
पाषाणमध्यकीटत्वंनर सततमश्नुते ।
पश्यतोभृत्यवर्गस्यमित्रणामतिथेस्तथा ॥८४
एकोमिष्टान्नभुग्भुहक्तेज्वलदगारसंगयम् ।
वृकैर्भयंकरैःपृष्ठनित्यमस्योपभुज्यते ॥८५

बोझके कारण मस्तक में वेदना पाते हुए क्षुधा पिपासा से सदा पीड़ित रहते हैं, जिन्होंने मल, मूत्र या कफका जलमें त्याग किया है ।७९। वह इस मल, मूत्र और कफ वाले दुर्गन्धयुक्त नरकको प्राप्त हुएहैं तथा यह जो क्षुधातुर होकर एक-दूसरे का मांस भक्षण कर रहे है।८७।

जो क्षुधातुर होकर एक दूसरे का मांस भक्षण कर रहे हैं। इन्होंने आतिथ्य सत्कार पूर्वक भोजन नहीं कियाथा। जिन आहिताग्नि मनुष्यों ने वेद तथा अग्निका निरादर किया है।८१। वह इस पर्वत-शिखर से वारम्वार गिराये जाते हैं, जिन्होंने दुबारा व्याही हुई पत्नी का स्वामित्व प्राप्त कर उसके साथ जीवन व्यतीत किया है।८२। वह कृमि रूप होकर चीटियों द्वारा खाये जा रहे हैं, जिसने नीच पुरुष का दान ग्रहण अथवा सेवा या यजन किया हैं।८३। वह पत्थर के भीतर होने वाला कीट होता है, जो अतिथि बन्धुओं और भृत्योंका तिरस्कार करे।८४। मिष्ठान्न का एकाकी भोजन करता है, वह यहाँ प्रज्वलित अङ्गार भक्षण करता है तथा इसकी पीठ के माँस को भयंकर भेड़िये नित्य भक्षण करते हैं।८५।

पृष्ठमांसंनृपैतेनयतोलोकस्यभक्षितम् ।
यघोऽथबधिप्रोसूकोभ्रान्यतोऽयंक्षुधातुरः ॥८६
अथंकृतघ्नोऽधमःपुंसामुपकारेपुवर्त्तता ।
अयंकृतघ्नोमित्राणामपकारोसुदुर्मतिः ॥८७
तप्तकुम्भेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम् ।
करंभवालुकांतस्मात्ततोयंत्रावपीडितम् ॥८८
असिपत्रवनंतस्मात्करपत्रेणपाटनम् ।
कालसूत्रेतथाच्छेदमनेकाश्चैवयातनाः ॥८९
प्राप्यनिष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति ।
श्राद्धेसंगतिनोविप्राः समुपेत्यपरस्परम् ॥९०
दुष्टाहिभिःसृतफेनंसर्वागम्यःपिवंतिवै ।
सुवर्णस्तोयीयिप्रघ्नः सुरारोगुरुतल्पगः ॥९१
अघश्चोदर्ध्वंन्चदीप्ताग्नौदह्यमानसमंततः ॥९२

जिन्होंने किसी की पीठ पीछे निन्दा की, वह वहाँ अन्धे वधिर और मूक होकर क्षुधार्त्त घूमतेहैं।८६।इस अधम ने उपकारीके प्रति कृतज्ञता प्रकट नहींकी अतःयह दुर्बुद्धि कृतघ्नतथा मित्रोंका अपकार करने वाला है।८७। इसीलिए तप्तकुम्भ में डाला गया है, यह घोर विलाप करता है,इसके पश्चात् इसे पीसा जायेगा, फिर तप्त वालूयन्त्र पीड़ाको भोग-

।८८। असिपत्र नरक में खड्ग की धार से संतप्त होगा फिर कालसूत्र नरक में अङ्ग-अङ्ग का छेदन होगा, इस प्रकार अनेक विधि यन्त्रणा भोग कर ।८९। किस प्रकार इससे मुक्त होगा, इसे मैं नहीं जानता इन दुष्ट ब्राह्मणों ने परस्पर श्राद्ध-भोजन किया था ।९०। इसलिए उन्हें सर्पों के सर्वांग से निकला हुआ फेन ही खाना पड़ता है। उसने सुवर्ण की चोरी की है, यह ब्रह्म हत्यारा है, इसने मद्य पान किया है, इसने गुरु-पत्नी का अपहरण किया है ।९१। इसलिए यह चारों ओरसे प्रज्वलित अग्नि में दग्ध किये जाते है ।९२।

तिष्ठात्यब्दसहस्राणिसुबहूनिततः पुनः ।
जायन्तोमानवा कुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥९३
मृताःपुनश्चनरकपुनर्जाताश्तादृशम् ।
व्याधिमृच्छतिकल्पांतपरिमाणनराधिप ॥९४
गोघ्नोन्यूनतरंयातिनरकेऽथत्रिजन्मनि ।
तथोपपातकानांवचर्वेषामितिनिश्चयः ॥९५
नरकप्रच्युतायान्तियैर्यविहितपातकैः ।
प्रयांतियोनिजातानितमेनिगतःश्रृणु ॥९६

यहाँ हजारों वर्ष रहकर फिर कुष्ठ,क्षय आदि रोगोंसे युक्त मनुष्य देह प्राप्त कर ।९३। प्राण त्याग करके पुनः नरक में जाते हैं, इसी प्रकार बारम्बार जन्म मरण को प्राप्त होते हुए कर्मके अन्त तक दुःख भोगते हैं। गौ हत्या या दूसरे पाप उपपातक करने से तीन जन्म तक नीचें से भी नीचे नरक भोगते होते हैं, इससे सन्देह नहीं है ।९५। अब वह वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार नरक में पड़े हुए जीव जिस योनि में में जाते हैं ।९६।

११—नरकस्योद्धार वर्णन

पतितात्प्रतिगृह्यार्थंखरयोनिंव्रजेद्द्विजः ।
नरकात्प्रतिमुक्तस्तुकृमिः पतितयाजकः ॥१
उपाध्यायव्यलीकंतुकृत्वाश्वाश्वाभवतिद्विजः ।
तज्जायांमनसादाञ्छन्द्रव्यं चाप्यसंशयम् ॥२
गर्द्दभोजायनेजन्तुःपित्रोश्चाप्यवमानकः ।

मातापितरावाक्रुश्यसारिकासम्प्राप्यतो ॥३
भ्रातुःपत्न्यप्रवमन्ताचकपोतत्वंप्रपद्यतो ।
तामेवपीडयित्वातुकच्छपत्वप्रपद्यतो ॥४
भर्तृ पिण्डमुपास्नन्यस्तदिष्ट ननिषेवतो ।
सोऽपिमोहसमापन्नोजायतेवानरोमृतः ॥५
त्यासापहर्त्तानिरकाद्विमुक्तो जायतेकृमिः ।
असूयकश्चनरकान्मुक्ताभवतिराक्षसः ॥६

यमदूत ने कहा—पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पति पुरुष को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्तहोकर कृमि-योनि पाता है।१।उपाध्यायके प्रतिछलकर देवर उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है ।२। माता-पिता का अपमान करने वाला गधा और उन्हें गाली देने वाला भैंसा होता है ।३। भाई की पत्नीका अपमान करने वाला कबूतर होता है, उसे पीड़ित करने से कछुआ बनता है ।४। स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उसका अभिलषित नहीं करता वह मोह में भर कर मरणान्तर बन्दर बनता है ।५। किसी की धरोहर हड़पने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त में राक्षस होताहै ।६।

विश्वासहन्ताजनरोमोनयोनौप्रजायतो ।
धान्ययवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ॥७
कलायनकलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा
सस्यान्यस्यानिवाहृत्वामोहाज्जन्तुरचेतनः ॥८
सञ्जयतेमहावक्त्रोभूषिकोबभ्रूसन्निभः ।
परदाराभिमर्शात्त् दृकोधीरोऽभिजायतो ॥९
श्वासृणालोवकोगृध्रोव्यालःकङ्कस्तथाक्रमात् ।
भ्रातभार्य्याचवुद्धियोंधर्षयतिपापकृत् ॥१०
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोतिसचांपिनरकाच्युतः ।
सखिभार्यांगुरोर्भाराजगार्याचपापकृत् ॥११

प्रधवयित्वाकामात्मासूअरोजातोनरः ।
यज्ञदानविवाहानाँविघ्नकर्त्ताभवेत्कृमिः ॥१२
पुनर्दूर्दातातुकन्यायाःकृमिरेवोप जायते ।
देवतापितृविप्राणःदत्वायोऽन्तमश्नुते ॥१३

विश्वासघाती को मछली की योनि मिलती है तथा जो धान्य, जौ तिल, उडद, कुलथी, सरसों चना ।७। कैथा, मूंज, मूंग गेहूँ या तीनों आदि हरण करता है वह मोह से मदमत्त होता है ।८। तथा तौले जैसे दीर्घ मुख वाला मूसा होता हैं, परनारी से समागम करने वाला भयंकर भेड़ियाँ वन जाता है ।६। फिर कृमि श्वास, गीदड, बगुला, गृघ्र, सर्प सा काक बनता हैं तथा जो भाई की पत्नी से समागम करता हैं ।१०। वह नरक के दुःख भोग कर कोयल होता है, जो मित्रकी पत्नी या राजा की पत्नी ।११। से समागम करते हैं वे शूकर होते हैं, यज्ञ, दान या विवाह कार्य में विघ्न उपस्थित करने वाले कृमि होते हैं ।१२। एक बार दानकी हुई कन्या किसी दूसरे को देने वाले मनुष्य भी कृमि योनि पाते हैं तथा जो देवता, पितर, ब्राह्मण को जिमाये बिना स्वयं भोजन करता है वह नरक यातना भोगनेके पश्चात् काक होता है।१३।

प्रमुक्तानरकात्सोऽपिवायसः सम्प्रजायते ।
ज्येष्ठपितृसमवापि भ्रातरं योऽयमन्यते ॥१४
नरकात्सोपिविभ्रष्टःक्रौंचयोनौप्रजायते ।
शूद्रश्चब्राह्मणींगत्वाकृमियोनौंप्रजायते ॥१५
तस्य मपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्तःकीटकोभवेत् ।
सूकरःकृमिकोमद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते ॥१६
अकृतज्ञोऽधतः पुसांविमुक्तोनरकान्नरः ।
कृतघ्नः कृमिकःकीटःपतङ्गावृश्चिकस्तथा ॥१७
मत्स्यस्तुवायसःकूर्मपुक्कसोवसो जायतेततः ।
अशस्त्रंपुरुषंहत्वानरःसंजायतेखरः ॥१८
कृमिस्त्रीबधकर्त्ताचबालहताच जायते ।
भोजनंचोरयित्वातुमक्षिकाजायतेनरः ॥१९

तत्राप्यस्तिविशेषोवैभोजनस्यश्रृणुष्वतत् ॥१९

हृत्वाऽन्नन्वतुसमार्थारोजायतेनरकाच्च्युत: ।

तिलपिण्याकसं मिश्रन्नंहृत्वातुमूषक: ॥२०

घृतंहृत्वाचनकुल काकोमद्गुरुजामिषम् ।

मत्स्यमाँसाहृत्काक: श्येनोमेषामिषापहृत् ॥२१

तथा ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करने वाला नरक के पश्चात् क्रौंच पक्षी होता है, ब्राह्मणी में गमन करने वाला शूद्र कृमि योनि में जन्म लेता है ।१४-१५। ब्राह्मण के गर्भसे पुत्र उत्पन्न करने पर काठके भीतर का कीड़ा शूकर, कृमि, मल, कृमि अथवा चाण्डाल होता है ।१६। जो मनुष्यों में अधम तथा कृतज्ञता रहित है वह नरक से युक्त होकर कृमि कीट, पतग, या बिच्छू ।१७। मत्स्य कौआ कूर्म अथवा डोम योनि में उत्पन्न होता है, स्त्री और बालक की हत्या करने पर गधे की योनिमें भोजन चुराने वाला मक्षिका, अब भोजन के विषय में जो विशेष हैं,उसे सुनो ।१६। अन्न चुराने से नरक भोगने के पश्चात् बिल्ली होता है,तिल दाना युक्त अन्न हरण करने वाला मूषक होता है ।२०।घृत हरण करने वाला नीला छाग के मांस चुराने वाला काक तथा मृग का मांस चुराने वाला गिद्ध होता है ।२१।

चीरीवाकस्त्वपहृतेलवणेदधनिकृमि: ।

चोरयत्विापश्चापिबलाकासं प्रजायते ॥२२

यस्तुचोरयतेललैलपायीसजाते ।

मधुहृत्वानरोदंशोऽपूपहृत्वापिपीलिका ॥२३

चोरयित्वातुहविष्यान्नं जायतेगृहगीधिक: ।

आसवचोरातत्वातुतित्ति रत्वनवाप्नुयात् ॥२४

अयोहृत्वातुपापात्नावायस: सम्प्रजायते ।

पात्रेकांयोपिहारीत: कपोतोरौप्यभाजनें ॥२५

हृत्वतुकांचनभांडंक्रमियोनौप्रजायते ।

कौशेयचोरयित्वातुचक्रवाकत्वमृच्छति ॥२६

कोषकारश्चमौषेयेहृतेवस्त्रो भिजायते ।

दुकूलेशार्ङ्गकः पापोहृतेचैवांशुकेशुकः ॥२७
ऋक्षश्चवाविकहृत्वावस्त्रं क्षौमचजायते ।
कर्पासिकेहृतेक्रौंचोवाह्नेहंबकस्तथाः ॥२८

नमक चुराने वाला जलका, दही चुराने वाला कृमि और दूध चुराने वाला बगुला होता हैं ।२२। तेल चुराने वाला तेली मधु चुराने वाला डास और पूये चुराने वाला चीटी होता है ।२३। हविष्यान्न की चोरी करने वाला गीध, जायस चुराने वाला तीतर होता है ।२४।लोहा चुराने वाला काक, पात्र चुराने वाला हारीता तथा चाँदी का पात्र-चोर कबूतर बनता है ।२५। स्वर्ण पात्र का चोर कृमि बनता है, रेशम चुराने वाले को चकवे की योनि ग्रहण करनी होती है ।२६। कौशेय वस्त्र चुरानेसे कोशकर होता है,दुपट्ट चुराने वाला मोर तथा अंकुश चुराने वाला तोता होता हैं ।२७। ऊनी और क्षोम के वस्त्र चुराने वाला रीछ,कपास चुराने वाला क्रौंच तथा अग्नि चुराने वाला बगुला या गधा होता है ।२८।

मयूरोवर्णकाहृत्वापवशाकंचजायते ।
जावञ्जीवकतांयातिरक्तवस्त्रापहृन्नरः ॥२९
छछन्दरिःसुभान्गधान्वासोहृत्वाशशोभवेत् ।
खजःपलालहरणताकाष्ठहृद्घुथकीटकः ॥३०
पुष्पापाहृद्दरिद्रश्चतंगुर्यानापहृन्नतरः ।
शाकहृत्ताचहरीतस्तोयहृत्ताचचातः ॥३१
भूमिहृन्नरकान्गत्वादीन्सुदारुणान् ।
तृणगुल्मलतावल्लिलत्वक्सारतांक्रमात् ॥३२
प्राप्यक्षीणाल्पपापस्तुनरो भवतिवैततः ।
वृषस्यवृषणोन्त्रापढत्वस्प्राप्नुपान्नरः ॥३३
परिहृत्तयाभयोजन्मनामेकविंशतिः ।
कृमिःकीटःपतंगोऽथपक्षीतोयचरोमृगः ॥३४
पंगुबधिरःकुष्ठीयक्ष्मणाचप्रपीडितः ॥३५
मुखरागाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्वाध्यते ।
अपस्मारीचभवतिशद्रत्वं च सगच्छति ॥३६

जो मनुष्य वर्णन या शाकपत्र चुराता है और लाल वस्त्र चुराने वाला चकवा चकबी होता है ।२९। श्रेष्ठ गन्ध द्रव्य का चोर छछून्दर होता है, वस्त्रचोर खरगोश होताहै पलाल चोर गन्जा और काष्ठ चोर भूत होता है।३०।पुष्प चोर दरिद्री यान चोर लङ्गड़ा शाक चोरहारीत पक्षी और जलका चोर चातक होता है ।३१। भूमि हरण करने वाला रौरव आदि घोर नरकों में भ्रमता हुआ तृण, गुल्म, लता वल्ली तथा वृक्ष रूप में उत्पन्न होता है ।३२। इस प्रकार क्रम पूर्वक पापों के क्षीण होने पर मनुष्य की योनि प्राप्त हो पाती है, बैलको बधिया करने वाले को जन्मान्तर में नपुंसक होना होता है ।३३। फिर इक्कीस जन्म तक कृमि, कीट पतङ्ग जलचर पक्षी, मृग ।३४। और गाय की योनि प्राप्त करता है, फिर चाण्डाल या डोम आदि होकर लङ्गड़ा, अन्धा, वधिर, कुष्ठी तथा क्षयी होता है ।३५। तथा मुख रोग, नेत्र और गुह्य रोग से संतप्त होकर मृगी रोग से आक्रान्त होता हुआ शूद्र वनता है ।३६।

एषएवक्र रोदृष्टोगोसुवर्णापहारिणाम् ।
विद्यापहारिणाचैवनिष्क्रयभ्रंशिनाँगुरोः ॥३७
जायामन्यस्यपुरुषः पारक्यांप्रतिपादयत् ।
प्राप्नोतिषंढतांमूढोयातनाभ्यः परिच्युतः ॥३८
यः करोतिनरोहोममसमिद्धे बिभावसौ ।
सोऽजीर्णव्याधिदुःखार्तोमन्दाग्निःसम्प्रजायते ॥३९
परनिंदाकृतघ्नत्वं परमर्मविघटटनम् ।
नैष्ठुर्यनिर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् ॥४०
परस्वहरणाशाचदेवतानांचकुत्सनम् ।
निकृत्यावचनंनृणांकार्पण्यंचनृणांवधः ॥४१
यानिचप्रतिषिद्धानितत्प्रवृत्ति चप्रशंसताम् ।
उपलक्ष्याणिनजानीयान्मुक्तानाँनरकादुनः ॥४२

जिसने सुवर्ण आदि वस्तु चुराई है,उसकी भी यहीदशा होतीहै जो विद्या का हरण करता हैं या गुरु के धनका अपहरण करताहै ।३७।उसे

भी ऐसे ही उग्र दुःखों को भोगना पड़ता है तथा जो दूसरे की पत्नी किसी और को दे देता है, यह अनेक प्रकार के दुःख भोगता हुआ नपुंसक हो जाता है ।३८। समिधा के बिना अग्नि में होम करने वाले को जीर्ण और मंदाग्नि सताती है।३९। परनिन्दा,कृतघ्नता निष्ठरता, परामर्श छेदन, परनारि का सेवक तथा, लज्जाहीनता ।४०। हरण, वेद-निन्दा अपवित्रता, कृष्णता, ठगी, हिंसा ।३१। तथा अन्यान्य निषिद्ध कर्मोंका करना और उन-उन विषयोंमें प्रवृत होना ऐसे मनुष्यके विषय में समझलो कि नरक की यातनाएँ भोगकर ही इसने जन्म लियाहै ।४।

दयाभूतेषुसंवादः परलोकप्रतिक्रिया ।
सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥४३
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनसाधुसंगमः ।
सत्क्रियाभ्यसनंमैत्रीमितिबुध्येतपंडितः ॥४४
अन्यानिचैवसद्धर्मक्रियाभूतानिच ।
स्वर्गच्युतानांलिगानिपुरुषाणामपापिनाम् ॥४५
एतदुद्दे शतोराजन्भवतः कथितंमया ।
स्वकर्मफलभोक्तॄणांपुण्यानांपापिनांतथा ॥४६
तदेह्यन्यत्रगच्छामोदृष्टं सर्वत्वयाधुना ।
त्वयाचदृष्टोहिनरकस्तदेगन्यत्रह्यम्यताम् ॥४७
ततस्तमग्रत कृत्वासराजागतु मुद्यतः ।
ततश्चसर्वैरुत्क्रुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ॥४८
प्रसादकुरुभूपेतितिष्ठतावन्मुहूर्त्तकम् ।
त्वदगसगीपवनोमनो ह्लादयतेहितः ॥४९
परितापंचगात्रषुपीडावाधाश्चकृत्स्नशः ।
अपहतिनरव्याघ्रकृपांकुरुमहीपते ॥५०

सब जीवों के प्रति दया, परलोकार्थ शुभकर्म दूसरों के हितके लिए भाषण, वेद के लिए भाषाण वेद, दृष्टान्त का देखना ।४३। गुरु, देवता सिद्ध ऋषियों का पूजन, साधुओं का सङ्ग, सत्कर्म का अभ्यास सबके प्रति मित्रता ।४४। तथा अन्यास सत्कर्म जिसमें हों, उसे स्वर्गका

सुख भोग करने के पश्चात् उसने जन्म धारण किया है ।४५। अपने कर्मफल को भोगने वाले पुण्यात्माओं और पापियों के सम्पूर्ण विषयको मैंने आपके प्रति कह दिया है ।१६। आपको भी नरक देखना पड़ा है, अब आप अन्यत्र चलिए ।४७। पुत्र बोला-जैसे ही वह महाराज यमदूत को आगे करके चलने को हुए वैसेही नरक में पड़े सब जीव ऊँचे स्वर से क्रन्दन करते हुए बोले ।४८। हे राजन् ! प्रसन्न हूजिए एक मुहुर्तभर यहाँ ठहरिये, आपके संसर्ग वाली वायुने हमारा चित्त अत्यन्त आह्लाद पूर्ण हो रहा ।४६। इस वायु से हमारे अङ्ग-२ का परिताप हर दिया हैं, अतः हे पृथिवीपते ! हमारे ऊपर दया कीजिए ।५०।

एतच्छ्चावचस्तेषांतंय यम्बपुरुषनंनृप ।
पप्रच्छकथमेतोषामाह्लादोमयितिष्ठति ॥५१
किमयाकर्मतत्पुण्यमर्त्यलोकेमहत्कृतम् ।
आह्लाददायिनीदष्टिर्यनेयंतदुदीरय ॥५२
पितृदेवतिथिप्रेष्यशिष्टे नान्नेनतोतनुः ।
पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तदगतं चमनोयतः ॥५३
ततस्त्वद्गात्रससर्गीपवनोह्लाददायक ।
पापकर्मकृतोराजन्यातनानप्रबाधतो । ५४
अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यतः ।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्यायत्राग्निवायसाः ॥५५
पीडनच्छे दाहादिमहादुःखस्यहेतवः ।
मृदुत्वमागताराजमतेजसोपहतास्तव ॥५६

उनसे यह वचन सुनकर राजा ने यमदूत से पूछा—मेरे यहाँ खड़े होने से यह इतने सुखी क्यों हो रहे हैं ? ।५१। मर्त्यलोक में ऐसा कौन सा पुण्य मैंने किया है जिसने मेरे कारण इन पर ऐसा आनन्द देने वाली वृष्टि हो रही है ? ।५२। यमदूत ने कहा—हे राजन् ! पहिले आपने देवता पितर, अतिथि, सन्यासी आदि को भोजन देकर उससे बचा हुआ अन्य खाकर अपनी उदर पूर्ति की थी, और आपका चित्त इसी में रत था अतः हर समय आपके देह के संसर्ग वाली वायु से इन पापियों की सब यातनाएँ मिट रही हैं ।५४। आपने अश्वमेध

आदि यज्ञ विधिवत् किए हैं, इसलिए सम्पूर्ण महादुःखों के कारण रूप यम के यन्त्र अग्नि, शस्त्र, काक तथा अन्य पक्षियों ने आपके दर्शन से हत होकर कोमलता में प्रवृत्ति की हैं ।५५-५६।

न स्वर्गेब्रह्मलोकेवातत्सुखंप्राप्यतेनरैः ।
यदार्त्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमिमेतिः ।।५७
यदिमत्सन्निधावेतान्यातनानप्रबाधते ।
ततो भद्र मुखाऽवाहंस्थायेस्थाणुरिवाचलः ।।५८
एहिराजेन्द्रगच्छामिनिजपुण्यसमार्जितान् ।
भुक्ष्वभोगांनपास्येहयातनाः पापकर्मिणाम् ।।५९
तस्मन्नतावद्यास्यामियावदेतेसुदुःखिताः ।
मत्सन्निधानात्सुखिनीवभतिनरकौकसः ।।६०
धिकतस्यजीवितं पुंस शरणार्थिनमातुरम् ।
योनर्त्तमहृणातिबैरिपक्षमपिध्रुवम् ।।६१
यज्ञदानतपांसीहपरत्रचनभूतये ।
भवंतितस्ययस्यार्त्त परित्राणेनमानसम् ।।६२
नरस्यास्यकठिनंमनोबालातुरादिषु ।
वृद्धेषुचनतंमन्योमानुषराक्षसोहिसः ।।६३

राजा बोले—मेरा विचार है कि जो सुख दुःखियों की रक्षामें मिलता है वह स्वर्ग या ब्रह्मलोक में भी नहीं मिलता ।५७। यदि मेरे यहाँ खड़े रहने मात्र से इनकी यंत्रणा नष्ट हो रही है तो मैं अचल होकर यहीं निवास करूँगा ।५८। यमदूत ने कहा राजन् ! आप चलिए अपने पुण्य से संचित तब शुभ फलों को भोगिए यह स्थान तो पापात्माओं के दुःख भोगने के लिए ही है ।५९। राजा बोले-जब तक यह घोर दुःख पायेंगे, तब तक मैं नहीं जाऊँगा, क्योंकि मेरे यहाँ रहने से इन सबको सुख मिलता है ।६०। यदि शत्रु भी दुःख से आतुर होकर शरण में आवे तो जो उस पर कृपा न करे उसे धिक्कार है ।६१। जिसका चित्त आर्त्त पुरुष की रक्षा में नहीं है उसके यज्ञ, दान, तप सब कुछ लोक-परलोक में सुख नहीं पहुँचा सकते ।२२। बाल, वृद्ध आतुर आदि के प्रति कठोर चित्त वाले मनुष्य तो राक्षस ही हैं । ऐसा समझो ।

एतेषांसन्निकर्षात्तु यद्यग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगंधजंवापिदु:खंनरकसंभवम् ।।६४
क्षुत्पिपासाभवंदु:खंयच्चमूर्छाप्रदमहत् ।
विनाशमेतितद्भद्रमन्येस्वर्गसुखान्परम् ।।६५
प्राप्स्यन्त्यार्त्तायदिसुखंबहवोदु:खितोमयि ।
किन्नुप्राप्तमयानस्यात्तस्मात्वव्रजमापागतौ ।।६६
एषधर्मश्चशक्रश्चत्वाँनेतुसमुपागतौ ।
अवश्यमस्माद्गन्तमात्पार्थिवगक्ष्यताम् ।।६७
नयामित्वामहंस्वर्गतयासम्यगुपसितः ।
विमानमेतदारुह्यमाविलवस्वगाम्यताम् ।।६८
नरकेमामवाधर्मपीडचन्तेऽत्रसहस्रशः ।
त्राहीतिचार्त्ता:क्रंन्दंतिमामातोन्व्रजाम्यहम् ।।६९
कर्मणानरकप्राप्तिरेतेषांपापकर्मणाम् ।
स्वर्गस्त्वयापिगतव्योनृपपुण्येनकर्मणा ।।७०

यद्यपि इनके पास रहकर मुझे नरकाग्नि के भीषण तापसे उत्पन्न तीव्र गन्ध का दु:ख झेलना पड़ेगा ।३४। क्षुधा-पिपासा से उत्पन्न मूर्च्छादायक दु:ख भोगना होगा, फिर भी इनकी रक्षा के विचार से मैं उस महादु:ख को भी स्वर्ग सुख से बढ़कर समझूंगा ।१४। यदि मेरे दु:ख पाने मात्र से दु:खी प्राणियों को सुख मिलेगा ? इसलिए हे यम-दूत ! तुम यहां से चले जाओ देर मत करो ।६६। यमदूतों ने कहा—राजन् ! यह इन्द्र और धर्म आपको स्वर्ग में ले जाने के निमित्त उप-स्थित हुए हैं आपको यहाँ से अवश्य जाना होगा, इसलिए यहाँ से चलिए ।६७। धर्मने कहा—राजन् ! आपने भली प्रकार से मेरी उपासना की है, इसलिए मैं आपको स्वर्ग में ले जाऊँगा, अव आप देर न करें, इस विमान में शीघ्र ही बैठें ।६८। राजा से कहा-हे धर्म हजारों मनुष्य इस नरक में पड़े हुए आर्त्त नाद कर रहे हैं, इसलिए मैं इस स्थान को छोड़कर नहीं जा सकता ।६९। इन्द्र बोले-इस पापियों कों स्वकर्म फल से यह नरक यातनायें भोगनी पड़ रही हैं, आपको अपने पुण्य फल से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।७०।

यदिजावासिधर्मत्वत्वंवाशक्राशचीपतेतो ।
ममयावत्प्रमाणंतुशुभतद्वक्तु महंथ: ॥७१
अब्बिन्दवोयथांभोधौयथावादिवितारका: ।
ययावाकर्षतोधारागंगायांसिकतांयथा ॥७२
असंख्येयामहाराजन्नावानायोषुजतव: ।
तथातवापिपुण्यस्यसंख्यानैवोपपद्यते ॥७३
अनुकम्पामिमामद्यनारकेष्विहकुर्वत: ।
तदेवज्ञतसास्त्रसख्यानीतत्वयानृप ॥७४
तद्गाच्छत्वंद्द्वश्रेष्टभ्दक्तुसमरालयम् ।
एवतेऽपिपापनरकेक्षपयंतुस्वकर्मजम् ॥७५
कथं पृहांकरिष्यंनिमत्संपर्केषुमानवा: ।
यदिमत्संन्निधादेषामुत्कर्षोनोजायते ॥७६
तस्माद्यन्सुकृतांकिंचिन्ममास्तित्रिदशाधिप ।
मुच्यतेननरकात्पापिनोनोयातनांगता: ॥७७

राजा ने कहा—हे धर्म ! हे देवेन्द्र ! मेरा संचित पुण्य कितना है यदि आपको ज्ञात है तो मुझे बताइए ।७१। धर्म बोले-राजन् ! समुद्र में जितने जल बिन्दु है, आकाश में जितने तारे हैं, वर्षा में जितनी जल-धारें हैं, तथा गंगा में जितनी बालू है, आपका उतना ही पुण्य है ।७२। जिस प्रकार जल-बिन्दु की गणना नहीं की जा सकती उसी प्रकार आप के पुण्य भी संख्यातीत है ।७३। तथा अब इन नरक वासियों के प्रति दया प्रकट करने से आपका पुण्य भी शत-सहस्र गुणा अधिक हो गया है।७४। इसलिए आप अपने पुण्यका फल भोगने को वहाँ चलें और यह पापी भी नरक में रहकर अपने को नष्ट करें ।७५। राजा बोले—यदि मेरी निकटता से इन्हें कुछ सुख न हुआ होता तो यह मेरे साथ की अभिलाषा ही क्यों करते ? ।७६। इसलिए मेरा जो कुछ पुण्य है उसी के द्वारा यह नरक यातना को प्राप्त करने वाले पापी नरक से मुक्त हों ।७७।

एवमूदध्वंतरंस्थानं त्वयावाप्तं महीपते ।

एतांश्चनरकात्पश्यविमुक्त न्यायकारिण: ॥७८

ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरिमहीपते: ।

विमानं चाधिरोष्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरि: ॥७९

अहं चान्येतयेतत्रायातनाभ्य: परिच्युता: ।

स्वकर्मफलनिर्दिष्टं ततोजात्यन्तरंगता: ॥८०

एवमेतेसमाख्यातानकाद्विजसत्ताम ।

येनयेनचपापेनयांयांयोनिमुपैतिवै ॥८१

तत्तस्सर्वंसमख्यातयाथदृष्टंमयापुरा ।

पुर नुभमुजज्ञानमवाप्यकथितं तव ।

अत: पर महाभागकिमन्यत्त्कथयामिते ॥८२

इन्द्र बोले हे राजन् ! इससे आपको और भी उच्च स्थान प्राप्त हुआ, यह देखिये सब प पी नरक से मुक्त हो गए ।७८। पुत्र बोला फिर उन राजा के ऊपर पुष्प वृष्टि होने लगी और सुरपित उन्हें विमानों में चढ़ा कर स्वर्गलोक को ले गये ।७९। इधर मैंने भी अपने नारकीयों सहित यन्त्रणा से मुक्त होकर स्वकर्म के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म धारण किया ।८०। हे द्विजोत्तम ! इस नरकोंकी सब वात आपके प्रति यथार्थ रूपमें कह दीं और यह भी कह दिया कि किस योनि में जाना होता है ।८१। जो कुछ पूर्वकाल में मैंने देखा वह सय आपसे कह दिया इस सबका मैंने स्वयं अनुभव किया है, इसलिए यह नितान्त सत्य है, अब और क्या कहूँ यह मुझे आज्ञा दीजिये ।८२।

१६-दत्तात्रेय माहात्म्य वर्णन

कथितंमेत्वयावत्सारस्यव्यवस्थितम् ।

स्वरूपमतिहेस्यघटीयन्त्रवदव्ययम् ॥१

तदेवमेतदखिलस्यावगतमीदृशम् ।

किंमयावदकर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यस्थिते ॥२

यदिमद्वचनंतातािद्धश्रास्यविशतित: ।

तत्परित्यज्यगार्हस्थयंवानप्रस्थपरोभव: ॥३
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ।
आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रह: ॥४
एकांतशीलोवश्यात्माभक्षिरतंद्रित: ।
तत्रयोगपरोभूत्ववायाह्यस्पथ: विवर्जित: ॥५
तत: प्राप्स्यसितंयोगदु:खसंयोगभेषजम् ।
मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसङ्गितम् ॥३
तत्संयोग न्नतेयोगोभूतैर्भविष्यति ।
वत्सयोगममऽऽचक्ष्वमुक्तिहेतुमत: परम् ॥७
येनभूते पुनर्भूतोनेहृग्दु:खमवाप्नुयाम् ।
यत्र शक्तिपरस्यात्मामसंसारबन्धनै: ॥८

पिता बोले वत्स ! तुमने घटी यन्त्र के समान निरन्तर चलते हुए संसार चक्र का अतिशय स्वरूप मुझे बताया ।१। अब मुझे ज्ञान होगा । कि सब ऐसा ही है, अब मुझे क्या करना उचित है ? ।२। पुत्र ने कहा-यदि आप शंका रहित मनसे मेरी बात मानें तो ग्रहस्थाश्रम का त्याग आत्मा में संयोग स्थापित करके द्वन्द्व रहित परिग्रह रहित हो आत्मामें आत्माका संयोग स्थापित करके द्वन्द्व रहित परिग्रह रहित हो जाइये ।४। एकान्त में रहकर आत्माको वश में करके आलस्य का त्याग करिए, इस प्रकार जब गाह्य स्पर्श से परे होंगे ।५। तब आप मोक्ष-कारण, निरूपम, वचनातीत, नि:सर्ग दु:ख के लिए औषधि स्वरूप इस योग को प्राप्त करेंगे ।६। इस योग के संयोग से पञ्चभूत के साथ आपकी पुन: सङ्गति नहीं होगी, पिता बोले-अब तुम मोक्ष के कारण रूप उस योग का वर्णन करो ।७। जिसके अवलम्बन से भौतिक संयोग युक्त पुनर्जन्म का दु:ख मुझे फिर कभी न भोगना पड़े, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है फिर भी संसार के विषयों में इसकी आसक्ति है ।८।

नेतियोगतयोगोऽपितंयोगमनुनावद ।
संसारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्दैहिमानसम ॥६
प्रह्मज्ञान्नांवृशीतेनसिंचमांवाक्यवारिणा ।
अविद्याकृष्णासर्पणदष्टंतद्विषपीड़ितम् ॥१०

स्ववाक्यामृतदायेनमाजीवयपुनमृंतम् ।
पुत्रदारगृहेक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥११
मंमोचयेष्टसद्भावयिज्ञानोद्घाटनैस्त्वन् ।
शृणुतातथयोदत्रेयेणधीमता ॥१२
अलकविपुराप्रोक्तःसम्यक्पूनविस्तरात् ।
दत्तात्रेयःसुतःकस्त्वकथंवायोगमुक्तवान् ॥१३
कश्छालर्कोमहाभागोयोयोगपरिपृष्टवान् ।
कौशिकोब्राह्मणःकश्चित्प्रतिष्ठानेऽभवत्परे ॥१४
सोऽयजन्मकृतैःपापै कुष्ठरोगतरोगतुभवत् ।
तंतथाव्यांधितभार्यापतिदेवमिवार्चयत् ॥१५

इसलिए विषयों को पाकर आत्मा उन विषयों में न लगे, हे वत्स! मेरा मंन और शरीर भय रूप भाष्कर के तापसे तप्त है ।९।, तुम ब्रह्म-ज्ञानमय वचन रूप जल से उस तापको ठण्डा करो, मुझे अविद्या रूपी काल सर्प ने दशित किया है उसकी पीड़ा से मृतकके तुल्य हो रहा हूँ ।१०। तुम अपने वचनामृतसे मुझे पुनर्जीवित करो, मैं पुत्र, भार्या घर खेत आदि की ममता रूप बेडियों में जकड़ा हुआ हूँ ।१। तुम सद्भाव ज्ञान के द्वारा मुझे उससे मुक्त करो । पुत्रने कहा-पुराकाल में अलर्क द्वारा प्रश्न करने पर दत्तात्रेयजी ने जो योग उसे विस्तार सहित बताया था, उसे कहता हूँ, पिता बोले-दत्तात्रेयजी किसी के, पुत्र और उन्होंने योग वर्णन किस प्रकार किया था ।१२-१३। तथा योग का प्रश्न करने वाले अलर्क कौन थे । पुत्र ने कहा-प्रतिष्ठान नगर में एक कुशिक वंशी ब्राह्मण रहता था ।१४। वह पूर्वजन्म के पाप से कुष्ठी हो गया, अतिकुष्ठी से आक्रांत होने पर भी उसकी देवता के समान उसका पूजन करती थी ।१५।

पादाभ्यंगाँयंवाहन्नानाज्छादनभोजजैः ।
श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्द्रवाहक्षालनेमच ॥१६
रहश्च योहचारेणप्रियसंभाषिणेनच ।
सततपूज्यमानोऽपि सदातीवबिनीतया ॥१७

अतीवतीव्रकोपवान्नर्भत्सयतिनिष्ठुरः ।
तथापिप्रणतासाध्वीतममन्यदैवतम् ॥१८
तंतथाप्यतिवीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत ।
अचंक्रमपशीलोऽपिसकदाचिद्द्विजोत्तमः ॥१९
प्राहभार्यनयस्वेतित्वं मांयस्यानिवेशनम् ।
याशावेश्यामयादृष्टाराजमार्गे गृहोषिता ॥२०

वह तेल मलती चरण दावती, आच्छादन करती, भोजन कराती और मल, कफ, रक्त आदि को धोती थी ।१६। तथा प्रिय भाषण और विनीत भाव के सहित उसका आदर पूर्वक पूजन करती थी ।१७।परन्तु वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी था, विनीत भाव वाली पत्नीसे पूजित होकर भी छिड़की देता रहता था फिर भी वह उसे देवता मानती थी ।१८। वह उस वीभत्स स्वरूप के ब्राह्मण को सदा सर्व श्रेष्ठ मानती उसने अपनी पत्नी कहा एक वेश्या राजमार्ग के पार्श्ववर्ती, गृह में रहती हैं मैंने उसे देखा है ।२०।

तामाँप्रायधर्मरोसैवहृदिवर्तते ।
दृष्ट्वासूर्योदयेवालारात्रिश्चेयमुपागता ॥२१
वर्शलानन्नरंसानेह्मदयान्नापसर्पति ।
यदिसाचापुसर्वांगोपीनश्रोणिपयोधरा ॥२२
नोपगूहतितन्व योतन्माँद्रक्ष्यसिवैमृतम् ।
वामः कामोमनुष्पाणांबहुभिःप्रार्थतेचसा ॥२३
ममाशक्तिश्चगमनेसंकुलं प्रतिभातिमे ।
तत्तदावचन श्रुत्वाभत्तुः कामातुरस्यसा ॥२४
तत्पत्नोसत्कुलोजातामहाभागापतिव्रता ।
गाढ़परिकरंनद्ध्वाशुक्लमादयचाधिकम् ॥२५
स्कंधभत्तास्मादायजमाममृदुगाभिनी ।
निशिमेघास्ततेव्योम्निचलद्विद्युत्प्रदशिते ॥२६
राजमार्गेप्रियभत्तुंश्चिकीर्षतीद्विजांगना ।
पथिशूलेतथाप्रोत्तमचोरंचोरशंकया ॥२७

माण्डव्यामतिदु:खार्त्त मंधकारेऽयसद्विज: ।
पत्नीस्कधंसमारूढश्चालयामासक्रौशिक: ॥२८

तू मुझे उस वैश्या के घर ले चल, वह मेरे हृदय में निरन्तर वसी रहती है, मैंने प्रात:काल उसे देखा था कब रात्रि का समय गया है।२१। जब मैंने उसे देखा है तभी से वह मेरे हृदय से पृथक नहीं हो रही हैं, यदि पुष्ट पयोधरा ।२२। वाली वह मुझसे न मिलेगी तो तू अवश्य ही मुझे मृत देखेगी । क्योंकि प्रथम तो कामदेव मनुष्योंके अनुकूल ही नहीं है ।२३। उस पर भी अनेकों मनुष्य उसके भक्तहैं मुझमें चलने की सामर्थ्य नही हैं इससे और भी विषय संकट प्रतीत हो रहा है उस कामातुर पति देव की बातें सुनकर ।२४। वह पतिव्रता व्याकुल हो गई फिर भी उसने बहुत सा धन लेकर ।२५ पति को अपने कन्धे पर चढ़ाया और धीरे-धीरे चल पड़ी, एक तो अन्धेरी रात, दूसरे आकाश में बादल छाये हुए थे, वह बिजली चमक में अपने पति के प्रिय कार्य के लिए राजमार्ग में चलदी उसी मार्ग में एक शूलीगड़ी हुई थी जिसपरचोरी के मिथ्या अपराध में ।२३-२७। मुनिवर माण्डव्य चढ़े हुए दुःख भोग रहे थे । मार्ग में अन्धेरा होने से पत्नी के कन्धे पर स्थित कौशिक ब्राह्मण का भूमि से स्पर्श हुआ और पैर विचलित हो गया तथा मुनिवर को छू गया ।२८।

पादावमर्षणोशुक्रुद्धोमांडव्यस्तमुवाचह ।
येनाहमेयत्यर्थंदु:खितश्चालिता:पदा ॥२९
दशांकष्टामनुप्राप्त: सपापात्मानराधम: ।
सूर्योदयेऽयश: प्राणैर्वियोक्ष्यति न संशय: ॥३०
भास्करालोकमादेवविनाशमाप्स्यति ।
तस्यार्याततः श्रुत्वातंशापमतिदारुणम् ॥३१
प्राचोचव्यथितासूर्योनैवोदयमुप्रेष्यति ।
ततः सूर्योदयाभावभवन्संततानिशा ॥३२
बहूत्यह: प्रमाणानितत देवाभयययु: ।
नि: स्वाध्यायवषट्कारस्वधास्याहाविवर्जितम् ॥३३
कथंनुखल्विदंसर्वंनगच्छेत्संक्षयंजराम् ।

अहोरात्रव्यवस्थायाविनामासतुं सक्षयः ॥३४
ततोसंक्षयान्नत्वयनेज्ञायते दक्षिणोत्तरे ॥३५

जिससे माडव्य मुनि ने क्रोध से कहा कि जिसने मेरा पैर विचलित कर के मुझे व्यर्थ ही यन्त्रणा दी है वह पापी सूर्योदय होते ही असह्य यन्त्रणा भोगता हुआ मृत्युको प्राप्त होगा।३०। सूर्यके उदय होते ही उस का प्राण अवश्य चला जायगा, इस दारुण शाप को सुनकर उसकी पत्नी ने अत्यन्त व्यथित होकर कि अब सूर्य ही उदय नहीं होंगे, उस पतिव्रता के इस वचन से सूर्योदय नहीं हुआ और इस प्रकार अनेक रात्रियाँ हुईं। यह देखकर देवता भी भयभीत होकर विचार करने लगे कि स्वाध्याय, वषट्कार स्वधा और स्वाहा के इसप्रकार लुप्त होने से विश्व की रक्षा कैसे होगी ? ।३३। अहोरात्र की व्यवस्था टूट जाने से मास और ऋतु का विभाग न होगा, जिसके कारण उत्तरायण या दक्षिक्षायण का ज्ञान भी न हो पायेगा ।३४-३५।

विनाचायनविज्ञानंत्कालः संवत्सरःकुतः ।
पतिव्रतायावचनान्नद्गच्छतिदिवाकरः ॥३६
सूर्वोदयंविनानैवस्नानदानादिकाःक्रियाः ।
नाग्नेर्विरणचैवक्रत्वभावश्चलक्ष्यते ॥३७
नकालेनविनाचेष्टिर्नचयज्ञादिकाक्रियाः ।
नश्यतिसर्वभूतानितमोभुते चराचरे ॥३८
नैवाप्यायनमस्माकंविनाहोमेनजायते ।
वयमाप्यायितामत्तामर्त्यैर्यज्ञभागर्यथोचितैः ॥३९
पृष्टयादिनानुगृह्णीमोमर्त्यान्सिस्यादिसिद्धये ।
निष्पादितास्वोषधीषुमर्सायज्ञैर्यंजंतिनः ॥४०
तेषांवयंप्रयच्छामान्यज्ञादिपूजिताः ।
अधोहिवर्षामवयंमर्त्याश्चोद्ध्वंप्रवर्षिणः ॥४१

यह ज्ञान न होने से संवत्सर का स्थिर करना सभव न होगा, तथा अन्यान्य कालोंका ज्ञानभी कैसे हो सकेगा ? अब उस पतिव्रताके वचनसे सूर्योदय ही रुक गया है ।३६। सूर्योदयके अभाव में स्नानादि कार्य,हवन

तथा सम्पूर्ण यज्ञोंका अभी अभाव हो हीं गया है ।३७। काल के अभाव से इष्टि तथा यज्ञदानादि क्रिया नहीं हो सकती तथा अन्धकार व्याप्त होकर सब जीव नाश को प्राप्त हो रहे है ।३८। यज्ञ के बिना हमारी तृप्ति का भी अन्य उपाय नहीं है, क्योंकि यज्ञ भाग देकर ही मनुष्य हमें तृप्त करते है ।३९। हम भी अन्नादि की उपलब्धि के लिए वृष्टि करके उन पर अनुग्रह करते हैं, औषधियों के उत्पन्न होने पर उनके द्वारा यज्ञ किये जाते हैं ।४०। उनके पूजन से सन्तुष्ट होकर हम इच्छितवर देते हैं हम नीचे की ओर जल बरसाते और वे ऊपरकी ओर घृत बरसाते है ।४१।

तोयवर्षेणहिवयंहविर्वर्षेणमानवा: ।
येनास्माकप्रयच्छन्तिनित्यनैमित्तिकी: क्रिया: ।।४२
क्रतुभागं दुरात्मान स्वयं वाश्नंतिलोलुपा: ।
विनाशायवयतेषाँयसूर्याग्निमारुतान् ।।४३
क्षितिचसंदूषयाम: पापानामपकारिणाम् ।
दुष्टतोयादिभ गेनतेषांदुष्कृतकर्मिणाम् ।।४४
उपसर्गा: प्रवर्त्तन्तेमरणायसुदारुणा: ।
येत्वस्मान्प्रीणयित्वातुभुंजतेशेषेमात्मना ।।४५
तेषांपुण्यन्वयलोकान्विदधाममहात्मनाम् ।
तन्नास्तिसर्वमवैतद्धिनैषांव्युष्टिसंस्थितम् ।।४६
क्रथनुदिनसग: स्यादन्योन्यमवदन्सुरा ।
तेषामवसमेतानांथव्युच्छित्तिशकिनाम् ।।४७
देवानांवचन श्रुत्वाप्राहदेव: प्रजापति: ।
तेज, परन्तेजसैवतपसाचतपस्तथा ।।४८

हम जल वृष्टिसे और मनुष्य हविदेकर परस्पर प्रसन्न होतेहैं । जो नित्य नैमित्तिके क्रिया हमको अर्पण नहीं करते ।४२। अर्थात् जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमें न देकर यज्ञ भागको स्वयं ही खा जाते हैं, उनके विनाशार्थं हम जल, अग्नि, सूर्य, वायु ।४३। और पृथिवी को दूषितकर देते हैं;जिससे उन पापियों को ।४४। नष्ट करने वाले दारुणरोग उत्पन्न होते हैं, परन्तु जो हमें तृप्त करके शेष मात्र का भोजन करते हैं ।४५।

उन महात्माओं को हम पुण्यमय स्थान प्रदान करते हैं, परन्तु इससमय तो वह सब कार्य अवरुद्ध है और उसका कोई उपाय भी दिखाई नहीं दे रहा है ।४६। इस दग्ध सृष्टिकी स्थिरता कैसे हो ? दिन किस प्रकार कटे ? यज्ञ के नष्ट होने की शंका करते हुए देवगण परस्पर इस प्रकार कहने लगे ।४७। उनके वचनों को सुनकर देवोत्तम प्रजापति ब्रह्माजी बोले ।४८।

प्रशास्यत्यत्यमरास्तस्माज्छ्रुणुध्वं वचनं मम ।
पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ।।४९
तस्यानुदयाद्धानिर्मर्त्यातांभयतांयथा ।
तन्मात्पतिव्रतामत्रे रनसूर्यातपस्विनीम् ।।५०
प्रसादय वैपत्नीरुदयकाम्यया ।
तैः प्रसादितागत्वाप्राहेष्ट व्रियतामिति ।।५१
अयाचतदिनंदेवात्वितियथापुरा ।
पतिव्रतायामाहात्म्यंनहीयेतकथत्विति ।।५२
सम्मान्यतस्मात्तांसाध्वामहः तथा प्रेष्याम्यहहसुराः ।
यथापुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते ।।५३
यथाचतस्याःस्वपतिर्न्नंसाध्वशमेयाति ।
एवमुक्त्वतुराँस्तस्यागन्वासामदिरं शुभा ।।५४
उवाकुशलपृष्टाधर्मं भर्त्तुस्तथात्मनः ।
कच्चिन्नं दसिक याणिस्व भर्तुखदायिनी ।।५५
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्योमन्यसेऽम्याधिकपतिम् ।
भर्तृशुश्रूषणादेवमयाप्राप्तमहत्फलम ।।५६

परम तेज और तप से ही तप का विनाश होता है, इसलिए मेरी बात सुनो पतिव्रता की महिमा से सूर्योदय नहीं हो, रहा, सूर्योदय के अभावसे तुम्हारी और मनुष्योंकी हानिहै यदि तुम सूर्योदय चाहतेही तो महर्षि अत्रिकी पत्नी अनुसूयाको ।४९-५०।प्रसन्न करो । पुत्रने कहा-तब देवताओं ने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया इसके पश्चात् अनुसूया ने कहा तुम इच्छित विषय बताओ ।५१। देवताओंने कहा पहिलेके समान-

सूर्योदय हो जाय। अनुसूया बोली पतिव्रत की महिमा कभी नष्ट नहीं हो सकती।५२। फिर भी मैं उस पतिव्रत के समान पूर्वक ऐसा उपाय करूँगी, जिससे दिन निकल आवे।५३। और उसका पति भी शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त न हो, ऐसा कहकर अनुसूया उसके घर गई।५४। और उसकी तथा उसके स्वामी की कुशल पूछी—हे स्वामी को सुख देने वाली ! तुम उनका सुख देखने से प्रसन्न रहती हो ?।५५। तथा अपने स्वामी को देवताओं से भी श्रेष्ठ मानती हो. मैं भी अपने स्वामी की सेवा से ही महाफल को प्राप्त हुई हूँ।५६।

सर्वकामफलावाप्ति:प्रत्यूहा: परिवर्त्तिता।
पंचर्णानिमनुष्येणसाध्विदेयानिसर्वदा।५७
तथात्मवर्णधर्मेणकर्तव्योधनसञ्चय:।
प्राप्तश्चार्थस्तत:पात्रेविनियोज्योविधाधनत:।५८
सत्यार्जवतपोदानैर्दयायुक्तोभवेत्सदा।
क्रियाचशास्त्रनिर्दिष्टारागद्वेषविवर्जिता:।५९
कर्त्तव्यान्वहंश्रद्धापुरस्कारेणशक्तित:।
स्वजातिविहितानेवं लोकानाप्नोतिमानव:।६०
क्लेशनमहतासाध्विप्राजापत्यादिकान्क्रमात्।
स्त्रियश्त्वेवंसमस्तस्यनरैर्दु:खार्जितस्यवै।६१
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्व पतिसुश्रूषयैवहि।
पुण्ययस्यार्द्धापहारिण्य पतिसुश्रूषयैवहि।
नास्तिस्त्रोणांपृथग्योनश्राद्धं नाप्युपोषितम्।६२
भर्तृशुश्रूयैवैतान्लोकानिष्ट ञ्व्रजतिहि।
तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणप्रति।
त्वयामति:सदाकार्यायतोभर्त्तापरागति।६३

पत्नी की सम्पूर्ण कामनायें पति सेवा में ही निहित हैं। हे साध्वि ! पाँच ऋण सर्वदा देय हैं।५७। अपने वर्ण-धर्म के अनुसार धन का संचय करके उपयुक्त पात्र को दान करे।५८। तथा सदैव, सत्य, सरलता, तप, दान और दया परायण रहे और नित्यप्रति राग द्वेष से रहित शास्त्रोक्त कर्म को श्रद्धा सहित करे, ऐसा करने से सब लोकों की प्राप्ति होती है

।५९।६०। तथा प्राजापत्यादि पवित्र धामको प्राप्त होते हैं, परन्तु स्त्रियाँ पति-सेवा से ही उसके सर्व पुण्य में आधा भाग प्राप्तकर लेती हैं स्त्रियोंके लिये यज्ञ, श्राद्ध अथवा उपवास आदिका कोई पृथक विधान नहीं।६१।६२। वह तो स्वामी की सेवा मात्र से ही सब इच्छित लोकों को प्राप्त होती हैं इसलिये तुम इसीमें लगी रहो, क्योंकि पत्नी की परमगति पति ही है।६३।

यद्द्देवेभ्योयच्चपित्राऽऽगतेभ्य कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनंसत्क्रियान् ।
तस्याप्यर्द्धि केवलानन्यचित्तानारीभुङ्क्त भर्तृ शुश्रुषयैव ।६४
तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाप्रतिपूज्यतयादरात् ।
प्रत्युवाचात्रिपत्नीतामनसयामिदंवचः ।६५
धन्याऽस्म्यगृहीताऽस्मिदेवैश्चप्यविलोकिता ।
यन्मेप्रकृतिकल्याणिश्रद्धांवर्द्धयमेपुनः ।६६
जानाम्येतन्ननारीणांकत्चिपतिसमागतिः ।
तत्प्रीतिश्चोपकारायइहलोकेपरत्रच ।६७
पतिप्रसादादिहचहप्रेत्यचैवयशस्विन ।
नारसुखमवाप्नोतिनार्याभर्त्ताहिदेवत ।६८
सात्वंबू हिमहाभागेप्राप्तायाममम्ंदिरम् ।
आर्याया : किन्तुकर्त्तव्यमयाऽऽर्येणाऽपिवाशुभे ।६९

स्वामी द्वारा किये जाने वाले देवता, पितर,अतिथि आदि का सत्कार या सब सत्कर्म, सभीमें स्त्री को पति-सेवाके कारण अर्द्धांश प्राप्त होता है।६४। पुत्र ने कहा—अनुसूया के वचन सुनकर उसने आदर सहित अनुसूया का पूजन किया और बोली।६५। आज मैं अत्यन्त अनुगृहीत और धन्य होगई हूँ क्योंकि आपने अपने स्वामी के प्रति मेरी श्रद्धाको और भी बढ़ा दिया है, तथा देवताओं ने भी मुझ पर अनुग्रह किया है।६६। मैं जान गई कि स्वामी के अतिरिक्त अन्य कोई गति स्त्री को नहीं है उन्हीं की प्रसन्नता से इहलोक और परलोक बनता है।६७। पति की कृपा से ही स्त्रियाँ इहलोक परलोक में सुख पाती है, क्योंकि उनका देवता पति ही है।६८। अब आप स्वर्ग से यहाँ पधारी हैं, तब मुझे आदेश दीजिये कि मुझे या मेरे स्वामी को क्या करना उचित है ?।६९।

एतेदेवा : महेन्द्रेणामामुपागम्यदु:खिता: ।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणा : ।७०
याचतेऽर्हनिशासस्थांयथावदविखंडिताम् ।
अहंतदर्थंमायाताश्रृणुचैतद्वचोमम् ।७१
दिनभावात्समस्तानामभावोयोगकर्मणाम् ।
तदभावात्सुरा : पुष्टिनोपयांतितपस्विनि ।७२
अह्नश्चैवसमुच्छेदादुच्छेद सर्वकर्मणाम् ।
तदुच्छेदादनावृष्टयाजगदुच्छेदमेष्यति ।७३
तत्वमिच्छसिटेदेतत्जगदुद्धर्त्तं मायुद: ।
प्रसादसाध्विलोकानांभूववद्वर्तंतांरवि : ।७४
मांडव्येनमहाभागेशप्तोभर्त्तामभेश्वर: ।
सूर्योदयेविनाशंत्वंप्राप्स्यसीत्यतिमन्युना ।७५
यदिवारोचते भद्रे ततस्त्वद्वचनादहम् ।
करोमिपूर्ववद्देहं भर्त्तार चनावं तब ।७५
मयातिसर्वथास्त्रीणांमाहात्म्यव वर्णिनि ।
पतिव्रतानामराध्यमितिसंमानयामिते ।७७

अनुसूया ने कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचन से दिन-रात्रि का भेद न रहने से सब सत्कर्म नष्ट हो गये हैं, इसलिये सुरराज इन्द्र के सहित यह सम्पूर्ण देवता मेरे पास आकर ।७०। पहले के समान ही दिन-रात्रि होने को कहते हैं, मैं इसलिये यहाँ आई हूँ ।७१। दिन न के होने से यज्ञानुष्ठान भी नहीं हो रहा है और यज्ञ के होने से देवताओं की तुष्टि भी नहीं हो सकती ।७२। दिन के अभाव में सर्व कर्मों का नाश हो गया तथा कर्म नाश से अनावृष्टि हो गई, इससे सम्पूर्ण विश्व का नाश संभव है ।७३। यदि तुम इस विपत्ति से संसार को बचाना चाहो तो सब पर प्रसन्न होओ जिससे सूर्य पूर्ववत् उदय को प्राप्त हो सके ।७४। ब्राह्मणी बोली—हे महाभागे ! मुनि माण्डव्य ने क्रोधपूर्वक मेरे स्वामी को शाप दिया है कि सूर्योदय होते ही तेरा पति मृत्युको प्राप्त होगा ।७५। अनुसूया ने कहा—हे कल्याणी! ऐसा होने पर मैं तुम्हारे स्वामीके शरीर को पहले के समान

कर दूँगी ।७६। पतिव्रता स्त्री की महिमा मेरे लिए सदैव आराधना के योग्य है, इसलिए मैं तुम्हारा सम्मान रखूँगी ।७७।

तथेत्युक्तेतथासूर्यमाजुहावतपस्विनी ।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदशरात्रेतदानिशि ।७८
ततोविवस्वान्भगवाफुल्यपमारुणाकृतिः ।
शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः ।७९
समनंतरमेवास्यमर्त्तागर्णयुज्यत ।
पापाचमहीपृष्ठेपतन्तजगृहेचसा ।८०
नविषादस्त्वयाभद्रे कर्त्तव्यःपश्यमेबलम् ।
पतिशुश्रूषयावाप्तंतपसःकिंचिरेणमे ।८१
यथाभर्तृसमनान्यमपश्यपुरुषक्वचित् ।
रूपतः शीलतोवुद्धथावाङ्माधुर्मादिर्येषणैः ।८२
तेनसत्येनविप्रोऽयव्याधिमुक्त पुनर्येवा ।
प्राप्योनुजीवितभार्यासहायः शरदांशतम् ।८३

पुत्र बोला कि ब्राह्मणी के ऐसा ही हो कहने पर अनुसूया ने अर्घ्य सहित सूर्य का आह्वान किया, उस समय तक दशरात्रियों का समय व्यतीत हो चुका था ।७८। फिर प्रफुल्लित कमल के समान लाल वर्ण वाले सूर्य जैसे ही उदयाचल में चढ़े ।७९। तभी उस ब्राह्मण का प्राणान्त हो गया, इससे वह ज्योंही पृथ्वी में गिरा त्योंही ब्राह्मणी ने उसे संभाला ।८०। अनसूया ने कहा—हे भद्रे ! तुम विवाद न करो, मैंने पति सेवा से ही जिस तपोबल को प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखाई पड़ेगा ।८१। मैं यदि रूप, शील, बुद्धि, वाणी माधुर्य आदि सद्‌गुणों में अपने स्वामी के समान किसी अन्य को नहीं मानती ।८२। तो मेरे उस सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग-रहित होकर युवावस्था को प्राप्त हो और पुनर्जीवन प्राप्त कर सौ वर्ष तक पत्नी के सहित जीवित रहे ।८३।

यथाभर्तृसमंनान्यमहपश्यामिदैवतम् ।
तेनसत्येनविप्रोयऽपुनर्जीवत्वना मयः ।८४
कर्मणामनसावाचाभर्तुरराधनप्रति ।

यथाममोर्द्धं मोनि यतथायजीवतोद्विजः ।८५
ततोविप्रःसमुतस्थोव्याधिमुक्त पुनर्युवा ।
स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृन्दारकइवाजरः ।८६
ततोऽपत्पुष्पवृष्टिर्देववाक्यानिसस्वनुः ।
लेभिरेचमुददेवाअनसूथामुथाऽब्रुवन् ।८७
वरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यमहात्कृतम् ।
आदित्योदयसद्भावाद्वरंवरयसुव्रते ।८८
त्वायायस्मात्ततोदेवावरदास्तेतपस्विनि ।
यदिदेबाःप्रसन्नामेपितामहपुरोगया ।८९
वरदावरयोग्याचयद्यह भवतामता ।
तद्यांतुममपुत्रत्वंब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।९०

मैं यदि अपने स्वामी के समान किसी अन्य देवता को भी नहीं मानती तो मेरे इसी सत्य के बल से ब्राह्मण रोग-रहित होता हुआ पुनः जीवन को प्राप्त हो ।८४। यदि मन वाणी और काया से स्वामी की नित्य आराधना की है तो यह ब्राह्मण जीवित हो ।८५। पुत्र बोला कि वह ब्राह्मण रोग युक्त युवा रूप होकर अपनी प्रभा से गृह को प्रकाशित करता हुआ उठ पड़ा ।८६। तब पुष्पों की वृष्टि और देव-वाद्यों की ध्वनि होने लगी और फिर अत्यन्त प्रसन्न हुये देवताओं ने अनुसूया से कहा ।८७। देवगण बोले—हे कल्याणी ! तुमने देवताओं का महान् कार्य संपादन किया है अब तुम सूर्योदय के कारण वर माँगो ।८८। सब देवता तुम्हें वर देना चाहते हैं, यह सुनकर अनुसूया ने कहा—हे देवगण ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे वर दीजिए कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्र रूप में उत्पन्न हों ।८९-९०।

योगचप्राप्नुयांभर्तृ सहिताक्लेषमुक्तये ।
एवमस्त्वतिदेवातांब्रह्माविष्णुशिवादयः ।९१
प्रोक्त जग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम् ।
ततःकालेवहुतिथेद्वितीयोब्रह्मणःसुतः ।९२
स्वभार्याभगवानत्रिरनसूयामपश्यत ।

ऋतुस्नातांसुचार्वमीलोभनीयोत्तमाकृतिम् ।९३
सकामोमनसाभेजेसमुनिस्तामनिन्दिताम् ।
तस्याभिपश्यतस्तांतुविकारोयोऽन्वजायत ।९४
तमेवोहपवनस्तिरश्चोदध्वरश्चोद्ववेगवान् ।
ब्रह्मरुपचशुक्लाभंपतमानं समन्ततः ।९५
सोमरुपरजोपेतंदिशस्तंजगृहुर्दश ।
ससोमोमनसोजज्ञेतस्यामत्रेः प्रजापतेः ।९६
पुत्रःसमस्तप्तत्वानामायुराधारएवच ।
तुष्टेनविष्णुनाजज्ञे दत्तात्रेयोमहात्मना ।९७
स्वशरीरात्समुत्पन्नः सत्वोद्रिक्तोद्विजोत्तमः ।
दत्तात्रेयइतिख्यातः सोऽनसूर्यास्तनपपौ ।९८

और मैं अपने पति के सहित क्लेश से मुक्त होने के लिये योग को प्राप्त होऊँ । पुत्र बोला—यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवगण ऐसा ही हो कहकर ।९१। उस तपस्विनी का सम्मान करके चले गये फिर कुछ समय व्यतीत होने पर ब्रह्माजी के द्वितीय पुत्र ।९२। भगवान अत्रि ने एक दिन अपनी सर्वांग सुन्दरी पत्नी को ऋतु से निवृत होकर स्नान करते देखकर ।९३। काम के वशीभूत होने पर मानसिक सम्भोग से उनका तेज स्खलित हो गया ।९४। वायु ने उस तेज को वहन कर ऊर्ध्व और तिर्यक भाव में प्रवाहित किया, गिरते समय उस तेज ने दशों दिशाओं का अवलम्बन किया और ब्रह्मरूपो सोम पुत्र रूप में अनुसूया से उत्पन्न हुये ।९५।९६। सन्तुष्ट हुये भगवान विष्णु ने सत्वगुण का अवलम्बन कर के श्री दत्तात्रेय के नाम से उत्पन्न होकर स्तन पान किया ।९७।९८।

विष्णुरेवऽवतोर्णोसौद्वितीयोत्रेःसुतोभवत ।
सप्ताहात्प्रच्युतोमातुरुदरात्कुपितोयतः ।९९
हैहयद्रमुपावृत्तमापराध्यन्तमुद्धतम् ।
दृष्ट्वात्रोकुपितःसद्योदग्धुकामःसहैहयम् ।१००
गर्भवासा हायासदुःखामर्षसमन्वितः ।
दुर्वासास्तमसोद्रिक्तोरुद्रांशःसामजात ।१०१

इतिपुत्रत्रयंतस्यातस्यांजज्ञेब्रह्मे शवैष्णवम् ।
सोमोब्रह्मा भवद्विष्णुर्दत्तात्रे योन्यजात ।१०२
दुर्वासा शंकरोजज्ञवरदानादिदवौकसाम् ।
सोमःस्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुधौषधिमानवान ।१०३
आप्याययन्सदास्वर्गेवर्त्ती तेसप्रजापतिः ।
दत्तात्रे यःप्रजाःपातिदुष्टदैष्यनिबर्हणात् ।१०४
शिष्टानुग्रहकृद्योगोज्ञेयश्चांश सवैष्णवः ।
निदहत्यवमतारं दुर्वासाभगवानजः ।१०५
रौद्र समाश्रित्यवपुद्दडंमनोवाग्भिरुद्धत ।
सोमत्वंभगवानत्रिःनश्चक्रे प्रजापतिः ।१०६

यह अत्रि के द्वितीय पुत्र हुये, जो क्रोध के कारण माला के उदर से सातवें दिन ही उत्पन्न हो गये थे ।९९। हैहयराज के उद्धत स्वभाव से अत्रि मुनि को अपमान हुआ था इस अपराध को देखकर हैहय को भस्म करने के प्रयोजन से ।१००। गर्भवास रूप क्लेश से अमर्ष युक्त हो तमोगुण का आश्रय करके रुद्र के अंश से दुर्वासाजी की उत्पत्ति हुई ।१०१। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, और शिव तीनों ने अनुसया के पुत्र रूप में जन्म लिया, ब्रह्मा ने चन्द्र के रूप में, विष्णु ने दत्तात्रेय के रूप में ।१०२। शिवजी ने दुर्वासा के रूप में जन्म धारण किया वह प्रजापति चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से लता, औषधि, मनुष्य आदि को ।१०३। तृप्त करते हुये स्वर्ग में रहते हैं, विष्णु अंश रूप दत्तात्रेय दुष्टों का संहार ।१०४। और सन्तजनों के प्रति उपकार दिखाते हुए प्रजा पालन में लगे तथा भगवान् ने दुर्वासा ।१०५। रुद्रात्मक देह से नेत्र, मन और वाणी द्वारा अपताककर्त्ता दुष्टों को नष्ट करने लगे, फिर महर्षि अत्रि ने चन्द्रमा को सोमत्व का पद प्रदान करके प्रजापति बनाया ।१०६।

दत्तात्रे योऽपिविषयान्योगस्थोनुभुजेहरिः ।
दुर्वासाःपितरं हित्वाभातरं चोत्तमव्रतम् ।१०७
उन्मत्ताख्यंसमाश्रित्यपरिबभ्राममेदिनीम् ।
मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रे योऽयसंगिताम् ।१०८

अभीप्स्यप ानःसरसिममज्जचिरं प्रभुः।
तथापितंमहात्मानमतीबप्रियदर्शनम् ।१०९
तत्यमुर्नंकुमारान्तेसरसस्तीरमाश्रिताः।
दिव्येवर्षशतेपूर्णेयदातेनत्यजतितम् ।११०
ततःप्रीत्यासरसस्तीरं सर्वेमुनिकुमारकाः।
ततोदिव्यांवरधरांसुरूपांसुनितंबिनीम् ।१११
नारोमादायकल्याणीमुत्ततारजलान्मुनिः।
स्त्रीसन्निकर्षाद्यधेतेपरित्यक्ष्यंतिमामिति।११२
मुनित्रास्ततोयोगेस्थास्यामीतिविचिंतयन्।
तथापितेमुनिसुतानत्यजान्तियदामुनिम् ।११३

विष्णु अंश वाले दत्तात्रेयजी योग के अवलम्बन में दुर्वासा तथा माता पिता से पृथक् रहकर श्रेष्ठव्रता।१०७। पूर्वक उन्मत्त भाव पृथ्वी में विचरण करने लगे। दत्तात्रेयजी के परमयोगी होने के कारण मुनियों के पुत्र इन्हें सदा घेरे रहते थे।१०८। वह उनसे बचने के लिये बहुत दिनों तक सरोवर में निमग्न रहे, परन्तु वे अत्यन्त प्रिय लगने वाले महात्मा थे। ।१०९। इसलिये मुनिकुमारों ने उन्हें फिर भी न छोड़ा और वे सरोवर के तट पर ही रहने लगे, इस प्रकार सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर भी खड़े रहे।११०। जब उनकी प्रीति वश मुनिकुमारों ने उन्हें न छोड़ा तो वे दिव्य वस्त्र धारण किये एक स्वरूपवती। १११। नारी को साथ लेकर जल से निकले और सोचा कि मैं स्त्री के साथ हूँ इसलिये यह अब मुझे छोड़कर चले जायेंगे।११२। और मैं भी संग रहित होकर योगपरायण हो जाऊँगा तो भी मुनिकुमारों ने उन्हें नहीं छोड़ा।११३।

ततः सहतयानार्यामद्यपानमथापिवत्।
सुरापानरततेनसभार्यंतत्यगुस्ततः।११४
गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम्।
मत्यमानामहात्मानतयासहबहिष्क्रियम् ।११५
नावापदोषयोगीशोवारुणींसपिवन्नपि।
अंतावसायिवेश्मांतर्मातरिश्वावशन्निव ।११६

सुरांपिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपेसयोगवित ।
योगीश्वरश्चित्यमानोयोगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ।११७
कस्यचित्वथकालस्यकृतवीर्यात्मजोऽर्जुनः ।
कृतवीर्ये दिवयातेमंत्रिभिसपुरोहितैः ।११८
पौरैश्चऽऽत्मामिषेकार्थंसमाहूतोऽप्रवीदिद ।
नाहंराज्यंकरिष्यामिमत्रिणोनरकोत्तरम् ।११९

तब वह उस स्त्री के साथ मद्य पीने लगे, सोचा कि स्त्री सहित मद्य पीते देखकर चले जायेंगे ।११४। परन्तु फिर भी उन मुनिकुमारों ने उन्हें महात्मा जानकर नहीं छोड़ा ।११५। वह योगीश्वर दत्तात्रेयजी चाण्डाल के घर रहकर मद्यपान करके भी दूषित नही हुये ।११६। वे पत्नी सहित मद्यपान पूर्वक तप करने लगे, इस पर मुनिकुमार उनके चिन्तनीय रहे ।११७। कार्तवीर्य के स्वर्ग-गमन के पश्चात् पुरवासी, मन्त्री पुरोहितादि ने मिलकर उसके पुत्र अर्जुन को राज्य पर अधिकार करने के लिये आमन्त्रित किया, परन्तु उसने उत्तर दिया कि हे मन्त्रिगण ! राज्य का परिणाम नरक है, इसलिये मैं राज्य नहीं करूँगा ।११८-११९।

यदर्थंगृह्यतेशुल्कंतदनिष्पातयन्वृथा ।
पुण्यानांद्वादशं भागंभूपालायायणिग्जनः ।१२०
दत्बाऽऽत्मरक्षिभिर्मार्गे रक्षितोयातिदस्युतः ।
गोपाश्चघृततक्रादे षड्भागंचकृषीवलाः ।१२१
दत्वान्यद्भूभुजेदद्यर्यदिभागततोऽधिकम् ।
पण्यादीनामशेषाणांवणिजोगृह्णतस्ततः ।१२२
अग्निहोत्रं तपः सत्यवेदानांचैवसाधनम् ।
आतिथ्यंवैश्वदेवंचइष्टमित्यभिधीयते ।१२३
वापींकूपतडागानिदेवंतायतनानिच ।
अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्त्तमित्यभियते ।१२४
इष्टापूर्त्त विनाशायतद्राचौरधर्मिणः ।
यद्यन्यै पाल्यतेलोकस्तद्वृत्यंतरसंश्रितः ।१२५
ग्रह्णतोबलिपडभागंनृपतेर्नरकीध्रुवम् ।

निरूपितुमिदंराज्ञः पूर्वंरक्षणवेतनम् ।१२६

इस राज्य का ग्रहण करना अत्यन्त कठिन कार्य है, वेश्या, व्यापारी राजा को आय का बारहवाँ भाग ।१२०। देकर चोरों के भय से बच जाते हैं ग्वारिया घृत या मठा आदि का छठवाँ अंश तथा कृषक भी सब धान्यों का छठवाँ अंश ।१२१। राजा को देते हैं, यदि अन्य को दें तो वह इनकी वस्तु का अधिक भाग लेगा ।१२२। अग्निहोत्र, तप, सत्य वेद साधन, आतिथ्य, वैश्वदेव कर्म यह इष्ट कहे जाते हैं ।१२३। तथा कूप वावड़ी, देवालय का निर्माण और धनेच्छुकों को दान करना पूर्त्त कहा जाता है ।१२४। अधिक कर लेने वाला राजा इष्ट-पूर्ति को नष्ट करने वाला कहा है, तथा दूसरों के द्वारा प्रजा का पालन करता हुआ जो स्वयं अन्यवृत्ति करता है ।१२५। और षष्ठभाग ग्रहण करता है वह राजा अवश्य ही नरक को प्राप्त होता है । पण्डितजनों ने प्रजा के रक्षणार्थ ही वेतन् षष्ठभाग ग्रहण करने का विधान किया है ।१२६।

अरक्षंश्चोरश्चौर्यततेनोनृपतेर्भवत ।
तस्माद्यदितपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमीप्सितम् ।१२७
भुवःपालनसामर्थ्ययुक्तःएकोमहीपतिः ।
पृथिव्यांशस्त्रभृङ्मान्यस्त्वहमेवर्द्धिसंयुतः ।१२८
ततोभविष्येनात्मानंकरिष्येपाभागिनम् ।
तस्यतन्निश्चयंज्ञात्वामन्त्रिमध्येस्थितोऽब्रवीत् ।१२६
गर्गोनामहाबुद्धिर्मुनिर्भूषवयोऽतिगः ।
भक्त्यातुकृपयाविष्टस्तंतोषयितुमर्हति ।१३०
यद्येव कर्त्तकास्त्वंराज्यंसम्यक्प्रशासितुम् ।
ततःशृणुष्वमेवाक्यकुरुष्वचनृपात्मज ।१३१
दत्तात्रेयंमहाभागसह्यद्रोणीकृताश्रमम् ।
तमाराधयभूपालापातियोभुवनत्रयम् ।१३२

यदि राजा उस लेकर प्रजा-रक्षण न करे तो वह चोरी करता है, इसलिये यदि मैं तप करके योगी होता हुआ ।१२७। पृथ्वी का पालन करके एकमात्र नराधिप बन सकूँ तो ही मैं राज्य करता चाहता हूँ ।१२८।

अन्यथा आत्मा को व्यर्थ ही पाप मार्ग पर नहीं चलना चाहता। अर्जुन का यहविचार सुनकर मन्त्रियोंके मध्यबैठे हुये।१२६। वयोवृद्ध मुनिश्रेष्ठ गर्ग भक्ति और कृपा के सहित राजपुत्र को प्रसन्न करते हुए बोले—हे राजपुत्र ! यदि आप भली प्रकार से राज्य शासन करना चाहते हैं तो मेरी बात सुनकर वैसाही कीजिए।१३१। सह्यादि पर्वतपर निवास करने वाले त्रैलोक्य पालक दत्तात्रेयजी की आप आराधना कीजिये।१३२।

योगयुक्तंमहामार्गसर्वत्रसमदर्शिनम् ।
विष्णोरं शंगद्धातरवतीर्णधरातले ।८३३
यमाराध्यसहस्राक्षःप्राप्तवान्पदमात्मनः ।
हृतंदुराष्मभिर्दैत्यैर्ज घानचदितेःसुतान् ।८३४
कथमाराधितोदेवैर्दत्तात्रे प्रतापवान् ।
कथंचापहृतंदैत्यैरिद्रष्वप्रापवासवः ।८३५
दैत्यानांदेवतावांचयुद्धमासोत्सुदारुणम् ।
दैत्यानामोश्वरैजभेदेवानांचशचीपरो ।८३६
तेषांचयध्यमानानांदिव्य संवत्सरोगतः ।
तोतोदेवाःपरभुतादैत्यादैत्याविजयिनोऽभवन् ।८३७
विप्रचितिमुखैर्देवादानवैस्तेपराजिताः ।
पलायनकृतोत्साहनिरुत्साहाद्विषज्जये ।८३८
बृहस्पतिमुपागम्यदैत्यसैन्यवधेप्सवः ।
अमंत्रवंतसहितावालखिल्यैस्सर्षिभिः ।८३९
विकृताचरणंभक्त्यासंसोषयितुमर्हथ ।८४०

जो वे परमयोगी, परमभाग समदर्शी तथा विश्वरक्षार्थ विष्णु-अंश से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं।१३३। जिनकी आराधना करके ही सहस्राक्ष इन्द्रको दैत्यों द्वारा छीने हुए अपने पदकी प्राप्ति हुई है ।१३४।अर्जुनने कहा-देवताओं ने दत्तात्रेयजी की आराधना किसप्रकार की थी और इन्द्र को दैत्यों द्वारा छीने हुये अपने पद की प्राप्तिकैसे हुई थी ।१३५। गर्ग बोले किसीसमय भयंकर देवासुर संग्राम हुआ था, उस समय जम्भ दैत्यों

के और इन्द्र देवताओं के अधिपति थे ।१३६। युद्ध करते हुए उन्हें एक दिव्य संवत्सर व्यतीत हो गया और अन्त में देवताओं की पराजय तथा दैत्यों की विजय हुई ।१३७। तब विप्रचिति आदि प्रमुख दानवों से हारते हुये देवगण इधर-उधर भागने लगे और विजय के प्रति निरुत्साहित होकर ।१३८। दैत्यों को मारने की इच्छा से बृहस्पतिजी के पास जाकर बालखिल्य ऋषि सहित मन्त्रणा करने लगे ।१३९। बृहस्पति जी ने कहा हे देवगण ! अब तुम विकृत आचरण वाले अत्रिपुत्र दत्तात्रेय को भक्ति पूर्वक सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करो ।१४०।

सर्वोदैंत्यविनाशायवरदोदास्यतेवरम् ।
ततोहनिष्यथसुरासहितान्दैत्यदानवान् ।१४१
हंतु शक्तानसदेहोदत्तात्रेयप्रसादतः ।
इत्युक्तास्तेतदाजग्मुर्दत्तत्रेयाश्रमंसुराः ।१४२
ददृशुश्चमहात्मानं ततेलक्ष्म्यासमन्वितम् ।
उद्गीयमानंगन्धर्वैःसुरापानरतंमुनिम् ।१४३
तेतस्यगत्वाप्रणतिमपदन्साध्यसाधनम् ।
तिष्ठतमनुतिष्ठंतियांतंयांतिदिवौकसः ।१४४
आराधयामासुरधःस्थितास्तिष्ठंत्तमासने ।१४५
सप्राहदेवान्प्रणतान्दत्तात्रेयः किमिष्यते ।
मत्तोभवदिर्द्भूयेनेयं शुषाक्रियतेमम ।१४६

दत्तात्रेयजी सन्तुष्ट होकर तुम्हें दैत्यों का विनाश करने वाले वर देंगे, उस समय तुम संगठित होकर दैत्यों और दानवों के संहार में समर्थ होंगे ।१४१। गर्गजी ने कहा—बृहस्पति द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवगण दत्तात्रेयजी के आश्रम में गये ।१४२। उन्होंने वहाँ जाकर देखाकि वह महात्मा लक्ष्मीजी सहित मद्य-पान में रत हैं तथा उनके समीप गन्धर्व गण गान कर रहे हैं ।१४३। उनके निकट जाकर देवगण स्वार्थसिद्ध करने वाली स्तुति करते हुये उनके लिये भक्ष्य, भोज्य तथा मालादि एकत्र करने लगे ।१४४। वह बैठते तो यह भी बैठते, वह चलते तो वह भी चलते, इस

प्रकार उनके आसन के नीचे भाग में बैठकर देवताओं ने उनका आराधन किया ।१४५। सब दत्तात्रेयजी ने उन देवताओं से कहा—तुम मेरी इस प्रकार सेवा कर रहे हो, इसलिये बताओ कि क्या चाहते हो ? ।१४६।

दानवैर्मुनिशार्दुलजंभाद्यैर्भूर्वादिकम् ।
हृतत्रैलोक्यमाक्रम्यक्रतुभागाश्चकृत्स्नशः ।१४७
तद्वधेकुरुबुद्धिंत्वंपरित्राणायनोऽनघ ।
त्वत्प्रसादादभीप्साम पुनः प्राप्तत्रिविष्टपम् ।१४८
मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टोनचैवाह जितेन्द्रियः ।
कथमिच्छथमत्तोदेवाः शत्रुपराभवम् ।१४९
अनघस्त्वंजगन्नाथनलेपस्तवविद्यते ।
विद्याक्षालनशद्धांतर्निविष्टज्ञानदीधिते ।१५०
सत्वमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिनः ।
अस्यास्तुयोषितः संगादहमुच्छिष्टतांगतः ।१५१
स्त्रीसंभोगोतिदुःखायसातत्येनोपसेवितः ।
एवमुक्तास्ततोदेवाः पुनर्वचनमब्रुवन् ।१५२
अनधेयंद्विजनश्रेष्ठजगन्मतानदुष्यति ।
यासाविद्यातवविभोसर्वज्ञस्यमृदिस्थता ।१५३
ययांशुमालसूर्यस्यद्विजचांडालसंगिनी ।
नदुष्यतिजगन्नाथतथेयंवरवर्णिनी ।१५४

देवताओं ने कहा—हे मुनिशार्दूल ! जम्भादि दानवों ने आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोकों और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को हर लिया है ।१४७। आप उनके संहार में मन लगाकर हमारी रक्षा करिये, आपकी कृपा से हम स्वर्ग को पुनः प्राप्त करें यह हमारी इच्छा है ।१४८। दत्ताक्षेयजी ने कहा देवगणो ! मैं मद्यपान रत, अजितेन्द्रिय और अपवित्र हूँ, तो मेरे द्वारा शत्रुओं के जीते जाने की आशा तुम कैसे कर रहे हो ? ।१४९। देवताओं ने कहा हे प्रभो ! आपने विद्या से स्वच्छ हुए अन्तःकरण में ज्ञानरूपी रश्मियों को प्रविष्ट किया है, इसलिये आप पाप रहित एवं विषयों से अलिप्त हैं। ।१५०। दत्तात्रेयजीने कहा—हे देवगण ! मुझमें विद्या तोहै तथा मैं समदर्शी

भी हूँ परन्तु स्त्री-संसर्ग से अपवित्र हो गया हूँ ।१५१। क्योंकि स्त्री-संसर्ग अत्यन्त दोष की खान है, यह सुनकर देवताओं ने पुनः कहा—।१५२। देवता बोले—हे निष्पाप ! मुनिवर ! जो विद्या तुम्हारे सर्वज्ञ के हृदय में स्थित है, उससे यह दोष को प्राप्त नहीं होती है ।१५३। जैसे सूर्य रश्मियाँ चाण्डालादि के संसर्ग दोष से दूषित नही होती, वैसे ही यह जगन्माता आपके संसर्ग से दूषित नहीं हो सकती ।१५४।

एवमुक्तास्तत देवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् ।
प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतामतम् ।१५५
तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धायसुरसत्तमाः ।
इहानयतमत्दृष्टिगोचरं माविलम्वताम् ।१५६
मददृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीक्षबलतेजसः ।
येननाशमशेषास्तेप्रायांतिममदर्शनात् ।१५७
तस्यद्वचनं सुत्वादेवैर्दैत्यामहाबलाः ।
आहवायसमाहूताजग्मुर्देवगणाश्रमम ।१५८
तेहन्यमानादैतेर्यैदेवाशीघ्रं भयातुराः ।
दत्तात्रेयाश्रमंजग्मुः समे ताः शरणार्थिनः ।१५९
तमेवविशर्दैत्याःकालयंतौदिवौकसः ।
ददृशुश्चमहात्मानंदत्तात्रेयं मदालसम् ।१६०
वामपार्श्वं स्थितामिष्टामशूषजतांम भाम् ।
भायीचास्यसुचार्वंगोलक्ष्मीर्मिदुनिभागनाम् ।।१६१

गर्गजी ने कहा–देवताओं के यह वचन सुनकर दत्तात्रेयजी से कुछ हँसते हुए कहा—यदि तुम्हारा ऐसा ही विचार है ।१५५। तो तुम सब युद्धके लिये असुरों को यहाँ बुलाकर मुझे दिखाओ, इसमें देर मत करो ।१५६। क्योंकि मेरे दृष्टिपात रूप अग्नि से उनका तेज बल क्षीण हो जायेगा और वे तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे ।१५७। गर्गजी ने कहा उनके ऐसे वचन सुनकर देवताओंने असुरोंको युद्धके लिए आह्वान किया और महाबली असुरोंने आकर क्रोधपूर्वक देवताओं पर आक्रमण किया ।१५८। तब दानवों की मारसे भयभीत हुए देवता दत्तात्रेयजी के आश्रम

में शरण पाने के लिए गए ।१५९। दैत्य भी देवताओं को नष्ट करने के विचार से उसी आश्रम में पहुंचे और उन्होंने वहाँ मद से मत्त हुए दत्तात्रेयजी को देखा ।१६०। तथा उनके वामपार्श्व में स्थित सम्पूर्ण इष्टों के देने वाली उनकी भार्या लक्ष्मी जी को भी उन्होंने देखा ।१६१

नीलोत्पलाभनयनांपीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुदतींमधुराभाषांसर्वैयोषिदगुणैर्युताम् ।१६२
दृष्ट वाग्रतोतेतांदैत्याः साभिलाषमनोभवाम् ।
नशेकुरूद्धतंधैर्यमिनसावोढमातुराः ।१६३
त्यक्त्वादेवान्स्यि तांतुहर्तुकामाहतोजसः ।
प्रेरितास्तेनपापेसक्त ास्तेतातोब्रवन् ।१६४
स्त्रीरत्नमेतात्त्रैलोक्येसारं नोयदिनौभवेत ।
कृताकृत्यास्ताताः सर्वेइतिनोभावितंमनः ।१६५
तास्मास्सर्वेसमुत्क्षिप्यशिविकायांसुरार्दनाः ।
आरोप्यत्वमधिष्ठानं नयामइतिनिश्चिताताः ।१६६
सानुरागास्ततास्तेतुप्रोक्त श्चेत्थपरस्पपम् ।
तास्यतांयोषितं साध्वींसमुत्क्षिप्यस्मरादिता ।१६७
शिविकायांसमारोप्यताहिताादैत्यदानवाः ।
शिरः सुशिविकांकृत्वस्थानभिमुखंयपुः ।१६८

दैत्यगण उस नीलपद्म के समान नेत्र वाली पीतस्तनी सर्वांगसुन्दरी नारीको ।१६२। देखकर उसको ग्रहण करनेकी इच्छा करते हुए कामावेग से अधीर हो उठे ।१६३। तथा देवताओ को छोड़कर उस नारी को हरण करने की इच्छा पूर्वक पाप से मोहित हुए कहने लगे ।१६४। यह स्त्री-रत्न त्रैलोक्य का सार है, हम इस नारी रत्नको लेकर ही कृतकार्य होंगे ।१६५। इसलिये हे दानवों ! इस विषयमें चिन्ता न करो, हम इसे पालकीमें बैठाकर अपने घर ले चलेंगे ।१६६। गर्गजीने कहा—उन दैत्यों ने परस्पर इस प्रकार परामर्श किया और दत्तात्रेयजी की पत्नी को उठाकर ।१६७। पालकी में चढ़ा लिया, फिर दैत्य दानव मिलकर पालकी को उठाकर अपने स्थान की ओर चल दिये ।१६८।

दत्तात्रेयस्ततोदेवान्विहस्येदमथाऽब्रवीत् ।
दिष्टयाचाहृँतदैत्यानामेषालक्ष्मीः शिरोगताः ।
सप्तस्थानान्यतिक्रन्यानवमन्ययमुपैष्यति ।१६९
कथयस्वजयन्नाथकेषुस्थानेष्ववस्थिता ।
पुरुषावफलकिंवाप्रयच्छत्यथनश्यति ।१७०
नृणांपदेस्थितालक्ष्मीर्निलयंसं प्रयच्छति ।
सक्थन्योश्चसं स्थितावस्त्रं तथानानाविधंवसु ।१७१
कलत्रंचगुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी ।
मनोरथान्पूरयतिपुरुषाशांहृदिस्थिता ।१७२
लक्ष्मीलक्ष्मीवतांश्रे ष्ठकण्ठस्याकण्ठभूषणम् ।
अभीष्टबंधुदारश्चतथालेषं प्रवासिभिः ।१७३
सृष्टान्नुवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथांतथा ।
मुखस्थिताकवित्वंचयच्छत्युदधिसंभवा ।१७४
शिरोगतासंत्यजतिततोऽन्पयातिचाश्रयम ।
सेवाशिरोगतादैत्यान्परित्यक्ष्यतिसांप्रतम् ।१७५

फिर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँसकर देवताओं से कहा हे देवगण ! तुम्हारा भाग्य फिर गया, सप्त स्थान में अतिक्रम करके लक्ष्मी दानवों के मस्तक पर चढ़ गई है इसलिये यह उन्हें छोडकर दूसरे के पास जायगी ।१६९। देवताओं ने पूछा—हे प्रभो लक्ष्मी के किस-किस स्थान पर जाने से हित अथवा अहित होता है, यह हमें बताइये । १७० । दत्तात्रेयजी बोले— मनुष्य के पैर में लक्ष्मी रहे तो गृह प्रदान करती है, सक्थिनी अस्थि में रहे तो वस्त्र और विभिन्न प्रकार के रत्न देती है, गुह्य स्थान में रहे तो स्त्री देती है ।१७१। गोद में रहे तो पुत्र देती है तथा हृदय में निवास करे तो सभी मनोरथों को पूर्ण करती है । १७२ । यदि लक्ष्मी का बास कण्ठ में हो तो कण्ठ भूषण प्राप्त होता तथा प्रवासी प्रियतम, बंधु या स्त्री से मिलाप होता है ।१७३। यदि मुख में लक्ष्मी स्थित रहे तो श्रेष्ठ वाक्य लावण्य और कवित्व की प्राप्ति होती तथा आज्ञा सफल होती है ।१७४। यदि मस्तक में स्थित हो तो उसका त्यागकर अन्य का आश्रय लेती है, आज वही लक्ष्मी इन दानवों के शिर पर चढ़ गई है । इसलिये इनका

प्रगृह्याऽस्त्राणिवध्यन्तः तस्मादेतेसुरारयः।
नभेतव्यंभृशंत्वेमयानिस्तेजसः कृताः।१७६
परदारावमर्शांच्चदग्धपुण्याहतौजसः।
तस्मादेतेमिहन्यंताभवद्भिरविशंकर्तिः।१७७
ततस्तेविविधैरस्त्रैर्वध्यमानाः सुरारयः।
शिरः लक्ष्मयामाक्रांताविनेशुरितिनः श्रुतम्।१७८
लक्ष्मीश्चोत्पस्यसं प्राप्तादत्तात्रेयंमहामुनिम्।
स्तूयमानासुरैः सर्वैर्दैत्यनाशान्मुदन्वितैः।१७९
प्रणिपत्यततोदेतादत्तात्रेयमनीषिणम्।
जयकृष्णजगन्नाथदैत्यांतकहरप्रभोः।१८०
नारायणाच्युतानंतवासुदेवाक्षयाजर।
त्वत्प्रसादात्सुखं लक्ष्मीराज्यंसंपज्जनार्दन।१८१
शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणेभक्तानांनित्यवत्सल।
इतिस्पुत्वानाकपृष्टं यथापूर्वंगताः सुराः।१८२
तथात्वमपिराजे द्रयादीक्षसियथेप्सितम्।
प्राप्तुमैश्वयमतुलतूर्णमाराधयस्वतम्।१८३

हे देवगण ! अब तुम भय त्यागकर शस्त्र उठाओ और उन्हें मारों क्योंकि मेरे दृष्टिपात से वे तेज रहित हो चुके हैं।१७६। परनारी के साथ बलात्कार से पुण्य भस्म होता है और पराक्रम की हानि होती है, इस लिये अब तुम शंका रहित होकर उनका संहार कर डालो।१७७। माग जी बोले इसके पश्चात् देवगण तीक्ष्ण, अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा असुरों का संहार करने लगे, इस प्रकार लक्ष्मी को शिर पर चढ़ाने से असुरों का नाश हो गया ऐसा सुना गया है।१७८। फिर लक्ष्मीजी उनके मस्तक से उतर का दत्तात्रेयजी के ही पास आ गयीं और दैत्यों के नष्ट होने से प्रसन्नता को प्राप्त हुये सब देवता उनकी स्तुति करने लगे।१७९। फिर दत्तात्रेयजी का प्रणाम पूर्वक हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! दैत्यों के नाशक। हे हर हे ! प्रभो ! आपकी जय हो।१८०। हे नारायण—हे अच्युत ! हे

अनन्त हे वासुदेव ! हे अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन ! आपके ही प्रसाद से हमें सुख, लक्ष्मी और राज्य सम्पदा की प्राप्ति हुई ।१८१। हे शार्ङ्गधनुधारी ? हे चक्रपाणि ! आप सदैव भक्तों पर कृपा करते हैं, इस प्रकार स्तुति करके जहाँ से आये थे वहीं लौट गये ।१८२। इसलिए हे राजेन्द्र ! यदि तुम्हें अतुल ऐश्वर्य की कामना है, तो उन दत्तात्रेयजी की शीघ्र ही आराधना करो ।१८३।

१७—दत्तात्रेयजी उपाख्यान

इत्यषेर्वचनश्रुत्वाकार्त्त वीर्योनरेश्वरः ।
दत्तात्रेयाश्रमगत्वातंभक्त्यासमपूजयत् ।१
पादसंवाहनाद्येनमध्वाद्याहरणेनच ।
स्रकचंदनादिगंधांवुफलाद्यानयनेन च ।२
तथान्नसाधनैस्तस्यउच्छिष्टापोहनेन च ।
परितुष्टीमुनिर्भूपतमुवाचतथैवसः ।३
यथैवोक्ताः पुरादेवामद्यभोगादिकृत्सनम् ।
स्त्रीचेयंममपाश्वँस्थेत्येतद्भोगाच्चकुत्सितः ।
सदैवाहंनमामेवमुपरोद्घृंत्वमर्हसि ।
अशक्तमुपकारायशक्तमाराध्यस्वभोः ।५
तेनैवमुक्तोसुनिनास्मृत्वागगवचश्चतत् ।६
प्रत्युवाचप्रणम्यैनंकार्त्तवीर्यार्जूनसदा ।
देवस्त्वहिपुराणोयः स्वाँमायसमुपाश्रितः ।७

पुत्र बोला—राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने गर्गजी की बात सुनकर दत्तात्रेयजी के आश्रम में जाकर भक्ति पूर्वक उनका पूजन किया ।१। चरण संवाहन करके अर्घ्य, पुष्पमाला, सुगन्धि, जल तथा चन्दनादि उनके निमित्त प्रस्तुत किया ।२। इसी प्रकार अन्नादि लाते और उनका उच्छिष्ट स्वयं भोजन करते । यह देखकर सन्तुष्ट हुये मुनि ने उनसे उसी प्रकार बोले ।३। जैसे पहले देवताओं के प्रति अपने निन्दित कर्म कहे थे ऋषि ने कहा—मेरे पास जो यह स्त्री है, इसमें आसक्त रहता

हूँ ।४। हे राजन् ! इस प्रकार सदा निन्दित कर्म करता रहने वाला मैं उपकार में असमर्थ हूँ तो मेरी सेवा से तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसलिये समर्थ का ही आराधन करो ।५। पुत्र बोला—यह सुनकर तथा गर्ग मुनि के वचनों को याद करके ।६। कीर्त्तवीर्य ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया और कहा—हे प्रभो ! आप मुझे इस प्रकार मोहित क्यों करते हैं ? आप अपनी माया से युक्त हैं ।७।

अनघस्त्वं तथैवेयदेवीसर्वभवारणिः ।
इत्युक्तः प्रीतिमान्देवोभूयस्तप्रत्युवाचह ।८
कार्त्तवीर्यमहाभागवशीकृतमहीतलम् ।
वरवृणीष्वगुह्य मेयतत्वयास्मुदोरितम् ।९
तेनतुष्टिः पराजातात्वय्यद्यममपार्थिव ।
चेचमांपूजयिष्यंतिगंधमाल्यादिभिर्न्नराः ।१०
लक्ष्मोसमेतगीतैश्चब्राह्मणानांतथाच्चर्चनैः ।११
वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशङ्खादिभिस्तथा ।
तेषामहपरांतुष्टिपुत्रदारधनादिकम् ।१२
प्रदास्याम्यवधुतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम् ।
सत्वंवरयभद्र तेवरयन्मनसेच्छसि ।१३
प्रसादसुमुखस्तेऽहंगुह्यनामप्रकीर्तनात् ।
यदिदेवप्रसन्नस्त्वतत्प्रयच्छर्द्धिंत्तमाम् ।१४
यथाप्रजापालयेऽह नचाधर्ममवाप्नुयाम् ।
परानुसपरणेज्ञानमप्रतिद्वन्द्वतांरणे ।१५

इसलिये आप निष्पाप हैं यह देवी सम्पूर्ण विश्व को अरणि के समान होने से पाप रहित हैं, राजा के इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर कहा हे भूभण्डल कों वश में करने वाले कार्त्तवीर्यजुन। वर मांगा तुमने मेरे गुप्त नामों का उच्चारण किया ।८९। इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूं तथा जो गन्धमाला आदि के द्वारा मेरी पूजा करते हैं १०। तथा सब प्रकार सन्तुष्ट करते हुए पूजा के वाद्य ।११। वीणा, वणु, शंखादि बजाते हो उनको मैं स्त्री, पुत्र और धनादि के प्रदान द्वारा परम सन्तोष देता

हूँ ।१२। तथा जो अवधूत कहकर मेरा तिरस्कार करते हैं उनका हनन करता हूँ, इसलिये तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो, तुम्हारा मंगल हो ।१३। तुमने मेरे गुणनामों का कीर्तन किया, इसलिए मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अर्जुन बोला यदि आप प्रसन्न हुये हैं तो मुझे ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि दीजिये ।१४। जिससे मैं सहज ही सम्पूर्ण प्रजा पालन करता हुआ पाप भागी न बनूँ और शत्रुओं के अनुसरण में मुझे ज्ञान प्राप्त हो तथा रणक्षेत्र में कोई भी मेरा सामना न कर सके ।१५।

सहस्रमातुप्तुमिच्छामिबाहूनांलघुतागुणम् ।
असंगागतमः संतुशैलाकाशाम्बुभूमिषु ।१६
पातालेषुचर्वेषुवधश्चाप्यधिकान्नरात् ।
तथेन्मार्गप्रवृत्तस्यः संतुसन्मार्गदेशिकाः ।१७
संतुमेऽतिथयः श्लाघ्याविक्तदानेतथाक्षये ।
अनष्टद्रव्यताराष्ट्रे ममानुस्मरणेनच ।१८
त्वयिभक्तिर्ममैवास्तुनित्यमव्यभिचारिणी ।
यत्रतेकीर्तितः सर्वेतान्वरासमवाप्स्यसि ।१९
मत्प्रसादाच्चभविताचक्रवर्तित्यमैश्वरम् ।
प्रणिपत्यततस्तस्मैदत्तात्रेयायसोऽर्जुनः ।२०

मैं लघुत्व गुण से युक्त सहस्रबाहु हो जाऊँ, जल, थल, पर्वत, आकाश आदि सब स्थानों में निर्बाध तथा श्रेष्ठ मनुष्य के हाथ से मृत्यु की अभिलाषा हैं, मैं सम्मार्ग से प्रवृत्त व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखाने की इच्छा करता हूँ ।१६।१७। अक्षय धन-दान एवं आतिथ्य लाभ करूँ मेरा नाम उच्चारण करने वाला धन हीन न रहे ।१८। आपके पादपद्मों में सदा मेरी भक्ति रहे, दत्तात्रेयजी ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारा कहा हुआ सभी होगा ।१९। मेरे प्रसाद से तुम चक्रवती नरेश होंगे। पुत्र बोला—फिर अर्जुन ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया ।२०।

आनप्यप्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णत ।
आगताश्चाऽपिगंधर्वास्तथैवाऽसरसांगणाः ।२१

ऋषयश्चवसिष्ठाद्यामेर्वाद्याः पर्वतस्तथा ।
गङ्गाद्या सरितः सर्वाः समुद्ररत्नसम्भवाः ।२२
प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षावेवावेवासवादयः ।
वासुकिप्रमुखानागाअभिषेकार्थमागताः ।२३
ताक्ष्र्याद्याः पक्षिणश्चै वपौराजानपदास्तथा ।
सभाराः सभृताः सवैंदत्तात्रेयप्रसादतः ।२४।
अथासंज्वाल्यतैर्वह्निन देवैर्ब्रह्मादिभिः सहः ।
नारायणेनाभिषिक्तोदत्तात्रेयवस्वरूपिणा ।२५
समुद्रै श्चनदीथिश्चऋषिभिश्चाभिषेभितः ।
आघाषयामासतदास्थितोराज्येसहैहयः ।२६
दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ।
अद्यप्रभृतियः शास्त्रं मामृतेऽयोगृहीष्यते ।२७
हंतव्यः समयादस्युः परहिंसारतोऽपिवा ।
इत्याज्ञप्तेनतद्राज्येकश्चदायुध धङ्न्नर ।२८

सम्पूर्ण प्रजा को बुलाकर अभिषेक कराया, उस समय गन्धर्व और अप्सरायें ।२२। वसिष्ठादि ऋषि सुमेरु आदि पर्वत, गङ्गादि सब नदी और जल से परिपूर्ण सभी समुद्र ।२३। पक्षादि पक्षी नगर और नगरवासी तथा सभी लोक दत्तात्रेयजी के प्रसाद से सम्पूर्ण सामग्री सजाये हुये अभिसेवार्थ वहाँ उपस्थित हुए ।२४। ब्रह्मादि देवताओं ने अग्नि को प्रज्वलित किया तथा दत्तात्रेय रूपी भगवान नारायण ने अभिषेक किया ।२५। फिर समुद्र और ऋषियों ने अभिषेक किया और हैंहय राज्य में स्थित हो गये, ऐसी घोषणा सर्वत्र की गई ।२६। दात्तात्रेयजी के प्रसाद से अतुलित ऐश्वर्य को प्राप्त हुये महाबली हैहय ने राज्य में प्रतिष्ठित होकर आज्ञा दी कि मेरे अतिरिक्त जो कोई भी अस्त्र धारण करेगा ।२७। वह हिंसक या दस्यु मेरे द्वारा मारा जायगा। ऐसी राजाज्ञा सुनकर कोई भी अस्त्रधारी न रहा ।२८।

अमृतेपुरुषव्याध्रं वभूवोरुपराक्रमम् ।
सएवग्रामपालोऽभूत्पशुपालः सएवच ।२९

क्षेत्रपालः सएदासीद्द्विजातीनचरक्षति ।
तपस्विनांहालयितासार्थंपालश्तुमोऽभवत् ।३०
दस्युव्यालाग्निशस्त्रादिभयेष्वन्धोनिमज्जातम् ।
अन्यासुचैवमग्नामापत्सुपरवीरहा ।३१
सएवसंस्मृतः सद्या समुद्धर्त्ताऽभिवन्नृणाम् ।
अनष्टद्रव्यताचासीत्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ।३२
तेनेष्टवहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
तेनंवचतपस्तप्त संग्रामेपतिचेष्टितम् ।३३
तस्यद्धिमतिमानचदृष्टवाप्राहांगिरामुनिः ।
ननूनंकार्त्तवीर्यस्यनतियास्यतिपार्थिवाः ।३४
यज्ञैर्दानैस्यपोभिर्वासग्रामेचऽतिचेष्टितेः ।
दत्तात्रेयाद्दिरेयस्मिन्सम्प्राप्तर्द्धिनरेश्वरः ।३५

सम्पूर्ण पृथ्वी के एक कार्त्तवीर्यार्जुन ही राजा हुए उस समय वही ग्राम-पालक एवं पशु पालक थे ।२९। वही क्षेत्र ब्राह्मण और तपस्वियों के रक्षक तथा अर्थ पालक हुये ।३०। वही राजा चोर, सर्प, अग्नि, शत्रु, भयंकर समुद्र या विभिन्न विपत्तियों में पड़े मनुष्यों की रक्षा करने वाले हुए ।३१। उनके नाम उच्चारण मात्र से सबकी विपत्ति दूर होने लगी और उनके शासन काल में कोई धनहीन न रहा । ३२ । उन्होंने अनेक प्रकार के दक्षिणामय यज्ञ पूर्ण किये तथा वे महान् तप का आचार करने वाले और युद्ध में अजेय हुये ।३३। उसकी ऐसी समृद्धि देखकर अङ्गिरा मुनि ने कहा था कि इनके समान कोई दूसरा राजा नहीं हुआ ।३४। तथा यज्ञ, दान तप या युद्ध प्रसङ्ग में कोई इनके समान नहीं होगा वे दत्तात्रेयजी से अतुलित ऐश्वर्यवान् हुए हैं ।३५।

तस्मिन्तस्मिन्दिनेयागदत्तात्रेयस्यसोऽकरोत् ।
तत्रैवचप्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनिभूपते ।३६
तस्यद्धिपरमांदृष्टचागंचक्र समाधिना ।
इत्येततस्यमाहात्म्यदत्तात्रेयस्यधीमतः ।३७

विष्णोश्चराजरगुरोनन्त स्यमहात्मनः।
प्रादुर्भावः पुराणेषुकथ्यतेशाङ्‌र्गधन्वनः।३८
अनन्तस्याप्रमेयेस्यशङ्खचक्रगदाभृतः।
एतस्यपरमंरूपंयश्चिन्तयतिमानवः।३९
ससुखीसचसंसारात्समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत्।
सदेवचैष्णवानाचभक्तयालसुलभोऽऽस्मिभिः।४०
इत्येवंयस्यवैवाचस्तकथनाश्रयेज्जनः।४१
अधर्मस्यविनाशाषधर्माचारार्थमेवच।
अनादिदिधनोदेवः करोति स्थितिपालनम्।४२
तथैवजन्मचाख्यांत मालर्ककथयामिते।
तमाचयोगः कणितोदत्तात्रेयेणतस्यवै।
पितृभक्तस्यराजर्षेरलर्कस्यमहात्मनः।४३

उस दिन उन्होंने दत्तात्रेय का यज्ञ किया प्रजा ने भी अपने राजा की।३६। परम ऋद्धि को देखकर उसी दिन यज्ञ किया, यह दत्तात्रेयजी का माहात्म्य है।३७। उन चराचर के गुरु अनन्त, शार्ङ्गधर, शंख, चक्र, गदाधारी दत्तात्रेय रूपी भगवान् नारायण की उत्पत्ति सब पुराणों में विभिन्न प्रकार से कही गई है, नारायण के इस रूप का जो मनुष्य चिन्तन करता है।३८। वे सुखी होते हुए तुरन्त संसार रूपी पाश से मुक्त हो जाते हैं उनकी प्रतिज्ञा है कि हे वैष्णवो। भक्ति के द्वारा मैं तुम्हारे लिये सदैव सुलभ हूं; ऐसे भगवान् की शरण में मनुष्य क्यों न जाय।४०-४१। वह अनादि देवता धर्माचरण और अधर्म विनाश के लिये स्थिति और पालनादि करते हैं।४२। हे पिताजी ! अब आपसे अलर्क का वृत्तान्त कहता हूं वे महात्मा अलर्क संसार प्रसिद्ध राजर्षि और पितृ-भक्त थे।४३।

१८—कुवलयाश्व उपाख्यान

प्राग्वभूवमहावीर्यं शत्रुजिन्नामपार्थिवः।

तुतोषयस्ययज्ञेषुसोमावाप्त्यापुरन्दरः ।१
तस्यात्मजोमहावीर्योवभूवाऽरिविदारणः ।
वुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशक्राश्विभिः समः ।
ससमानवयोवुद्धि सत्वविक्रमचेष्टितैः ।३
नृपपुत्रोनृपसुतैर्नित्यमास्तेसमावृतः ।
कदाचिच्छास्त्रसम्भारविवेककृतनिश्चयः ।४
कदाचित्काव्यसंलापगोतनाटकसंभवैः ।
तथैवाक्षविनोदैश्चशस्त्रास्वविनियेषु च ।५
योग्यानियुद्धनागाश्वस्यंदनाभ्यासतत्परः ।
रेमेनूपेन्द्रपुत्रोऽसौनरेन्द्रतनयैसहः ।६

पुत्र बोला—हे पिताजी ! पुराकाल में शत्रुजित नामक एक महाबली राजा थे, उनके यज्ञ में सोमपान करके इन्द्र सन्तुष्ट हुए ।१।२। वह बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य, विक्रम में सुरपति के और रूप में अश्विनीकुमारों के समान थे, यह जिन राजकुमारों से मिलते, वे भी आयु, सत्व, बल चेष्टा में उस राजकुमार से कम न थे, वह कभी शास्त्र ज्ञान से उत्पन्न विवेक पूर्वक अवस्थान करते थे ।३।४। कभी काव्य चर्चा, कभी संगीत कभी नाटयादि से प्रसन्न होते कभी पाश क्रीड़ा, कभी शास्त्रास्त्र, कभी विनय भाव ।५। कभी योग्यपुरुषों से मलयुद्ध, कभी गज अश्व, रथादि की सवारी करते हुए राजपुत्रों से क्रीड़ा करते थे ।६।

यथैवहिदिवातद्वद्रायःवविमुदायुतः ।
तेषांतुक्रीडं तांतत्रद्विजभूपविशांसुताः ।७
समानवयसःप्रीत्यारन्तुमायांत्यनेकशः ।
कस्यचित्वथकालस्यनागलोकान्महीतलम् ।८
कुमारावागतौनागीपुत्रावश्वतरस्यतु ।
ब्रह्मरुपतिच्छन्नौतरूणौप्रियदर्शनौ ।९
तौतैर्नृपसुतैः सार्द्धंतथैवान्यैर्द्विजन्यभिः ।
विनोदैर्विविधैस्त्रस्थतुः प्रीतिसंयुतौ ।१०

सर्वेंचतेनृपसुतास्तेचब्रह्म विशांसुताः ।
नागराजात्मजौतोचस्नानसंवाहनादिकम् ।११
वस्त्रगन्धानुसंयुक्तांचक्रु र्भायभुंजिक्रियाम् ।
अहन्यहन्यनुप्राप्तेतौचनागकुमारकौ ।१२
आजाग्मतुर्मुदायुक्तौप्रीत्यासूनोर्महीपतेः ।
सचताभ्यांनृपसुतःपरं निर्वाणमाप्तवान् ।१३
विनोर्दैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेवच ।
विनाताभ्यांनबुभुजेन सस्नौनषपौमधु ।१४

जैसे आनन्द से दिन व्यतीत होता वैसे रात्रि भी व्यतीत होती थी, जहाँ वह खेलते थे, वहाँ सैकड़ों राजपुत्र, ब्राह्मण या वैश्यों के बालक ।७। आ-आकर खेलते, इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर पृथ्वी पर नागलोक से ।८। नागराज अश्वतर, के दो पुत्र ब्राह्मण के वेश में आये । वे दोनों ही युवा प्रिय दर्शन थे ।९। यह भी उन राजपुत्रों ओर ब्राह्मण पुत्रों के साथ विभिन्न प्रकार के विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वहाँ रहने लगे ।१०। वह राजपुत्र, ब्रह्मपुत्र, वैश्यपुत्र, और नागपुत्र सभी भागानुसार भोजन करने लगे, इस प्रकार राजपुत्र को प्रीति से प्रसन्न हुए एक साथ स्नान, विमान पर चढ़ना ।११। वस्त्र धारण, गन्धानुलेपन ओर भागानुसार भोजन करने लगे, इस प्रकार राजपुत्र की प्रीति से प्रसन्न हुए दोनों नागपुत्र वहाँ नित्य प्रति जाने लगे ।१२।१३। उनके विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद, हास्य-सायापादि से सुखी हुये वे उनके बिना भोजन स्नान आदि भी न करते थे ।१४।

नरामनजग्राहशास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये ।
रसातलेचतौरात्रिविनातेनमहात्मना ।१५
निःश्वासपरमौनींत्वाजग्मुस्तं दिनेदिने ।
मर्त्यलोकेपराप्रीतिर्धवतो केनपुत्रको ।१६
सहेतिचपप्रच्छपितातावुभौनागवारको ।
दृष्टयोरत्रपतालेबहूनिदिवसानिमे ।१७
दिवारजन्यामेवोभौश्यामिप्रियदर्शनौ ।

इतिपित्रास्वयपृष्टौप्रणिपत्यकृतांजली ।१८
प्रत्यूचदुर्महाभागादुरगाधिपते सुतौ ।
पुत्रः शत्रुजितस्तात नाम्नाख्यात ऋतध्वजः ।१९
रूपवानार्जवोपेतः शूरोमानीप्रियंवदा ।
अमावृत कथोवान्मीविद्वान्मैत्रौगुणाकरः ।२०

तथा क्रीड़ा और गुण वृद्धि के लिये शङ्का भी नहीं उठाते, तथा वे नागपुत्र भी उस राजपुत्र के बिना रात्रिकाल ।१५। रसातल में दीर्घश्वास लेते हुए व्यतीत करते और दिन में उनके पास आते, कुछ काल इस प्रकार व्यतीत होने पर एक दिन नागराज अश्वतर ने अपने दोनों पुत्रों से पूछा—हे पुत्रों ! मर्त्यलोक के प्रति तुम्हारी ऐसी प्रीति क्यों हुई है ? बहुत दिनों से तुम्हें मैं दिन के समय पाताल लोक में नहीं देखता ।१६-१७। रात्रि होने पर ही तुम दिखाई देते हो इसका क्या कारण है, इस प्रकार पूछने पर उन दोनों ने अपने पिता से प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए कहा—हे तात ! मर्त्यलोक में राजा शत्रुजित के पुत्र ऋतुध्वज हैं । ।१८-१९। वह स्वरूपवान् सरलचित शूर, प्रियभाषी, यशस्वी, विद्वान्, मित्रता के योग्य तया गुणों की खान हैं ।२०।

मान्यमानयिताधीमान्श्रीमान्विनयभूषणः ।
तस्योपचारसंप्रीति सम्भोगांपहृतंमनः ।२१
नागलोकेभुवोलोकेनरतिं विदतेपितः ।
तद्वियोगेनक्तातनिशापातालशीतलाम् ।२२
परितापायतत्सङ्गदायरविर्दिवा ।
पुत्रः तुण्यवतोधन्यः सयस्यैवंभवद्विधैः ।२३
परोक्षस्यापिगुणिभिः क्रियतेगुणकीर्तनम् ।
संतिशास्त्रविदोऽशीलासंतिमूर्खाः सुशीलिनः ।२४
शात्रशीलेसमंमन्येयस्मिन्धन्यतरतुतम् ।
यस्यमित्रगुणान्मित्राणिमत्राश्चपराक्रमम् ।२५
कथयति सदासत्सुपुत्रवांस्तेनवैपिता ।
तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भयामभिवांजितम् ।२६

किंचित्रष्पादितंवत्सौररितोषायचेतसः ।
सधन्योजीवितंतस्यत स्यजन्मसुजन्मनः ।२७
यस्यार्थिनोनविमुखामित्रनथैंचदुर्बलः ।
मद्गृहेयत्सुबर्णादिरत्नशवाहनमासनम् ।२८
गच्चात्यप्रीत येतस्यतद्देयमविशंकया ।
धिवित्तस्यजीवितंपुंसोमित्राणामुपकारिणाम् ।२६

वह मानो बुद्धिमान् लज्जावाला तथा विनय से युक्त है, उसकी प्रीति में हमारा मन आकर्षित होकर ।२१। नागलोक, पृथ्वी अथवा किसी भी अन्य स्थान में प्रसन्न नहीं रहता। पाताल की शीतल रात्रि भी उनके वियोग में ।२२। हमारे लिये तापदायिनी होती है और उनके संग में सूर्य के ताप से तप्त दिन भी हमको हर्षजनक होता है। पिता ने कहा—वह पुण्यवान् पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम्हारे जैसे गुणवान् भी ।२३। पीछे से जिनका गुणवान करते हैं, अनेक शास्त्रज्ञानी भी बुरे स्वभाव वाले तथा अनेक मूर्ख भी सुशील होते हैं।२४। मेरे विचार में वह राजपुत्र धन्य है क्योंकि जिसकी मित्रता का गुण मित्र द्वारा और पराक्रम शत्रु द्वारा प्रकट होता है ।२५। उसी पुत्र के द्वारा पिता पुत्रवान् कहा जाता है, तुमने उस उपकार करने वाले के लिये कुछ किया भी हैं ?।२६। हे पुत्र ! उस मित्र की सन्तुष्टि के लिये तुमने कुछ कार्य किया है। इस जगत् में वही धन्य है और उसी का जन्म सफल है ।२७। जो कामना वालों को विमुख नहीं करता और मित्र के प्रति भी दुर्बल नहीं है, इसलिये मेरे गृह में स्वर्ण, रत्न, वाहन आसन है क्योंकि मित्रों का अपकार करने वालों को धिक्कार है ।२८-२६।

प्रति रूपमकुर्वन्योजीवामीत्यवगच्छति ।
उपकारं सुहृद्वर्गैयोऽपकारंचशत्रुषु ।३०
नृमेधोवर्षति प्राज्ञस्तस्येच्छतिसदोन्नतिम् ।
कितस्यकृतकृत्यस्यकर्तुं शक्येतकेनचित् ।३१
यस्यसर्वार्थिनोगेहे सर्वकामैः सदार्चिताः ।
यानिरत्नानितत्गेहे पातालेतानिनः कुतः ।३२

वाहनासनयानानिभूषणान्यंवराणिच ।
विज्ञानंयच्चवस्तितदन्यप्रनविद्यते ।३३।
प्राज्ञानामप्यसौतातवर्वसंदेहहृत्तमः ।
एकतस्यास्तिकर्त्तव्यमसाध्यंतच्चनोमतम् ।३४
हिरण्यगर्भेगोविंददशवाँदीनीश्वरादृते ।
तथापिश्रोतुमिच्छामितस्ययत्कार्यमुत्तमम् ।३५

उपकारी मित्र के प्रति उपकार न करके जो जीवित रहते हैं, उनका जीवन भी असफल हैं, जो पुरुष बन्धु वर्ग के उपकार और शत्रु वर्ग के अपकार रूप को सोचते हैं, उन्हीं की उन्नत्ति का साधन देवता करते हैं। पुत्र ने कहा—स्वयं भी कृत-कृत्य हैं, उनका क्या उपकार कर सकते हैं ? ।३०।३१। जिनसे याचक इच्छित पदार्थ द्वारा सदा पूजित होते उनका उपकार करने की सामर्थ्य हममें नहीं है क्योंकि उनके यहाँ जो रत्न हैं, वह पाताल में भी उपलब्ध नहीं हैं ।३२। उनके जैसे वाहन, आसन, यान आभूषण वस्त्र हमारे यहाँ नहीं है और वैसा विज्ञान और कहीं भी नहीं हो सकता ।३३। वह पण्डितों का भी सन्देह दूर करने में समर्थ हैं, उसका एक धर्म है, परन्तु वह हमारे द्वारा साध्य नहीं हो सकता ।३४। हिरण्य गर्भ भगवान गोविन्द तथा शिविन्द्र के अतिरिक्त वह किसी के द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता । पिता ने कहा—उनके श्रेष्ठ कार्य को मैं सुनना चाहता हूँ ।३५।

असाध्यमथवासाध्यंकिंवाऽसाध्यं विपश्चिाचाम् ।
देवत्वममरेशत्वंतत्पूज्यत्वंचमानवः ।३६
प्रयांतिवाछितंवान्जदृढंयेव्यवसायिनः ।
नाऽविज्ञातंनचागम्यंनाऽप्राप्यं दिविचेहवा ।३७
उद्यतानांमनुष्त्राणांयतचितेन्द्रियात्मनाम ।
योजनानांसहस्राणिव्रजन्यातिलिकः ।३८
अगच्छन्वैनतेयोऽपिपादमेकंनगच्छति ।
क्वभूतलक्वचध्रौव्यंस्थानयत्प्राप्तवान्ध्रुवः ।३९
उत्तानपादनृपतेःपुत्रसन्भूमिगोचरः ।

तत्कथ्यतांमहाभागौकार्यंवान्येनपुत्रकौ ।४०
सभूपालसुतासाधुर्येनानुश्यंभवेताम् ।
तेनाख्यातमिद तातत्वं वृत्तमहात्मना ।४१

वह कार्य साध्य हो या असाध्य दृढ़कर उद्योगी पुरुष देवत्व अथवा इन्द्रत्व के पूज्य ज्ञान को भी प्राप्त कर सकते हैं ।३६। दृढ़ पुरुष की मनोवाँछित पा सकते है, स्वर्ग से भी अविज्ञात, अगम्य और कोई वस्तु नहीं है ।३७। मन आत्मा और इन्द्रिय को वश में करने वाले पुरुष मनोरथ को प्राप्त कर लेते हैं । देखो चींटी कितनी छोटी होती है, किन्तु अधिक उद्योग वाकी होने के कारण चलते-२ सहस्र योजन तक जा सकती है ।३८। पक्षिराज गरुड़ उद्योग न करके एक पग भी नहीं जा सकते । जो उद्योग नहीं करते उनके लिये कुछ भी शक्य नहीं, उत्तान पाद के पुत्र ध्रुव पृथिवी में होकर भी अत्यन्त दुर्लभ स्थान को प्राप्त हो गये । वहाँ वह ध्रुव का स्थान और कहाँ वह पृथिवी ? इसलिए जिस प्रकार उस राजपुत्र का कार्य हो सके; वह बताओ ।३९।४०। तब तुम भी मित्र-ऋण से बच सको । पुत्र बोले—हे तात ! उन महात्मा ने इस प्रकार बताया था ।४१।

कौमारकेयथांतस्यवृतंसद्वृत्तशालिनः ।
तस्यशत्रु जितंतातपूर्वंकश्चिद्द्विजसत्तम्ः ।४२
गालबोऽभ्यागमद्धीमान्गृहीत्वातुरगोत्तमम् ।
प्रत्युवाचराजानंसमुपेत्याऽऽश्रमममम् ।४३
कोऽपिदैन्याधमोराजन्विध्वंसयतिपापकृत् ।
तत्तद्रूपसमास्थायहिहेभवनचापिणाम् ।४४
अन्येषांचाल्पकायानामहर्निशनकारणात् ।
समाधिध्यानयुक्तस्यमौनव्रतरतस्यच ।४५
तथाकरोतिदष्पानियथासेच्छामिपार्थिव ।
दग्धुंकोपाग्निनासद्यःयमर्थस्त्वंवयनतु ।४६
दुःखर्जितस्यतपसोव्यमिच्छामिपार्थिव ।
एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विष्णचेतसा ।४७
तक्लेशितेननिःश्वासोकिरीक्ष्यर्दिसु रमुज्झितः ।

ततोऽवंरतलात्सद्यः पतितोऽयं तुरङ्गतः ।८४

उन राजपुत्र की कुमारावस्था में जो हुआ सो सुनो, जित् नामक एक श्रेष्ठ राजा है ।४२। एक समय गालब नामक द्विजवर ने सुन्दर अश्व लेकर आश्रम में आकर राजा से कहा ।४३। कोई पाप कर्म वाला दैत्य मेरे आश्रममें आकर विध्वंस करता है, वह सिंह गज अथवा अन्य जन्तुके रूपमें आकर मेरे समाधि मग्न होने या मौन व्रत रखने पर मेरा मन विचलित कर देता है, राजन् ! मैं उसे अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर सकता हूँ ।४४-४५। परन्तु मैं ऐसा करके अपनी अधिक दिनों में दुःख पूर्वक संचित तपस्या को क्षीण नहीं करना चाहता हूँ । हे राजन् ! एक दिन मैंने अत्यन्त दुःखित हृदय से ।४७। क्लेशयुक्त होकर आकाश की ओर अपना दीर्घश्वास छोड़ा, जिससे यह अश्व उसी समय आकाश से आ गिरा ।४८।

वाक्चाऽशरारिणीप्राहनरनथाश्रृणुष्वतत् ।
अक्षांतः सकलभूमेर्बलय तुरगोत्तमः ।४९
समर्थक्रांतु र्कोणतवायं प्रतिपादितः ।
पातालांवरतोयेषुनचास्यविहतागतिः ।५०
समस्तदिक्षव्रजतोनभङ्ग पर्वतेष्वपि ।
यतोभूवलय सर्वमश्रांतोऽयं चरिष्यति ।५१
ततः कवलयोनाम्नाख्यातिलोकेप्रयास्यति ।
क्लिश्यत्यहर्निशपापोयश्चत्वांदानवाधमः ।५२
तमप्येनं समारुह्यद्विज श्रेष्ठहनष्यति ।
शत्रु जिन्नामभूपालस्तस्यपुत्रऋतुध्वजः ।५३
प्राप्यैतदश्वरत्नंचख्यातिमेतेनयास्यति ।
सोऽहं त्वांसमनुप्राप्तस्तपसोविघ्नकारिणम् ।५४
तंनिवारयभूपालभागभाङ् नृपतिर्यतः ।
तदेतदश्वरत्नं तेमयाभूपनिवेदितम् ।५५
पुत्रमाज्ञापयतथायथ धर्मो लुप्यते ।
सतस्यवचनाट्राजातवैपुत्रमृतध्वजम् ।५६
तमश्वरत्नमारोप्यकृतकौतुकमंकम् ।

अप्रेषयत्‌धर्मात्मागालवेनसमंतदा ।५७
स्वमाश्रमपदंसोऽपिमादाययौमुनिः ।५८

उस समय जो आकाशवाणी हुई उसे सुनो—हे द्विजवर तुम्हें जो अश्व प्राप्त हुआ है, वह बिना कहीं रुके सूर्य के समान सर्वत्र करने में समर्थ है, पाताल, आकाश, जल कहीं भी इसकी गति का अवरोध नहीं होता ।४६।५०। यह सब दिशाओं और पर्वतों तथा पृथ्वी वलय सर्वत्र बिना रुके गमन कर सकता है, इसलिए यह सभी लोकों में 'कुवलय' नाम प्रसिद्ध होगा और जो दानवाधर्म तुम्हारे लिये दिन-रात्रि क्लेश उपस्थित करता है ।५१।५२। उसे अश्व पर चढ़कर शत्रुजित राजा के पुत्र ऋतुध्वज मारेंगे ।५३। तथा अश्वरत्न द्वारा अत्यन्त ख्याति को प्राप्त होंगे, इसलिए मैं यहाँ आया हूँ अब आप भी उग्र तप में विघ्न उपस्थित करने वाले को ।५४। निवारण करें और मेरे द्वारा प्रदत्त इस अश्वरत्न को लेकर ।५५। अपने पुत्र को ऐसी आज्ञा दीजिये जिससे धर्म लुप्त न हो पावे उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा शत्रुजित ने अपने पुत्र ऋतुध्वज को ।५६ । मङ्गलाचार आदि कराकर उस अश्व पर चढ़ाया और गालब मुनि के साथ भेज दिया ।५७। जिन्हें साथ लेकर मुनि भी अपने आश्रम की ओर चल दिये ।५८।

१६-मदालसा उपाख्यान (१)

गालवेनसमं गत्वानृपपुत्रेणतेनयत् ।
कृतंतत्कथ्यतांपुत्रौविचित्रायुवयोकथा ।१
सगालवाश्रमेरम्येतिष्ठन्भूपालनन्दनः ।
सवविघ्नोपशमनं चकारब्रह्मवादिनाम् ।२
वीरकुवलयाश्वसंतँगालवाश्रने ।
मदावलेपोहतोनाजानाद्दानवाधपः ।३
ततस्तंगालवंविप्रसंध्योपासनतत्परम् ।
सोकरेरूपमास्थायप्रधर्षं यतुमागमम् ।४
मुनिशिय्यै रथोत्क्रष्टेशीघ्रमारुह्यहयतम् ।

अन्वधावद्वराहं तनृपपुत्रः शरासनी ।५
आजघानचबाणेनचन्द्रार्द्धाकारवर्चसा ।
आकृष्यबलवच्चापंचारुचित्रोपशोभितम् ।६
नाराचाभिसतः शीघ्रमात्मत्राणपरोमृगः ।
गिरिपादपसंबांसोऽन्वक्रामन्महाटवीम् ।७

पिता ने कहा—गालब मुनि के साथ जाकर राजकुमार ने क्या किया था, वह मुझे बताओ, वह वर्णन अत्यन्त विचित्र है ।१। पुत्र बोले—राजपुत्र ऋतुध्वज ने गालब मुनि के आश्रम में निवास करके ब्रह्मवादी मुनियों के सभी विघ्न नष्ट कर दिये थे ।२। गालब मुनि के आश्रम में निवास करने वाले वीर कुवेलाश्व के रहने की बात को दानव नहीं जान सका ।३। इसलिए वह शूकर का रूप धारण करके सन्ध्योपासना में लीन गालब मुनि के शरीर से अपना शरीर रगड़ने लगा ।४।५। उस समय मुनि शिष्यों ने उच्च स्वर में चीत्कार किया । तब उस अश्व पर चढ़कर राज पुत्र ने भी अर्धचन्द्राकार चाप से उस पर प्रहार किया ।६। उस बाण से आहत हुआ दैत्य आत्म रक्षार्थ पर्वत और महावन में घूमने लगे ।७।

तमन्दधावद्वेगेनतुरगोऽसौमनोजवः ।
चौदितोराजापुत्रणपितुरादेशकारिणा ।८
अतिक्रम्याऽयवेगेप्रयोजनानिसहस्रशः ।
धरण्यांतिवृतेगर्तेनिपपातलघुक्रमः ।९
तस्यातन्तरुमेवाऽथगोऽप्यश्वीदनुपतेः सुतः ।
निपपातमहागर्ते तिमिरौघसमावृते ।१०
ततोनादृश्यतामृगःसतास्मिन्नराजसूनुना ।
प्रकाशंचपातालँपश्यत्तत्रचार्चिषा ।११
ततोपश्यतासससौवर्णं प्रासादशतासंकुलम् ।
पुरन्दरपुरप्रख्यं पुर प्राकारशोभितम् ।१२
ततप्रविश्यसनापश्यत्तत्रकंचिन्नरपुरे ।
भ्रमताचततोदृष्टातात्रयोषित्वरान्विता ।१३

सापृष्टायतेनतन्वं ग्रीपास्थाकेनकस्यवा ।
नोवाचकिंचित्प्रासादमारुरोहचभामिनी ।१४
सोऽश्वमेकतोबद्धातामेवानुसाररं वै ।
विस्मयोत्फुल्लनयनोनिः शकनपतेः सुतः ।१५

वह वेगवान अश्व भी राजकुमार की प्रेरणा से उसका पीछा करने लगा ।८। फिर वह हजार योजन लाँघकर पृथिवी के गर्भ में स्थित एक विशाल गर्त्त में गिर पड़ा ।६। उसका पीछा करते हुए अश्वारोही राजकुमार भी उस घोर अन्धकार पूर्ण गर्त में जा गिरे ।१०। उस समय राजपुत्र को वह शूकर दिखाई न दिया और जब वह प्रकाशमय पाताल में प्रविष्ट हुए तब भी उन्हें वह दैत्य दिखाई न पड़ा ।११। उस समय वहाँ उन्होंने सैकड़ों स्वर्णिम भवनों से युक्त परकोटे वाले, अमरावती के समान अत्यन्त शोभायमान एक नगरी देखी ।१२। उसमें प्रविष्ट होनेपर उन्हें वहाँ एक भी मनुष्य दिखाई न दिया, परन्तु शीघ्रता पूर्वक इधर-उधर घूमती हुई एक स्त्री को उन्होंने देखा ।१३। राजकुमार ने उससे पूछा—तुम किसकी भेजी हुई किसके पास जा रही हो ? परन्तु, उस स्त्री ने कुछ उत्तर न दिया और वह वेगपूर्वक एक भवन पर चढ़ गई राजकुमार ने भी अश्व को एक स्थान पर बाँध दिया और उस स्त्री का पीछा करने के लिए उसी भवन पर चढ़ गये ।१४-१५।

ततोऽपश्यसुविस्तीर्णेपर्यंकेसर्व कांचने ।
निषण्णांकन्यकामेकांकामयुक्तांरतियथा ।१६
विस्पष्टेन्दुमुखींसुभ्रूपीनश्रोणिपयोधराम् ।
विम्वाधरोष्ठींतन्वं गींनीलोत्पलविलोचनाम् ।१७
रक्तं तुगखींश्यामांमृद्वीताभ्रकर घ्रिकम् ।
करभोरुं सुदशनांनीलसूक्ष्मस्थिरालकाम ।१८
तांहृष्ट् वाचारुसर्वांगीमनंगागलतामिव ।
सोऽमन्यत्पार्थिवसुतस्तांरसातलदेवताम् ।१९
साचहृष्ट्वैवतंबालानीलकुंचितमूर्धजम् ।
पीनोरस्कंधबाहुंतमसंस्तमदनं शुभा ।२०

उत्तस्थौ च महाभागाचित्तक्षोभमवापसा ।
लज्जाविस्मयदैन्यानांसद्यस्तन्वोवशगंता ।२१
कोऽयंदेवोनुयक्षोनुगंधर्वोवोरगोऽपिवा ।
विद्याधरोवासंप्राप्तः कृतपुण्यरतिर्नरः ।२२

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखाकि रति के समान साक्षात् चन्द्रमुखी परम सुन्दरी एक नारी स्वर्ण-निर्मित्त एक पर्यङ्क पर लेट रही है, वह काङ्गी नीलपद्म के समान नयन वाली है ।१६-१७। उसके नख लाल रङ्ग के कुछ ऊँचे, देह कोमल, नवीनावस्था, हाथ-पाँवों के तलुए लाल रङ्ग के, दोनों ऊरु गज-शुण्ड के समान, सुन्दर दन्तावलि और अलकें नीलवर्ण की थीं ।१८। कोमलता के समान उस सर्वांग सुन्दरी रमणीको देखकर राजपुत्र ने उसे पाताल की अधिष्ठात्री समझा ।१६ उस रमणी ने भी घुँघराले केश, वक्षःस्थल, पुष्ट स्कन्ध, और लम्बे बाहु वाले राजकुमार कों देखकर सोचा कि यह रतिपति अनंग है ।२०। तब वह अत्यन्त भाग्य शालिनी रमणी सहसा क्षुभित होकर उठी और लज्जा, विनय तथा दीनता के वश में होकर ।२१। विचार करने लगी यह देवता यक्ष, गन्धर्व, नाग, विद्याधर अथवा कोई पुण्यवान् मनुष्य है, जो यहाँ आया है ।२२।

एवंविचिंत्यवहुधानिः श्वस्य च महीतले ।
उपविश्यततोभेजेसामूर्च्छामदिरेक्षणा ।२३
सोऽपिकामशराघातमवाप्यनृपतेः सुतः ।
तांसमाश्वासयामासनभेतव्यमिति ब्रुवन ।२४
साचस्त्रीयातदादृष्टापूर्वंतेनमहात्मना ।
तालवृंतमुपादायपर्यवीजयदाकुला ।२५
समाश्स्यदापृष्टातेनसंमोहकारणम् ।
किंचिल्लज्जान्विताबालतस्याः संख्यैन्यवदयत ।२६
साचास्मैकथायामासनृपपुत्रायविस्तरात् ।
मोहस्यकारणसर्वंतद्दर्शनसमुदभवम् ।२७
यथातयामसाख्याततद्वृत्तान्तंच भामिनी ।
विश्वावसुरितिख्यातोदिविगंधर्वराट्प्रभो ।२८

वह लालनेत्र वाली रमणी विभिन्न प्रकारसे विचार करती हुई दीर्घ श्वांस छोड़कर मूर्छित हो गई ।२३। यह देककर राजकुमार भी 'भय न करो' कहते हुए उसे समझाने लगे ।२४। जो स्त्री राजपुत्रने प्रथम देखी थी, वह ताडका पंखा हाथ में लेकर उस रमणीकी हवा करने लगी ।२५ फिर राजपुत्र ने उसकी मूर्च्छाका कारण पूछा तो उस लज्जावतीने उसे कुछ न बताकर अपनी सखी से सब बात कही ।२६। राजपुत्र द्वारा पूछे जाने पर उस सखीने उनके देखने के मूर्च्छित होने का तथा उस रमणीका विस्तार सहित वृत्तान्त कहा ।२७। उसने जो कहा था सो सुनिये। सखी बोली—एक विश्वावसु नामक विख्यात गन्धर्वराज स्वर्ग में रहते हैं ।२८।

तस्येयमात्मजासुभ्रू र्नाम्नाख्यातामदालसा ।
वज्रकेतो सुतश्चोग्रोदानवोऽरिविदारणः ।२९
पातालकेतुर्विख्यातः पातालांतरसंश्रयः ।
तेनेयमुद्यानताकृत्वामायांतमोमयीम् ।३०
अपहृत्यमयाहीनावालोर्नीतादुरात्मना ।
आगामिन्यांत्रयोदश्यामुद्वक्ष्यतिकिलासुरः ।३१
सतुर्नार्हतिचार्वगींशूद्रोवेदश्रु तीयथा ।
अतीतेचदिनेबालामात्मव्यापादनोद्यताम् ।३२
सुरभिः प्राहनायत्वांप्राप्स्यतेदानवाधमः ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्तयएनं भेत्स्यतेशरैः ।३३
सतेभर्तामहाभागेह्यचिरेणभविष्यति ।
अहचस्या सखीनाम्नाकुंडलेतिमनस्विनी ।३४

यह मदालसा नाम वाली उन्हीं की कन्या है, एक दिन यह उद्यानमें क्रीड़ारत थी, वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु अपनी तामसी मायाके द्वारा ।२९-३०। इसे हरण कर लाया और आगामी त्रयोदशी को इसके साथ विवाह करेगा ।३१। परन्तु वह इस सौन्दर्यमयी के लिए योग्य पात्र नहीं हैं, यह कल जिस समय आत्मघात हेतु तत्पर हुई थी ।३२। तभी सुरभिने कहा कि यह दानव तुम्हें नहीं पा सकेगा, जो पुरुष मर्त्यलोक से आकर बाणों से इसे मारेगा ।३३। वही तुम्हारा स्वामी होगा,

मैं इसकी कुण्डला नाम की सखीं हूँ ।३४।

सुताविंध्यवतः पत्नीवीरपुष्करमालिनः ।
हतेभर्त्तरिशुंभेनतीर्थात्तीर्थंमनुव्रता ।३५
चरामिदिव्ययागत्यापरलोकार्थमुद्यता ।
पातालकेतुर्दुष्टात्मावराहंवपुरास्थितः ।३६
केनापिविद्धोवाणेनमुनीनांत्राणकारणात् ।
तथाहंतत्वतोऽन्विष्यत्वरितासमुपागता ।३७
सत्यमेवसकेनापिताडितोदानवाधमः ।
इयंचमूर्च्छामिगमत्कारणंयश्रृणुष्वतत् ।३८
त्वयिप्रीतिमतीबालादर्शनादेवमानद ।
देवपुत्रोपमेंचारुवाक्यदिगुणशालिनि ।३९
भार्याचान्स्यविहितायेनविद्धः सदानव ।
एतस्मात्कारणान्मोहं मन्तमियमागताः ।४०
यावज्जीवं चतन्वं गीदुःखमेवोपभोक्ष्यते ।
त्वय्यस्या हृदयंरागिभर्त्ताचान्योभविष्यति ।४१
यावज्जीवमतोदुःखंसुरभ्यानान्यथावचः ।
अहंत्वस्याः प्रभोप्रीत्यादुःखिताऽसमागताँ ।४२

मैं विंध्यवान की मनस्विनी पुत्री तथा वीर पुष्करमाली की भार्या हूँ, मेरे पति की मृत्यु शुंभ के द्वारा हुई थी, अब मैं तीर्थ-तीर्थ में दिव्य-गति से यात्रा करती हूँ । इस दुष्टात्मा पातालकेतु ने आज शूकर का रूप धारण किया था ।३५-३६। उसे किसी पुरुषने मुनियों के रक्षाणार्थ वाण से बीधा है, वह सत्य हैं या नहीं, इसकी खोज में यहाँ आई थी।३७। यहाँ आकर देखा कि उस अधमको किसीने अवश्य ही मारा है, अबइसकी मूर्छा का भी कारण सुनो ।३८। आपको देखते ही यह आपके प्रति अत्यन्त प्रीतिमती हुई हैं क्योंकि आप देवपुत्र के समान मनोहर और वाणी से गुणज्ञ हैं ।३९। परन्तु उस दानव को जिस पुरुष ने बीधा है, वह उनके अतिरिक्त अन्य किसी की पत्नी नहीं बन सकती, इसलिए यह अत्यन्त मोहित हुई।४०। क्योंकि यह आपके प्रति अनुरक्त हुईहै और अन्य

पुरुष इसका पति होगा, इसलिए इसे जीवन पर्यन्त दुःखही भोगना होगा।४१। क्योंकि सुरभि का वचन कभी मिथ्या नहीं होता, इसलिए जीवन पर्यन्त दुःख भोगेगी, मैं दुःखित चित्त से इसके स्नेहवशही यहाँ आईहूं।४२

यतोविशेषोनैवऽस्तिस्वसखीनिजदेहयोः।
यद्येषाभिमतंवीरंपतिमाप्नोतिशोभना।४३
ततस्तपस्त्वहँ कुर्यानिर्व्यलीकेनचेतसा।
त्वं तुकोवाकिमार्थवासंप्राप्तोऽत्रमहामते।४४
देवोदैत्योऽनुगंधर्वः पन्नगः किन्नरोऽपिवा।
नक्षत्रमानुषगतिर्नचेदृङ् मानुषवपुः।४५
तत्वामाख्याहिकथितंयथैवाऽवितथंमया।
यन्मांपृच्छसिधर्मज्ञ कस्त्वंकिंवासमागतः।४६
तच्छृणुष्वामलप्रज्ञेकथायाम्यादितस्त।
राज्ञशत्रुजितःपुत्रःपित्रासंप्रेषितः शुभे।४७
मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रमागतः।
कुर्वतामम रक्षांचमुनीनांधर्मचारिणाम्।४८
विघ्नार्थमागतः कोऽपिशौकरं वपुमास्थितः।
मयासविद्धोबाणेनचद्राद्धाकारवर्चसा।४९

क्योंकि मैं इसके और अपने देह में पृथक्त्व नहीं मानती यदि इसे अपनी इच्छानुसार पति मिल जाय।४३। तो मैं स्वस्थ मन से तप करूँ। हे महामते ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ?।४४। क्या तुम देवता दैत्य, गन्धर्व, नाग या उरग हो ? क्योंकि मनुष्य का तो शरीर ही ऐसा नही होता, जिसमें वह आ सके।४५। इसलिए जैसे मैंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया है वैसे ही तुम भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सत्य सत्य सुनाओ। कुवलयाश्व बोले—तुमने पूछा है कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो ?।४६। वह सब मैं तुम्हें बताता हूं, सुनो। मैं राजा शत्रु-जित का पुत्र हूं और अपने पिता की प्रेरणा से।४७। मुनियोंके रक्षणार्थ गालब मुनि के आश्रम में रहकर मुनियों की रक्षा करता था।४८। उसी समय एक शूकर उनके कर्म में विघ्न उपस्थित करने को वहाँ आया

और मैंने उसे अर्धचन्द्र बाण से बींध दिया है ।४६।

अपक्रांतोऽतिवेगेनतमस्म्नुगतोहयो ।
पपातसहसागर्त्तं क्रीडोऽश्वश्चमोमकः ।५०
सोऽहमश्व समारूढस्तमस्येकः परिभ्रमन् ।
प्रकाशमासादितवान्हृष्टाचभवतीमया ।५१
पृष्टायाचनचमेकिंचिद्भवत्यादत्तमुरम् ।
त्वांचैवानुप्रविष्टोऽहमिमंप्रासादमुत्तमम् ।५२
इत्येतत्कथितमत्यंनदेवोऽहनदानवः ।
नपन्नगोनगन्धर्वः किन्नरोवाशुचिस्मिते ।५३
समस्ताः पूज्यपक्षावैंदेवाद्याममकुंडले ।
मनुऽष्योस्मिविशंकातेनकर्त्तव्याऽत्रकर्हिचित् ।५४
ततःप्रहृष्टासाकन्यासखीवदनमुत्तमम् ।
लज्जराजडंवक्षीमाणाकिंचिन्नोवाचभामिनी ।५५
मासखीपुनरप्येनं प्रहृष्टाप्रत्युवाचह ।
यथावत्कथितंतेनसुरभ्यावचनानुगम् ।५६

तब वह अत्यन्त वेग से दौड़ा और मैंने भी अश्वारोहण पूर्वक उसका पीछा किया, फिर वह एक विशाल गर्त्त में गिरा और मैं भी उसका पीछा करता हुआ अपने अश्व सहित उसमें गिर गया, परन्तु अपने अश्व पर चढ़ा हुआ चलता रहा और इस प्रकाशमय स्थान में आकर तुम्हें देखा ।५०-५१। तुमसे पूछने पर तुमने कोई उत्तर नहीं दिया, तब मैं तुम्हारे पीछे इस भवन में चला आया ।५२। यह मैंने सत्य ही कहा हैं, मैं देव दानव, पन्नग, गन्धर्व अथवा किन्नर में से कोई भी नहीं हूँ ।५३। मैं मनुष्य हूँ देवता इत्यादि तो सभी मेरे पूज्य हैं । तुम मेरे मनुष्य होने में किसी प्रकार का सन्देह मत करो ।५४। पुत्रों ने कहा—हे पिता, तब वह कन्या मदालसा अत्यन्त हर्षित होकर लज्जा से मौन हुई सखी की ओर देखने लगी ।५५। तब सखी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मदालसा से कहा—हे सखि ! तू सुरभि के वचन में तत्पर है इन्होंने यथार्थ वृतान्त कहा है फिर वह राजकुमार से बोली ।५६।

वीरसात्यमसंदिग्धंभवताभिहितंतचः ।
नान्यत्रहृदयंत्वस्याहष्ट्वास्थैर्यंप्रयास्यति ।५७
चन्द्रमेवाधिकांतिः समुपैतिरविप्रगा ।
भूतिधन्यंधृतिर्धीरक्षांतिरभ्येतिचोर्मम् ।५८
त्वयैवबिद्धोऽसंदिग्धंसपापोदानवाधमः ।
सुरभिः सागवांमाताकथमिथ्यादिप्यति ।५९
तद्धन्येयंसभाग्याचत्वत्सम्वंधंसमेत्यवैं ।
कुरुष्ववीरयत्कार्यंविधिनैवसमाहितम् ।६०
परवानहमित्याहराजपुत्रः सतांपितः ।६१
सवापितत्क्षणात्प्राप्तः प्रगृहीतसमित्कुशः ।
मदालसाया सप्रीत्याकुंडयागौरवेणच ।६२
प्रज्वाल्यपावकंहुत्वामंत्रवित्कृतमंगलाम् ।
वैवाहिकविधिकन्यांप्रतिपाद्ययथागतम् ।६३

कुण्डला ने कहा—हे वीर ! आपने जो कुछ कहा है वह सत्य न होता तो यह आपके दर्शन मात्र से ही अपने हृदय में स्थिरता को क्यों प्राप्त होती ? ।५७। क्योंकि चन्द्रमा को ही अधिक कान्ति और सूर्य को ही अधिक प्रभा प्राप्त है। ऐश्वर्य पुरुष को धन्य करता है, धृति धीरको और शान्ति श्रेष्ठपुरुष को ही प्राप्त होती है ।५८। इसलिए आपने ही इस दानवाधम को विद्ध किया है, इसमें सन्देह नहीं, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं बोल सकती ।५९। इसलिए आपके साथ सम्बन्ध प्राप्त करके यह सखी सौभाग्यवती और धन्य हुई। अब आप विधिवत कर्त्तव्य का अनुष्ठान करिए ।६०। पुत्रोंने कहा—हे पिता ! राजपुत्र उससे बोले—मैं पराधीन हूँ, पिता की आज्ञाके विना इस बालासे विवाह कैसे कर सकता हूँ ! इसपर कुण्डला ने कहा है, यह देवकन्या है,आप इसके साथ विवाह कीजिए, तब राजपुत्र ने स्वीकृति दी और विवाह के लिए तत्पर हुए,उस समय मदालसा ने अपने कुल गुरु तुम्बरु का स्मरण किया ।६१। तभी तुम्बुरुसमिधा और कुशालेकर वहाँ आगये।६२।और घृताहुतिदेकरअग्निको प्रज्वलितकरकेविधिपूर्वक मदालसा और राजपुत्रका विवाह सम्पन कराया

और फिर अपने स्थान को चले गए ।६३।

जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदंतदा ।
साचाहतांसखींबालांकृतार्थास्मिवरानने ।६४
सयुक्तामनुनादृष्ट्वात्वामहंरूपशालिनीम् ।
तपस्तप्स्येऽहमतुलंनिर्व्यलीकेनचेतसा ।६५
तीर्थादुधौतपापाचभविश्रीनेदृशीयथा ।
तंचाहराजपुत्रंसाप्रश्रयापनततदा ।६६
गतुकामानिजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी ।
पुम्भेरप्यमितप्रसेनोपदेशीभवद्विधे ।६७
दातव्य किमुतस्त्रोभिरतोनोपदिशामिते ।
किंत्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेनचेतसा ।६८
त्वयाविश्रभिताचास्मिस्मारयम्यरिसूदन ।
भर्त्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासादा ।६९
धर्मार्थकामसंसिद्धैचभार्याभर्त्तुः सहायिनी ।
यदाभार्याचभर्त्तचपरस्परवशानुगौ ।७०

वह अपने आश्रय में तप करने के लिए जब चले गए तब कुण्डला ने मदालसा से कहा—कि अब मैं कृतार्थ हो गई ।६४। हे रूपवती ! तुझे इनके साथ मिली देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अब मैं निर्विकार मन से तपस्या करूँगी ।६५। अब मुझे फिर इस प्रकार न रहना पड़े इसलिए तीर्थजल से स्नान कर पाप रहित होऊँगी, फिर उसने राजकुमार से नम्रतापूर्वक कहा ।६६। इच्छित स्थानमें जाने को तत्पर अपनी सखी के स्नेह से व्याकुल कुण्डला ने कहा—हे अत्यन्त बुद्धिमान् ! आपके समान पुरुष को ज्ञानी भी उपदेश देने में समर्थ नहीं है ।६७। मैं तो स्त्री हूँ, आपको उपदेश नहीं देती, फिर भी मेरा मन अपनी सखी के स्नेह में आकर्षित है ।६८। हे शत्रुनाशक ! आप पर विश्वास करती हुई मैं आपको याद दिलाती हूँ कि पति को पत्नी की सदैव रक्षा करनी चाहिये ।६९। पत्नी भी पति की सहायिका होती है और धर्म, अर्थ तथा काम, की सद्धि के लिए दोनों ही परस्पर वशीभूत रहते हैं ।७०।

तदाधर्मार्थकामानांत्रयाणामपिसंगतम् ।
कथंभार्यामृतेधर्ममर्थंवापुरुषः प्रभो ।७१
प्राप्नोतिकाममर्थंवातस्यांत्रितयमाहितम् ।
तथैवभर्त्तारमृतेभार्याधर्मादिसाधने ।७२
नसमर्थात्रिवर्गण्यंदांपत्यं समुपाश्रितः ।
देवतापितृभृत्यानामतिथीनांचपूजनम् ।७३
नपुभिःशक्यतेकर्त्तुं मृतेभार्यानृपात्मज ।
प्राप्तोऽपिचार्थोमनुजैरानीतोऽपिनिजगृहम् ।७४
क्षयमेतिविनाभार्याकुभार्यासंश्रयेऽपिवा ।
कामस्तुतस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ।७५
दंपत्योः सहधर्मेणत्रयीधर्ममवाप्नुयात ।
पुत्राणांयोनिरन्यावैनान्यतोभार्ययाविम ।
पितृन्पुत्रैस्तथैवान्नासाधनैरतिथोन्नरः ।७६
पूजाभिरमरांस्तसाध्वीं भार्यानरोऽवति ।
स्त्रियाश्चापिविनाभर्त्राधर्मकामार्थसंततिः ।७७

तभी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि सभव है, यह तीनों धर्मपत्नी में समाहित होने से, जैसे पत्नीके बिना कभी धर्म अर्थ ।७१। प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता वैसे ही धर्मादि के साधन में पति के बिना पत्नी भी ।७२। समर्थ नहीं होती, क्योंकि धर्म, अर्थ और काम पति-पत्नी दोनों के आश्रित हैं। हे राजकुमार ! देवता, पितर, भृत्य और अतिथियों का सत्कार ।७३। न हो तो धर्माचरण नही हो सकता तथा पुरुष द्वारा अनायास उपार्जित धन भी गृह लाने पर ।४७। यदि पत्नी न हो अथवा कुभार्या हो तो सब नष्ट हो जाता है, पत्नी के बिना, न होने वाला यह कार्य तो प्रत्यक्ष ही है ।७५। यदि स्त्री पुरुष दोनों ही समान धर्म को पालें तभी अर्थ काम में समर्थ होते हैं। साध्वी पत्नी को प्राप्त करके पुत्रोत्पादन द्वारा पितरों को तथा अन्नादि से अतिथियों को ।७६। और पूजन द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने में समर्थ होते हैं। स्वामी के बिना नारी को धर्म और काम का भली प्रकार विस्तार नहीं हो सकता ।७७

नैवतस्मात्त्रिवर्गोऽयंदापत्यमधिगच्छति ।
एतन्मयोक्तं युवयोर्गच्छामिचयथेप्सितम् ।७८
वर्धत्वमनयासार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा ।
इत्युक्त्वासापरिष्वज्यस्वसभींतनस्यच ।७९
जगातमिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मुनः ।
सोऽपिशत्रुजितः पुत्रस्तामारोप्यतुरगमम् ।८०
निर्गंतुकामः पातालाद्विज्ञातोदनुसंभवैं ।
ततस्तं सहसोत्क्रुष्टं ह्रियतेहियतेऽति वै ।८१
कन्याहृत्तं यदानीतंदिवः पातालष्टतुना ।
ततःपरिघनिस्त्रिंत्रमगदाशूलशरायुधम् ।८२
दानवानांबलप्राप्तंसहपातालकेतुना ।
तिष्ठतिजल्पंतस्तेतदानवोत्तमाः ।८३
अरवर्यैस्तथाशुलैर्ववर्षुं नृंपनंदनम् ।
सचशत्रुजितः पुत्रस्तदस्त्राण्यति वीर्यवान् ।८४

यह त्रिवर्ग दोनों में ही आश्रित हैं यही मेरा कहना है, अब मुझे आज्ञा दीजिए जिससे मैं अपने इच्छित स्थान में चली जाऊँ ।७८। मेरा आशीर्वाद है कि आप इससे युक्त होकर धन पुत्र, आयु और सुख से वृद्धि को प्राप्त हों। नागपुत्रोंने कहा-इस प्रकार कहती हुई कुण्डला अपनी सखी को आलिंगन और राजकुमार को नमस्कार करके ।७९। दिव्य-गति से अपने इच्छित स्थान को गई और ऋतुध्वजने मदालसा को अश्व पर चढ़ाकर ।८०। जैसे ही पाताल में निकलना चाहा, वैसे ही दानवों को उसका पता लग गया कि स्वर्ग से जिस कन्याको पातालकेतु लाया था उसे वह हरण किये ले जा रहा है, यह कहते हुए दानव चीत्कार करने लगे और पातालकेतु के साथ मिलकर दानव सेना परिघ,खड्ग,गदा शूल, बाण इत्यादि ।८१-८२। आयुधों को ग्रहण कर ठहरो, ठहरो, कहते हुए ।८३। राजकुमार पर शस्त्र-वर्षा करने लगे ।८४।

चिषिच्छेदशरजालेन्प्रहसन्निवलीलया ।
क्षणोनपातालतलमसिशक्त्वृष्टिसायकैः ।८५

छिन्नैः संच्छन्नमभवद्धतध्वजशरोत्करः ।
ततोऽस्त्रंत्वाष्ट्रमादायाचिक्षेपप्रतिदानवान् ।८६
तेनतेदानवाः सर्वेसपातालकेतुना ।
ज्वालामाला.ततीव्रेणस्फुटदस्थिचयाकृताः ।८७
निर्दग्धाः कपिलंतेजः समासाद्यवसागराः ।
ततः सराजपुत्रोऽश्वीनिवत्यासुरसत्तमान् ।८८
स्त्रीरत्नेनसमंतेनसमागच्छात्पितुः पुरम् ।
प्रणिपत्यचतत्सर्वं सतुपित्रेन्यवेदयत् ।८९
पातालगमनं चैवकुण्डलायाश्चदर्शकम् ।
तद्वन्मदालसाप्राप्तिदानवैश्चापिसंगरम् ।९०
वधश्चतेषामस्त्रेणपुनरागमनं तथा ।
इतिश्रुत्वापितातस्यचरितचारुचेतसः ।९१
प्रीतिमानभवच्चेदंपरिष्वज्याहचात्मजम् ।
सत्पात्रणत्वयापुत्रतारितोऽहं महात्मना ।९२

तब शत्रुजित के अत्यन्त बली पुत्री से अपने बाणी से उनके सब शस्त्रवान ही बात में काट डाले और उसके बाणोंसे कट-कटकर गिरे शस्त्रास्त्रोंसे पाताल तक भर गया ।८५। तब राजकुमार ने बड़े-बड़े बाण चलाये और फिर त्वाष्ट्र अस्त्र लेकर दानवों पर छोड़ा ।८६। उस ज्वालमाला वाले भयंकर अस्त्र ने सभी दानवोके सहित पातालकेतु की हड्डियाँ तोड़ डाली ।८७। और यह तुरन्त ही जैसे कपिल मुनि के तेज से सगर पुत्र भस्म हुये थे,उसी प्रकार भस्म हो गए इस प्रकार दैत्यकुल का नाश करके वह राजकुमार स्त्री के सहित अश्व पर चढ़कर अपने नगर में आये और अपने पिता को प्रणाम पूर्वक सम्पूर्ण वार्ता सुनायी ।८८-८९। पाताल में जाना, कुण्डला का देखना, मदालसा प्राप्त होना दैत्यों के साथ युद्ध ।९०। अस्त्रसे उनका संहार और पुनः वापिस लौटना आदि सब वृत्तान्त कहा जिसे सुनकर चित वाले राजा ।९१। अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिंगन पूर्वक प्रसन्न बोले कि हे सत्पुत्र ! तूने मुझे तार दिया ।९२।

भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणा ।
मत्पूर्वैः ख्यातमानीतमयाविस्तातपुनः ।९३
पराक्रमवतावीरत्वयातद्बहलीकृतम् ।
यदुपात्तंयशः पित्राधनवीर्यमथापिवा ।९४
तन्नह्रापयतेयस्तुसनरोमध्यमः स्मृतः ।
तद्वीर्यादधिकंयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तितः ९५
निष्पादयतितं प्राज्ञाः वदंतिनरोप्रत्तमम् ।
यः पित्रासमुपात्तानिधनवीर्यंयशांसिवै ।९६
न्यूनतांनयतिप्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ।
तन्मयाब्राह्मणत्राणकृतमासीद्यथात्वया ।९७
पातालगमनयच्चयच्चसुरविनाशनम् ।
एतदप्यधिकंयत्सतेनत्वं पुरुषोत्तमः ।९८

जिसके द्वारा मुनियों की रक्षा हुई उसी सत्पात्र द्वारा में भीतर गया, मेरे पूर्व पुरुष जिससे विख्यात हुए और मैंने भी जिसका विस्तार किया ।९३। वह यश तुम्हारे द्वारा और भी वृद्धिको प्राप्त हुआ, जो यश बल अथवा धन पिता के द्वारा उपार्जित है ।९४। उसकी रक्षा करने वाले पुरुष मध्यम हैं, परन्तु जो उसे अपनी शक्तिसे बढ़ाता है ।९५। उसे पण्डितजन उत्तम पुरुष कहते हैं । तथा जो पिता द्वारा उपार्जित यश बल धन को ।९६। नष्ट करता है, अधम कहा जाता है । पहिले मैंने तुम्हारे समान ब्राह्मणों का रक्षण मात्र किया ।९७। तुमने पाताल में जाकर असुरों का नाश और ब्राह्मणों की रक्षा की, इस प्रकार मुझसे अधिक कार्य किया है, इसलिए तुम उत्तम पुरुष हो ।९७।

तद्धन्योऽस्स्यथवानत्वमहमेवगुणाधिकः ।
त्वांपुत्रमीदृशप्राप्यश्लाघ्यः पुण्यवतामपि ।९९
नसपुत्रकृतांप्रीतिमन्ये प्राप्नोतिमानवः ।
पुत्रेणनातिशयितोयः प्रज्ञादानविक्रमैः ।१००
धिगतस्ययः जन्मपित्रालोकेविज्ञायतेनरः ।
यः पुत्रात्ख्यातिमभ्येतितितस्यजन्मसुजन्मनः ।१०१

आत्मनाज्ञायतेधन्योमध्यः पितृपितामहेः ।
मातृपक्षेणमात्राचख्पातिमेतिनराघमः ।१०२
तत्पुत्रधनवीर्यैस्त्वविवर्धस्वसुखेनच ।
गन्धर्वतमयं मात्वयावैवियुज्यताम् ।१०३
इतिपित्राबहुविधांप्रियमुक्त्वापुनः पुनः ।
परिष्तज्यस्वमावासंसभार्यः सविसर्जितः ।१०४
सतयाभार्यंयासार्द्धंरेमेतत्रपितुः पुरे ।
अन्येषुचतथोद्यानवपर्वतसानुष ।१०५
श्वश्रू श्वशूरयोः पादौप्रणिपत्यचसाशुभा ।
प्रातः प्रातस्तस्तेनप्रणिपत्यसुमध्यमा ।१०६

हे पुत्र ! तुम धन्य हो, तुम्हारे जैसे अधिक गुणवाले पुत्र को पाकर मैं पुण्यवानों में अधिक श्लाघाके योग्य हुआ हूँ ।९९। जो पुरुष पुत्र के द्वारा प्रज्ञा, दान अथवा पराक्रम में वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, उसे पुत्र से उत्पन्न प्रीतिका लाभ नहीं हो सकता ।१००। पिताके द्वारा जो ख्याति अर्जित करे, उसके जन्म को धिक्कार है परन्तु पुत्र के द्वारा ख्याति का अर्जन करने वाला पुरुष श्रेष्ठ जन्म वाला होता है ।१०१। अपने नाम विख्यात होने वाला पुरुष धन्य है, मातृपक्ष से ख्याति पाने वाला पुरुष नराधम होता है ।१०२। हे पुत्र!तुम धन,बल और सुख से सदा वृद्धिको प्राप्त होओ इस गन्धर्व कुमारीसे कभी तुम्हारा वियोग न हो।१०५।पिता के ऐसे वचन सुनकर राजकुमार अपनी पत्नी सहित अपने निवास स्थान को गए ।१०४। तथा मदालसा के साथ भवन, उद्यान, वन, पर्वत आदि में क्रीड़ा करने लगे ।१०५। तथा वह शुभमयी मदालसा भी श्वसुर के चरणों की वन्दना करती हुई अपने पति के साथ रहने लगी ।१०६।

।। इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे मदालसाउपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ।।

२०—मदालसा उपाख्यान

ततः कालेवहुतिथेगतेराजापन सुतम् ।
हिप्रगच्छाशुविप्राणात्राचरमेदिनीम् ।१

अश्वमेनं समारुह्यप्रातःप्रातर्दिनेदिने ।
आवाधाद्विजमुख्यानामन्वेष्टव्यासदैवहि ।२
दुर्वृत्ता संतिशतशोदानवाः पापबुद्धयः ।
तेभ्योनस्याद्यथावाधामुनीनांत्व तथाकुरु ।३
सयथोक्तस्ततः पित्रातथाचक्रे नृपात्मजः ।
परिक्रम्यमहींव्सर्वांववन्देचरणौपितुः ।४
अहन्यहन्यनुप्राप्तेपूर्वाह्णेनृपनन्दनः ।
ततश्चशेषंदिवसतयारेमेसुमध्यया ।५
एकादातुचरन्सोऽथददर्शयमुनातटे ।
पातालकेतोरनुजंतालकेतुं कृताश्रमम् ।६
मायावीदानवः सोऽथमुनिरूपंसमास्थितः ।
सप्राहराजपुत्रंतंपूर्ववैरमनुस्मरन् ।७

नागपुत्रों ने कहा—कुछ काल व्यतीत होने पर राजा शत्रुजित ने अपने पुत्र ऋतुध्वज से कहा—हे पुत्र ! तुम ब्राह्मणों के रक्षणार्थ जाकर पृथिवी में विचरण करो ।१। प्रतिदिन प्रातःकाल इस घोड़े पर चढ़कर श्रेष्ठ विप्रों के विघ्नों को दूर करो ।२। सैकड़ों पापात्मा एवं दुष्कर्मी दानव मुनियोंके कार्य में विघ्न उपस्थित न कर पायें,वही यत्न करो ।३ इस प्रकार राजा की आज्ञा प्राप्त कर वह नित्य प्रति पूर्वाह्नकाल में पृथिवी में भ्रमण करके पिता के चरणों की वन्दना करते और शेष दिन में पत्नी के सहित क्रीड़ा करते ।४-५। एक समय इसी प्रकार भ्रमण करने में उन्होंने पातालकेतु के छोटे भाई तालकेतु को यमुनातट स्थित आश्रम में अवस्थान करते देखा ।६। वह मुनि रूप धारण करके रहता था, पुरानी शत्रुता का स्मरण करके वह राजकुमार से बोला ।७।

राजपुत्रब्रवीमित्वांताकुरुष्वयदीच्छसि ।
नचतेप्रार्थनाभंगः कार्यःसत्यप्रतिश्रव ।८
यक्ष्येयज्ञेनधर्मायकर्त्तव्याश्चतथेष्टयः ।
चितयस्तत्रकर्त्तव्यानान्तरिगातायतः ।९
तत प्रयच्छमेवीर हिरण्यार्थंस्वभूषणम् ।

यदेतत्कंठलग्नंतेमंमाऽऽश्रमम् ।१०
यावदतजंलेदेव वरुणंयादसांपतिम् ।
वैदिकैवांरुणैमत्रै प्रजानांपुष्टिहेतुकैः ।११
भीष्ट्रयत्वरायुक्तःसमभ्येमीतिवादिनम् ।
तंप्रणभ्यततः प्रादात्सस्मैकंठभूषणम् ।१२
प्राहचैनंभवान्यातुनिर्व्यलीकेनचेतसा ।
स्थास्यामितावदत्रैवतवाश्रमसमीपतः ।१३
तवादेशान्महाभागयावदागमनं तव ।
नतेऽत्रकश्चिदाबाधांकरिष्यतिमयिस्थिते ।१४
विश्रब्धस्वं मुनिश्रेष्ठकुरुष्वचमनोगत ।
एतमुक्तस्ततस्तेनसममज्जनदीजले ।१५

हे राजकुमार ! यदि तुम चाहो तो मैं जो कहता हूं, वह करो, क्योंकि आपने कभी किसी की प्रार्थना को अमान्य नहीं किया है ।८। हे राजकुमार ! मैं यज्ञ करूँगा तथा इष्टि और अग्निका चयन करूँगा, परन्तु मैं दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ ।६। इसलिए, सुवर्ण दानके लिए अपना यह कण्ठा मुझे दो और आश्रमकी रक्षा करो ।१०। मैं वैदिक वारुण मन्त्र के द्वारा वरुणदेव का जल में स्तवन करके जब तक यहाँ न लौट आऊँ तब तक तुम्हें इस आश्रमकी रक्षा करनी है ।११। मैं शीघ्र हो आऊँगा,ऐसा कहते हुए मुनि को प्रणाम करके राजकुमार ने अपना कन्ठा उतारकर उन्हें दे दिया ।१२। और बोला—हे महाभाग ! आप विश्वस्त होकर जाइये, आपके आने तक मैं इसी आश्रम के निकट रहूँगा ।१३। आप जब तक नहीं लौटते तव तक आपकी आज्ञानुसार मैं यही रहूँगा,मेरे रहते हुए आपके कार्यमें कोई विघ्न नहीं करेगा ।२५। हे मुनिवर ! आपशंकारहित मनसे जाकर इच्छित कर्मका सम्पादन कीजिए, राजपुत्रके यह वचन सुन, कर वह मायामुनि तालकेतु नदी के जल में मग्न हो गया ।१५।

ररक्षसोऽपितस्यैवमायाविहितमाश्रमम् ।
गत्वाजलाशयात्तस्लकेश्चततपरम् ।१६
मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषांचैत दुक्तवान् ।

वीरः कुवलयश्वोऽसौममाश्रसमीपतः ।१७
केनापिदुष्टदैत्येनकुर्व न्रक्षांतपस्विनाम् ।
युध्यमापायथाशक्तिनिघ्नन्ब्रह्मद्विषोयुधि ।१८
मायामाश्रित्यपापेनभिन्नः शूलेनवक्षसि ।
भ्रियमाणेनतेनेदंदत्त कंठभूषणम् ।१९
प्रापितश्चाग्निसंयोगसनेवशूद्रतापसैः ।
कृतातहेषाशब्दोवैत्रस्तः साश्रु विलोचनः ।२०
नीतःसाऽश्वश्चनैवदानवेनदुरात्मनः ।
एतन्मयानृशंसनवृष्टदुष्कृतकारिणा ।२१

उसके माया निर्मित आश्रम की राजपुत्र की रक्षा करने लगे फिर जल से निकलकर तालकेतु राजा शत्रुजित् के नगर में जाकर ।१६। मदालसा आदिके समक्ष बोला कि वीर कुवलयाश्च मेरे आश्रमके निकट ।१७। तपस्वियोंकी रक्षा कर रहे थे, तभी उन्हें असी दुष्ट दानवसे युद्ध करना पड़ा और उन्होंने ब्रह्मद्वेष्टा शक्तिका असुर पर प्रहार किया ।१८ परन्तु उस दानव के माया रूपी शूल से हृदय विदीर्ण होने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गए, उन्होंने यह कटाभूषण मरते समय मुझे दिया है ।१९। तथा वनमें शूद्र तपस्वियों ने उनका अग्नि संस्कार किया है और आश्रु पूर्णदुःखित ।२०। अश्व उसी दानव ने ले लिया, यह सम्पूर्ण घटना उस नृशंस के द्वारा होती हुई देखी है ।२१।

यदत्रानतरं कृत्यैकुरुष्वोत्तरकालिकम् ।
हृदयाश्वासनं चैतद्गृह्यतांकण्ठभूषणाम् ।२२
नास्माकहिसुवर्णेनकृत्यमस्तितपस्विनाम् ।
इत्युक्त्वोसृज्यतद्भूमौसजगामयथागतम ।२३
निपपातजनः सोऽथशोकार्त्तोमूर्च्छयाऽऽतुरः ।
तत्क्षणात्चेनाँप्राप्यसर्वास्तानृपयोषितः ।२४
राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुःखिताः ।
मदालसानुदृष्ट्वातदीयकंठभूषणाम् ।२५
तत्याजऽऽसुप्रियान्प्राणान्श्रु त्वाचनिहतप्रतिम् ।

ततः पुरो महाक्रंदः पौराणां भवनेष्वभूत ।२६
यथैव तस्य नृपतेः स्वगृहे सतवर्तत ।
राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ।२७
प्रत्युवाच जन सर्वं विमृश्य स्वस्थमानसः ।
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ।२८

अब जो आपको करना हो, वह करिये और उनकी यह कंठा भी लीजिए मुझ तपस्वी को स्वर्ण से क्या प्रयोजन ? कहकर तालकेसु जहाँ से आया, वहीं चला गया ।२२-२३। इसके पश्चात् वहाँ सभी मूच्छित होकर गिर पड़े । फिर राजा-रानी चैतन्यता लाभ करके ।२४। तथा अन्य राज-स्त्रियाँ भी अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगीं । जब मदालसा ने उस कण्ठाभूषण को देखा ।२५। तो स्वामी की मृत्यु की बात सुनकर उसने दुःख से कातर होकर प्राण त्याग दिये । राम-भवनमें होने वाला क्रुन्दनप्रति ध्वनित होने लगा। फिर राजा शत्रुजित अपनी पुत्र-वधू को मरी हुई देखकर ।२६-२७। तथा सावधान चित्त होकर सब कहने लगे कि हम सबको रोना नहीं चाहिए ।२८

सर्वेषामेव संचित्यसंबंधानामनित्यताम् ।
किन्नुशोचामितनयं किन्नु शोचाम्यह स्नुषाम् ।२९
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मयोऽशोच्यावुभावपि ।
मच्छश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ।३०
प्राप्तोऽयः सुतो मृत्यु कथं शोच्यः सधीमताम् ।
अवश्यं याति यद्देह तद्द्विजानां कृते यदि ।३१
मम पुत्रेण सत्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ।
इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्न्येवमनुव्रता ।३२
कथनु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम् ।
यस्माकं वांधवानां च तथाऽन्येषां दयावताम् ।३३
शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी ।
यातुभर्तुर्वंध श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी ।३४

भर्तारमनुयातेयं न शोच्याऽतो विपश्चिताम् ।
ताः शोच्या या वियोगिन्यो सह भर्त्रा कुलांगनाः ।३५

सभी प्राणियों का सम्बन्ध अनित्य है, मैं पुत्र या पुत्र वधू किसका शोक करूँ ।२६। दोनों ही कृतकृत्य थे, इससे शोक के योग्य नहीं हैं, क्योंकि जिसने मेरी आज्ञानुसार ही ब्राह्मणों की रक्षा में लगे रहकर ।३०। प्राण दिया है, उस पुत्र के लिए शोक करना उचित नहीं है । मेरे पुत्र ने अपने नाशवान् देह को ब्राह्मणोंके लिए ।३१। त्यागा है, तब वह अशोचनीय और कल्याणकारी है और जब सत्कुल में उत्पन्न हुई इस नारी ने भी अपने पतिका अनुगमन किया है ।३२। तो वह भी शोचनीय नहीं हो सकती ; क्योंकि स्त्रीके लिए पति के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं है । यदि यह अपने पति की मृत्यु के अनन्तर जीवित रहती तो हम सब की शोचनीय दशा होती इससे तो अपने पति का मरना सुनते ही प्राण छोड़ दिया है ।३३-३४। इसलिए पण्डितजनों के लिए शोचनीय नहीं है, स्वामी की मृत्यु होने पर भी जो नारी जीवन धारण करे, वह शोचनीय होती ।३५।

कष्टभ्रान्त्या गच्छन्ति कष्टदाः स्युः कुलात्मनोः ।
भर्तु वियोगस्त्वनया नानाभूतः कृतज्ञाया ।३६
दातार सर्वं सौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः ।
लोकयोः का हि भर्त्तारं नारी मन्येत मानुषम् ।३७
नासौ शोच्यो न चैवेह नाहं तज्जननी नच ।
त्यजता ब्रह्मणार्थाय प्रांणान्सर्वेस्मतारिताः ।३८
विप्राणां मम धर्मस्य गतः सरहिमहामतिः ।
आनृण्यमर्द्ध भुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुतः ।३९
मातुःसतीत्वं मद्वंमल्यं शौर्यमात्मनः ।
संग्रामे सं त्यजन्प्राणान्नाऽत्यजद्द्विजरक्षणे ।४०
ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्तु रनन्तरम् ।
श्रुत्वा पुत्रबधताहक्प्राह हष्टातु तं पतिम् ।४१

न मे जनन्या स्वस्रा वा प्राप्ता प्रीतिनृपेदृशी ।
श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया ।४२

जो स्वामी के सहित जाती है, वह कभी शोचनीय नही है, जो गमन में कष्ट मानकर नहीं जाती, वह अपने कुलको कष्ट देने वाली हैं, कृतज्ञा होने के कारण इसने अपने स्वामी के वियोग का अनुभव नहीं किया ।३६। इहलोक और परलोक दोनों में सुख देने वाले स्वामी को कौन स्त्री मनुष्य मानती है ?।३७। हमारा पुत्र, पुत्रवधू, मैं अथवा उसकी माता हममें से कोई भी शोचनीय नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणों की रक्षा में प्राण देने वाले पुत्रके कारण हम सभी का उद्धार हुआ है ।३८। मेरा पुत्र अपने अधर्म युक्त शरीर को छोड़कर ब्राह्मण के प्रति. धर्म के प्रति और मेरे प्रति भी उऋण हो गया है ।३९। ब्राह्मणों की रक्षा से युद्ध में मरने से माता का सतीत्व, वंश की स्वच्छता और अपनी शूरता किसी का भी त्याग उसने नहीं किया ।४०। कुवलयास्व की माता पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने स्वामी को देख विषाद रहित चित्त से बोली ।४१। हे महाराज ! मुनियों की रक्षा करते करते सन्तान का मरण सुनकर मैं सन्तुष्ट हुई ऐसा सन्तोष मुझे माता-बहिन किसी के द्वारा नहीं मिल सकता ।४२।

शोचतां ब्राह्मणानां ये निः स्वसन्तोऽतिदुःखिताः ।
म्रियंतेव्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा ।४३
संग्रामे युध्यमांना येऽभीता गोद्विजरक्षणे ।
क्षुण्णाः शस्त्रै विपद्यं तेत एव भुवि मानवाः ।४४
अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषांच पराङ्मुखः ।
योन याति पिता तेन पुत्री माता चवीरसू ।४५
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा ।
यदारिविजयो वास्यात्संग्रामे वाहतः सुतः ।४६
ततः सराजा संस्कारं पुत्रपत्नीममलंभयत् ।
निर्गम्यचवहिः स्नातो ददौ पुत्रायचोदकम् ।४७

तालकेतुश्चनिर्गम्य तथैवयमुनाजलात् ।
राजपुत्रमुवाचेदं प्राणायान्मधुरं वचः ।४८
गवच्छ भूपाल पुत्रत्वं कृतार्थोऽहंकृतस्त्वया ।
वाञ्छितं तुकृतंकार्यंत्वय्ययत्राऽविचले स्थिते ।४९
वारुणंयज्ञकर्यंकजलेशस्य महात्मनः ।
तन्मया साधित सर्वं यन्ममासीद भीप्सितम् ।५०
प्रणिपत्य संतप्रायाद्राजपुत्रः पुरं पितुः ।
सभारुह्यतमेवाश्वं सुपर्णनिल विक्रमम् ।५१

जो बन्धुओं के लिये दुःख से श्वांस लेते हुए या रोगाक्रांत हुए प्राण त्याग करते हैं, उनकी माताओं का संतति-प्रजनन व्यर्थ ही है ।४३। जो गौ ब्राह्मण की रक्षाके निमित्त युद्ध में भय रहित चित्त से शस्त्र से मरता है, उसे ही मनुष्य कहते हैं ।४४। जिसके द्वारा याचक मित्र और शत्रुगण विमुख नहीं होते, उसी से पिता पुत्रवान होता है ।४५। जब पुत्र युद्ध में मर जाता या शत्रु पर विजय प्राप्त करके लौटते हैं तभी स्त्री का गर्भ क्लेश सफल होता है ।४६। नागपुत्रबोले-फिर राजा शत्रुजित ने पुत्रबधू का सत्कार कर नगर के बाहर जाकर स्नान किया और पुत्र के निर्मित्त जलाञ्जलि दी ।४७। उधर तालकेतु उसी प्रकार यमुना जल से निकल कर प्रमाण करता हुआ मीठे वचनों से राजकुमार से बोला ।४८। हे राजकुमार ! आपके द्वारा मैं कृतार्थ हुआ क्योंकि आपने यहाँ रहकर मेरा अभिलषित कार्य किया है ।४९। इस प्रकार जलपति वरुणका यज्ञ मेरी माया से सिद्धि हो गया हे राजपुत्र ! अब आप जाइए ।५०। यह सुनकर राजपुत्र ने मुनि को प्रणाम किया और उस वायु वेग वाले अश्व पर चढ़कर पिता के नगर को गए ।५१।

२१—कुवलयाश्व पातालप्रवेश

सराजपुत्रः सम्प्राप्यवेगादात्मपुरन्ततः ।
पित्रोर्ववं दिधुः पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ।१

दद‍र्शंजनमुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरः ।
पुनश्चविस्माताकारं प्रहृष्टवदन पुनः ।२
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्टया दिष्टयेतिवादिनम् ।
परिष्वजन्तमन्योमतिकौतूहलान्वितम् ।३
सराजपुत्रमित्रंतमुत्फुल्लनयनँशुभम् ।
आलिलिङ्गत दाकासौहृदेनपरेण च ।४
ततः पौरास्तदाऽऽलोक्यदिष्टचादिष्टचेतिवादिनः ।
चिरंजीवोरुकल्वाणहृतास्तेपरिपथिनः ।५
पित्रोःप्रल्हादयमनस्तथास्माकंभकटकम् ।
इत्येतवादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठेचसंवृतः ।६
तत्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेशपितुग्रगृंहम् ।
पिताचतंपरिष्वंज्यमाताचाऽन्येचवांधवाः ।७
चिरञ्जीवोरुकल्याणददुस्तस्मैतदाशिषः ।
प्राणिपत्यततः सोऽथकिमेतदिति विस्मितः ।८

नागपुत्रों ने कहा—राजकुमार ने माता-पिता के चरणों में वन्दना करने और मदालसा को देखने की इच्छा करके अपने नगर में जाकर देखा ।१। नगर निवासी अत्यन्त उद्विग्न हैं, परन्तु उन्हें देखकर प्रसन्न और विस्मित हो रहे हैं ।२। फिर प्रफुल्लित नेत्रों से भाग्य को सराहते हुए परस्पर आलिगन करने लगे ।३। उस राजपुत्र ने प्रफुल्लित नेत्र वाले अपने श्रेष्ठ मित्र को अत्यन्त प्रीति सहित हृदय से लगाया ।४। फिर नगरवासी उनके प्रति कहने लगेकि अत्यन्त भाग्य वाले दीर्घजीवी होंवे, तुम्हारे सभी शत्रु नाश को प्राप्त हों ।१५। हमारे तथा माता-पिताके हृदय को प्रसन्न करो, ऐसा करते हुए इनके आगे पीछे इकट्ठे हो गए ।६। राजकुमार ने उनके घिरे हुए पिता के भवन में प्रवेश किया, तब पिता माता तथा अन्याय बांधवगण ।७। उन्हें आशीर्वाद देने लगे, तब राजकुमार ने उनको प्रणाम करके विस्मित चित्त से पूछा—तात ! यह क्या है ? ।८।

पप्रच्छपितरंतातसौऽस्मैसम्यकपादुक्तयाम् ।
सभार्यातांमृतांश्रुत्वाहृदयेष्टां मदालसाम ।६
पितरौचपुरोदृष्टवालज्जाशोकब्धिमध्यगः ।
चिंतयामससावालामांश्रुत्वानिधनंगतम् ।१०
तत्याजजीवितंसाध्वीधिङ् मांनिष्ठुरमानसम् ।
नृशंसोऽहमानार्योऽहं विनातांमृगलोचनाम् ।११
मत्कृतेनिधनंप्राप्तांयज्जीवाम्यतिनिर्घृणः ।
पुनः संचितयामासपरिसस्तभ्यमानसंम् ।१२
मोहोद्गममपास्यैवंनिः श्वस्योच्छ्वस्यचातुरः ।
मृतेति सामन्निमित्त' त्यजामियदिजीवितम् ।१३
किमयोपकृततस्यः श्लाघ्यमेतत्तुयोषिताम् ।
यदिरोदिमिवादीनीहाप्रियेतिवदन्मुहुः ।१४
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नोवयंहिपुरुषाः किल ।
अथशोकजडोदीनोसृजाहीनोमलान्वितः ।१५
विपक्षस्यभविष्यामिततः परिभवास्पदम् ।
मयारिशातनंत्कार्यं राज्ञः सुश्रूषणंपितुः ।१६

तब उन्होंने राजकुमार को सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाया राजकुमार मदालसा का मरण-समाचार सुनकर शोकसागर में डूबकर शोच करने लगे कि जब उस साध्वी ने मेरा मृत्यु वृत्तान्त सुनकर ।६-१०। प्राण छोड़ दिए तों मुझ निष्ठुर को धिक्कार है, मैं नृशंस और अनार्य हूँ जो उसके बिना जीवित हूँ ।११। जिसने मेरे लिए प्राण त्याग दिए उसके बिना जीवित रहूँ तो मैं अत्यन्त निर्दय सिद्धि हूंगा, यह सोचते हुए ।१२ अत्यन्त कातर होकर दीर्घ श्वाँस लते हुए सोचा कि उसने मेरे लिए प्राण त्यागे हैं तो मैं यदि उसके लिए प्राण का त्याग करदूँ ।१३। तो यह स्त्रियों के लिए ही उचित है । यदि मैं ही प्रिये कहता हुआ बार-म्बार विलाप करूँ ।१४। तो वह भी निन्दा के योग्य होगा, यदि शोक

सन्ताप में माल्यादि का त्याग कर दूँ ।१५। शत्रु अपादान करेंगे, मेरा एक मात्र धर्म शत्रुओं का संहार और पिता की सेवा करना है ।१६।

जीवितंतस्यचायत्तं सत्याज्यंतत्कथंमया ।
कित्वत्रमन्येत्कर्त्तव्यस्यागोभोगस्ययोषितः ।१७
सचापिनोकारायतन्वग्याः किन्तुसर्वथा ।
मयानृशंस्यंकर्तव्यं नोपकार्यंपकारिच ।१८
यामदर्थेऽत्यजत्प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदंमवम् ।
इतिकृत्वामतिसोऽथनिष्पाद्योदकदानिकम् ।१९
क्रियाश्चानंतरंकृत्वाप्रत्युवाचऋतध्वजः ।
यदिसाममतन्वगीनस्याद्भार्यामदलसा ।२०
अस्मिञ्जन्मनिनाऽन्यामेभवित्रीसंहचारिणी ।
तामृतेमृपशावाक्षीगंधर्वतनयामहम् ।२१

मेरे जीवन का अवलम्ब वही है, इसलिए प्राण त्याग कदापि उचित नहीं है, यदि मैं अन्य स्त्री के गमन का त्याग करूँगा ।१७। तो भी उस का कोई उपकार न होगा, परन्तु उपकार हो या अपकार मुझे तो इसी नृशंस आचरण का पालन करना होगा ।१८। जिसने मेरे लिए प्राण त्यागा है उसके लिए यह कार्य सामान्य हैं । ऐसा निर्णय कर राजकुमारने जलदानादि करके ।१९। तथा सब सत्कार से निवृत होकर कहा कि जब मेरी पत्नी मदालसा ही नहीं हैं ।२०। तब इस जन्म से कोई अन्य नारी मेरी सहधर्मिणी नहीं हो सकती मैं सत्य कहता हूं कि मैं उस धर्म की सुता के अतिरिक्त, अन्य स्त्री से समागम नहीं करूगा ।२१।

नभोक्ष्येयोषितंकांचिदितिसत्यं मयोदितम् ।
सधर्मचारिणींपत्नींतांमुक्त्वागजगामिनीम् ।२२
कांचिन्नाङ्गीकरिष्यामीत्येतत्सत्यंमयोदितम् ।
एवं सर्वान्परित्यज्यस्त्रीभोगांस्तातसर्वदा ।२३
परित्यज्यच स्त्रीभोगान् तात सर्वास्तयाविना ।
एतत्तस्यपरं कार्यंताततत्केनसक्यते ।२४

कर्तुमत्यंतदुःष्प्राप्यमीश्वरैः किमुतेतरैः ।
इतिवाक्यंतयोः श्रु त्वाविमर्शमगमत्पिता ।२५
विमृश्यचाहतौपुत्रोनागराट्प्रहसन्निव ।
यद्यशक्यमितिज्ञा त्वानकरिष्यतिमानवाः ।२६
कर्मण्युद्यमद्योगहान्याहानिस्ततः परम् ।
आरभेतनरः कर्मस्वपौरुषमहापयन् ।२७
निष्पत्तिः कर्मणांदवेपौरुचव्यवस्थिता ।
तस्मादहं तथायत्नं करिष्येयेपुत्रकावितः ।२८

मैं उस सद्धर्म का आचरण करने वाली भार्या को छोड़कर किसी दूसरी नारी को स्वीकार नहीं करूँगा। नागपुत्रों ने कहा—हे तात! मदालसा के अतिरिक्त वह सम्पूर्ण स्त्री-संग त्याग कर ।२२-२३। अपने स्वभावादि में सम्मान तथा समवयस्कों के साथ क्रीड़ा करते रहते हैं उनके हित में यही एक प्रमुख कार्य है, जिसमें किसी का बस नहीं चल सकता ।२४। क्योंकि यह ईश्वर के लिए भी दुष्प्राप्य है तो मनुष्य की तो बात ही क्या है? उनकी बात सुनकर नागराज अश्वतर विचार-मग्न हो गये ।२५। और फिर हँसते हुए उन्होंने अपने दोनों पुत्रों से कहा—सामर्थ्य में परे होने के कारण जो मनुष्य उद्योग नहीं करते ।२६। उससे उनकी अत्यन्त हानि होती है अपने पौरुष को नष्ट करके ही मनुष्य कार्यारम्भ करते हैं ।२७। परन्तु दैव या पौरुष में ही कर्म की निष्पत्ति है, इसलिये हे पुत्रो! जिस प्रकार यह कार्य बन सके, मैं वह कार्य करूँगा ।२८।

तपश्चर्यासमास्थायथैतत्साध्यतऽचिरात् ।
एवमुक्त्वासनागेन्द्रः प्लक्षावतर्णंगिरेः ।२९
तीर्थहिमवतोगत्वातपस्तेपेसदुश्चारम् ।
तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवीसरस्वतीम् ।३०
तन्मनानियताहारेभूत्वात्रिषवाणप्लुतः ।
जगद्धात्रीसर देवीमारिराध यिषुः शुभाम् ।३१

स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयानिसरस्वतीम् ।
सदसद्ददवियत्किंचिन्मोक्षवच्चार्थवत्पदम् ।३२
तत्सर्वत्वभ्यसंयोगवद्ददेविसंस्थितम् ।
त्वमक्षरं परं देवियत्रसवंप्रतिष्ठितम् ।३३
अक्षरं परमब्रह्मजगच्चैतत्क्षरात्सकम् ।
दारुण्यवस्थितोवह्निर्भोमाश्चपरमाणवः ।३४
तथात्वयिस्थितंब्रह्मजगच्चेदमशेषतः ।
ओंकारक्षरसंस्थानंयत्तु तेविस्थिरास्थिरम् ।३५

मैं तपस्या के द्वारा इसे शीघ्र करने का यत्न करूँगा, । ऐसा कह कर नागराज अश्वतर हिमालय के प्लक्षावतरणा नामक तीर्थ में जाकर ।२६। दुष्कर तप करने लगे, परिमित भोजन तीनों समय स्नान और वाणी द्वारा सरस्वती का स्तवन करते हुए अश्वतर ने कहा—मैं जगजननी भगवती की आराधना की इच्छासे ।३०-३१। ब्रह्मस्नान सरस्वती को प्रणाम पूर्वक स्तुति करता हूँ, हे देवी ! मोक्ष अथवा अर्थ संयुक्त मत् असद् रूप जो पद हैं ।३२। वह सभी आपमें संयुक्तत होकर सयुक्त के समान ही अवस्थित रहते हैं । हे देवी ! आप परम अक्षर हैं आप में सब प्रतिष्ठित हैं ।३३। सभी अक्षर परमाणु के तुल्य आप में स्थित है । अक्षर रूप परब्रह्म और क्षरात्मक जगत् भी तुम में प्रतिष्ठित हैं जैसे अग्नि के सभी परमाणु काष्ठ में रहते हैं, वैसे ही ब्रह्म और बिश्व में तुम ही विद्यमान हो ।३४-३५।

तत्रमात्रात्रयं सतंमस्तियद्देविनास्तिच ।
त्रयो लोकास्त्रयोवेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ।३६
त्रणिज्योतींषिव गश्चित्रयोधर्मागमास्तथा ।
त्रयोगुणास्त्रयः शब्दास्त्रयोवेदाणस्तथाश्रमाः ।३७
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः ।
एतन्मात्रात्रयदेवितवरूप सरस्वति ।३८
विभिन्नदर्शिनामाद्याब्रह्मणोहिसनातनाः ।
सोमसंस्थाहविः संस्था पाकसंस्थाश्चसमयाः ।३९

तास्त्वदुच्चारणाद्देविक्रियंतेब्रह्मवादिभिः ।
आनिर्दस्यतथाचान्यदर्द्ध मात्रान्वितंपरम् ।४०
अविकार्यक्षयंदिव्यं परिणामविवर्जितम् ।
तवैतत्परमंरूपयन्न क्यंमयोदितुम ।४१
नचास्येनवतजिह्वाताताम्रोष्ठादिभिरुच्यते ।
इन्द्रोऽपिवसवोब्रह्माचन्दार्वोज्योतिरेवच ।४२

ओंकार, अक्षर संस्थान, स्थिर, अस्थिर अर्थात् सत् असत् तुम्हीं में विद्यमान रहते हैं, तीन लोक, तीन वेद तीन शब्द, तीन दोष, तीन तीन ज्योति तीन वेग, तीन गुण, तीन धर्म, तीन शब्द, तीन दोष, तीन आश्रम ।३७। तीन काल, तीन अवस्था, पितर तथा दिन रात्रि इत्यादि जिनकी भी वस्तुएँ तीन मात्रा स्वरूप हैं ।३८। तथा पृथक् पृथक् साम्प्रदायक वाले पुरुषों की आद्य और सनातन सप्त विधि व्याहृति का वेद में निरूपण हुआ है ।३९। वह सब तुम्हारे ही कीर्तन में ब्रह्मवादी समाहित करते हैं । हे माता ! इसके अतिरिक्त आपका जो एक और परम रूप है, जिसे अर्द्ध मात्रा कहते हैं ।४०। वह भी इसी प्रकार विकार रहित, क्षय रहित और शेष रहित है, हे माता ! मैं इतना शक्तियुक्त नहीं हूं कि आपके इस परम रूप का निरूपण कर सकूँ ।४१। क्योंकि उसका मुख जिह्वा, तालु तथा ओष्ठादि से उच्चारण सम्भव नहीं, इन्द्र सूप अथवा अन्य ज्योतिमंय पदार्थ उसी के रूप हैं ।४२

विश्वावासंविश्वरूपविश्वेशंपरमेश्वरम् ।
सांख्यवेदांतवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ।४३
अनादिमध्यनिधनं सदसेन्नः सददेवयत् ।
एकत्वेनकनाप्येकंभवभेदसमाश्रितम् ।४४
अनाख्यंषऽगुणख्यचवर्गाख्यत्रिगुणाश्रयम् ।
नानाशक्तिमतांमेकं शक्ति वै भविकंपरम् ।४५
सुखासुखंमहासौख्य रूपंत्वयिविभाव्यते ।
इवं देवित्वयाव्याप्पंसकलनिष्कलंचयत् ।४६

अद्वैतावस्थितं ब्रह्मचद्वैतेव्यवस्थितम् ।
येऽर्थानित्यायेविनश्यं तिचान्येवास्थूलायेचसूक्ष्माऽतिवसूक्ष्माः।
येवाभूमौयेऽन्तरिक्षेऽन्यतोवातेषां त्वत्तएवोपलब्धिः ।४७
यच्चाऽमर्तंयच्चमूर्तंसमस्तंयद्वाभूतेकं चर्किचित ।
यदिदव्येऽस्तिक्ष्मालेखेऽन्यतोवात्वत्सम्बंधरंर्व्यंजनैश्च ।४८
एवंस्तुतातदादेवीविष्णोजिह्वासरस्वती ।
प्रत्युवाचमहामानं नागमश्वतरततः ।४९

वही विश्व स्थान, ईश्वर एवं परब्रह्म है, सांख्य वेदान्त ओर तर्क में जिसका वणनहुआ तथा वेदकी अमुक शाखाओं द्वारा जिसेस्थिर किया गया ।४३। तथा जिसका न आदि न मध्य अथवा अन्तभी नहीं है,जो सत् असत् रूप है तथा संसार भेदसे अनेक रूप ओर विभिन्न प्रकर वाला है।४४। जिसकी आख्यागुणषटक् ओर कर्म है तथा जो त्रिगुणालम्वी ओर शक्तिमानों की शक्ति के परम वैभव से सम्पन्नहै।४५।एवं सुख असुखओर महासुखरूप है, हे माता ! तुममें वह सभी लक्षित होता है । इस प्रकार सम्पूर्ण कलायुक्त एव कलातीत विश्व तुम्हारे द्वारा व्याप्त हो रहाहै।४६ तथा द्वैतावस्थित या अद्वैतावस्थित ब्रह्म भी तुम्हारे द्वारा ही व्याप्त है, जो नित्य, अनित्य, स्थूल व सूक्ष्म पृथ्वी, अन्तरिक्ष अथवा अन्यत्र विद्यमान है तुमसे ही उसकी प्राप्ति होती है।४७। जोमूर्त्त या अमूर्त्त है, सब प्राणियोंमें विद्यमान है,स्वर्ग पृथ्वी,आंतरिक्ष अथवा अन्य सभी स्थानों में जिसका निवास है, उन सव पदार्थोंका ज्ञान तुम्हारे ही स्वर व्यंजन द्वारा होता है ।४८।नागराजद्वारा इसप्रकार स्तुतिहुईसरस्वतीने उनसे कहा।४९

वरम्तेकम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप ।
तदुच्यतांप्रदास्यामियत्ते मनसिवर्त्तते ।५०
साहायदेवहित्वं पूर्वं कम्बलमेवमें ।
समस्तस्वरसम्वंद्धमुभयोः सम्प्रयच्छच ।५१
सप्तस्वराग्रामरागाः सप्तपन्नगसत्तम ।
गीतकानिचसप्तैव तावतीश्चापिमूर्च्छनाः ।५२

तालाश्चैकोनपंचाशत्तथाग्रामत्रयंचयत् ।
एतत्सर्वं भवान्गाताक वलश्च तथानथ ।५३
ज्ञास्यतेमत्प्रसादेनजगेन्द्रपरं तथा ।
चतुर्विधं पदं तालं त्रि प्रकारं लयत्रयम् ।५४
यतित्रयंतथातोद्यं मयादत्तं चतुर्विधम् ।
एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेंद्रापरंचयत ।५५
अस्यांतर्गतमायात्तं स्वरव्यंजनसम्मितम् ।
तदशेषमयादत्तं भवतः कम्वलस्यच ।५६

सरस्वती बोली—हे उरगाधिप ! मैं वर देने को उद्यत हूँ, इसलिए तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो, वही दूँगी ।५०। अश्वतर ने कहा—हे माता ! मेरे पूर्व सहायक और कम्बल और मुझे दोनों ही को श्रुति-ग्राम और मूर्च्छनादि सब प्रदान कीजिए ।५१। सरस्वती देवी ने कहा हे पन्नग श्रेष्ठ ! तुम कम्बल दोनों ही मेरी कृपा से श्रेष्ठ गायक हो जाओगे तथा सप्तस्वर ग्रास के सप्त राग, गायन एवं मूर्च्छना ।५२। तथा उनचास तरह के ताल और तीन प्रकार का ग्राम है, तुम सभी प्रकार का गायन कर सकोगे ।५३। हे नागराज ! तुम चार प्रकार के अन्य पद तथा तीन ताल और तीन प्रकार की लय का ज्ञान भी प्राप्त करोगे ।५४। मैं तुम्हें तीन प्रकार की गति और चार प्रकार के वाद्य ताल भी देती हूं, यह तथा इनके अतिरिक्त और समस्त ज्ञान तुम्हें मेरे प्रसाद से हो जायगा ।५५। इनके अन्तर्गत स्वर, व्यञ्जनादि जो कुछ है, वह सब विषय तुम दोनों को दिया ।५६।

तवथानान्यस्यभूर्लोकेपातालेचापिपन्नगः ।
प्रणेतारौभवं तौचसर्वस्यास्यभविष्यतः ।५७
पातालेदेवलोकेचभूर्लोके चैवपन्नगौ ।
इत्यु युक्त्वासातदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती ।५८
जगामामादर्शनंसद्योनागस्यकमलेक्षणा ।
तयोश्चतद्यथाबूतं भात्रोः सर्वमजायत ।५९

विज्ञानमुभयोरग्रयं पदतालस्वरादिकम् ।
ततः कैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् ।६०
गीतकैः सप्तभिर्गीतंत्रीलयसमन्वितौ ।
आरिराधयिषूदेवमनंगांगहरहरम् ।६१
प्रचक्रतुः परं यत्यमुभौसहतवाक्कलौ ।
प्रातर्निशायांमध्याह्नेसंध्ययोश्चापितत्परो ।६२
तयोः कालेमहतास्तूयमानोवृषध्वजः ।
तुतोषगीतकैस्तोचप्राहेसोगृह्यतांवरः ।६३

तुम स्वर्गलोक, पृथिवी और पाताल में समस्त विषय में अनुपम प्रणेता रहोगे ।५७। त्रैलोक्य में तुम्हारे समान अन्य नहीं होगा, जब बोला ऐसा कहकर भगवती सरस्वती ।५८। तत्काल अन्तर्धान हो गई और उनकी कृपा से यह दोनों भाई सभी विषयों के ज्ञाता हुए ।५९। पद, ताल तथा स्वरादि में उनकी अनुपम सिद्ध हुई, तब उन्होंने कैलाश में स्थित ईश्वर ।६०। अनङ्गहारी शिव की तन्त्रीलय युक्त सप्तस्वर से गायन पूर्वक आराधना प्रारम्भ की ।६१। वह वाणी और इन्द्रियों को संयम में करके प्रातः मध्याह्न एवं सायं त्रिकाल में शिव की उपासना में तत्पर हुए ।६२। जब देव शंकर बहुत काल में प्रसन्न हुए और उन दोनों से बोले कि 'वर' माँग लो ।६३

ततः प्रणम्याश्वतरः कंवलेनसमंतदा ।
व्यज्ञापयन्महादेवं शितिकंठमुमापतिम् ।६४
यदिनौभगवान्प्रीतोदेवदेवस्त्रलोचनः ।
ततोयथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छनौ ।६५
मृताकुवलयाश्वस्यपत्नीदेवमदालसा ।
तेनैववयसासद्योदुहितृत्वं प्रयातुमे ।६६
जातिस्मरायथापूर्वंतद्वत्कान्तिसमन्विता ।
योगिनीयोमातामद्गृहेजायतां भव ।६७
यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ सर्वं मेतद्भविष्यति ।
मत्प्रसासंदिग्धं श्रृणुचेदभुजंगम् ।६८

श्राद्धेनुसमनुप्राप्तेमध्यंपिण्डतात्मना ।
कामचेममभिध्यायकुरुत्वं पितृतर्पणम् ।६९

तत्क्षणादेवसासुभूस्वसतोमध्यामात्फणात् ।
समुत्पस्यतिकल्याणीतथारूपायथामृता ।७०

तब कम्बल सहित अश्वतर ने प्रणाम कर पार्वती-पति भगवान शंकर से निवेदन किया ।६४। हे प्रभो ! आप सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो हमें यह इच्छित वर दीजिए कि ।६५। कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा ने प्राण त्याग किया है, वह जिस अवस्था में मरण को प्राप्त हुई है, उसी अवस्था में मेरी कन्या के रूप में उत्पन्न हो ।६६ वह पूर्ववत् कान्तिमति तथा जातिस्मरा होकर मेरे गृह में जन्म धारण करे ।६७। शिवजी बोले हे पन्नगोत्तम ! तुम्हारा कहा हुआ मेरी कृपा से अवश्य होगा, अब जो कहता हूँ उसे सुनो ।६८। श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर पवित्र एवं सावधान मन से तुम स्वयं मध्यम पिण्ड का भोजन करना तथा मेरा ध्यान करके पितरोंको यजन करना ।६९।मध्यम पिण्ड का भक्षण करने से मदालसा ने जिस अवस्था में प्राण त्यागा है, उस अवस्था में तुम्हारे मध्य फण से उत्पन्न हो जायगी ।७०।

एतच्छ्रुत्वाततस्तौतुप्रणिपत्यमहेश्वरम् ।
रसातलपुनः प्राप्तौपरितोपसमन्वितौ ।७१

तथाचकृतवाञ्छ्राद्ध सनागः कम्बलानुजः ।
पिडंचमध्यमंतद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ।७२

तंचापिध्यायतः कामंडेततः सातनुमध्यमा ।
जज्ञेनिःश्वसतःसद्यस्तद्रूपामध्यमात्फणात् ।७३

न चापिकथयामासकस्य चित्सभुजंगमः ।
अतर्गृहेतांमुदतींस्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् ।७४

तौचानुदिनमागत्यपुत्रौ नागपते सुखम् ।
ऋतध्वजेनसहितौचिक्रीडातेऽमराविव ।७५
एकदातुसुतौप्राहनागराजामुदान्वितः ।
यवन्मयापूर्वमुक्तं तुक्रियतेकिंनतत्तथा ।७६
सराजपुत्रोयुवयोरुपकारीममांतिकम् ।
कस्मानानायतेवत्सावुपकारायमानवः ।७७

यह सुनकर दोनों भाई शिवजीको प्रणाम करके पातालमें गए ।७१ फिर अश्वतर ने उसी प्रकार पितर श्राद्ध करते हुए मध्यम पिन्ड का भोजन किया ।७२। अन्त में अपने इच्छित का ध्यान करके श्वास छोड़ा तभी उनके मध्यम फल से मदालसा अपने उसी रूप में उत्पन्न हो गई ।७३। अश्वतर ने यह बात किसी को नहीं वताई और मदालसा को स्त्रियों के साथ छिपा कर घर में रखा ।७४। उधर उनके दोनों पुत्र देवकुमारों के सामने ऋतध्वज के पास आकर नित्य प्रति आनन्द पूर्वक खेलने लगे ।७५। एक दिन नागराज ने उन दोनों से कहा—पूर्व में मैंने तुमसे जो कुछ कहा या तुभ उसे क्यों नहीं करते ।७६-७७

एवमुक्तौततस्तेनपित्रास्नेहवतातुतौ ।
गत्वातस्यपुरं सख्यूरेमाताततेनधीमता ।७८
ततः कुवलयाश्वंतौकृत्वाकिंचित्कथांतरम् ।
अब्रूतांप्रणयोपेतस्वगेहगमनं प्राति ।७९
तावहन्नृपपुत्रोऽसौनन्विदंभवतोगृहम् ।
धनवाहनवस्त्रादियन्मदीयं तदेववाम् ।८०
यस्यवांवांछितं धनंरत्नमथापिवा ।
तद्दीयनांद्विजसुतौयदिवांप्रणयोमयि ।८१
एतावताहंदेवेनवंचितोऽस्मिदुरात्मना ।
यद्भवद्भ्यांमतत्वंनोमदीयेक्रियंतागृहे ।८२

यदिवांमत्प्रियं कार्य मनुग्राह्योऽस्मिवांयदि।
तद्वनेममगेहेचममत्वमनु कल्प्यतान् ।८४

स्नेही पिता द्वारा ऐसा कहा जाने पर उनके दोनों पुत्र ऋतुध्वज के नगर में जाकर उनके साथ खेलने लगे ।७६। फिर उन्होंने प्रीतिपूर्वक कुवलयाश्व को अपने गृह चलने का अनुरोध किया ।८०। राजकुमार बोला – मेरा गृह धन, वस्त्र, यान, आदि जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है ।८१। यदि मेरे प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हुई है और मुझे जो धन, रत्न देना चाहते हो, वह दो ।८२। यदि तुम मेरे घर को अपना नहीं मानते हो तो —मुझे देव द्वारा वंचित हुआ ही समझिये ।८३। जो मेरा प्रिय करने की इच्छा करते हो और मुझे अपना कृपापात्र मानते हो तो गृह और धन में अपनत्व रखो ।८४।

युवयोर्यन्मदीयं तन्ममकंयुवयोः स्वकम् ।
एतत्सत्यंविजानीतं युवाप्राणावहिश्चराः ।८५
पुनर्बवं भिन्नार्थवक्तव्यं द्विजसत्तमौ ।
मत्प्रसादपुरौप्रीत्याशापितौहृदयेनमे ।८६
ततः स्नेहार्द्रवनौतावुभौनागनन्दनौ ।
ऊचतुर्नृपतः पुत्र किंचित्प्रणयकोपितौं ।८७
ऋतध्वज नस देहोयथैवाहाभवानिदम् ।
तथैवचास्मन्मनसिनात्रचिंत्यमतोऽन्या ।८८
किंत्वावयोः स्वयपित्राप्रोक्तमेन्महात्मना ।
द्रष्टुंकुवलयाश्वंतमिच्छामीतिपुनः पुनः ।८९
ततः कुवलयाश्वोऽसौसमुत्थायवरासनात् ।
यथाह तातेतिवदन्प्रणाममकरोद्भुवि ।९०
धन्योऽहमति पुण्योऽहकोऽन्योऽस्ति सदृशोमया ।
यत्तातोमामभिद्रष्टुं करोतिप्रवणंमनः ।९१
तदुत्तिष्ठतगच्छामस्तामाज्ञांक्षणमप्यहम् ।
तातिक्रान्तुमिहेच्छामिपदभ्यांतस्यशपाम्यहम् ।९२

तुम्हारा है, वह मेरा और मेरा है वह तुम्हारा, मेरी इस बात को

यथार्थ समझो, क्योंकि तुम मेरे बाह्य प्राण स्वरूप हो ।७५। अतएव हे विप्रो ! ऐसी भेद स्थापित करने वाली बात न कहना, मैं तुम्हें शपथ देता हूँ कि तुम प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होओ ।८६। तब दोनों नागपुत्रोंने स्नेह सिक्त मुखसे प्रीतिपूर्वक कुछ रोष व्यक्त करते हुए कहा ।८७। हे राज-कुमार ! जो तुमने कहा है, वही हम सोचते हैं,उसमें कुछ भेद मत समझो ।८८। परन्तु हमारे पिता ने तुन्हें देखने की बारम्बार इच्छा प्रकट की है। ।८९। तब कुवलयाश्व श्रेष्ठ आसनसे 'स्वयं' पिताजीने इच्छाकी हैं" यह कहते हुए उठकर प्रणाम किया ।९०।और कहा-अवश्य ही मैं धन्य एवम् पुण्यवान् हूँ, क्योंकि मुझे देखनेके लिए स्वयं पिताजी उत्सुक हुए हैं ।९१ इसलिए चलो क्षणमात्र को भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं कर सकता, मैं उनके चरण स्पर्श पूर्वक तथा शपथ से कहता हूं ।९२।

एवमुक्त्वाययौसोऽथसहताभ्यांनृपात्मजः ।
प्राप्तश्चगौतमीपुण्यांनिगत्यनगराद्वहिः ।९३
तन्मध्येनययुस्तेवंनागेन्द्रनृपनंदनाः ।
मेनेचराजपुत्रोऽसौपारेतस्यास्तयोगृहम् ।९४
ततश्चाकृष्यपातालंताभ्यांनीतोनृपात्मजः ।
पातालेदहृशेचोभौसहन्नगकुमारकौ ।९५
फणामणिकृतोद्दयोतौव्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ।
विलोक्यतौसुरूपाँगौबिस्मयोत्फुल्लोचनः ।९६
विहस्यचाब्रवीत्प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ ।
कथयामासतुस्तौचपितरंपन्नगेश्वरम् ।९७
शांतमश्वतरंनाममानयीयंदिवोकसाम् ।
रमणोतंततोऽमश्यत्पातालंसनृपात्मजः ।९८

यह कहकर ऋतुध्वज उनके साथ चले और नगर के बाहर जल से परिपूर्ण गोमती नदी पर पहुँचे ९३।उसके मध्य से तीनों चलने लगे,राज-कुमारने समझाकि गोमतीके पार ही उनका घर है ।९४। परन्तु उन्होंने राजकुमार को खींचा और पातालमें ले गए, वहाँ पहुँचकर,राककुमार ने

देखा कि दोनों नागपुत्रों ने अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया है।६।५ फणों में स्थित मणिके प्रकाश से उनका हृदय और स्वस्ति चिह्न प्रकाशित हो गया, राजकुमार ने उनके स्वरूपको देखकर विस्मय से विस्फारित नेत्रों द्वारा।६६। हँसते हुए साधुवाद दिया, फिर देवताओं द्वारा भी स्तुत पितृदेव अश्वतरसे राजकुमार के आगमन का वृत्तान्त कहा गया। राजकुमारने देखाकि पातालका वह नगर अत्यन्त रमणीक है।६७-६८।

कुमारै स्तरुणैर्वृद्धै रुरगैरुपशोभितम् ।
तथैवनागकन्याभि क्रीडतीभिरितस्ततः।६६
चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनंयथा ।
गीतशब्दैस्तथान्यंत्रणीणावेणुस्वनानुगैः।१००
मृदङ्गपणवातोद्यं हारिवेश्मशतकुलम् ।
वीक्षमाणःसपातालंययौशत्रुजितःसुतुः।१०१
सहताभ्यामभष्टाभ्यांपन्नगाभ्यामरिंदमः।
ततः प्रविश्यतेसर्वेनागराजनिवेशनम्।१०२
ददृशुस्तेमहात्मानसुरगाधिपतिस्थितम् ।
दिव्यमाल्यांवरधरं मणिकुण्डलभूषणम्।१०३
स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् ।
केयरिणमहाभागमासनेसर्वकांचने।१०४
मणिविद्रुमवैदूर्यजालांतरितरूपके ।
सताभ्यांदर्शितस्तस्यतातोऽमानमसाविति।१०५

बाल युवा, वृद्ध सब जाति के सर्प सुशोभित हैं और उनके चारों ओर नागकन्यायें क्रीड़ा करती घूम रही हैं।६६। उनके हार और कुण्डल अत्यन्त सुन्दर हैं, उनके सामीप्य से तारावलि से विभुषित आकाश के समान पाताल की नगरी सुशोभित हो रही है। कहीं संगीत की ध्वनि, कही वंशी और कहीं वीणायें बज रही हैं।१००। मृदङ्ग, पणव एवं आतोद्य के शब्द से प्रतिध्वनित सैंकड़ों रमणीक घर सुशोभित हैं। उस नगरी को देखते हुए राजकुमार अपने समवयस्क मित्रों के साथ चलरहे थे, फिर उन्होंने नागराज के स्थान में प्रवेश करके।१०१-१०२। उन्हें

वहाँ निवास करते देखा, उनका दिव्य विछौना दिव्य माला तथा दिव्य मणिमय कुण्डल शोभायमान हैं ।१०३। स्वच्छ मनोरम हार से अत्यन्त सुशोभित, हाथों में केयूर धारण किये हुए वह स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हैं ।१०४। मणिमूंगावैदूर्य आदि के कारण उनका प्राकृतिक स्वरूप ढक गया है, सखाओं ने राजकुमार से कहा कि हमारे पिता यही हैं ।१०५

वीरःकुवलयाश्वोऽयंपित्रे चासौनिवेदितः ।
ततोननामरणोनागेन्द्रस्यऋतुध्वजः ।१०६
समुत्थाप्यवलाद्गाढ़ नागेन्द्रपरिषस्वजे ।
मूर्ध्निचैनमुपाघ्रायचिरजीवेत्युवाचसः ।१०७
निहनामित्रवर्गंश्चपित्रोःशुश्रुषणकुरु ।
वत्सधन्यस्यकथ्यंतेवरोक्षस्यापितेगुणाः ।१०८
भवतोममपुत्राभ्यामसामान्यानिवेनिवेदिताः ।
त्वमेवानेन वद्धंथामनोवाक्कायचेष्टितैः ।१०९
जीवितगुणिनःश्लाघ्यजीवन्नेवमृतोऽगुणो ।
गुणवान्निर्वृतिपित्रोःशत्रूणांहृदयज्वरम् ।११०
करोत्यात्महितंकुर्वन्विश्वासंचमहाजने ।
देवता पितरोविप्रामित्रार्थिविभवादयः ।१११
बांधवाश्चतथेच्छंतिजीवितंगुणिनश्चिरम् ।
परिवादनिवृत्तानांदुर्गतेषुदयावतान् ।११२

फिर पिता से कहा कि यही कुवलयाश्व हैं, तब ऋतध्वज ने नागराज के चरणों में प्रणाम किया ।१०६। नागराज ने राजकुमार का आलिंगन कर शिर सूंघते हुए कहा--चिरजीवी होओ ।१०७। तथा शत्रु कुल का विनाश करते हुए माता-पिता की सेवा करो । तुम धन्य हो, मेरे पुत्र तुम्हारे पीछे भी तुम्हारे आलौकिक गुण ।१०८। गाया करते हैं। इससे भी तुम्हारा मन, वाणी, शरीर और चेष्टा की सर्वांश में वृद्धि होगी ।१०९। गुणवान पुरुष ही प्राण धारण के योग्य हैं, जो गुणहीन हैं, वह जीवित रहकर भी मरे हुए के समान हैं । क्योंकि गुणवान् पुरुष माता-पिता को शान्ति देते और शत्रुकुल को संतप्त करते हैं ।११०।

महाजनों के विश्वास को प्राप्त करके अपना कल्याण साधना करते हैं, देव, पितर, ब्राह्मण, मित्र, प्रार्थी एवं क्षिभव इत्यादि ।१११। वंधुजन गुणगान् के ही दीर्घजीवी होने की कामना करते हैं, गुणवान् व्यक्ति बुरे कर्म करने वालों को निवृत्त करते और दुःखियों के प्रति दया प्रदर्शित करते हैं ।११२।

गुणिनांसफलंजन्मसंश्रितानांविपद्गतैः ।
एवमुक्त्वासतंवीरंपुत्राविदमथाऽब्रवीत् ।११३
पूजांकुवलाश्वस्यकर्त्तुकामोभुजंगमः ।
स्नानादिकक्रमंकृत्वासर्वमेवयथाक्रमम् ।११४
मधुपनादिसंभोगमाहारंचयथेप्सितम् ।
ततःकुवलयाश्वेनहृदयोत्सर्वभूतया ।११५
कथायाल्कंकालंस्थास्यामोहृष्टचेतसः ।
अनुमेनेचतंमौनोबचःशत्रुजित सूतः ।११६
तथाचकारनृपतिःपन्नगानामुदारधीः ११७
समेत्यतैरात्मजभूपनंदनैर्महोरणामधिपःससत्यवाक ।
मुदान्वितोऽन्ननिमर्धूनिचात्मवान्यथोपयोगवुभुजेसभोगभाक्।११८

दुःखियों के आश्रयदाता होने से भी उनका जन्म सफल हैं,ऐसा कह कर राजकुमार का पूजन करने लगे तथा अपने दोनों पुत्रों से बोले कि हम सब एकत्र होकर स्नानादि से निवृत्त होकर।११३।इच्छानुसार मधु-पान एवं आहार भक्षण कर कुवलयाश्व सहित उत्सुक पूर्वक ।११४। प्रसन्न मनसे रहेंगे, इस पर कुवलयाश्व ने मौन रहकर ही उनकी बात का अनुमोदन दिया ।११६। फिर उदारचेता नागराज ने उसके अनुरूप कार्यारम्भ किया ।११७। सत्यभाषी नागराज अश्वतरके दोनों पुत्र राज-कुमार के साथ प्रसन्नचित्त से अन्नमधु का सेवन करने लगे ।११८

२२–कुवलयाश्व को पुनः मदालसा प्राप्त

कृताहारंमहात्मानमधिपपवनाशिनाम् ।
उपासांचक्रिरेपुत्रौभूपालतनयास्तथा ।१
कथाभिरनुरूपाभिः समहात्माभुजंगमः ।
प्रीतिसंजनयामासपुत्रसख्युरुवाचह ।२
तवभद्रसुखंन्न् हिगेहमम्यागतस्ययत् ।
कर्तव्युत्सृजाशंकापितरीवसुतोमयि ।३
हिरण्यंवासुवर्णंवावस्त्रैवाहनमासमम् ।
यद्वाभिमतमत्यर्थंदुर्लभंतद्वृणुष्वमाम् ।४
त्ववत्प्रसादाद् भगवन्सुवर्णागृहेमम ।
पितुरस्तिमसाध्यापिनकिंचित्कार्यमीदृशम ।५
तातेवर्षसहस्राणिशासतीमांवसुन्धराम् ।
तथेवत्वयिषायापातालंनमे याच्चोन्मुखमनः ।६
तेस्वर्ग्याश्चसुपुण्याश्चयेषांपितरिजीवति ।
तृणकोटिसमवित्तंतारुण्यादितकौटिषु ।७

जड़ बोला—फिर नागराज अश्वतर के भोजन कर लेने पर उनके दोनों पुत्र और राजकुमार उनकी उपासना में लगे ।१। तब नागपति अश्वतर ने अनुरूप वचनों से राजकुमार को प्रसन्न करते हुए कहा—हे भद्र ! ।२। तुममेरे गृह आये हो । जैसे शङ्कारहित होकर पुत्र अपनेपिता से बातें करता है वैसे ही तुम भी करो, मुझे बताओ कि मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ।३। इन बातों को स्वच्छन्द होकर कहो, स्वर्ण रजत, वस्त्र वाहन अथवा जो कुछ इच्छित हो, वह यदि दुर्लभ भी हो तो मुझसे माँग लो ।४। कुवलयाश्व बोला—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे पिताके गृहमें स्वर्णादि सब वस्तुयें है,मुझे अभी तक ऐसी किसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई ।५। मेरे पिता सहस्र वर्ष हुए जब इस पृथ्वी पर शासन करते थे और आप भी पाताल में निवास करते थे, तव कभी भी मेरा मन याचना में प्रवृत्त नहीं हुआ ।६। जिनके पिता

जीवित हैं वह पुरुष धन्य है इसलिए युवावस्था में करोड़ संख्या धनको भी जो तिनके के समान मानते हैं, वह परम पुण्यवान् महापुरुष हैं ।७।

मित्राणितुल्यशिष्टानितद्वद्देहमनामयम् ।
जनिताध्रिवतेवित्तंयौवनंकितुनास्तिमे ।८
असत्यर्थेनृणायाञ्चाप्रवणजायतेमनः ।
सत्यशेयेकथंयाञ्चांममजिह्वाकरिष्यति ।९
यंनंचित्यैधनंकिचिन्ममगेहेऽस्तनास्तिवा ।
पितृवाहुतरुछायांसश्रिताः सुखिनोहिते ।१०
यतुबाल्थाप्रत्भृत्येवविनापित्राशुटुम्बिनः ।
तेसुखास्वादंबिभ्रंशान्मन्येधात्रेववंचिताः ।११
तद्वयंत्वत्प्रसादेनधनरत्नादिसंचयान् ।
पितृभक्ताःप्रयच्छामःकामतोनित्यमर्थिनाम् ।१२
तत्सवमिहसंप्राप्तयदंघ्रियुगलंतव ।
मच्चूडामणिनास्पृष्ट यच्चांगस्पर्शमाप्तवान् ।१३
इत्येवंप्रश्रतंबाक्यमुक्तःपन्नगसत्तमः ।
प्राहराजसुतप्रीत्यापुत्रयोरुपकारिणम् ।१४

मेरे मित्र उचित शिष्टाचार से युक्त हैं, मेरा देह युवा एवं रोग संपन्न हैं जिनके पास धन नहीं, वही याचना में प्रवृत्त होते हैं मेरे यहाँ प्रचुर धन होने से मेरी जिह्वा याचना क्यों करे ? ।९। घर में धन हो या न हो, जो पिता रूपी वृक्ष की भुजलताओं के आश्रित हैं, उन्हें कोई चिन्ता नहीं होती,क्योंकि यथार्थ रूपसे सुखी वही है ।१०। परन्तु बाल्य काल से ही पितृहीन होकर परिवार कल्याण के भरण पोषण में व्यस्त होते हैं उन्हें विधाता ने सुख से वंचित कर दिया ।११। आपकी कृपा से मैं अपने पिता के द्वारा प्रदत्त असंख्य धन-रत्नादियोंको याचकों को देता ।१२। फिर जब अपनी चूड़ामणि के द्वारा आपके चरणारविन्दों का स्पर्श किया है और आपका संग लाभ हुआ तो मुझे निःसन्देह सम्पूर्ण

लाभ हो गए हैं ।१३। ऐसे वचन सुनकर नागराज अपने पुत्रों के हित में तत्पर उस राजकुमार से बोले ।१४।

यदिरत्नसुवर्णादिमत्तोऽवाप्तुं नतेमनः ।
यदन्यन्मनसःप्रीत्यैतद्ब्रूहित्वं ददाम्यहम् ।१५
भगवंस्त्वप्रसादेनाप्रार्थितस्यगृहेमम ।
सर्वमस्तिविशेषेणसंप्राप्तंतवदर्शनात् ।१६
कृतकृत्योऽस्मिचैतेनसफलंजीवितचमे ।
यवदगसंश्लेषमितस्तवदेवस्यमानुषः ।१७
ममोत्तमांगेत्वत्पादरजसायदिहास्पदम् ।
कृततेनैवनप्राप्तंकिमयापन्नगेश्वर ।१८
यदित्ववश्यंदातव्योवरोममयथेप्सितः ।
तत्पुण्यकर्मसंस्कारोहृदयान्माव्यपैतुमे ।१९
सुवर्णमणिरत्नादिवाहनंगुहमासनन् ।
स्त्रियाऽन्नपानं पुत्राश्चचारुमानुलेपनम् ।२०
एतेचविविधाःकामागीतवाद्यकिञ्चयत् ।
सर्वमेतन्ममतंफलंपुण्यवनस्पतेः ।२१
तस्मान्नरेणतन्मूलः कार्योयत्न.कृतात्मना ।
कर्त्तव्य पुण्यसक्तानांनकिंचिद्भुवि बुर्लभम् ।२२

स्वर्ण रत्नादि की कामना न होते हुए भी जिससे तुम्हारे अन्तर की प्रीति का संचार हो सके, वह विषय मुझसे कहो, उसे मैं प्रदान करूँगा ।१५। कुवलयाश्व बोले—भगवन् ! मेरे गृह में आपकी कृपा से सम्पूर्ण प्रार्थनीय वस्तुएँ विद्यमान हैं, तथा आपका दर्शन लाभ करने से समस्त वस्तुएँ ही मुझे मिल गयी हैं ।१६। आप देवता के अङ्ग सङ्ग का लाभ करके मैं अपने को धन्य मानता हूँ इससे मेरा जीवन धारण करना भी सफल हुआ है ।१७। हे नागेश्वर ! आपकी चरण-रज ने मेरे मस्तक पर निवास किया है, इससे मुझे क्या प्राप्त नहीं हुआ ? ।१८। तो भी यदि आप मुझे इच्छित वर देना चाहते हैं तो यही दीजिए कि मेरे हृदय से कभी पुण्यकर्म के संस्कार न निकले ।१९। स्वर्ण

मणि, रत्न, वाहन, कर, आसन, स्त्री, पुत्र, अन्न, रस, माला, अनुलेपन ।२०। तथा गायन-वादन आदि सब वस्तुयें पुष्प का ही फल हैं ।२१। इसलिये कृतचित्त होकर उसी की जड़ सींचनी चाहिए, पुष्प में आसक्त मनुष्यों के लिए पृथ्वी में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ।२२

एवंभविष्यतिप्राज्ञतवधर्माश्रितामतिः ।
सत्यंचैतत्फलवंधर्मस्योक्तंयथात्वयः ।२३
तथाऽयवश्यंतद्गेहमागतेनत्वयाऽधुना ।
ग्राह्यंयन्मानुयेलोकेदुष्प्रापभतीमतम् ।२४
तस्यैतद्ववचनं श्रुत्वा सतदानृपनन्दनः ।
मुखावलोकनंचक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः ।२५
ततस्तोप्रणिपत्योभौराजपुत्रस्ययन्मतम् ।
तत्पितुसकलंवीरौव थयायासतुःस्फुटम् ।२६
तताऽस्यपत्नीदयिताश्रुत्वेमविनिपा ततम् ।
अत्यजद्दयिताप्रणान्विप्रयब्धादुरात्मना ।२७
केनापिकृतवैरेणदानवेनबुद्धिना ।
गंधर्वराजस्यसुतानाख्याताामदालसा ।२८

अश्वतर बोले—ऐसा ही होगा, तुम्हारा मन सदा पुण्यकार्यों में रहेगा तुम्हारा सब कथन सत्य है, धर्म का एकमात्र फल यही है ।२३। फिर मैं जब तुम मेरे गृहपर आयेहो तो मृत्युलोकमें जो तुम्हें दुष्प्राप्य होवहअवश्य लेना चाहिए ।२४। जड़ बोला—नागराज का बचन सुनकर राजकुमारने उनके पुत्रोंको मुख की ओर देखा ।२५। तब उन दोनों ने अपने पिताको प्रणाम करके राजकुमारकी कामना को स्पष्ट रूप से कहा।२६। दोनोंपुत्र बोले-इनकी प्रियतमाने किसी दुरात्मा दानव द्वारा छलपूर्वक इनकीमृत्युका समाचार पाकर प्राण त्याग किया है।२७। उस दानवने शत्रुता वशहीऐसा किया था, इनकी पत्नीका नाम मदालसा था, वह गन्धर्वराजकी पुत्रीथी।२८

कृतज्ञोऽयंततस्तप्रतिज्ञांकृतवानिमाम् ।
नान्याभर्याभविप्रीतिवर्जयित्यामदालसाम् ।२९

द्रष्टुतांचारुसर्वांगीमयंवीरोऋतध्वजः ।
तातवांछतियद्योतत्क्रियतेतत्कृतंभवेत् ।३०
भूर्तवियोगिनोयोगस्ताद्दशरेवताद्दशः ।
कथमेतद्विनास्वप्नोमायांवाशबरोदिताम् ।३१
प्रणिपत्यभुजंगेशंपुत्रःशत्रुजितस्ततः ।
प्रत्युवाचमहात्मानप्रेमलज्जासमन्वितः ।३२
मायामयीमप्यधुनाममतातोमदालसाम् ।
यदिदर्शयतेमन्येपर कृतमनुग्रहम् ।३३
तस्मात्पश्येहवत्सत्वंमायांचेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्योभवान्गेहंबालोऽप्यभ्यागतोगुरुः ।३४
आनयामासनागेन्द्रोगृहगुप्तांमदालसाम ।
दर्शयामासचतदा राजपुत्रायतांशुभाम् ।३५
तेषांसन्मोहनार्थायिजजल्पचततःस्फुटम् ।
सेयनवेतितेभार्या राजपुत्रमदालसा ।३६

मदालसा के मरने पर, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए इन्होंने प्रतिज्ञा की है कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी नारी को पत्नी नहीं बनाऊँगा ।२६। यह उस सर्वांग सुन्दरी के दर्शनको अत्यन्त लालायित हैं यदि ऐसा हो सके तो इनका यथार्थ उपकार हो सकता है ।३० अश्वतर बोले पंचभूतात्म देह का वियोग होनेपर पूर्ववत् संयोग आसुरी माया के अतिरिक्त अन्य प्रकार से संभव नहीं ।३१। यह सुनकर ऋतुध्वजने नागराजको प्रणाम किया और लज्जा सहित कहा ।३३। हे तात! यदि आप उस मदालसा को मायापूर्वक ही मुझे दिखा सकें तो मैं उसे परम अनुग्रह ही समझूँगा ।३२। अश्वतर ने कहा—हे वत्स ! यदि तुम माया देखना चाहते तो अनुग्रह के पात्र होने के कारण देखो, यद्यपि तुम बालक होकर यहाँ आये हो फिर भी अतिथि होने के कारण गुरु के समान सम्मान के योग्य हो ।३४। नागराज ने यह कहकर घर में छिपी हुई मदालसा को वहाँ बुलाकर राजकुमार को दिखाया ।३५।

सदृष्ट्वातांतपदातन्वींतत्क्षणाद्विगतत्रपः ।
प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुदीरयन् ।३७
निवारयामासचतनागःसोऽश्वतरस्त्वरन् ।
मायेयं पुत्रामस्प्राक्षीःप्रागेवकथितंतव ।३८
अन्तर्द्धानमुपैत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः ।
ततःपपातमेदिन्यांसतुमूर्च्छापरिप्लुतः ।३९
हाप्रियेतिवदन्सोऽर्थचितयामासभामिनीम् ।
माहाममाऽयंनोवेतिनाऽलंप्रत्ययवानहम् ।४०
अहोमस्नेहोऽस्यनृपतेर्ममोपर्यचलंमनः ।
येनायंपातनोऽरीणांविनाशस्त्रेणपातितः ।४१
ममेतिर्दशिताऽनेनमिथ्यामायेतियत्स्फुटम ।
वाय्वंबुतेजसांभूमेरकाशस्यचेष्टया ।४२

तथा सबको मोहित करनेके लिए मन्त्रोच्चारण पूर्वक मदालसा को दिखाते हुए राजकुमार से कहा—हे वत्स ! तुम्हारी भार्या मदालसा वही है इसे तुम देखो ।३६। उसे देखते ही राजकुमार लज्जा त्यागकर 'प्रिये' कहते हुए तत्काल उसके सामने पहुंचे ।३७। अश्वतर ने उन्हें निषेध करते हुए कहा—हे वत्स ! यह माया है, इसे स्पर्श मत करना, यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ ।३८। स्पर्शादि से माया तत्काज नष्ट हो जाती है, ऐसा सुनकर ऋतुध्वज मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।३९।फिर हा प्रिये ! कहते हुए बोले—क्या मुझे मोह हो गया है अथवा कुछ और बात है, यह बात समझ में नहीं आती है ।४०। परन्तु मुझे बल पूर्व निश्चय है कि यह मेरी ही है जिसने मुझे बिना शस्त्र मारा है ।४१। वह मिथ्यामाया ही मुझे दिखाई है, अथवा यह वायु, जल, तेज आकाश की कोई चेष्टा है ।४२।

ततःकुवयाश्वंतंसमाश्वास्यभुजंगमः ।
नथयामासतत्सर्वंमृतसंजीवनादिकम् ।४३
ततःप्रहृष्टःप्रतिलभ्यकांतांप्रणम्यनागनिजगामसोऽथ ।
सुशोभमानःस्वपुरं तमश्वमारुह्यसंचिन्ततभ्युपेतम ।४४

श्रृणुयाद्भक्तिपूर्वंयीनैरंतर्येणमानवः।
वदघोषफलतेनप्राप्तंवैभुविदुर्लभम् ।४५
संप्राप्नोतिसुखंनित्यंसर्वकामसमन्वितः ।
लोकेऽस्यदुर्लभतस्यनास्तिकिंचिन्नाविद्यते ।४६

जड़ बोले–फिर नागराज अश्वतर ने कुवलयाश्व को समझा बुझा कर जिस प्रकार मदालसाको प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ।४३। तब कुवलयाश्वको अपनी भार्याकी प्राप्ति से अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने अपने अश्व को स्मरण किया याद करते ही वह अश्व वहाँ आ गया और राजकुमारने नागराज को प्रणाम कर भार्या सहित घोड़े पर बैठकर अपने नगर को प्रस्थान किया ।४४। जो मनुष्य इस कथा को भक्तिभाव पूर्वक सुनते हैं, वे वेद पाठ के फल को प्राप्त होते हैं, यह उपाख्यान पृथ्वी में अत्यन्त दुर्लभ है, इसमें संदेह नहीं है ।४५। सब कामनाओं की प्राप्ति एवं नित्य सुख की प्राप्ति होती है लोक में उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ।४६।

२२—मदालसा का पुत्र उल्लापन

आगम्यस्वपुरंसोऽथपित्रोःसर्वमशेषतः ।
कथयामासतन्वंगीयथाप्राप्तापुनर्मृता ।१
ननामसाचचरणौश्वश्रूश्वशुरयोशुभा ।
स्वजनंचयथापूर्वंवदनाश्लेषणादिभिः ।२
पूजयामासतन्वंगीयथान्याथान्यायंयथावयः ।
ततोमहोत्सवोजज्ञपौराणांतत्रवैपुरे ।३
ऋतध्वजश्चसुचिरंतारेमेसुमध्यया ।
निर्झरेषुचशैलानांनिम्नगापुलिनेषुच ।५
काननेषुचरम्येषुतथैवोपवनेषुच ।
पुण्यक्षयंवाञ्छमानासापिकामोपभोगतः ।५

सहृतेनातिकांतेनरेमेरम्यासुभुमिषु ।
ततःकालेनमहताशत्रुजित्सनराधिपः ।६
सम्यक्प्रशास्यवसुधांकालधर्ममुपेयिवान् ।
तत पौरामहात्मानंपुत्रंतस्यऋतध्वजम् ।७
अभ्यषिचंतराजानमुदाराचारचेष्टितम् ।
सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजापुत्रानिवोरसान् ।८

पुत्र बोला–अपने नगर में पहुँचकर ऋतुध्वज ने मृतक मदालसाको जिस प्रकार पुनः प्राप्त किया वह सब वृत्तान्त अपने माता-पितासे कहा ।१। कल्याणी मदालसा ने भी अपने सास-श्वसुर के चरणों में प्रणाम पूर्वक ।२। सभी स्वजनों की यथा योग्य वंदना पूजन आदि किया और फिर नगरी में पुरवासियों ने महोत्सव मनाया ।३। तथा राजकुमार ऋतध्वज ने मदालसा के साथ पर्वत झरने नदी पुलिन ।४। वन, उपवन आदिमें बहुत समय विहार किया मदालसाभी कामोपभोग द्वारा वासना सहित ।५। सुन्दर कान्ति युक्त ऋतध्वजके साथ विविध मनोहर स्थानों में विहार करने लगी। इस प्रकार बहुत काल व्यतीत हो गया तब राजा शत्रुजित ।६। काल धर्म के वशीभूत हो गए और नगरवासियों ने उनके पुत्र ।७। उदार आचरण वाले ऋतुध्वज को राज्य पर बैठाया और वे भी भली प्रकार से प्रजा पालन में तत्पर हुए।८।

मदालसायाःसंजज्ञेपुत्रःप्रथमजस्ततः ।
तस्यचक्रे पितानाविक्रांतइतिधीमतः ।९
तुतुषुस्तेनवैभृत्याजहासचमदालसा ।
सावैमदालसापुत्रबालमुत्तानशायिनम् ।१०
उल्लापनच्छलेनोऽऽहरुदमानमविस्वरम् ।
शुद्धोऽसिरेतातनतेऽस्तनामकृतंहिते कल्पनयाऽधुनैव ।११
पंचात्मकदेहमिदंतवैतन्नंवास्यत्वंरोदिषिकस्यहेतोः ।
नवाभावाक्षोदिवैस्वजन्मा शब्दोऽयमासद्यमहीशसूनुम् ।१२
विकल्प्यमानाविविधगुणस्तेऽगुणश्चभौताःसलेन्द्रियेषु ।
भूतानि भूतं परिदुर्बलानिवृद्धिसमायांतियथेहपुंसः ।१३

अन्नांबुदादिभिरेवकस्यनतेऽस्तिवृद्धिर्नचतेऽस्तिहानिः।
त्वंकचुकेशीर्यमाणेनिजेऽस्मिस्तस्मिन्स्वदेहेमूढतांमाव्रजेथाः।१४

इसके पश्चात् मदालसा ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम 'विक्रान्त' रखा गया।९। पुत्र होने के कारण भृत्यगण अत्यन्त प्रसन्न हुए, मदालसा हँसने लगी। उस पुत्रके पांव पसार कर सोने पर।१०। अथवा अस्फुट स्वर से रोने पर मदालसा उससे कहती है। हे पुत्र ! तुम नाम विहीन का नामकरण कल्पना से ही हुआ है।११। तुम इस शरीर को पंचभूतात्मक समझो क्योंकि जैसे यह शरीर तुम्हारा नहीं है, वैसे ही तुम भी इसके नहीं हो, फिर क्यों रोते हो ! यह शब्द भी स्वयं ही प्रकट होता है।१२। विभिन्न भौतिक गुण अथवा अगुण तुम्हारी इन्द्रियों में है, जैसे अत्यन्त दुर्लभ भूतगण भूत की सहायता से ही अन्न जलादि के दान से बढ़ते हैं।१३। उसके समान तुम्हारी वृद्धि अथवा क्षय नहीं है यह शरीर तो केवल आच्छादित है जो क्षीण हो जायगा, इसलिए तुम इसके मोह में मत पड़ना।१४।

शुभाशुभैःकर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैःकंचुकस्तेऽपिचद्धः।
तातेतिकिंचित्तनयेतिकिंचिदंबेतिकिंचिददयितेतिकिंचित।१५
ममेतिकिंचिन्नमभेतिकिंचिद्त्वभूतसंघबहुधमान्येथाः।
दुःखानिदुःखोपशमायभोगान्सुखायजानातिविमूढ़चेताः।१६
तान्येवदुःखानिजानात्यविद्वानसुविमूढचेताः।
हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्वलतजनमङ्गनायाः।१७
कुचादिपोनंपिशितंघन नत्स्थानंरतेः किंनरकंनयोषित्।
यान क्षितौयानगतचदेहेऽपितान्यः पुरुषोनिविष्टः।१८
ममत्वबुद्धिर्नतथायथास्वेदेहेऽतिमात्रं वऽमूतैषां।१९
त्यजधर्ममधर्मंचउभेसत्यानृतेत्यज।
उभेसत्यानृतेत्यक्त्वायेनत्यजसितत्यज।२०

शुभाशुभ कर्मसेही इसका अच्छादन हुआ समझो,पिता,पुत्र,माता स्त्री अथवा अन्य आत्मीयजन आदि अपना कुछ नहीं है इनका अधिकमानन करना मूढ़चेता पुरुष ही दुःखको दुःखनाशक तथा भोगोंको सुखका कारण

मानते हैं ।१५-१६। अविद्यासे ही अन्धे हो मोहमें पड़े हैं,वह दुःखको सुख ही मानते हैं, स्त्री हँसती है तो हड्डी दिखाई पड़ती हैं और उसके नेत्रों में बसा की कलुषता प्रतीत होती है ।१७। उसके स्तनादि भी मांसपिण्ड मात्र हैं। उसका गुह्य स्थान भी वैसा ही है, तब क्या स्त्री साक्षात् नरक का ही स्वरूप नहीं है ? पृथ्वी में यान, यान में शरीर और शरीर में अन्य पुरुष का निवास है ।१८। जैसी ममता शरीर के प्रति है, वैसी पृथ्वी के प्रति भी नहीं है, यही मूर्खता, क्योंकि शरीर पृथ्वी का ही सूक्ष्म अंश है ।१९। 'धर्म' अधर्म, सत्य असत्यका त्याग करो इसे त्यागने के पश्चात् जिससे त्याग किया जाय, उसे भी त्याग दो ।२०।

वर्धमानंपुत्रसातुराजपत्नीदिनेदिने ।
ततुल्लापादिनाबोधमनयन्निर्मलात्मकम् ।२१
यथायथं बललेयथालेभेमर्तिपितः ।
तथातथात्मबोधंचसोऽवापमतृभाषितैः ।२२
इत्थंतयासतनयोजन्मपभतिबोधितः ।
चकारनमतिप्राज्ञोगार्हस्थ्यंप्रतिनिर्ममः ।२३
द्वितीयोऽस्याःसुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता ।
सुबाहुरयामित्युक्ते साजहासमदालसा ।२४
तमप्येवंयथापूर्वंवालंमुल्लपनादिना ।
प्राहबाल्यात्सचप्रापतथाबोमंहामतिः ।२५
तृतीयंतनयंजातंन्सराजाशत्रुमर्दनम् ।
यदाहतेनसासुभ्रूजंहासातिचिरंपुनः ।२६
तथैवसोऽपितन्वंग्याबालत्वादेवबोधितः ।
क्रियाश्चकारनिष्कामोनकिंचिदुपलकारणम् ।२७
चतुर्थंस्यगुतस्यार्थाचिकीर्षुं नर्माभूमिपः ।
ददर्शंतांशुभाचारमीषद्धासांमदालसाम् ।२८

जड़ बोला—इस प्रकार यह राजपुत्र दिनोदिन बढ़ने लगा, रानी मदालसा भी पुत्रको खिलानेके मिस उस स्वच्छ आत्मा वाले पुत्रको ज्ञान

देने में लगी क्रम-क्रम करके पुत्र जैसे पिता के द्वारा बल बृद्धि को पाने लगा वैसेही माताके उपदेश द्वारा आत्मज्ञानभी प्राप्त करने लगा।२१-२२ जन्मसे ही माता से आत्मज्ञान विषयक उपदेश को पाकर ममता दूर हो गई और गृहस्थ धर्म के प्रति राजकुमार निस्पृह हो गये।२३। कुछ कालोपरान्त मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम पिता ने सुबाहु रखा, मदालसा उस समय भी हँसी।२४। वह उसे भी उसी प्रकार आत्मबोध देने लगी, इससे उसका मन भी ज्ञान प्राप्त करके विरक्त हो गया।२५। फिर तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजा ने उसका नाम शत्रुमर्दन रखा, उसे सुनकर मदालसा बहुत देर तक हँसती रही।२६। वह इसे भी पहले की तरह आत्मज्ञान देने लगी, जिससे यह भी काम रहित हो गया।२७। फिर चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नामकरण करने के लिए राजा ने मदालसा की ओर देखा तो वह हँस पड़ी।२८।

तामाहराजहसतींकिंचित्कोतूहलान्वितः।
क्रियमाणेसकृन्नाम्निकथ्यतांहास्यकारणम्।२९
विक्रांतश्चसुबाहुश्चतथान्यःशत्रुमर्दनः।
शोभनानीतिनामानिमयामन्येकृतानिवै।३०
योग्यानिक्षत्रबंधूनांशौर्याटोपयुतानिच।
असंत्येतानिचेदभद्रेयदितेमनसिस्थितम्।३१
तदस्यक्रियतांनामचतुर्थस्यसुतस्यो।।
मयाज्ञाभवतःकार्यमहाराजयथात्थमाम्।३२
तथानामकरिष्यामिचतुर्थस्तसुतस्यते।
अलर्कइतिधर्मज्ञःख्यातिलोकेप्रयाष्यति।३३
कनीयानेषतेपुत्रोमतिमांश्चभविष्यति।
तच्छुत्नामपुत्रस्यकृतमात्रामहीपतिः।३४
अलर्कइत्यसम्बद्धंप्रहस्येदमथाब्रवीत्।
भवत्यायदिदंनाममत्पुत्रस्यकृतंशुभे।३५

किमीदृशमसम्बद्धमर्थंकोऽयमदालसे ।
कल्पनेयमहाराजकृतासाव्यावहारिकी ।३६

यह देखकर राजा ने पूछा—मैं जब-जब पुत्र होने के पश्चात् नाम करण के लिए उद्यत हुआ, तब-तब ही तुम हँस पड़ती हो, इसका क्या कारण है ? ।२६। मैंने इन पुत्रों के नाम विक्रान्त, सुवाहु और शत्रुमर्दन रखे, यह मेरे विचार से युक्ति सङ्गत ही है ।३०। क्योंकि क्षत्रियों का नाम शौर्य और दर्पसे युक्त होना ही ठीक है, फिर भी तुम्हारे विचार में वह तीनों नाम अयुक्त हों तो ।३१। इस चौथे पुत्रका नाम तुम्हीं रखो । मदालसा ने कहा—हे महाराज ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है ।३२। इसलिए मैं आपकी आज्ञानुसार नामकरण करती हूँ, यह पुत्र भूमण्डल में 'अलर्क' नाम से प्रसिद्ध होगा ।३३। आपका यह सबसे छोटा पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान होगा । परन्तु इस असम्वद्ध नाम को सुनकर ।३४। राजाने हँसते हुए कहा—तुमने जो पुत्र का नाम रखा है ।३५। वह असम्वद्ध है, इस नाम का क्या अर्थ है? मदालसा ने कहा—हे राजन् ! नामकरण तो केवल लोकाचार और नितान्त कल्पना है ।३६।

तत्कृतानांतथानाम्नांश्रृणुभपनिरर्थताम् ।
वदन्तिपुरुषाःप्राज्ञाव्यापिनंपुरुषयतः ।३७
क्रांतिश्चगतिरुद्दिष्टादेशांतरन्तुयो ।
सर्वगोनप्रयातीतिव्यापीदेहेश्वरोयतः ।३८
ततोविक्रांतसज्ञेयंमताममनिरर्थिका ।
सुबाहुरितियासज्ञाकृतान्यस्यसुतस्मते ।३९
निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात्पुरुषस्यमहीपते ।
पुत्रस्यययकृतंनांभतृतीयस्यारिमर्दनः ।४०
मन्येतदप्यसम्बद्धं श्रृणुचाप्यत्रकारणम् ।
एकएवशरीरेषुसर्वेषुपुरुषोयद ।४१
तदास्यराजन्कःशत्रुःकोवामिहष्यते ।
भतेर्भूतानिमृद्यन्तेअमूर्त्तोमृद्यते कथम् ।४२

नाम रखना है, ऐसा समझ कर एक नाम रख लिया वैसे आपने भी जिन नामों को रखा है उनका भी कोई अर्थ नहीं है क्योंकि पंडित जन आत्मा को सर्वव्याप्त कहते हैं ।३७। एक देश के अन्य देश में जाने को क्रान्ति कहते हैं, आत्मा सर्वगत एवं सर्वव्यापी होने से शरीर का ईश्वर है, उसकी गति सम्भव नहीं ।३८। इसलिये मैं विक्रान्त नाम का कोई अर्थ नहीं समझती । हे राजन् ! आत्मा तो स्वरूप रहित है, फिर दूसरे पुत्र के सुबाहु नाम का भी ।३६। कोई अर्थ नहीं है और तृतीय पुत्र का अरिमर्दन नाम भी ।४०। मैं निरर्थक ही समझती हूँ क्योंकि एक आत्मा ही सब शरीरों में विद्यमान रहती है ।४१। उसका शत्रु मित्र कोई नहीं हो सकता, भूत के द्वारा ही भूत का मर्दन होता है, परन्तु आकार हीन का मर्दन कैसे हो सकता है? ।४२।

क्रोधादीनांपृथरभावात्कल्पेनेयनिरर्थिका ।
यदिसव्यवहारार्थमसन्नामप्रकल्प्यते ।४३
नाम्निकस्मादलर्काख्येनैरर्थ्यंभवतोमतम् ।
एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः ।४४
तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितांसत्यवादिनीम् ।
तच्चापिसासुतंभुभ्रूर्यथापूर्वसुतांस्तथा ।४५
प्रोवाचबोधजननंतामुवाचपार्थिवः ।
करोषिकिमिदंमूढेममभावायसन्तते ।४६
दुष्टाववोधदानेनयथापूर्वंसुतेषुमे ।
यदितेमत्प्रियंकार्यंस्यदिग्राह्यंवचोमम ।४७
तदेनतनयंमार्गेप्रवत्तेःसन्नियोजय ।
कर्ममार्गःसमुच्छेदंमैवंदेविगमिष्यति ।४८
पितृपिंडनिवृत्तिश्चनैवंसाध्विभविष्यति ।
पितरोदेवलोकस्थास्तथातिर्यक्त्वमागताः ।४९
तद्वन्ममनुष्यतांयाताभूतवर्गेषुचसंस्थिताः ।
सपुण्यानसपुण्यांश्चक्षुत्क्षामान्तृट्परिप्लुतान् ।५०

क्रोध इत्यादि भाव भी आत्मासे पृथक्‌ही है,सबप्रकार निर्दोष आत्मा शत्रु का मर्दन नहीं कर सकता, यदि लोकाचार वश ही निरर्थक नाम की कल्पना की जाती है ।४३। तो मेरे द्वारा रखा गया अलर्क नाम किस प्रकार अर्थहीन है ? रानी के ऐसे वचन कहने पर महा बुद्धिमान राजा ने ।४४। उस सत्यभाषिणी से कहा—तुम्हारा कथन सत्य हैं, तब मदालसा चौथे पुत्र को भी उन तीनों पुत्रों के समान ही ।४५। आत्म ज्ञान देने लगी । इस प्रकार राजा ने कहा—तुम यह क्या कर रही हो क्या मेरी सन्तान को भावहीन करना चाहती हो ? ।४६। जैसे आत्म-ज्ञान देकर उन तीनों पुत्रों का अमङ्गल किया हैं, क्या वैसा ही इसका करोगी ! यदि तुम मेरा प्रिय करना कर्त्तव्य मानती हो और मेरे वचन का पालन करना उचित समझती हो ।४७। तो इस पुत्रको प्रवृत्ति मार्ग में प्रेरित करो, क्योंकि कर्म में प्रवृत्त करने से कर्म मार्ग का नाश नहीं हो सकता ।४८। ऐसा करने से पिण्ड के लुप्त होने की आशंका नहीं रहेगी, क्योंकि शुभाशुभ कर्म से स्वर्ग प्राप्ति या तिर्यग् योनि को प्राप्त पितरगण ।४९। नरत्व प्राप्त अथवा अन्य योनियों मैं संक्रमण करते हुए क्षुधा पिपासा से अत्यन्त व्याकुल क्षीण होते हैं ।५०।

पिंडोदकप्रदानेनरःकर्मण्यवस्थितः ।
सदाप्यायतेसुभ्रूतदद्देवातिथीनपि ।५१
देवैर्मनुष्यैःपितृभिःप्रतैर्भूतःसगुह्यकैः ।
योघभि क्रुमिकोटैश्चरनरवोपजीव्यते ।५२
तस्मात्तन्वंगिमेपुत्रंमेयत्कार्यंक्षत्रयोनिभिः ।
ऐहिकामुष्मिकपालंतत्सम्यक्प्रतिपादये ।५३
तेनैवमुक्तासाभर्त्रावरनारीमदालसा ।
अलर्कनामतनयमुवाचोल्लापवादिनी ।५४
पुत्रवर्द्ध स्वमद्भर्त्तुर्मनोनन्दयकर्मभिः ।
ऐहिकासुष्मिकफलन्तत्सम्यक्परिपालय ।
मित्राणामुपकारायदुर्हृदांनांशनायच ।५५

धन्योऽसिरेयोवसुधामशत्रु रेकश्चिरंपालयिताऽसिपुत्र ।
तत्पालनादस्तुसुखोपभोगोधर्म्मात्फलंप्राप्स्यसिचामरत्वम् ।५६

उस समय कर्म मार्ग के अवलम्बन से पिण्डोदक द्वारा उनका और उन्हीं के समान देवताओं और अतिथियों का पूजन करते हैं ।५१। क्योंकि देवता, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि, कीटादि सभी मनुष्यों के आश्रम में जीवन निर्वाह करते हैं ।५२। इसलिये हे तन्वन्गी ! क्षत्रियोचित कर्तव्य और इहलोक परलोक के फल लाभ के लिये जो उचित, हो वही शिक्षा इसे दो ।५३। पति की बात सुनकर मदालसा ने उस पुत्र को खिलाने के लिये कहा ।५४। हे पुत्र ! तुम वृद्धि को प्राप्त होओ, मित्रोंके उपकार और शत्रुओं के संहार कर्म द्वारा मेरे स्वामी के हृदय को आनन्दित करो ।५५। हे पुत्र' ! तुम धन्य हो क्योंकि तुम शत्रु रहित होकर दीर्घकाल तक वसुन्धरा का पालन करोगे, जिससे सभी लोकों में सुख का संचार होगा और इस प्रकार परम धर्म संचय करके अमरत्व को प्राप्त होगे' ।५६।

धरामरान्पर्वसुतर्पयेथां समीहितम्वधुषुपूरयेथाः ।
हितंपरस्मैहृदिचिंतयेःमनःपरस्त्रीषुनिवर्तयेथाः ।५७
सदामुरारिंहृदिचिंतयेथास्तद्धयानतोऽन्तःषडरीञ्जयेथाः ।
मायांप्रबोधेननिवारयेथाह्यनित्यतामेवविचिंतयेथाः ।५८
अर्थागमायक्षितिपाञ्जयेथायशोज्जनायार्थमपिव्ययेथा ।
परापवादश्रवणाद्विभीथाविपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ।५९
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमयैंद्विजान्प्रीणयसश्रितांश्च
स्त्रियश्चकामैरतुलंश्चिरायुद्धैश्चरींस्तोषयितासिवीर ।६०
बालोमनोनन्दयबान्धवानांगुरोस्तथाज्ञाकरणै कुमारः ।
स्त्रीणांयुवासत्कुलभूषणानांबृद्धोवनेवत्सवनेचरणाम् ।६१
राज्यंकुर्वन्सुहृदोनन्दयेथाःसाधून्रक्षंस्तातयज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्येगोविप्रार्थेवत्समृत्युंब्रजेथा ।६२

तुम प्रत्येक पर्व दिनमें ब्राह्मण की तृप्ति करो, बन्धुजनों की इच्छित करो और परहित साधनकी इच्छा करते हुए परनारीमें मनमत लगाओ

।५७। सदा भगवान् का ध्यान करते हुए कामादि छै शत्रुओं को वशमें करो,ज्ञान के द्वारा माया दूर करो और विश्व की अनित्यता का सदा ध्यान रखो ।५८। अर्थ प्राप्त करते हुए पांच वस्तुओं को जीतो और जीव के लिये व्यय करो, पर निन्दासे डरो,लोगों को विपत्ति सागर से उबारो ।५९। विभिन्न यज्ञानुष्ठानों से देवताओं को, निरन्तर दान से विप्रों को और आश्रितों को प्रसन्नकरो, विभिन्न भोगोंसे स्त्रियों और युद्ध से शत्रुओं को सन्तुष्ट करो ।६०।बाल्यकाल में बांधवों का, कौमारावस्था में आज्ञा पालन द्वारा माता-पिता का, युवावस्था में स्त्री का और वृद्धावस्था में वनवास पूर्वक वनचरों का उपकार करो ।६१। हे वत्स ! तुम राज्य में प्रतिष्ठित होकर सुहृदों को आनन्दित करोगे, यज्ञानुष्ठान, गो, ब्राह्मण और साधुजन की रक्षा के लिये युद्ध में शत्रुओं को जीतकर परलोक गमन करोगे ।६२।

२४—राजधर्म कथन

एवमुल्लाप्यमानस्तुसतुमात्रादिनेदिने ।
ववृधेवयसाबालोवृद्धयाचालर्कसंज्ञितः ।१
सकौमारकमासाद्यऋतध्वजतस्ततः ।
कृतोपनयनःप्रायः प्रणिपत्याऽऽहमातरम् ।२
मयायदत्रकर्त्तव्यमहिकामुष्मिकायवै ।
सुखायवदतत्शर्वंप्रश्रयावनतस्यमे ।३
ममार्थंचैवधर्मार्थंप्रजानांचवयद्धितम् ।
श्रेयसेच्चतत्सर्वंप्रजारञ्जनमादितः ।४
वत्सराज्येऽभिषिक्तेनप्रारञ्जनामादितः ।
कर्त्तव्यमविरोधेनस्वधर्मस्यमहीभृता ।५
व्यसनानिपरित्यज्जसप्तभूलहराणिवै ।
आत्मारिपुभ्यःसंरक्ष्योबहिर्मंत्रविनिर्गमात् ।६

दुष्टादुष्टांश्चजानीयादामात्यानपिदोषतः ।
अष्टधानाशमाप्नोतिसुचक्रात्म्यन्दाद्यथा ।७

तथाराजाऽप्यसन्दिग्धंबहिर्मंत्रविनिर्गमात् ।
चरैश्चनरास्तथाशत्रोरन्वेष्टया:प्रयत्नतः ।८

पुत्र बोला—माता मदालसा इस प्रकार पुत्र को नित्य प्रति उप-देश देने लगी और वह बालक बुद्धि तथा अवस्था में वृद्धिको प्राप्त होने लगा ।१। कौमारावस्था प्राप्त होने पर अलर्क का यज्ञोपवीत हुआ तब उसने प्रणाम पूर्वक अपने माता से कहा ।२। हे माता ! इहलोक और परलोक के सुख के लिये मुझे जिस प्रकार का कम करना चाहिये उसे विस्तार पूर्वक कहिये ।३। धर्म, अर्थ प्रजाहित प्रजापालन से मोक्ष की प्राप्ति आदिका यथा योग्य वर्णन करो मदालसाने कहा-हे पुत्र ! राज्या-भिषेक होने पर धर्मानुसार प्रजाको सुखी करनाही राजाका प्रथम कर्त्तव्य है ।४-५। सत्य सहित, व्यसनों का त्याग करके, अपना मन्त्र बाहर न जाय इस प्रकार शत्रुओं का तिरस्कार करने के कार्य में प्रवृत्त रह कर शत्रुओं से अपनी रक्षा करो ।६। शत्रुओं के मिलने से अमात्यगण की दुष्टताया स्वामिभक्त को जाने तथा श्रेष्ठ पहिये वाले रथसे गिरने से जैसे आठ प्रकार का आघात होता है ।७। वैसे ही मन्त्रणा के फूटने पर राजा को प्राप्त होता है राजाको इसका ज्ञान अवश्य करना चाहिये कि शत्रुओं ने किसी प्रकार अमात्यवर्गको अपनी ओर तो नहीं मिला रखा है ।८।

विश्वासोनतुकर्तव्योराज्ञामित्राप्तबन्धुषु ।
स्थनावृद्धिक्षयज्ञेनषाड्गुण्यविदितात्मना ।९
भवितव्यंनरेन्द्रेणनकामवशवर्तिना ।१०

प्रागात्मामन्त्रिणश्चैवततोभृत्यामहीभृता ।
जेयाश्चानंतरंपौराविरुध्येतततोऽरिभिः ।११

यस्त्वेतानविजित्यैववैरिणोविजिगीषते ।
सोऽजितात्माजितामात्यःशत्रुवर्गेणवाध्यते ।१२

तस्मात्कामादयःपूर्वंजेयाःपुत्रमहीभुजा ।
तज्जयेहिजयोऽवश्यंराजानश्यतितैर्जितः ।१३
कामःक्रोधश्चलोभश्चमदोमानस्तथैवच ।
हर्षश्चशत्रवोह्य तेविनाशायमहीभृताम् ।१४

मित्र, आप्त या बन्धु किसी का भी विश्वास करना राजाको उचित नहीं, किन्तु समायान्तर देखकर शत्रुका भी विश्वास किया जा सकताहै।८ राजा कामके वशीभूत न हो स्थान वृद्धि और क्षयको,सदा जानेतथासंधि, विग्रह आदिछः गुणोंमें बुद्धि से कामले ।१०। प्रथम स्वयंको फिर अमात्यों को भत्योंको और प्रजाओंको वश में करले तब शत्रुओसे विग्रह करे ।११ जो पहिले आत्मा पर विजय प्राप्त किये बिनाही शत्रुको जीतनेकी इच्छा करे वह राजा अमात्यगणों द्वारा वशमें कर लिया जाता है और शत्रुओंसे पराजित होता है ।१२। हे वत्स ! इसीलिये सर्वप्रथम कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्तकरे, उन्हें जीतनेसे सभी पर विजय मिलती है, जो राजा कामादि के वशीभूत होता है, वह नष्ट हो जाता है ।१३। काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष यही शत्रु राजा के नाश के कारण हैं ।१४।

कामप्रसक्तमात्मानंस्मृत्वापाण्डु ञ्झिपातितम् ।
निवर्त्त येत्तथाक्रोधादनुह्लादंहतात्मजम् ।१५
हतमैलंतथालोभान्मदाद्वे नंद्विजैर्हतम् ।
मानादनायषः पुत्रंहतहर्षात्पुरंजयम् ।१६
एभिर्भितर्जितंसर्वंमरुतेनमहात्मना ।
स्मृत्वाविवर्जयेदेतान्दोषांन्स्वीयान्महीपतिः ।१७
काककोकिलभृगाणांबमृगव्यालशिखडिनाम् ।
हंसकुक्कुटलोहानांशिक्षेत्चरितंनृपः ।१८
कीटकस्यक्रियाकुर्याद्विपक्षे मनुजेश्वरः ।
चेष्टांपिपीलिकानांचकालेभूपः प्रदर्शयेत् ।१९
ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगनांबीजचेष्टाचशाल्मलेः ।
चन्द्रसूर्यस्वरूपेणनीत्यर्थेपृथिवीक्षिताः ।२०

बंधकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीश्तनात् ।
एवंसामेनभेदेनप्रदानेनचपार्थिवः ।२१

कामके वशीभूत होकर ही राजा पान्डु नाश को प्राप्त हुए। क्रोधके वश में होने से अनुह्लाद पुत्र से वंचित रह जाना पड़ा ।१५। लोभ के वशीभूत हुए ऐल राजा नष्ट होगए । मदके वशमें पड़कर वेन ब्राह्मणोंद्वारा नष्टहुए अभिमानके कारण आयुका पुत्रहत हुआ और हर्ष के कारणपुरञ्जयका मरण हुआ।१६।परन्तु राजा मरुतने इन सभी शत्रुओंको जीतकर अखिल विश्वको वशमें कर दिया,इनसब बातों के स्मरण पूर्वक सभीदोषों कापरित्याग करना चाहिये।१७।काक,कोकिल,भौंरा, मुग व्याल-मोर,हंस कुक्कुटओर लोहसे शिक्षालेनी चाहिए ।१८। शत्रुके प्रति उलूक जैसा कोई आडम्बर न करके शत्रुओं को नष्ट करे,क्योंकि शत्रुओंके प्रतिभी उचित व्यवहारकरना चाहिये,पिपीलिकाकेसमान पथारमय संचयकरो।१९।राजा को अग्नि की चिंगारी और शालमबीजकेसमान व्यापक होने वाला होना चाहिए । वह सूर्य और चन्द्रमाके समान राजनीति प्रयोगपूर्वक पृथ्वीको देखने वाला हो ।२०। व्यभिचारिणी, कमल शरभ, भूलिका गुर्विणीस्तन तथा गोपाङ्गना इन सबसे राजा शिक्षा ग्रहण करे ।२१।

दण्डेनचप्रकुर्वीतनीत्यर्थं पृथिवीक्षिता ।
प्रज्ञानृपेणचादेयातथागोपालयोषितः ।२२
शक्रार्कयमसोमानांतद्वद्वायोर्महीपतः ।
रूपाणिपंचकुर्वीतमहीपालनकर्मणि ।२३
यथेंद्रश्चतुरामासान्तोत्सर्गेणभूगम् ।
आप्याययेत्तथालोकंपरिहारैर्महीपतिः ।२४
मासानष्टौयथासूर्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेनतथाशुल्कादिकनृपः ।२५
यथायमः प्रियद्वेष्येप्राप्तकालेनियच्छति ।
तथा प्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टेसमाभवेत् ।२६

पूर्णेन्दुमालोक्ययथाप्रीतिमाञ्जायतेनरः ।
एवंयत्रप्रजा सर्वानिवृत्तास्तच्छशिव्रतम् ।२७
मारुतःसर्वभूतेषुनिगूढ़श्चरतेयथा ।
एवं नृपश्चरेचारंपौरामात्यारिबधुषु ।२८

नीति पूर्वक दण्ड से पृथ्वी का पालन करे, गोपाल स्त्री से बुद्धि प्राप्त करे, क्योंकि वह किसी प्रकार के व्यवहार से विमुख नहीं होती।२२ इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा और वायु के अनुरूप आचरण करके पृथिवीका पालन करे ।२३। जैसे इन्द्र चार मास वृष्टि करके पृथिवी के प्राणियों को तृप्त करते हैं वैसे ही राजा दानादि के द्वारा सबको प्रसन्न करे ।२४ जैसे किरणों के द्वारा सूर्य आठ मास जल का शोषण करते हैं वैसे ही सूक्ष्म रीति से राजा कर आदि ले ।२५। जिस प्रकार यम राज अपने प्रिय अथवा द्वेषी सभी को समान रूप से ग्रहण करते हैं वैसे ही राजा भी समदर्शी हो ।२६। पूर्ण चन्द्रमाको देखकर जैसे सब जीव प्रसन्न होते हैं, वैसे ही राजा के आचरण से प्रजा प्रसन्न रहे ऐसा प्रयत्न करे । जिस प्रकार वायुभूतों में गुप्त रहकर विचरण करता है, वैसे ही गुप्त रीति से राजा भी अमात्य, बाँधव और प्रजाजन के चरित्रादि पर दृष्टि रखें ।२८।

नलोभाद्वानकामाद्वानार्थाद्वायस्यमानमम् ।
यथाऽन्यैंकृष्यतेवात्सराजास्वर्गमृच्छति ।२९
उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलतोनरान् ।
यः करोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति ।३०
वर्णधर्मानसीदंतियस्यराष्ट्रे तथाऽऽश्रमाः ।
वत्सस्तयसुखंप्रेत्यपरत्रेहचशाश्वतम् ।३१
एतद्राज्ञःहरकृत्यंतथैतत्सिद्धिकारणम् ।
स्वधर्मस्थापनंनृणांचाल्यतेयतबुद्धिभिः ।३२
पालनेनैवभूतानांकृतकृत्योमहीपतिः ।
सम्यकपाययिताभागंधर्मस्याप्नोतियत्नतः ।३३

एवमाचरतेराजाचातुर्वर्णस्यरक्षणे ।
समुखीविहगत्येषशक्रस्यैतिसलोकताम् ।३४

जिस राजा का मन लोभ, अर्थ, अथवा अन्य किसी भी कारण से आकृष्ट नहीं होता उसी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।२९। मूढ, कुमार्गी, धर्म से विचलित व्यक्तियों को स्वधर्म पर लाने वाला राजा अवश्य ही स्वर्ग को प्राप्त होता है ।३०। हे पुत्र ! जिनके राज्यों में वर्णाश्रम धर्म नाश को प्राप्त नहीं होते, वह राजा इहलोक-परलोक दोनों में निरन्तर सुख भोगता है ।३१। राजा का कर्त्तव्य है कि वह बुद्धिमानों के परामर्श से सदा कार्य करे और सभी को अपने-अपने धर्म में लगाये रखे, इसी से राजा की सिद्धि होती है ।३२। जिस प्रकार प्रजा का भली प्रकार पालन करने से राजा कृत-कृत्य होता है, वैसे ही उसको धर्मांश की भी प्राप्ति होती है ।३३। इस प्रकार जो राजा चारों वर्णों की रक्षा में नियम पूर्वक लगा रहता है, वह इहलोक में अत्यन्त सुख पूर्वक बिहार करता हुआ अन्त में रुद्र के सालोक्य को प्राप्त होता है ।३४।

२५—वर्णाश्रम धर्म कीर्त्तन

तन्मातुर्वचनंश्रुत्वासोऽलर्कोमातरपुनः ।
पप्रच्छवर्णधर्मांश्चधर्मान्येचाश्रमेषुच ।१
कथतोऽयंमहाभागेराज्यतंत्राश्रितस्त्वया ।
धर्मंतमहमिच्छामिश्रोतुंवर्णाश्रमात्मकम् ।२
दानमध्ययनंयज्ञोब्राह्मणस्यात्रिधामतः ।
धर्मोनान्यश्चतुर्थोऽस्तिधर्मस्तस्यापदविना ।३
याजनाध्यापनेशुद्धेस्तथापूतप्रतिग्रहः ।
एषासम्यक्समाख्यातात्रिविधाचास्यजीविका ।४
दानमध्ययनंयज्ञःक्षत्रियस्याप्ययंत्रिधा ।
धर्मःप्रोक्तः क्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका ।५

दानमध्ययनं यज्ञोवैश्यापित्रिधैवसः ।
वाणिज्यंपाशुपाल्यंचकृषिश्चैवाऽस्यजोविका ।६
दानंयज्ञोऽपशुश्रूषाद्विजातीनांत्रिधामया ।
व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपिजीविकाकारुकर्मजा ।७
तद्वद्द्विजातिशुश्रूषापोषणंक्रयविक्रयैः ।
वर्णधर्मास्त्विमेप्रोक्ताःश्रूयंतांचाश्रमाश्रयाः ।८

पुत्रने कहा–अलर्क जननीके इस प्रकार बचन सुनकर फिर वर्ण धर्म और आश्रम धर्म का विषय पूँछने लगा ।१। अलर्कने कहा-हे महाभागे ? तुमने राजधर्मका तो वर्णन किया किन्तु अब मैं वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म सुनने की इच्छा करता हूँ ।२। मदालसा बोली–हे वत्स ! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मणके धर्म हैं,इनके अतिरिक्त चौथाधर्म और कुछ नहीं हैं अन्य धर्म उसके पक्षमें आपत्तिमें हैं ।३। शुद्धता पूर्वक यज्ञ करना, अध्यापन और पवित्र भावसे प्रतिग्रह यह तीन कर्मही ब्राह्मणोंकी जीविका साधन है ।४। दान यज्ञ और अध्ययन तीन कर्म क्षत्रियों के कर्त्तव्य रूप हैं तथा पृथ्वी पालन और शस्त्राभ्यास इनकी जीविका के साधन हैं ।५। दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन धर्म वैश्योंके हैं तथा पशु-पालन वाणिज्य और खेती यह उसकी जीविका के साधन हैं ।६। शूद्र के कर्म दान यज्ञ और जाति की सेवा करना यह तीन हैं तथा कारु कर्म । ब्राह्मण-सेवा पशुपालन और क्रय-विक्रय उनकी जीविका के साधन हैं, यह वर्णों का धर्म मैंने कहा है, अब आश्रम धर्म श्रवण करो ।७-८।

स्ववर्णधर्मात्ससिद्धिनरःप्राप्नोतिनच्युतः ।
प्रयातिनरकप्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात् ।९
यानत्तुनोपनयंनक्रियतेवैद्विजन्मनः ।
कामचेष्टोक्तिभक्ष्यंश्चतावद्भवतिपुत्रक ।१०
कृतोपनयनःसम्यक्ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे ।
बसेन्तत्रचधर्मोऽस्यकथ्यतेतंनिबाधमे ।११

स्वाश्रूध्यायोऽथाग्निशुसास्नानंभिक्षाटनं तथा ।
गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेनसर्वदा ।१२
गुरोःकर्मणिसोद्योगः सम्यक्प्रत्युपपादनम् ।
तेनाहूतः पठेच्चैवतत्परोनान्यमानसः ।१३
एकंद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्यगुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोऽथवंदित्वादक्षिणांगुरयेतवः ।१४

अपने-अपने कर्म का पालन करनेसे ही सब सिद्धियोंकी प्राप्ति संभव है दूसरी जातिवालेके धर्मपर चलनेसे स्वधर्मकी हानि होतीहै और नरक की प्राप्ति होती है ।९। हे वत्स! द्विजातियाँ जबतक उपनयन संस्कार न हो तभी तक वे स्वेच्छा व्यवहार, आहार और आलापादि में प्रवृत हो सकते हैं ।१०। उपनयन संस्कारके सम्पन्न होनेके पश्चात् ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुके पास, उस समय जिस धर्म का आचरण करना चाहिए उसे सुनो।११। स्वाध्याय, अग्नि सुश्रूषा स्नान, भिक्षाटन करके पहले गुरु को भोजन करावे फिर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे ।१२। गुरुके कार्य में सदैव तत्पर रहना तथा उनके संतोष और आदेश के अनुसार कार्य करना तथा अनन्य चित्त से अध्ययन करना ब्रह्मचारी का परम कर्तव्य है ।१३। गुरु के मुख से एक दो अथवा चारों वेदों को पढ़कर उनकी चरण-वन्दना करे और आज्ञा लेकर दक्षिणा दे ।१४।

गार्हस्थ्याश्रमकामस्तुगृहस्थाश्रमावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रमंवापिचतुर्थंचेच्छयाऽऽमनः ।१५
तथैववागुरोर्गेहेद्विजोनिष्ठामवाप्नुवात् ।
गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतंविना ।१६
शुश्रुषुर्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमंबसेत् ।
उत्पावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ।१७
ततोऽसमानर्षिकुलांतुल्यांभार्यामरोगिणीम् ।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यंगांगृहस्थाश्रमकारणात् ।१८

स्वकर्मणाधनंद्वब्ध्वापितृदेवातिथींस्तथा ।
सम्यक्संप्रीणयन्भक्तयापोषयेच्चाश्रितांस्तथा ।१९
भृत्यात्यजाज्जामयोऽथदीनार्थिपतिताचपि ।
यथाशक्तयाऽन्नदानेनवयांसिपशवस्तथा ।२०
एषधर्मोक्तहस्थस्थस्यऋतावभिगमस्तथा ।
पंचयज्ञविधानंतुयथाशक्तयानहापयेत् ।२१

इसके पश्चात् गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होना चाहे तो विवाह आदि कार्य करे अन्यथा अपनी इच्छा के अनुसार वानप्रस्थ या चतुर्थाश्रम में प्रवेश करे ।१५। अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरु के घर पर ही रहे गुरु न हों तो उनके पुत्र अथवा शिष्य के पास निवास करे ।१६। सदा सेवा-परायण रहे तथा अभिमान को पास न आने दे,इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, अथवा गुरु के घर से निकल कर गृहस्थाश्रम की इच्छा करे तो ।१७। अपने अनुरूप कन्या देखकर उसका पाणिग्रहण करे, वह कन्या समान गोत्र की, रोगी और विकलांगी न हो ।१८। अपने विहित कर्म द्वारा न्याय पूर्वक धन का उपार्जन करे और भक्ति पूर्वक पितर, देवता और अतिथि को तृप्त करनेका प्रयत्न करे तथा आश्रितों का भली प्रकार पालन करे ।१९। भृत्य, पुत्र, दीन, अन्धा, पतित आदिको अपनी शक्ति के अनुसार अन्नादि देकर उनका सदा पोषण करना चाहिये ।२० स्त्री सहवास केवल ऋतुकाल में ही करे, शक्ति के अनुसार पंचयज्ञ करे, यह गृहस्थ का धर्म है ।२१।

पितृदेवा तिथिज्ञातिभुक्तशेषंस्वयं नरः ।
भुंजीतचसमंभृत्यैर्यथाविभवममाहृतः ।२२
एषतूद्देशतः प्रोक्तोगृहस्थस्याऽऽश्रमोमया ।
वानप्रस्थस्यषर्मंतेकययाम्यवधार्यताम् ।२३
अपत्यसंततिंहृष्टवाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ।२४
तत्रारण्योपभोगश्चतपोभिश्चानुमकर्षणम् ।
भूमोशय्याब्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रिया ।२५

होमस्त्रिषवणस्नानंजटावल्कलधारणम् ।
योगाभ्याससदाचैववन्यस्यस्नेहनिषेवणम् ।२६
इत्येषपापशुद्ध्यर्थमात्मत्मंनश्चोपकारकः ।
वानप्रस्थाश्रमस्तस्मद्भिक्षोस्तुचरमोऽपरः ।२७
चतुर्थस्यस्वरूपन्तुश्रूयतामाश्रमस्यमेत् ।
यःस्वधर्मोस्यधर्मज्ञैः प्रोक्तस्मातंमहात्सभिः ।२८

यथा सामर्थ्य पितरों, देवताओं, अतिथियों और जाति वालों को भोजन कराने के पश्चात् भृत्यों के सहित स्वयं उस बचे हुए अन्न का भोजन करे ।२२। यह गृहस्थाश्रम धर्म सक्षित रूप से मैंने कहा है, अब वानप्रस्थ धर्म को कहती हूँ उसे सावधान चित्त से श्रवण करो ।२३। बुद्धिमान पुरुष का कर्तव्य है, कि वह धन संतानादि की सम्पन्नता और अपने शरीर की अवनति को देखकर आत्म शुद्धिके लिये वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करे ।२४। वहाँ फल, मूलादि का आहार करे और तपस्या को आचरण करके आत्मोत्कर्ष का सम्पादन करे, पृथ्वी में शयन, ब्रह्मचर्य-पालन तथा पितर देवता और अतिथि की सेवा ।२५। हवन त्रिकाल संध्याकालमें स्नान, जटा-वल्कलको धारण, मौन, योगाभ्यास तथा स्नेह सेवन पूर्वक रहे ।२६। इस प्रकार पाप के शोधन और आत्मा के उत्कर्ष के लिये वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन करे, इस आश्रम के पश्चात् भिक्षु-नाम का एक अन्य चरम आश्रम है ।२७। हे पुत्र ! इस चतुर्थाश्रम का जो स्वरूप धर्मज्ञाता महात्मा पुरुषों द्वारा निरूपित किया है, उसे कहती हूँ, श्रवण करो ।२८।

सर्वसङ्गपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपिता ।
यनितोन्द्रियत्वमावासेनैकस्मिन्वसतिश्चिम् ।२९
अनारंभस्तथाहारोभिक्षान्नंचैककालिकम् ।
आत्मज्ञानाववोधेच्छा तथा चात्मावलोकनम् ।३०
चतुर्थेत्वाश्रमेधर्मोमयाऽयंतेनिवेदितः ।
सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणांवमेश्रृणु ।३१
सत्यंशौचमहिंसाचअनसूयातथाक्षता ।
आनृशंस्यमकार्पण्यंसंतोषश्चाष्टमोगुणः ।३२

एतेसंक्षेपतःप्रोक्ताधर्मावर्णाश्रषुते ।
ऐतेषुचस्वधर्मेषु स्वेषु तिष्ठेत्समंततः ।३३
यश्चोल्लंध्यस्वकं धर्मस्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ।३४
नरोऽन्यथाप्रवर्तेतसदंडव्योभूतोभवेत् ।
येचस्वधर्मसंत्यागात्पापंकुर्यन्तिमानवा ।३५
उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तप्रणश्यतिः ।
तस्माद्राज्ञाप्रयत्नेनसर्वेवर्णाःस्वधर्मतः ।३६
प्रवर्त्तन्तोऽन्यथादंडयाःस्थाप्याश्चंवस्वकर्मसुः ।३७

सर्व सङ्ग का त्याग करे, क्रोध-रहित इन्द्रिय संयम ब्रह्मचर्य आदि के पालन पूर्वक भ्रमणशील रहे। बहुत दिनों तक एक स्थान में न रहे ।२६। कर्म का विसर्जन, भिक्षा से प्राप्त अन्न का केवल एकबार भोजन आत्मज्ञान की कामना और आत्म दर्शन यह सब चतुर्थाश्रमी को करना चाहिए ।३०। चतुर्थाश्रम में जो धर्मानुष्ठ कर्त्तव्य है, वह तुमसे कह दिया, अब अन्यान्य वर्णाश्रमों के साधारण धर्म को तुमसे कहती हूँ, उसे सुनो ।३१। सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, आनृशस्य, अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सभी वर्णाश्रमों का साधारण धर्म कहा गया है ।३२। इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म का मैंने तुमसे संक्षिप्त वर्णन किया है, सभी को अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने का कर्त्तव्य है ।३३। अपने धर्म में दृढ़ रहने वाला मनुष्य तब तक ब्रह्मलोक में निवास करता है, जब तक कि चौदह द्वन्द्वों का पतन नहीं हो जाता और जो अपने वर्णाश्रम धर्म का उल्लंघन करके ।३४। अन्य के धर्म को ग्रहण करता है, वह राजदण्ड का भागी होता है अथवा जो मनुष्य अपने धर्म को त्याग कर पाप-कर्म करता है ।३५। उसे यदि राजा दण्ड नहीं देता तो वह अपने इष्टापूर्त को नष्ट करता है, इसलिए राजा का कर्त्तव्य है कि वह सभी वर्णों को अपने-अपने धर्म में स्थित करे ।३६। और जो इसके विरुद्ध आचरण करे उसे दण्ड देकर अपने कर्म में लगावे ।३७।

२६—गार्हस्थ्य धर्म निरूपण

यत्कार्यं पुरुषाणंचगार्हस्थ्यमनुवर्त्तताम् ।
बन्धश्चस्यादकरणेक्रियायास्यच्छ्रुतिः ।१
उपकाराययन्नृणांयच्चवर्ज्यंगृहेसताम् ।
यथाचक्रियतेतन्मेयथावत्पृच्छतोवद ।२
वत्सगार्हस्थ्यमादायनरः सर्वमिदंजगत् ।
पुष्णातितेनलोकांश्चसजयत्यमिवांछितान् ।३
पितरोमुनयोदेवाभूतानिमुनुजास्तथा ।
क्रमिकीटपतङ्गाश्चवयांसिपशवोऽसुराः ।४
गृहस्थमुपजीवंतिततस्तृप्तिप्रयांति च ।
मुखंचास्यनिक्षतेआपिनोदास्यतीतिवै ।५
सर्वस्याधारभूतेयं वत्सधेनुस्त्रयीमयी ।
यस्याप्रतिष्ठितविश्वंविश्वहेतुश्चायामता ।६

अलर्क ने कहा—गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष अपने जिस कर्त्तव्य को न करके बन्धन और कर्त्तव्य को करके मोक्ष को प्राप्त होता है ।१। और जो मनुष्यों के उपकार का कारण तथा वर्जन के योग्य कर्त्तव्य है, वह सभी जानने को मैं उत्कण्ठित हूँ मुझे विस्तार सहित वह सब विषय बताओ ।२। मदालसा ने कहा—हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम में स्थित मनुष्य सभी प्राणियों का पालन करता है और उसी पुण्य के बलसे उसे इच्छित लोकों की प्राप्ति होती है ।३। पितर, ऋषि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु, असुर यह सभी गृहस्थाश्रम से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं, इसी आश्रमसे उनकी तृप्ति होती है क्योंकि वे सब अन्न के लिये गृहस्थके सुख को ताकते रहते हैं ।४-५। हे पुत्र ! वेदमयी धेनुके रूप में गृहस्थ ही सबका आश्रम स्थान है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी धेनु में प्रतिष्ठित है क्योंकि यही धेनु ब्रह्माण्ड की कारण रूपी है ।६।

ऋकपृष्ठाऽसौयजुर्मध्यासामवक्त्रशिरोधरा ।
इष्टापूर्तविषाणाचसाधुसृक्ततनूरुहा ।७
शांतिपुष्टिकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठता ।
आजीव्यमानाजगतांसाक्षयानापचीयते ।८
स्वाहाकरस्वधाकारौवषट्कारण्वपुत्रक ।
हंतकारस्तथाचान्यस्तथाचान्यस्तस्थारस्तनचतुष्टयम् ।९

स्वाहाकारंस्तनं देवाः पितरश्चस्वधामयम् ।
मुनयश्चवषट्कारंदेवभूतसुरेतराः ।१०
हतकारं मनुष्याश्चपिवंतितंस्तनम् ।
एवमाप्याययत्येषावत्सधेनुस्त्रयीमयी ।११

एतद्वत्सचतुष्कन्तुनरःस्तनचतुष्टये ।
ननियुज्याद्यथाकाल तेनस्युस्तेविमानिता ।१२
देवादीनखिलान्येषुसन्तर्पयातिमाव ।
तेषामुच्छेदकर्त्ताच योनरोऽत्यतपापकृत् ।१३

इस धेनु की पीठ ऋग्वेद, मध्य यजुर्वेद, मुख सामवेद और ग्रीवा इष्टापूर्त है, साधुसूक्त रोम।७। शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र तथा वर्णाश्रमही प्रतिष्ठाहै।यह धेनुकभी क्षीणनहीं होती,सम्पूर्ण विश्वकी आश्रय रूप होकरजीवन धारण करती हुईभी यहधेन कभी क्षयको प्राप्तनहीं होती ।८। इस धेनु के स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हतकार यह चार स्तन हैं ।९। इन चार स्तनोंमें देवता स्वाहाकार, पितर स्वधाकार, मुनि वषट्कार और इनसे इतर ।१०। मनुष्यगण हतकार रूप स्तनको पीतेहैं। इस प्रकार हे वत्स! यह धेनु ही सबकी तृप्ति को सम्पादित करने वाली है ।११। इन चार स्तनोंको यहचार योनि वाले पाक करते हैं जो यथा समय नियुक्त न हों तो इस धेनु की अवमानना होती है ।१२। जिसके द्वारा मनुष्यगण सब देवता इत्यादि को तृप्ति करने में समर्थं होते हैं, उसके नष्ट करने में प्रयत्नशील व्यक्ति महापापी हैं ।१३

सतमस्यंधतमिस्रे तामिस्रे चनिमज्जति ।
यश्चेमांमानवोधेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥१४
प्रापयत्युचितेकालेसस्वर्गायोप्रपद्यते ।
तस्मात्पुत्रमनुष्येणदेवर्षिपितृमानवाः ॥१५
भूतानिचानुदिवसपोष्याणिस्वतनुर्यथा ।
तस्मात्स्नातःशुचिर्भू त्वादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥१६
प्रजापतेस्तथैवाद्भिःकालेकुर्यात्समाहितः ।
सुमनोगन्धपुष्पैश्चदेवानभ्यर्च्यमानवः ॥१७
ततोऽग्नेस्तर्पणंकुर्याद्देयाश्चबलयस्तथा ।
ब्रह्मणे गृहमध्येतुविश्वेदेवेभ्यएवच ॥१८
धन्वंतरिसमुद्दिश्यप्रागुदीच्यांबलिक्षिपेत् ।
प्राच्यांशक्रायययाम्यांवमायबलिमाहरेत् ॥१९
प्रतीच्यांवरुणायऽथसोमायोत्तरतोबलिम् ।
दद्याद्धोत्रेविधात्रेचबलिंद्वारेगृहस्यतु ॥२०
अर्यम्णेऽथ वहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमंततः ।
नक्तं चरेभ्योभूतेभ्योवलिमाकाशतोहरेत् ।२१

तथा उसे अन्धतामिस्र और तामिस्र नामक नरकोंकी प्राप्ति होती है, इस धेनु के बत्सों को जो मनुष्य यथा समय ।१४। उपर्युक्त प्रकार से स्तन पान करता है, वह देवलोक को जाता है,इसलिए अपनी यथा, शक्ति देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य—।१५। तथा भूतों का शोषण करना चाहिए,इसलिए स्नानसे पवित्र होकर सावधान चित्त से देवता, पितर, ऋषि ।१६। और प्रजापति का उदकदान पूर्वक तर्पण करे यथा चन्दन, गन्ध और धूपादि के द्वारा देवार्चन करे ।१७। फिर अग्नि तर्पण करके वलि प्रदान करे, घर में ब्रह्म और बिश्वेदेवा को ।१८। तथा धन्वन्तरि की पूर्व और उत्तर दिशा में, बलि दे, इन्द्रको पूर्व में, यमको दक्षिण में ।१९। वरुण को पश्चिम में और सोम को उत्तर में बलिदेनी

चाहिए तथा गृह द्वार में धाता और विधाता को बलि दे ।२०। अर्यमा को घर से बाहरी भाग में सब ओरसे बलि दे तथा निशाचर और भूतों के लिए आकाश मार्ग में बलि दे ।२१।

पितृणांनिर्वपेच्चैवदक्षिणाभिमुखः स्थितः ।
गृहस्थस्तत्परेभूत्वासुसमाहितमानसः ॥२२
ततस्तोयमुपादायतेषामामाचमनायवै ।
स्थानेषुनिनिक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवताः ॥२३
एवंगृहबलिंकृत्वागृहेहपतिः शुचिः ।
आप्ययनायभूतानांकुर्यादुसर्गमादरात् ॥२४
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वेश्वदेवंहिनामैतत्सायंप्रातरुदाहृतम् ॥२५
आचम्यचततःकुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् ।
मुहूर्तस्याष्टमंभागमुदीक्ष्योऽथ्यतिथिर्भवेत् ॥२६
अतिथितत्रसेप्राप्तमन्नाद्येनोदकेनचं ।
संपूजयेद्यथाशक्तिगन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥२७

पितरों के निमित्त बलि प्रदान करने के लिए गृहस्थ को दक्षिणकी ओर मुख करके बैठना चाहिए फिर सावधानी से एकाग्रचित्त होकर ।२२। आचमनके लिए जललेकर उस-उस स्थान में उस-उस देवता के निमित्त जल दे ।२३। गृहस्वामी इस प्रकारसे बलिदे और पवित्र भावसे भूतों की तृप्ति के लिए आदरपूर्वक उत्सर्ग कार्य को सम्पन्न करे ।२४। श्वान श्वपच औरपक्षी के लिए भूमिमें बलिदे,यही वैश्वदेव बलि कही गई है । यहबलि प्रातःकाल और सायंकाल देने का विधान हैं ।२५।इस प्रकार गृहस्थ वैश्वदेव बलि देकर आचमन करे और फिर द्वार को देख तथा मुहूर्तके आठवें भाग तक अतिथि की प्रतीक्षा करे ।२६। अतिथिके आगमनपर यथाशक्ति अन्न, जल,गन्ध,पुष्पादिसे उसका सत्कार करें।२७

नमित्रमतिथिंकुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ।
अज्ञातकुलनामानंतत्कालसमुपस्थितम् ॥२८

बुभुक्षुभागतंश्रान्तंयाचमानमकिंचनम् ।
ब्राह्मणप्राहुरतिथिसंपूज्यःशक्तितो बुधैः ॥२९
नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायश्चापिपंडतः ।
शोभनाशोभनाकारतंमन्येतप्रजापतिम् ॥३०
अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।
तस्मिंस्तृप्तेनयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥३१
तस्याअदत्वातुयोभुंक्तेस्वयंकिल्विषभुङ्नरः ।
सपापंकेवलंभुंक्तेपुरीषचान्यजन्मनि ॥३२
अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ।
सदत्वादुष्कृततस्मैपुण्यमादायगच्छति ॥
अप्यंबुशाकदानेनयच्चाप्यन्नातिसस्वयम् ।
पूजयत्तुनरःशक्त्यातेनैवातिथिमादरात् ॥३४
कुर्याच्चाहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच ।
पितृनुद्दिश्यविप्रांश्चभोजयेद्विप्रमेववा ॥३५

अपने मित्र अथवा ग्राममें रहने वाले को अतिथि न माने,जो पुरुष उसी समय आया हुआ हो और जिसका कुल, गोत्र, नाम इत्यादि ज्ञात न हो ।२८। और यथार्थ रूप से भोजन की इच्छा से आया, हो जिसके पास कुछ भी न हो, श्रम से थका हुआ हो, ऐसा ही ब्राह्मण अतिथि कहा गया है, ऐसे ही अतिथि का यथाशक्ति पूजन करे ।२९। बुद्धिमान् गृहस्थ उस अतिथि के गोत्र वेद, स्वाध्याय आदि किसी भी विषय का प्रश्न न करे. वह सुन्दर या कुरूप जैसा भी हो उसे साक्षात् प्रजापति स्वरूप ही समझें ।३०। नित्य न रहने वाले अतिथि को तृप्ति न करने पर गृहस्थ यज्ञ के ऋण से नहीं छूटता ।३१। इसलिए जो गृहस्थ अतिथि को भोजन कराये बिना, स्वयं ही भोजन कर लेताहै वहपापका भोगने वाला होता है, अन्य जन्ममें भोजन के निमित्त विष्ठा की प्राप्ति होती है ।३२। जिस गृहस्थ के घर से जो अतिथि विमुख लौटता है, वह उस गृहस्थके पुण्य को लेकर अपने पापको उसेदे जाता है ।३३।

अतिथिको जल शाकादिजो स्वयं भोजनकरे वह समर्पित करके उसका आदर-सहित पूजन करे।३४। नित्य प्रति अन्न जल आदिके द्वारापितरों के निमित्त श्राद्ध करे और एक अथवा अनेक विद्वान् ब्राह्मणोंको भोजन करावे।३५।

अन्नस्यग्रं तदुयद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत् ।
भिक्षांचयाचितांदद्यात्परिब्रह्माचारिणाम् ॥३६
ग्रासप्रमाणाभिक्षास्यादग्रंग्रासचतुष्टयम् ।
अग्रंचतुर्गुणंप्राहुर्हंतकारंद्विजोत्तमाः ॥३७
भोजन हृतकार वाअग्रंभिक्षामथापिवा ।
अदत्वातुनभोक्तव्यंयथाविभवगात्मनः ॥३८
पूजयित्वाऽतिथनिश्वान्ग्रातीन्बधूस्तथार्थिनः ।
विकलान्वालवृद्धांश्चभोजयेच्चातुरांस्तथा ॥३९
वांछतेक्षुत्परीतात्मायच्चान्योऽन्नमकिचनः ।
कुटुंविनाभोजनीयःसमर्णोविभवेसति ॥४०
श्रीमंतंज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति ।
सीदतायत्कृतंतेननतत्पापससमश्नुते ॥४१
सायंचैवविधिःकार्य.सूर्योढतत्रचातिथिम् ।
पूजयेच्चयथाशक्तिशयनासनभोजनैः ॥४२

अन्नका अग्रभाग तोड़कर ब्राह्मण को दे तथा परिव्राजन और ब्रह्मचारी के याचक होने पर उन्हें भीख दे।३६। एक ग्रासको भिक्षा कहते हैं, चार ग्रास को अग्र और चार चतुष्टय अर्थात् सोलह ग्रास को हन्तकार कहा गया है।३७। यथा वैभव हन्तकार अथघा अग्र और यह भी न बने तो भिक्षा अवश्य दे,इसके बिना कभी भोजन न करे।३८।अतिथि का सत्कार करनेके पश्चात् जाति बन्धु, याचक, विकल, बालक वृद्ध और आतुर इनको भोजन करावे।३९।अन्य कोई अकिंचन व्यक्ति भूखा हो तो उसके द्वारा याचना करने पर उसे भी भोजन दे अथवा जो कुछ बन पड़े वही प्रदान करे।४०। धनवान् होते हुए भी जिसकी जाति दुःखित हो तो उस जाति का मनुष्य विवश होकर जो पाप करता हैं,

उसका पापांश उस धनवान् को प्राप्त होताहै ।४१। संध्या समय में भी इसी विधि को करे और सायंकाल में आने वाले अतिथि की यथाशक्ति आसन शैय्या और भोजनादि द्वारा सन्तुष्ट करे ।४२।

एवमुद्वहतस्तातगार्हस्थ्यंभारमाहितम् ।
स्कन्धेविधातादेवश्चपितरमश्चऋषयः ॥४३
श्रेयोऽभिवर्षिणः सवतथैवायतिथिबांधवा ।
पशुपक्षिगणास्तृप्तायेचान्यैसूक्ष्मकीटकाः ॥४४
गाथाश्चात्रमहाभागस्वयमत्रिरगायतः ।
ताः शृणुष्वमहाभागगृहस्थाश्रमसंस्थिताः ॥४५
देवान्पितृश्चातिथीश्चतद्वत्संपूज्यबांधवान् ।
जामयश्चगुरूंश्चैवगृहस्थोविभवेसति ॥४६
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावतेद्भुवि ।
वैश्वदेवहिनामैतत्कुर्यात्सायंतथादिने ॥४७

हे पुत्र ! इस प्रकार गृहस्थ अपने कन्धे पर रखे हुए गार्हपत्य रूपी भार को वहन करके विधाता, देवता, पितर, महर्षि ।४३। अतिथि, बांधव, पशु, पक्षी कीटादि सभी को प्रसन्न करके अपना कल्याण-साधन करते हैं ।४४। हे महाभाग उस विषय में महर्षि अत्रि ने जो कथा गायी है उस गृहस्थाश्रम वाली कथा को सुनो ।४५। यदि धन हो तो देवता पितर, अतिथि, बन्धु, जाति और गुरु का पूजन करके श्वान, श्वपच और पक्षियों के लिए पृथिवी में अन्न प्रदान करे, इस वैश्वदेव नामक बलि कर्म को पूर्वाह्न और सायंकाल में करे ।४६-४७।

२७-सदाचार वर्णन

एवंपुत्रगृहस्थेनदेवताःपितरस्तथा ।
संपूज्याहव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबांधवाः ॥१
भूतानिभृत्याःसकलाःपशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवोयाचमानाश्चयेचान्येवसतागृहे ॥२

सदाचारवतातातसाधुनागृहमेधिना ।
पापंभुं क्तेसमुल्लंध्यनित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥३
सदाचारमहंश्रोतुमिच्छामिकुलनंदिनि ॥४
यन्कुर्वन्सुखमाप्नोतिपरत्रेहचमानवः ॥५
गृहस्थेनसदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।
नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरस्त्रवा ॥६
यज्ञवानतपांसीहपुरुषस्यनभूतये ।
भवन्तियःसदाचारंसमुल्लंघ्यप्रवर्त्त ते ॥७

मदालसा ने कहा-हे पुत्र! गृहस्थ को सदाचार परायण होकर हव्य कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता अतिथि और बाँधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए ।१। इनके अतिरिक्त भूत, भृत्य-पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक, या जो कोई भी जैसी प्रार्थना करे ।२। उन-उन का वैसे ही सत्कार करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिक क्रियाका उल्लंघन करे तो उसे पाप-भागी होना पड़ता है ।३। अलर्क बोला—हे माता ! तुमने मुझसे नित्य नैमित्तिक आदि पुरुषोचित्त कर्म-विषयका यथा प्रकार वर्णन किया ।४। जिसके अनुष्ठान से मनुष्य इह-लोक और परलोक दोनों में सुखी होता है, उसी सदाचार को सुनने की मेरी इच्छा हुई है ।५। मदालसा ने कहा—गृहस्थ को सदैव ही सदाचार का पालन करना चाहिए, आचारहीन पुरुष को लोकमें कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं ।६-७।

दुराचारोहिपुरुषोनेहायुर्विदंतेमहत् ।
कार्योयत्नःसदाचारेआचारोहत्यलक्षणम् ॥८
तंस्यस्वरूपंवक्ष्यामिसदाचारस्यपुत्रक ।
समाहितमना.श्रुत्वातथैवपरिपालय ॥९
त्रिवर्गसाधनेयत्नःकर्त्तव्योहमेधिना ।
तत्संसिद्धौगृहस्थस्यसिद्धिरत्रपरत्रच ॥१०

पादेनार्थस्यपारत्र्यंकुर्यात्संचयमात्मवान् ।
अर्धेनचात्मभरणंनित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥११
पादंचात्मार्थमायस्यमूलभूतंविवर्द्धयेत् ।
एवमाचरतःपुत्रअर्थःसाफल्यमर्हति ॥१२

तद्वत्पापनिषेर्थाधर्मकार्योविपश्चिता ।
परत्रार्थतथैवान्यःकाम्योऽत्रैवफलप्रदः ॥१३

दुराचार से प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकता, इस लिये सदाचार में ही प्रवृत्त होवे,सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं।८। अब मैं सदाचार के स्वरूप को कहती हूं तुम उसे एकाग्रचित्त से सुनो और तदनुरूप कार्य करो।९। गृहस्थ को त्रिवर्ण साधन में प्रवृत्त होना चाहिए । त्रिवर्णके सिद्ध होनेपर उसे इहलोकऔर परलोक दोनों की सिद्धि होती है।१०। गृहस्थ को उपार्जन किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिए संचित करना चाहिये आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे।११। और शेष भाग की मूल धन के रूप में वृद्धि करे, इस प्रकार के आचरण से ही सफलता है।१२। धन के उपार्जन में जैसा आचरण करे, वैसा पापको नष्ट करने के लिये धन संचय करने में करे, धर्म काम्य और निष्काम भाव से दो प्रकार का है—काम इहलोक में फल-प्रकाश करता है और निष्काम परलोक में फल देता है।१३।

प्रत्यवायभयात्काम्यस्तथान्यश्चान्यचेऽविरोधवान् ।
द्विधाकामोऽपिगदितस्त्रिवर्गस्याऽविरोधतः ॥१४
परस्परानुबंधाश्चसर्वानेतान्निर्विचितयेत् ।
विपरीतानुबंधांश्चधर्मादींस्ताञ्छ्रणुष्वमे ॥१५
धर्मोधर्मानुबन्धार्थोधर्मोनात्मार्थबाधकः ।
उभाभ्यांचद्विधाकामस्तेननौचद्विधातुनः ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येधर्मार्चोमणाऽपिचिंतयेत् ।

उत्थावयाश्यकंकृत्वाकृतशौचः समहितः ।
समुत्थायतथाऽऽचम्यप्राङ्मुखोनियतःशुचिः ॥१८
पूर्वासंध्यामनक्षत्रांपश्चिमांसदिवाकराम् ।
उपासीतयथान्यायंनैनांजह्यादनापदि ॥१९
असत्प्रलापमनृतंवाक्पारुष्यंचवर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवांचपुत्रक ॥२०
सायंप्रातस्तथाहोमंकुर्वीतनियतात्मवान् ।
नोदयास्तमनेविंवमुदीक्षेतविवस्वतः ॥२१

विघ्न तथा भय होने से काम्य और निष्काम दोनों धर्मों को करे, करे, त्रिवर्ग भेद से काम्य भी दो प्रकार का है ।१४। धर्म,अर्थ,काम यह त्रिबर्ग परस्पर बँधे हुए हैं,वैसीही उन्हें परस्पर बंधन-रहित भी समझे, अब मैं इनके अनुबन्धादि का वर्णन करती हूँ ।१५। धर्म तथा अधर्म के अनुबन्ध के लिए वह धर्म आत्मा को बाधा नहीं पहुँचाता, जैसे कामदो प्रकार का है वैसे ही काम के द्वारा धर्म और अर्थ को भी दो भागों में विभक्त समझो ।१६। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर गृहस्थ को धर्म अर्थ, का चिन्तन करना चाहिए ।१७। फिर शय्या से उठकर आचमन करे और नियत तथा पवित्र भाव से पूर्वाभिमुख बैठे ।१८। और नक्षत्रोंके स्थित रहते हुए ही संध्या करे,इसी प्रकार सायंकालीन संध्या भी सूर्यके स्थिय रहने में ही करे, आपत्तिकाल को छोड़कर नित्य संध्योपासन विधि सहित करना चाहिए ।१९। असत् मिथ्या और कठोर वचनों का त्याग करे तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा का भी परित्याग कर दे ।२०। नियतात्मा होकर प्रातः सांय हवन करे, सूर्यके उदय और अस्तकाल में सूर्य विम्ब को न देखे ।२१।

केशप्रसाधनादर्शदर्शनंदंतधावनम् ।
पूर्वाह्णएवकार्याणितदेवतानांचतर्पणम् ॥२२
ग्रामावसथतीर्थानांक्षेत्राणांचैववर्त्मनि ।
विण्मूत्रमनुतिष्ठेतनकृष्टेनचगोव्रजे ॥२३

नग्नांपरस्त्रियंनेक्षेन्नपश्येदात्मनः शकृत् ।
उदक्यादर्शनं स्पर्शोवर्ज्यंसम्भाषणन्तथा ॥२४
नाप्सूत्रंपुरिषंवामैथुनंवासमाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छन्कृन्मूत्र केशभस्मकपालिकाः ॥२५
तुषांगारास्थिशीर्णानिरज्जीवस्त्रादिकानि च ।
नाधितिष्ठेत्तथाप्राज्ञः पथिपत्राणिवाभुवि ॥२६
पितृदेवमनुष्याणां भूतानांचतथार्चनम् ।
कृत्वाविभउवतः पश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति ॥२७
उदङ् मुखोप्राङ् मुखोवाऽपिस्वाचांतोवाग्यतःशुचिः ।
भूञ्नीतान्नं चतच्चित्तोह्यऽन्तर्जानुः सदानरः ॥२८

केशविन्यास, दन्तधावन दर्पण में सम्मुख दर्शन और देव तर्पण कार्य पूर्वाह्न में करे ।२२। ग्राम, निवास, तीर्थ क्षेत्र, मार्ग, जूता खेत गौओं के स्थान में मल,मूत्रका त्याग न करे ।२३। पर नारी को नङ्गी न देखे, अपने मल को न देखे, ऋतुमयी स्त्री को देखना, स्पर्श करना या उससे वार्तालाप करना अनुचित है ।२४। जल में मल-मूत्र का त्याग और मैथुन कर्म न करे । मल-मूत्रवाल, भस्मवपालतुभ, अङ्गार, अस्थि, रजो वस्त्रादि मार्ग की मिट्टी के ऊपर कभी न बैठे ।२५-२६। अपने पित्तानुसा सर्व प्रथम पितर देवता, मनुष्य, भूत आदि का पूजन कर फिर स्वयं भोजन करे ।१७। आचमन के अन्तमें बाणी, सयम पवित्रता और अन्तर्जानु से पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर एकाग्र चित्त से भोजन करे ।२८।

उपघ्रातामृतेदोषंनान्यस्योदीरयेद्बुधः ।
प्रत्यक्ष लवणंवर्ज्यमन्नमत्युष्णमेय च ॥२९
नगच्छन्नचतिष्ठन्वैविण्मूत्रोत्सर्गमात्मावान् ।
कुर्वीतनैवचाचामन्यकिञ्चिदपिभक्षयेत् ॥३०
उच्छिष्टोनालपेत्किचित्स्वाध्यायंचविवर्जयेत् ।
गौब्राह्मणंतथाचाग्निस्वमूर्धान्नवनस्पृशेत् ॥३१

नचपश्येद्रविंनेन्दुं ननक्षत्राणिकामत् ।
भिन्नासनंतथाशय्याभाजनंचविवर्जयेत् ॥३२

गुरुणामासनंदेयमध्युत्थानादिसत्कृतम् ।
अनुकूलंतथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥३३

तथानुगमनंकुर्यात्प्रतिकूलंनसंजपेत् ।
नैकवस्त्रंश्चभुञ्जीतनकुर्याद्देवतार्चनम् ॥३४
नावाहयेद्द्विजान्नाग्नौमेहंकुर्वीतबुद्धिमान् ।
स्नायोतननरोग्नोनशयीतकदाचन ॥३५

किसी प्रकारका अनिष्ट या उत्तेजन करने वाले व्यक्ति के दोषोंको न खोले,अधिक नमकया अत्यन्त गरम अन्नका भोजन न करे।२९।चलते हुए या बैठेहुए मल-मूत्र का त्याग न करे,आचमन करके फिर किञ्चित भी अन्न न खाये।३०। उच्छिष्ट देह से किसी से बात न करे तथा इस अवस्था में वेदाध्ययन न करे तथा गो, ब्राह्मणअग्नि और अपने मस्तका स्पर्श न करे।३१। उच्छिष्ट देह से सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्र का दर्शनभी स्वेच्छा से न करें। टूटे आसन, टूटी शय्या और टूटे पात्र को त्याग दे।३२। गुरुको देखकर उठकर खड़े होने इत्यादिसे सत्कारपूर्वक आसन दे प्रणाम करके अनुकूल वार्तालाप करें।३३। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे,एकही वस्त्र से भोजन और देव पूजन न करें।३४। द्विजाति की निन्दा न करे, अग्नि में मूत्रादि न छोड़े, नग्न होकर स्नान अथवा शयन न करें।३५।

नपाणिभ्यामुभाभ्यांचकण्डूयेतशिरस्तथा ।
नचाभीक्ष्णंशिरःस्नानं कार्यंनिष्कारणंनरैः ॥३६
शिरःस्नातश्चतैलेननाङ्गं ङ्किञ्चिदपिस्पृशेत् ।
अनध्यायेषुसर्वेषुस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥३७
ब्राह्मणानिलगोसूर्यान्नमेहेतकदाचन ।
उदङ्मुखोदिवारात्रावत्सर्गंदक्षिणामुखः ॥३८

आबाधासुयकथाकामंकुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ।
दुष्कृतंनगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धचैनं प्रसादयेत् ॥३६
परिवादंनशृणुयादन्येषामपिकुर्वताम् ।
पन्थादेयोब्राह्मणानांराज्ञोदुःखातुररस्यच ॥४०
विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयसः ।
मूकान्धवधिराणांचमत्तस्योन्मत्तकस्य च ॥४१
पुंश्चल्याः कृतवैरस्तवायस्यपतितस्य च ।
देवालयंचैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम् ॥४२
विद्याधिकंगुरुंदेवंबुधःकुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत् ॥४३

दोनों हाथों से मस्तक न खुजावे, अकारण स्नान तथा सदैव शिर से स्मान न करे।३६। शिर से करने के अन्त में किसी अङ्ग में तेल न लगावे, अनध्याय के दिनों में वेदाध्ययन को न करे।३७। गो ब्राह्मण, सूर्य और अग्नि के सामने मल मूत्र का त्याग न करे, दिन में उत्तर की ओर मुख करके तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके।३८। निर्विघ्न स्थान में मल मूत्र का त्याग करे, गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे।३९। यदि कोई अन्य उनकी मिथ्या निन्दा करे तो उसे न सुने,ब्राह्मण, राजा दुःख से आतुर।४०। अपने से विद्वान्, गर्भिणी नारी, भयातुर, युवक, गूगा, अन्धा, बहरा, मत्ता, उन्मत्ता।४१। पुंश्चली, बैरी बालक और पतित इनको मार्ग देवालय, चैत्य, चौराहा।४२। अपने से अधिक विद्या वाला, गुरु, देवता तथा बुद्धिमान की परिक्रमा करे, किसी के पहिने हुए जूता, वस्त्र और माला आदि को धारण न करें।४३।

उपवीतमलङ्कारंस्रंरचिववर्चयेत् ।
प्रशस्तानिचकर्माणिकुर्वाणादीर्घजीवनः ॥४४
चतुर्दश्यांतथाऽष्टम्यांपञ्चदश्यांचपर्वसु ।
तैलाभ्यङ्गंतथाभोगंयोषितंचविवर्जयेत् ॥४५

नक्षिप्तपादजंघश्चप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ।
नवापिविक्षिपेत्पादौपादंपादेननाक्रमेत् ॥४६
मर्माभिघातमाक्रोशंपैशुन्यंचविवर्जयेत् ।
दम्भाभिमानतीक्ष्णानिनकुर्वीतविचक्षण: ॥४७
मूर्खोन्मद्यव्यसतिनोविरूपान्मायिनस्तथा ।
न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्चनोपहासैर्विदूषयेत् ॥४८
परस्यदण्डंनोद्यच्छेच्छिक्षार्थंपुत्रशिष्ययो: ।
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञापादेनाऽऽक्रम्यचासनम् ॥४९

दूसरे का पहिना हुआ जनेऊ, विभूषण और कमण्डलु ग्रहण न करे, जो प्रशस्त कर्म करता है। वही दीर्घजीवी होता है ।४४। चौदश, पन्द्रस, अष्टमी और पर्व दिवसमें तेल न मले तथा स्त्री सङ्गभी न करे ।४५। पैर या जाँघ फैलाकर न बैठे, पैर पर पैर मारना और लात मारना भी अनुचित है ।४६। किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे चुगली न करे दम्भ अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड़ दे ।४७। मूर्ख उन्मत्त दु:खी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिकांग की हँसी उड़ाकर न छेड़े, दूसरे के प्रति दण्ड को प्रयोग न करे, परन्तु पुत्र या शिष्य को उपदेश देने के लिये आवश्यक हो तो दण्ड का प्रयोग करे ।४८। पांवों से आक्रमण करता हुआ आसन पर न बैठे उदर पूर्ति के लिए भोजन करे ।४९।

सायंप्रातश्चमोक्तव्यंकृत्वाचातिथिपूजनम् ।
उदङ्मुखोप्राङ्मुखोवापिवाग्यतोदन्तधावनम् ॥५०
कुर्वीतसततंवत्सवर्जयेद्वर्ज्यंवीरुध: ।
नोदक्छिरा:स्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिरानर: ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीताऽयपुरन्दरम् ।
नोदक्छिरा:स्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिरानर: ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीताऽयपुरन्दरम् ।
नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि ॥५२
उपरागेपरंस्नानमृतेदिनमुदाहृतम् ।
अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभि: ॥५३

नचापिधूनयेत्केशान्वाससीनचधूनयेत् ।
नानुलेपनामादत्तादस्नातः कर्हिचिद्बुधः ॥५४
नचापिरक्तवासाःस्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ।
नचकुर्याद्विपर्याद्विपर्यासवाससोर्नाविभूषणे ॥५५

प्रातः सायं अतिथि का पूजन करके स्वयं भोजन करे तथा वाणी को रोककर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ कर दातुन करे ।५०। वर्जित काष्ठादि का दातुन में प्रयोग न करें, उत्तर अथवा पश्चिम को शिर करके न सोवे ।५१। दक्षिण या पूर्व की ओर शिर करके सोवे, दुर्गन्धित जल अथवा रात्रि के समय स्नान न करें ।५२। रात्रि स्नान ग्रहण काल में ही करे, स्नान के पश्चात् वस्त्र या हाथ से शरीर का मार्जन न करे ।५३। गीले केश या गीले वस्त्र को न फटकारे, बिना स्नान किए चन्दनादि धारण न करे ।५४। लाल, काले या चित्रित वस्त्र न पहिने, उत्तरीय वस्त्र या भूषण आदि को बिपरीत ढङ्ग से न पहिने ।५५।

वर्जयेवविशंवस्त्रमत्यन्तोपहपंचयत् ।
केशकीटावपन्नं चक्षणश्वभिरवेक्षितम् ॥५६
अवलीढावपन्नंचसारोद्धारणदूषितम् ॥५७
नभक्षयीतसततंप्रत्यक्षलवणानि च ।
वर्ज्यंचिरोषितंपुत्रभुक्तंपर्युषितंचयत् ॥५८
पिष्टशाकेक्षुपयसाँविकारान्नृपनन्दन ॥५९
उदयास्त नेभानोःशयनंचविवर्जयेत् ।
नास्नातोनैवसविष्टोनचैवान्यमनानरः ॥६०
नचैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टोनशब्दवत् ।
नचैकवस्त्रोनवदन्प्रक्षतामप्रदायच ॥६१
भुंजीतपुरुषःस्नातःसातप्रातर्यथाविधि ।
परदारानगन्तव्याःपुरुषेणविपश्चिता ॥६२
इष्टापूर्त्तायुषांहन्त्रीपदारगतिर्नृणाम् ।
नहीदृशमनायुष्यंलोकेकिंचनविद्यते ॥६३

यादृशंपुरुषस्येहपरदाराभिमर्शणम् ।
देवार्चनाग्निकार्याणितथागुर्वभिवादनम् ॥६४

दशाशून्य जीर्ण एवं छिन्न वस्त्रों का सर्वथा त्याग करें बालू या कीड़े से युक्त श्वान द्वारा देखा हुआ।५६। अथवा चाटा हुआ या सार निकाला हुआ अन्न ।५७। तथा प्रत्यक्ष रूपसे नमक कभी न खाय बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा बासी अन्न का भोजन न करें ।५८। हे पुत्र! पिट्ठी, शाक, ईख और दूध के विकार को त्याग दे ।५९। सूर्योदय या सूर्यास्त के समय न सोवे अथवा दूसरी ओर मन लगाकर भी शयन न करे।६० शय्या में या मृत्तिका में 'हा' कहकर न बैठे उत्तरीय उतारकर एक वस्त्र से भोजन न करे, बात करते हुए भी भोजन न करे, जो सामने बैठा हो उसे खिलाये बिना स्वयं न खाय ।६१। प्रातः सायं विधि सहित स्नान करके ही भोजन करे, परनारी गमन कभी न करे ।६२। क्योंकि परनारी गमन से इष्टापूर्त्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है, इस लोक में इस पाप के समान कोई पाप नहीं है। देव-पूजन अग्नि कार्य और गुरुजनों के प्रणाम ये सदा कर्तव्य हैं ।६३।६४।

कुर्वीतसम्यगाचम्यतद्वन्नभुजिक्रियाम् ।
अफेनाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६५
आचामेत्पुत्रपुण्याभिःप्राङ्मुखोऽपिवोदङ्मुखो ॥६६
कृतशौचावशिष्टाच्चवर्जयेत्पञ्चवंमृदः ।
प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युसमाहितः ॥६७
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वापिबेदपः ।
परिमृज्यद्विरास्यान्तंखानिमूर्धानमेवच ॥६८
सम्यगाचम्यतोयेनक्रियाकुर्वीतवैशुचिः ।
देवतानामृषीणांचपितृणांचपितृणांचैवयत्नतः ॥६९
समाहितमनाभूत्वाकुर्वीतसततंनरः ।
क्षुत्वांनिष्ठीव्यवासश्चपरिधायाचमेद्बुधः ॥७०

भली प्रकार आचमन करके अन्न भोजन कार्य को सम्पूर्ण करे।

फेन रहित, गन्ध रहित स्वच्छ और पवित्र जल लेकर।६५। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर आचमन करे, जल के भीतर की, निवास गृह की, वांबी की चूहे के बिल की।६६। तथा शौच क्रिया से बची हुई मिट्टी को न ले, एकाग्र मन से हाथ पांव धोकर शौच करें।६७। दोनों जानु समेट कर बैठे तीन बार जलपान रहित आचमन करे दो बार मुख के इधर-उधर तथा मुख में दो बार मस्तक और इन्द्रियों द्वार को मांजते हुए।६८। भले प्रकार आचमन करके क्रिया का अनुष्ठान करके तथा सदैव एकाग्र मन से देव, ऋषि और पितरों का।६९। कार्य हिच कियां खखार के पश्चात् आचमन करना चाहिए और वस्त्र पहिनने के पश्चात् भी आचमन करना उचित है।७०।

क्षतेऽवलीढेवान्तेचतथानिष्ठीवनादिषु ।
कुर्यादाचमनंस्पर्शंगोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥७१
कुर्वातालम्बनंचापिदक्षिणश्रवणस्यवै ।
यथाभिवतोह्येतत्पूर्वाभावेततः परम् ॥७२
अविद्यमानेपूर्वोक्तेउत्तरप्राप्तिरिष्यते ।
नकुर्याद्दिन्तसंघर्षनात्मनोदेहताडनम् ॥७३
स्वप्नाध्वयनभोज्यानिसंध्ययेश्चविवर्जयेत् ।
सन्ध्यायांमैथुनंचाऽपितथाप्रस्थनमेव च ॥७४
पूर्वान्हेतातदेवानांमनुष्याणांचमध्यमे ।
भक्तयापराह्णेचकुर्वीतपितृपूजनम् ॥७५
शिरःस्नातश्चकुर्वीतदैवंपैत्र्यमथापिवा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिश्मश्रुकर्मचकारयेत् ॥७६
व्यङ्गिनींवर्जयेत्कन्यांअकुलांमपिरोगिणीम् ।
विकृतांपिंगलां चैववाचालांसर्वंदूषिताम् ॥७७

छींक, वमन, निष्ठीन अथवा किसी वस्तु के चाटने पर भी आचमन करे, गोपृष्ठक अवलोकन या सूर्य का दर्शन ।७१। अथवा दक्षिण श्रोत्र का स्पर्श करे। उसमें क्रमशः पहिले के अभाव में दूसरे को करे ।७२। क्योंकि पहिले का अभाव होने पर दूसरे का ग्रहण ही श्रेष्ठ कहा है। दांत से दांत को न घिसे तथा अपने शरीर का ताड़न न करे।७३।

प्रातः सन्ध्या या सायं सन्ध्या के समय शयन, अध्ययन और भोजन न करे सन्ध्याकाल में मैथून अथवा प्रस्थान का निषेध है।७४। पूर्वाह्नमें देवताओं का मध्याह्नमें मनुष्यों का एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे।७५। शिर से स्नान करके पितरों या देवताओं के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर क्षौर कर्म न करावे।७६। रोहिणी, विकलांगी, पिंगल वर्ण वाली, वाचाल अथवा दूषित कन्या चाहे सद्वंश में ही उत्पन्न क्यों न हुई हो, उसे ग्रहण न करे।७७।

अध्यंगींसौम्यनासान्यसर्वलक्षणलक्षिताम् ।
तादृशीमुद्वहेत्कन्यांश्चय:कामोनर: सदा: ॥७८
उद्वहेत्पितृमातृश्चसप्तमीपञ्चमीतथा ।
रक्षेद्दारान्त्यजेयेदीर्षादिवाचस्वप्नमैथुने ॥७९
परोपतापकंकर्मजन्तुपीडांचवर्जयेत् ।
उदक्या: सर्ववर्णानांवर्ज्यारात्रिचतुष्टयम् ॥८०
स्त्रीजन्मपरिहारार्थंपंचमीमपिवर्जयेत् ।
तत:षष्ठ्यांव्रजेद्रात्र्यांश्रेष्ठायुग्मासुपुत्रक ॥८१
पर्वाणिवर्जयेन्नित्यंऋतुकालेऽपियोषित: ।
यस्मान्नित्यंन्नरोगच्छेच्छेषयुग्मासुपुत्रक ॥८२
युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीसविशेतसदानर: ॥८३

कल्याण के इच्छुक पुरुष को सर्वाङ्गपूर्ण, सुघड़ नासिका एवं सब सुलक्षणों से युक्त कन्या से विवाह करना चाहिए।७८। पिता या माता की जात अथवा पाँच पीड़ी छोडकर ही परस्पर विवाह करे पुरुष का कर्तव्य है कि स्त्री की रक्षा करे और ईर्ष्या का त्याग करे दिनमें शयन या मैथुन न करे।७९। दूसरों को सन्ताप देने वाले या प्राणियों को क्लेशप्रद कार्यों को न करे सभी वर्णों को ऋतुमयी स्त्री का चार दिन संग त्याग करना चाहिए।८०। जो पुरुष कन्या का जन्म नहीं चाहता वह पाँचवी रात छोड़कर छटवीं रात में स्त्री संग करे, क्योंकि इसके लिए युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गयी है।८१।

ऋतुकाल के दिन चौदस, अमावश, अथवा अष्टमी संक्रान्ति काल में नारी समागम न करे ।८२। युग्म रात्रिके समागम से पुत्र अयुग्म रात्रि समागम से कन्या की उत्पत्ति होती है, इसलिए पुत्रेच्छुकों को युग्म-रात्रि में सङ्ग करना चाहिए ।८३।

विधर्मिणोऽन्हिपूर्वाह्ये संध्याकालेचषडका: ।
क्षुरकर्मणिवान्तेचस्त्रीयं भोगेचपुत्रक ॥८४
स्नायीतचैलवान्प्राज्ञ: कटभूमिमुतेत्यच ।
देवदेद्विजातीनांसानुसत्यमहात्मनाम् ॥८५
गुरो: पतिव्रतानांचतथायवितपस्विनाम् ।
परिवादंनकुर्वीतपरिहासचपुत्रक ॥८६
कुर्वतामविनीतानां नश्रोतव्यं कथंचन ।
देवपित्र्यातिथेयाश्चक्रिया:कुर्वी विबुध: ॥८७
स्वाध्यायंचापिकुर्वीतयथाशकत्याह्यतन्द्रित: ।
नोत्कृष्टशय्यासनयोन्नापकृष्टस्यचारुहेत् ॥८८
नचामङ्गल्येवेष: स्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत् ।
धवलाम्बरसंवीत: सितपुष्पविभूषित: ॥८९
नोद्धतोन्मत्तमूढेश्चनाविनीतैश्चपण्डित: ।
गच्छेन्मैत्रींनचाशीलैर्नचचौर्यादिदषित: ॥९०
नचातियशीलैश्चनलुब्धैर्नाऽपिर्वैरिभि: ।
नानृतकैस्तथाक्रूरै: सहासीतकदाचन ।
नबन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥९१
सार्द्धं न्बलिभि: कुर्यान्निचन्ययूनैर्ननिन्दितै: ।
नसर्वंशङ्किभिर्नित्यंनचदैवपरैर्नरै: ॥९२

पूर्वाह्न में नारी सङ्ग से विधर्मी और सायंकाल में संग करने में नपुंसक पुत्र की उत्पत्ति होती है। क्षौर कर्म, वमन और स्त्रीसङ्ग के पश्चात् ।८४। तथा श्मशान भूमि में जाने पर वस्त्र सहित स्नान करे।

देवता वेद ब्राह्मण सत्य निष्ठ-महात्मा ।८५। गुरुजन, पतिव्रता,यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हँसी न उड़ावे ।८६। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे देवता,पितर और अतिथि का पूजन सदा करे ।८७। सावधान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न मनुष्य की शय्या अथवा आसन पर न बैठे ।८८। अमङ्गल वेश न धरे, अमङ्गल वचन न कहे, श्वेत वस्त्र और सित पुष्प धारण करे ।८९। उद्धत, उन्मत, मूर्ख, विनय-रहित और कर्म से दूषित ।९०। अपरिमित व्यय करने वाला, लुब्ध, शिशु, व्यभिचारिणी का पति ।९१। नीचाशय निन्दित सदा शङ्का युक्त, इनके साथ कभी मित्रता न करे ।९२।

कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रीसदाचारावलम्बिभिः ।
प्राज्ञै रपिशुनैः शक्तै कर्मण्युद्योगभागिभिः ।।९३
वेदविद्याव्रतस्नातैः महासीतससदाबुधः ।
यथाविभवतः पुत्रद्विजान्सं वत्सरोषितान् ।।९४
अर्चयेन्मधूपर्केणयथाकालमतन्द्रितः ।.९५
तिष्ठेच्चशासनेतेषांश्रेयस्कामोतमः ।
नचतान्विवदेद्धीमानाक्रूष्टश्चापितैः सदा ।।९६
सम्यग्गृहार्चन कृत्वायथास्थानमनुक्रमात् ।
सम्पूजयेततोदग्निंदद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ।।९७

सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान् उद्योगी को मित्र बनावे।९३। वेदज्ञानसे युक्त,विद्वान्,व्रत परायण और स्नातक का सङ्ग करे ।९४। हे पुत्र! उपर्युक्त छःजनों के आगमनपर यदिवे संवत्सर के व्यतीत होने पर आवें तो मधुपर्क से उनका पूजन करे ।९५। यदि कल्याण चाहे तो उनकी, आज्ञा का पालन करे और उनके द्वारा क्रोध व्यक्त करने पर भी उनसे विवाद न करे ।९६। भले प्रकार गृह पूजन करके अग्नि का पूजन करे और आहुति दे ।९७।

प्रथमांब्रह्मणेदद्यात्प्रजानांपतयेततः।
तृतीयांचवगुह्येभ्यः कश्यपायतथापराम् ॥६८
ततोऽनुमतयेदत्वादद्याद्गृहबलिन्ततः।
पूर्वंख्यातंमयायतेनित्यमंक्रियाविधौ ॥६६
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्विलयस्तत्रमेश्शृणु ।
यथास्थनाविभागंतुदेवानुद्दिश्यवैपृ क् ॥१००
पर्जंजन्यद्भ्योधरित्र्यै चदद्याच्चमणिकेत्रयम् ।
ततोधातुर्विधातुश्चदद्याद्द्वारेगृहस्यतु ।
वायवेचप्रतिदिशदिग्भ्यःक्रमात् ॥१०१
ब्रह्मणेचान्तरीतक्षायसूर्यायचतथाक्रमम् ।
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योविश्व भूतेभ्य एदच ॥१०२
उषसेभूतपतयेदद्याच्चोत्तरतस्ततः।
स्वधान्नमइतीत्युक्त्वापितृभ्यश्चाऽपिदक्षिणे ॥१०३
कृत्वाऽपसव्यंवायव्यां यक्ष्मंतत्तेतिभाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छत्वैतोयंदद्याद्याथाविधि ॥१०४
ततोऽन्नाग्रं समुद्धृत्याहन्तकारोपकल्पनम् ।
यथाविधि याथान्याया ब्रह्मणायोपपादयेत् ॥१०५

प्रथम आहुति ब्रह्माजीके निमित्त,दूसरी आहुति प्रजापतिकी तीसरी गुह्यकगणको और चौथी आहुति कश्यप को ।६८। फिर पांचवी आहुति अनुमति के उद्देश्य से दे और फिर जिस नित्य कर्मका वर्णन किया जा चुकाहै,उसीके अनुसार गृहबलि प्रदान करे।६६। फिर वैश्वदेव को बलि प्रदान करे उसके नियम यह हैं कि स्थानविभागके अनुसार देवताओं के लिए पृथक्बलि प्रदान करे ।१००।फिरपर्जंन्य अन्नऔर पृथिवी को तीन बलि तथा वायुको भी बलि दे तथा पूर्वादिके क्रम से प्रत्येक दिशा में बलि दे ।१०१। फिर उत्तर दिशा में ब्रह्मा अन्तरिक्ष में सूर्य, विश्वेदेवा व विश्व भूतगण ।१०२। उषा और भूतपति के निमित्त बलि देकर स्वधा नमः उच्चारण करके दक्षिणा में पितरों के लिए बलि दे ।१०३।

फिर अन्नावशेष की कामना करे और अपसस्य होकर मैं 'यक्ष्मैतत्ता' इत्यादि मन्त्र पढ़कर जलाधार से जल लेकर विधिवत् जल दे ।१०४। फिर अन्न के अग्र भाग को तोड़े और हस्तकारकी कल्पना कर ब्राह्मण को ब्राह्मण की कल्पना कर ब्राह्मण को दे ।१०५।

कुर्यात्कर्माणितीर्थेनस्वेनयथाविधि ।
देवादीनांतथाकुर्याद्‌ब्राह्मेणाऽऽचमनक्रियाम् ॥१०६
अंगुष्ठोत्तरतोरेखापाणेयदक्षिणस्यतु ।
एतद्‌ब्राह्ममितिख्यातंतीर्थमाचमनायवै ॥१०७
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पैत्रयंतीर्थमुदाहृतम् ।
पित्रणांतेनतीयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते ॥१०८
अंगुल्यग्रे तथादैवंतेनदिव्यक्रियाविधिः ।
तीर्थकनिष्ठकामलेकायंतेनप्रजापतेः ॥१०९
एवमेभिः सदातीर्थेदेवानांपितृसिः सह ।
सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित् ॥११०
ब्राह्मेणाचमनं शस्तंपित्र्यं पैध्येणसर्वदा ।
देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यं निजेनच ॥१११
नान्दीमुखानांकुर्वीतप्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येनतीर्थेनयच्चकिंचित्प्रजापतेः ॥११२

फिर स्वीय तीर्थ योग में विधान के अनुसार कर्मकरे और देवतादि के निमित्त ब्राह्मतीर्थ द्वारा आचमन करे ।१०६। दक्षिण हाथ के अंगुष्ठ की उत्तर दिशा में जो रेखा है, वही ब्राह्मतीर्थ है, इसी तीर्थ के द्वारा आचमन का विधान है ।१०७। तर्जनी और अगूंठा मध्य स्थल पित्रतीर्थ है, नान्दीमुखी के अतिरिक्त अन्यान्य सब क्रियाओं में पितरों के निमित्त इसी पितृतीर्थ से जलादि दे ।१०८। अंगुली के अग्रभाग में देवतीर्थ हैं, उसी के द्वारा देवक्रिया की विधि का समापन करे कनिष्ठा के मूल में काय नामक तीर्थ हैं उसके द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिए ।१०९।इस प्रकार इन सब तीर्थों द्वारा सदैव देवता और पितरों की क्रिया करे, अन्य तीर्थ के द्वारा कभी न करे ।११०। ब्रह्मतीर्थ द्वारा

ही आचमन करने का विधान है, पितृ तीर्थ द्वारा पितृकार्य, देवतीर्थ द्वारा देवकार्य और कार्यतीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिए ।१११। जिस प्रकार कायतीर्थ अर्थात् प्राजापत्य जीव द्वारा प्रजापति के कार्य करने का विधान है, उसी प्रकार कार्यतीर्थ द्वारा ही नन्दीमुख पिण्डोदक कर्म करना चाहिए ।११२।

युगपज्जलमग्निंचविभृयान्नविचक्षणः ।
गुरुदेवान्प्रतितथानचपादौप्रसारयेत् ॥११३
नाचक्षीतधयन्तीगांजलनाञ्जलिनापिवेत् ।
शौचकालेषुसर्वेषुगुरुष्वल्षुवापुनः ॥११४
नविलबेम्तूशौचार्थंनमुखेनानलधमेत् ।
तत्रपुत्रनवस्तव्वं यत्रनास्तितुष्टयम् ॥११५
ऋणप्रदाता वैद्यश्चश्रोत्रियः सजलादी ।
जितामित्रोनृपोयत्रवलवाधर्म तत्परः ॥११६
तत्रनित्यंवसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपती सुखम् ।
यत्राप्रधृष्योनृपतिर्यत्रसस्यवतोमही ॥११७
पौराः सुसंयतायत्रसततंन्याायवर्तिनः ।
यत्रामत्सरिलोकास्तत्रवासः सुखोदयः ॥११८
यस्मिन्कृषीवलाराष्ट्रे प्रायशोनातिभोतिनः ।
यत्रौपधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षणः ॥११९
तत्रपुत्रनवस्तव्यंयत्रैतत्त्रितयंसदा ।
जिगोषु पूर्ववैरश्चनश्चसततोत्सवः ॥१२०
वसेन्नित्यं सुशीलेषुसहवासिषुमण्डितः ।
इत्येतत्कथितंपुत्रमायातेहितकाम्यया: ॥१२१

एक साथ साथ ही जल अग्नि का धारण करना अनुचित है, गुरुवर देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध हैं ।११३। बछड़े को दूध पिलानेमें लगी हुई गौको न बुलावे और अञ्जलिसे जल न पीवे अधिक अथवा न्यून सब प्रकार की शौच क्रिया शीघ्रता से करे तथा मुख की

फूँक से अग्नि को प्रज्वलित न करे तथा जहाँ यह चार वस्तु न हों, वहाँ न रहे ।११५।ऋण देने वाला, वैद्य,श्रोत्रिय तथा जल वाली नदी। जिस स्थान पर शत्रु विजेता बली एवं धर्मज्ञ राजा रहता हो ।११६। उस स्थान में सदा रहे, क्योंकि कुराजा के राज्यमें सुख नहींहो सकता। जिस देश का राजा दुर्धर्ष है तथा जहाँ की भूमि धान्य से परिपूर्ण हैं। ।११७। जहाँ के पुरवासी नियमों का पालन करने और न्याय मार्ग पर चलते हैं, जहाँ के मनुष्यों में मात्सर्य नहीं है, वहाँ निवास करने से सुख का उदय होता है ।११८। जहां के किसान अति भोग वाले नहीं हैं, और जहाँ असख्यासंख्य औषधियां प्राप्त होती हैं उसी स्थान में निवास करना चाहिए। ।११९। जहाँ जिगीषा युक्त, पूर्व शत्रु और उत्सवोन्मत्त मनुष्य रहते हों वहाँ कभी न रहे ।१२०। सुशील मनुष्यों का निवास हो वहाँ रहना चाहिए, यह सब मैंने तुम्हारे हित के लिए ही कहा है ।१२१।

२८-अलर्क को शासन युक्त अंगूठी की प्राप्ति

सएवमुनिशिष्टः सन्मात्रासम्प्राप्ययौवनम् ।
ऋतुध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥१
पुत्रांश्चोत्पादयामतयज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः ।
पितुश्चसर्वकालेषुचकारऽऽज्ञानुपालनम् ॥२
ततःकलेनमहतासम्प्राप्चरमंवयः ।
चक्रऽभिषेकं पुत्रस्यतस्यराज्येऋतध्वजः ॥३
भार्ययायसहधर्मात्मायियासुस्तपसेवनम् ।
अवतीर्णोमहारक्षोमहाभागोमहीपतिः ॥४
मदालसचतनयं प्राहेदंपश्चिमंवचः ।
कामोपभोगसं सर्गप्राहाणायसुतस्यवै ॥५

यदादु:खमसखमसह्यन्तेप्रियबन्धुवियोगजम् ।
शत्रबाधोद्भव वापिविन्तनावित्तनाशात्मसम्भवम् ॥६
भवेत्तत्कुर्वतोराज्यगृहधर्मावलम्बिनः ।
दु:खायतनभूतोहिममत्वालम्वनोगृही ॥७
तदास्भात्पुत्रनिष्कृष्यमद्दत्तादगुंलीयकात् ।
वाच्यतेशासन पट्टेसूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥८
इत्युक्त्प्रददौतस्मैसौवर्णमांगलीयकम् ।
आशिषश्चापियायोग्याः पुरुषस्यगृहेसतः ॥९
ततः कुवलाश्वोऽसौसाचदेवीमदालसा ।
पुत्रायतत्वातद्राज्यंतपसेकाननंतौ ॥१०

जड़ ने कहा—माता के इस प्रकार उपदेश देने पर ऋतुध्वज के पुत्र ने युवावस्था प्राप्त होने पर विधिपूर्वक विवाह किया और पुत्रोत्पादन और विविध यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए पिता की आज्ञा के अनुवर्ती हुए ।१-२। फिर बहुत काल व्यतीत होने पर धर्मात्मा राजा ऋतध्वज ने पत्नी सहित वन में जाने की इच्छा से पुत्र को राज्यपद में अभिषिक्त किया ।३-४। तब पुत्र को भोगादि से निवृत्त करने के विचार से मदालसा ने इस प्रकार कहा—जब तुम्हारे समक्ष किसी प्रिय अथवा वन्धु का वियोग शत्रु वाधा या धननाश का दुःख उपस्थित हो ।५-६। क्योंकि गृहस्थ सदा ममता परायणहै अतः स्वाभाविक रूपसे ही आपद् काल आवे तो मेरे द्वारा प्रदत्त इस अंगुलीय से पत्र बाहन निकाल कर मध्यस्थ सूक्ष्म अक्षरों में लिखे शासन का पाठ करना ।७-८।जड़ बोला-इस प्रकार कहती हुई मदालसा ने अपनी स्वर्ण की अंगूठी देते हुए अपने पुत्र को गृहस्थोचित्त आशीर्वाद दिया ।९। अपने पुत्र को राज्य देकर कुबलयाश्व तप करने के लिये मदालसा के सहित वन में गये ।१०।

अलर्क को आत्म विवेक

सोऽप्यलर्कोयथान्ययंपुत्रवन्मुदिता प्रजाः।
पालयामासधर्मात्मास्वेस्वेकर्मण्यवस्थिता ।१
दुष्टेषुदडंशिष्टेषुसम्यक्चपरिपालनम् ।
कुर्वन्परांमुदलेभेइयाजचमहामखैः ।।२
अजायन्तसुताश्चास्यमहाबलपराक्रमाः ।
धर्मात्मानोमहात्मानोविमार्गपरिपन्थिनः ।३
चकारसोऽर्थंधर्मेणधर्ममर्थेनवापुनः ।
तयोश्चैवऽविरोधेनवुभुजेविषयानपि ।४
एवंबहूनिवर्षाणितस्यपालयतोमहीम् ।
धर्मार्थकामसक्तस्यजग्मुरेकमहर्यथा ।५
वैराग्यं नाऽस्यसजज्ञे भुञ्जतोविषयान्प्रियान् ।
नचाप्यलमभूत्तस्यधर्मार्थोपार्जनंप्रति ।।६
ततथाभोगसंसर्गं प्रमत्तमजितेन्द्रियम् ।
सुबाहुर्नामशुश्रावभ्राातातस्यवनेचरः ।।७

जड़ बोला—धर्मात्मा अलर्क ने न्याय पूर्वक प्रजा का पुत्र के समान पालनकिया। इसप्रकार आनन्दकोप्राप्त होतेहुए वेअपने नियत कार्यानुष्ठान लगे।१। उन्होंने दुष्टोंको दण्ड और शिष्टपुरुषों की रक्षा करते हुए अत्यन्त आनन्द पूर्वक अनेक यज्ञ किये।२। समयानुसार उसके पुत्र हुए वे सब बली,पराक्रमी धर्मज्ञ, महात्मा और कुमार्ग के नाशक थे ।३। आत्म बल हुए अलर्क धर्मसे अर्थ और अर्थसे धर्मकी रक्षा तथा धर्म और अर्थ के द्वारा विषयोंका उपभोग करने लगे ।४। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग में प्रवृत्त होकर पृथिवीका पालन करते हुए बहुत वर्ष, एक दिनके समानही व्यतीत होगये।५। प्रिय विषयोंका भोगकर के भी उनके चित्तमें वैराग्य और धर्म,अर्थ के उपार्जनमें उदासीनता उत्पन्न हुई ।६।

अलर्कका एकभाई सुबाहु पहिले से ही बनवास करता था, उसने अलर्क के विषय भोग में लगे रहने की वार्ता सुनी।७।

तम्बुबोधयिषुः सोऽथचिरंध्यात्वामहीपतिः।
तद्वै रिसंश्रयंतस्यश्रे योऽमन्यतभूपतेः ॥८
ततःसकाशिभूपालमुदीर्णवलवाहनम् ।
स्वराज्यंप्राप्तुमागच्छद्बहुशः शरणंकृती ॥९
सोऽपिचक्रेवलोद्योगमलर्कप्रतिपार्थिवः।
दूतंचप्रेषयामासराज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥१०
सोऽपिनेच्छत्तदाज्ञातुपाज्ञापूर्वंस्वधर्मवित् ।
प्रत्युवाचचतंदूतमलर्कः काशिभूभृतः ॥११
मामेवाभ्येत्यहार्देनयाचतांराच्यमग्रजः।
नाक्रांत्यासंप्रदास्यामिभयेनाऽल्पामक्षितिम् ॥१२
सुबाहुरपिनोयान्चांचकारमतिमांस्तदा ।
नधर्मःक्षत्रियस्येतियान्चावीर्यधनोहिसः ॥१३
ततः समस्तसैन्येनकाशीशः परिवारितः।
आक्रान्तुमभ्यगाद्रष्टमलर्कस्यमहीपतेः ॥१४

अपने भाईको तत्वज्ञान हो सके इसके लिए उस महामति ने बहुत समय तक विचार किया और अन्तमें शत्रुके आश्रयमें जाना ही उचित समझा।८। फिर चतुर सुवाहु राज्य लाभ की इच्छा करके काशी नरेश की शरण में अनेक बार गया।९। काशी नरेश ने भी अलर्क की प्रतिकूलता के लिए उनके पास दूत संदेश भेजा कि सुबाहु को राज्य दे दो।१०। क्षात्रधर्म ज्ञाता अलर्क ने इसे स्वीकार न करके दूत को उत्तर दिया।११। मेरे वड़े भाई मेरे पास आकर कहें, आक्रमण से डरकर तो मैं एक भाव पृथिवी भी नही दे सकता।१२। महाप्रति सुवाहु ने उनसे विनती नहीं की क्योंकि क्षत्रियों का एक मात्र धर्मवल ही है।१३। तब काशी नरेश ने सेना से सुसज्जित होकर राजा अलर्क के राज्य पर आक्रमण किया।१४।

अनन्तररैश्चसंश्लेषमभ्येत्यतदन्तरम् ।
तेषामन्यतमैर्भृत्यः समाक्रस्यानयद्वशम् ।१५
अपडयंश्चसामतांस्तस्य राष्ट्रोपरोधनैः ।
तथादुर्गान्तपालाश्चक्रे चाटविकान्वशे ॥१६
कांश्चिच्चोपप्रदानेनकांश्चिभेदेनपार्थिवान् ।
साम्नैवान्यान्वशनितयेनिभृतास्तस्ययेऽभवन् ॥१७
तत सोऽल्पबले राजापरचक्रावपीडितः ।
कोषक्षगवापोच्चै पुर चारुद्यतारिणा ।१८
इत्थं संपोडयमानस्नुक्षीणकोशोदिनेदिने ।
विपादमागात्परमंल्याकुलत्वं चचेतसः ॥१९
आर्तिसपरमांप्राप्यतत्ससारांगुरीयकम् ।
यदुद्दिश्यराप्राहमातातस्यमदालसा ॥२०
ततःस्नाताशुचिर्भत्वावाचयित्वाद्विजोत्तमान् ।
निष्क्रष्यशासनतस्याद्ददृशेप्रस्फुटाक्षरम् ॥२१

अपने सामन्त राजाओं से युक्त होकर आक्रमण के पश्चात् उन्होने अलर्क को वश में कर लिया ।१५। उन्होंने अलर्क के सामन्तों को पीड़ित किया और दुर्ग रक्षक तथा बनवासियों को वशीभूत किया ।१६ किसी को धन से किसी को भेद तथा किसी को दण्ड से अधीन कर लिया ।१७। इस प्रकार परचक्र से पीड़ित हुए अलर्क का कोष खाली हो गया और नगर भी शत्रु द्वारा घेर लिया गया ।१८। इससे अलर्क अत्यन्त विषादको प्राप्त हुआ और उसका चित्त भी व्याकुल हो उठा । ।१९ फिर वे अत्यन्त आर्त्त हो गये, तब उन्हें अपनी माता मदालसा के वचन और वह अँगूठी याद आई ।२०। तब उन्होंने स्नान करके स्वति वाचन करके बँधे हुए शासन को बाहर निकाल कर देखा तो वह स्पष्ट अक्षरों में लिखा हुआ था ।२१।

तत्रैवलिलितंमात्रावांचयामासपार्थिवः ।
प्रकाशपुलकांगोऽसोप्रहर्षात्फुल्ललोचनः ॥२२

संग:सर्वात्मनात्मनात्याज्त: सचे यक्तुं नशक्यते ।
ससद्‌भि: सहकर्त्तव्य: सतांसङ्गोहिभेषजम् ।२३
काम: सर्वात्माहेयोज्ञातुं चेच्छाक्यतेनस: ।
मुमुक्षांप्रतितत्कार्यं सैवतस्याऽपिभेषजम् ।२४
वाचयित्वातुहुशोनृणांश्रेय कथंत्विति ।
मुमुक्षुयेतिकिञ्चित्यसाचतत्सङ्गतोयत: ।२५
तत: ससाधुसम्पर्कंचिन्तयन्पृथिवीपति: ।
दत्तात्रेवं महाभागामच्छत्परमार्त्तितान् ।२६
तसमेत्यमहात्मानमन्सकल्मषयसङ्गिनम् ।
व्रणिपत्यांभिसम्पूज्ययथान्यायमभाषत ।।२७

माता द्वारा लिखे उस शासन के पढ़ते ही उनका देह पुलकित हो गया और दोनों नेत्र आनन्द से फूल गए ।२२। शासन में लिखा था काम को सर्वान्तिरण से त्याग दे' यदि सङ्ग का त्याग न कर सके तो साधु सङ्ग करे, क्योंकि साधु सङ्ग हो विश्व का औषधि स्वरूप है ।२३ काम का सर्बान्त:करण से त्याग करने में समर्थ न हो तो मोक्ष की कामना के लिए ही करे, क्योंकि मोक्ष का यही महान् उपाय है ।२४। इस प्रकार माता प्रदत्त शाशन का पाठ करके, मनुष्य का कल्याण कैसे हो, मोक्ष की कामना ही उसका उपाय है और सत्संग ही उसका साधन है ।२५। ऐसा सोचकर अलर्क साधु सङ्ग के लाभ का विचार करने लगे अत्यन्त भय से आतुर होकर अन्त में वह दत्तात्रेयजी की शरण में गए और उनको प्रणाम करके पूजन किया और न्यायानुसार निवेदन किया ।२६-२७।

ब्रह्मन्कुरुसादमेशरण: शरणार्थिनाम् ।
दु:खापहारंकुरुमेदु:खार्त्तस्यातिकामिन: ।२८
दु:खापहारमद्यैवकरोमितवपार्थिव ।
सत्यं ब्रूहिकिमर्थंतेदु:खंतन्पृथिवीपते ।२९
कस्यत्वंकस्वादु:खतत्वमेवंविचार्यताम् ।
अङ्गान्यंगीनिरङ्गं चसर्वांगानिविचिन्त्य ।।३०

इत्युक्तश्चिन्तयामासराजातेनधीमता ।
त्रिविधस्यापिदु:खस्यस्थानमात्मानमेवच ॥३१
सविमृश्यचिरंराजापुन: पुनरुदारधी ।
आत्मानमात्मानाधीर: प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥३२
नाहमुर्व्वीन सलिलंनज्योतिरनिलोनच ।
नाकाशंकिंतुशारीरं समेत्यसुखमिष्ते ॥३३
न्यूनातिरिक्तांयातिपञ्चकेऽस्मिन्सुखासुम् ।
यदिस्यान्ममकिन्नस्यादन्यस्थेऽपिहितंमयि ॥३४

हे ब्रह्मन्! प्रसन्न हो, अपने बालकों के लिए आपही आश्रय-स्वरूप हैं, मैं विषय भोगों में लिप्त होकर दु:ख से अभिभूत हो गया हूँ। उससे आपमुझे छुड़ाइए ।२८। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! मैं तुम्हारे दु:ख को अवश्य दूर करूँगा, तुम मुझे बताओ कि तुम्हें किस प्रकार से दु:ख प्राप्त हुआ,है ।२९। प्रथम यह विचार क्योंकि तुम किसके हो ? दु:ख किसका है ? अङ्ग अङ्गी भाव और निरङ्ग इन सबका विचार करो ।३०। जड़ ने कहा—दत्तात्रेयजी के इस प्रश्न से रांजा तीन प्रकार के दु:ख का स्थान एवं आत्मा इन दो विषयों का चिन्तन करने लगे । ।३१। राजा ने बारम्बार आत्मा द्वारा आत्म विचार करते हुए हँसकर कहा ।३२। मैं पृथिवी, जल, ज्योति, वायु आकाश आदि में से कुछ भी नहीं हूँ किन्तु देह का आश्रय करता हुआ सुख चाहता हूँ ।३३। इस पाँच भौतिक देह में सुख-दु:ख उत्पन्न होकर न्यूनाधिक्य की प्राप्ति होती है ।३४।

नित्यप्रभूतसद्भावेन्यनाधिक्यान्नतोन्नते ।
तथाचममतात्यक्तोविशेषेणोपलंघ्यते ॥३५
तन्मात्रावस्थितेसूक्ष्मेतृतीयांशेचपश्यत: ।
तथैवभूतासद्भावंशारीरंकिसुखाम् ॥३६
मनस्यवस्थितं दु:खसुखंवामानसंचयत् ।
यतस्ततोनमेदु:खं सुखंवानह्यहमन: ॥३७
नाहङ्कारोनचमनोबुद्धिर्नाहथतस्तत: ।
अन्त:करणजदु:खं पारक्य ममतत्कथम् ॥३८

नाहंशरीरं नमनोयतोऽहंपृथक्छशरीरान्मनसस्तथाऽहम् ।
तत्सन्तुचेतस्यथवाऽपिदेहेसुखानिदु:खानिचकिममाऽत्र ॥३९
राज्यस्यवांछांकुरुतेऽग्रजोऽयदेहस्यचेत्पञ्चमयस:राशि: ।
गुणप्रवृत्यामम किन्नुतत्रतत्स्थ:सचाऽहंचशरीरतोऽन्य: ॥४०
नयस्याहस्तादिकमप्य ोषमांसनचाऽस्थीनिशिराविभाग:।
कस्तस्यनागाश्वरथादिकाशै:स्वल्पोऽपिसम्बंधाइहाऽस्तिपुस:॥४१
तस्मान्नमेऽरिन्नं चमेऽस्तिदु:खनमेसुखंनापिपुरं नकोशम् ।
चनऽश्वनागादिबलनतस्यनान्यस्यवाकस्यचिद्वाममाऽस्ति४२
यथाघटीकुम्भकमडलुस्माकाशमेकंबहुधाहिदृष्टम् ।
तथासुवाहु:सचाकाशिपोऽहमन्येचदेहेषुशोपभेदै: ॥४३

इस प्रकार होने पर भी मेरी क्या हानि है ? क्योंकि वह देह नहीं है । स्वतन्त्र भाव से देह में अवस्थान करता है, मेरे घटने-घढ़ने की सम्भावना नहीं है मुझे निन्य प्रभु सद्भाव की प्राप्ति है । न्यूनाधिक्य के कारण नीचा-ऊँचा भी होता हूँ इसलिए समता को छोड़कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । मैं तन्मात्रा में तथा सूक्ष्म तृतीयांश में अवस्थित हूँ । मेरा देह का भूत् सद्भाव युक्त है अत- सुख दु:ख की सम्भावना कदापि नहीं है ? ।३५-३६। सुख-दु:ख मन का धर्म होने से मन में ही रहते हैं, जब मैं वह मन भी नहीं हूँ तो मुझे सुख दु:ख भी नहीं है।३७। जब मैं अहंकार मन बुद्धि आदि में से भी कुछ नहीं हूँ तो मुझ में अन्त: करण से उत्पन्न पारक्य ही कैसे सम्भव है ? ।३८। मैं शरीर नही, मन नहीं तथा इन दोनों से ही पृथक् हूँ इसलिए सुख मन ये या शरीर में कहीं भी रहे, उसमें मेरा क्या ? उसमें मेरी हानि या लाभ नहीं है ।३९। इसी शरीर के बड़े भाई राज्य चाहते हैं और यदि ग्रह शरीर पाँच भौतिक कहूँ तो उसकी गुण-प्रवृत्ति में मेरा क्या होगा? बड़ा भाई अथवा मैं, दोनों ही देह से पृथक् वस्तु हैं ।४०। जिसके हस्तादि अङ्ग, माँस, अस्थि और शिरा आदि कुछ नही उसकी अश्व, गज, रथ, कोष आदिमें क्या आवश्यकता ? आत्मा का इससे कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं

होता ।४१। जिस प्रकार मेरा कुछ नहीं हैं, वैसेही मेरे अग्रज अथवा अन्यान्य पुरुष या शत्रुका तो सुखदुःख नगर कोष सैन्यादि कुछ भी नहीं है ।४२। जैसे घटी, कुम्भ और कमण्डलु के भेद से एक आकाश ही अनेक दिखाई देता है, वैसे ही आत्मा एक होकर भी काशीराज, सुबाहु तथा मेरे इस प्रकार के भेद से अनेक दिखाई देता है ।४३।

३०–दत्तात्रेय से अलर्क की योग जिज्ञासा

दत्तात्रेयंततोविप्र प्रणिपत्यसपार्थिवः ।
प्रत्युवाचमहात्मनं प्रश्रयावतोवचः ॥१
सम्यक्प्रपश्यतोब्रह्मन्ममदुःखनकिंचन ।
असम्यग्दर्शिनोमग्नः सर्वदवासुखाणवे ॥२
यस्मिन्नमत्वेनबुद्धिःपुंसः प्रजायते ।
ततस्ततःसमादायदुःखान्येवप्रयच्छति ॥३
मार्जारभक्षितेदुःख याद्दशगृहकुक्कुटे ।
नताद्दङ् ममताशून्येकलविंकेऽमूषिके ॥४
सोऽहंनदुःखोनसुखीयतोऽहंप्रकृतेःपरः ।
योभूताभिभवोभूतै सुखदुःखात्मकोहिसः ॥५
एवमेतन्नरव्याघ्रयथैतद्वयाहृतंत्वया ।
ममेतिमूलंदुःखस्यनममेचिनिवृंतिः ॥६
एतत्प्रश्नादेवतेज्ञानमुत्पन्नमिनमुत्तमम् ।
ममेतिप्रत्ययोयेनक्षिप्तःशाल्मलितूलवत् ॥७

जड़ बोला-इसके पश्चात् राजा ने विनयपूर्वक महर्षि दत्तात्रेयजी से प्रणाम पूर्वक कहा ।१।हे ब्रह्मन् ! मुझे भले प्रकार दृष्टि प्राप्त होने से अब कुछ भी दुःख नहीं रहा है क्योंकि असम्यक् दृष्टि वाले पुरुष ही दुःख सागर में डूबते हैं ।२। मनुष्यकी बुद्धि जिस-जिस विषय में आसक्त होती है, उस-उस से ही दुःख की उत्पत्ति होतीहै ।३। घरमें पाले हुए कुक्कुट के बिल्ली द्वारा भक्षित होने पर जो दुःख उदय होता है, वह दुःख, ममता न होने पर चूहेके भक्षित होने पर नहीं होता ।४। मैं सुखी

न दुःखी हूँ क्योंकि प्रकृतिके परे हूँ क्योंकि संसारसे आसक्ति वालेको ही सुख-दुःख होता है ।५। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है ममता ही दुःख कारण है और ममता का त्याग से ही निवृत्ति करने वाली है ।६। मेरे प्रश्न करते ही तुम्हारे हृदयमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान उदित हुआ है और उस ज्ञान के बल से ही तुम्हारी ममता जैसे रुई उड़ जाती है वैसे ही उड़ गई है ।७।

अहमित्यंकुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्रोच्चशाखाश्चपुत्रदारादिपल्लवः ॥८
धनधान्यमहापत्रोनैककालप्रवर्धितः ।
पुण्यापुण्यापुष्पश्चसुखदुःखमहाफलः ॥९
अपवर्गपथव्यापीमूढसम्पर्कसेचनः ।
विधित्साभृङ्गमालाढ्योकृत्यंज्ञानमहातरुः ॥१०
संसाराध्वपरिश्रान्तायेतच्छागांसमाश्रिताः ।
भ्रांतिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिककुतः ॥११
यैस्तुसत्संगपाषाणशितेनममतातरुः ।
छिन्नोविद्याकुठारेणतेगतास्तेनवर्त्मना ॥१२
प्राप्यब्रह्मवन शीतनीरजस्कमकण्टकम् ।
प्राप्नुवन्तिपरांप्रानिर्वृत्तिवृत्तिवर्जिताः ॥१३
भूतेन्द्रियमयंस्थूल नत्वंराजन्नचाप्यहम् ।
नतन्मात्रंमयावाच्यं नैवान्तःकरणात्मकौ ॥१४

अहंकारी रूप अंकुरने ही अज्ञान रूपी महावृक्ष को उत्पन्न कर दिया घर और खेत उसकी ऊँची शाखाएँ तथा स्त्री-पुत्रादि उसकी पत्तियाँ हैं ।८। धन धान्य उसके बड़े पत्ते, पुण्यापुण्य उसके पुष्प और दुःख उसके महाफल हैं ।९। मोह से अभिभूत समान सम्बन्ध इसका थाँवला है यह वृक्ष दिनोंदिन वृद्धिको प्राप्त हैं तथा मोक्ष मार्ग को ढक कर खड़ा है ।१०। भ्रान्ति से जो सुख मानकर इस वृक्ष का आश्रय लेते हैं उन्हें किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होगी ? ।११। जो पुरुष विद्या रूपी कुठार को सत्सङ्ग रूपी पत्थर से तीक्ष्ण करके, उसके द्वारा

ममता रूपी इस महावृक्ष को काटने में समर्थ होते ।१२। वही उस मार्ग में ब्रह्म रूपी वन को प्राप्त हो सकते हैं, वह वन अत्यन्त शीतल, धूलि रहित तथा निष्कंटक है, इसमें पहुँचने से निवृत्ति युक्त परम बुद्धि का लाभ होता है ।१३। हे राजन् ! तुम भी भूतेन्द्रिय युक्त या स्थूल नहीं हो, मैं भी नहीं हूँ, हम दोनों में कोई भी तन्मात्रिक या अन्तकरणात्मक नहीं है ।१४।

कंवापश्यामिराजेन्द्रप्रधानमिदेभावयोः ।
यतः परोहिक्षेत्रंज्ञसंघातोहिगुणात्मकः ॥१५
मशाकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसांयथा ।
एकत्वेऽपिपृथग्भावस्ताक्षेत्रात्मनोनृपः ॥१६
भगवंस्त्वत्प्रसादेनममाविर्भूतमुत्तमम् ।
ज्ञानं प्रधानिचिच्छक्तिववेककरमीदृशम् ॥१७
किन्त्वत्राविसयाक्रान्तेस्थैर्य्यंवस्वंनचेतसि ।
नचापिवेद्मिमुच्येयंकथं प्रकृतिबन्धनात् ॥१८
कथनंभूयांभूयश्चकथंनिर्गुणतामियाम् ।
कथं च ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयशाश्वतेन वै ॥१९
तन्मेयोगंतथाब्रह्मन्प्रणताय।भियाचते ।
सम्यग्ब्रूहिप्राज्ञसत्सङ्गोह्यपकृन्नृणाम् ॥२०

हममें से किसी को भी तुम प्रधानसे युक्त देखते हो? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुषप्रकृतिके परे तथा पंचभौतिक पदार्थगुणात्मकऔर प्रधानात्मकहै।१५ हे राजन् ! मच्छर गूलरमें, सीक मूँजमें और मछली जल में एकीभाव से रहकरभी पृथक्-पृथक् है.इसीप्रकार क्षेत्रऔर आत्मा कोभी पृथक्-२ समझो ।१६।अलर्क बोला-हे प्रभो! मुझे आपके प्रसाद से विवेक उत्पन्न करने वाले ज्ञानकी प्राप्ति हुईहै ।१७। परन्तु मेरा चित्त विषयोंमें आकर्षितहै इसलिए वह स्थिर नहीं हो सकता,अतः प्रकृतिके बन्धनसे कैसेमुक्त हो सकूँगा,यह नहीं जानता।१८।पुनर्जन्मसे किसप्रकार बचा जाय! क्या करनेसे शाश्वत ब्रह्मसे एकीभाव की प्राप्ति हो।१९। ऐसे योगका उपदेश

मेरे प्रति कीजिए । मैं प्रार्थी होकर समीप में प्रार्थना करता हूँ । सत्संग से ही मनुष्यका उपकार सिद्ध हो सकता है ।२०।

३१-योगाभ्यास

ज्ञानपूर्वोवियोगोयोऽज्ञानेनसहयोगिनः ।
सामक्तिर्ब्रह्मणाचक्यनैक्यप्राकृतैर्गुणः ।१
योगेचशक्तिर्विदुषांयेन श्रेय परं भवेत् ।
भुक्तिर्योगात्तथायोगःसम्यग्ज्ञत्रानान्महीपते ।
सगदोषोभवदुःखंममत्वासक्तचेतसाम् ।२
तस्मात्सङ्गं प्रयत्नेनमुमुक्षु सत्यजेन्नरः ।
सङ्गभाममेत्यस्याःख्यातेर्हानिः प्रजायते ।३
निर्ममत्वंसुखायैववैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
ज्ञानादेवचवैराग्यंज्ञानं वैराग्यपूर्वकम् ।४
तद्गृहंयत्रवतिस्तद्भोज्यं येनजीवति ।
यन्मुक्तयेतदेवोक्तंज्ञानमज्ञानमन्यथा ।५
उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानांचपार्थिव ।
कर्त्तव्यनांचतिनत्यानामकामकरणात्तथा ।।६
असंचयामपूर्वस्यक्षयात्वपूर्वार्जितस्यच ।
कर्मणोबन्धमाप्नोविशारीरं चपुनः ।७
कर्मणामोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येनतस्यतु ।
एतत्ते कथितराजनयोगचेमनिबोधम ।
यप्राप्यब्रह्मणोयोगीशाश्वतान्नान्यतांब्रजेत् ।।८

दत्तात्रेय बोले-योगमें आरूढ़ पुरुषोंका ज्ञान प्राप्तिके पश्चात्अज्ञान से जो वियोगहोता है वही मोक्ष कहा जाता है तथा प्राकृतिक गुणों से पृथकता हीं ब्रह्मकी एकता कही गई ।१। हे राजन् ! ममता में आसक्त चित्त से दुःख, दुःखसे सम्यकज्ञान्! ज्ञानसे योग और योग से मोक्ष की

प्राप्ति होती है। इसलिए मुमुक्षु को सम का त्याग करना चाहिए, विषयों से आसक्ति दूर होते ही यह मेरा है, ऐसा ज्ञान नहीं रहता ।३। ममता के त्याग में ही सुख है, वैराग्य होने पर ही संसार के सब दोष स्पष्ट हृदयगम होते है, जैसे ज्ञान से वैराग्य होता है वैसी ही वैराग्य से ज्ञान की उत्पत्ति होती है ।४। जहाँ रहे वही घर, जिससे जीवन धारणहो वही भोज्य जिससे मोक्ष मिले वही ज्ञान है,तथा इसके विपरीत को अज्ञान कहते हैं ।५। पुण्यापुण्य के उपभोग से वासना-रहित नित्य कर्म करने पर ।६। पूर्वोपार्जित कर्मोके क्षीण होने पर और नवीन कर्मो का संचय न होने पर देह के बन्धन को प्राप्त नहीं होता हे राजन् ! तुमसे जो कहा है, वही योग है,इसे पाकर योगीजन शाश्वत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का आश्रय नहीं लेते ।७-८।

प्रागेवान्माऽत्मनाजेयोगिनांसहिदुर्जय: ।
कुर्वीततज्ज्येयत्नंतस्योपायंश्रृणुष्वमे ।९
प्राणायाहर्देहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्विषम् ।
प्रत्याहारेणविषयान्ध्यातेनांनीश्वरान्गुणान् ।१०
यथापर्वतधातूनांध्दोषादह्यन्तिधाम्यताम् ।
तथेन्द्रियकृतादोषात्ह्यन्तेप्राणनिग्रहात् ।११
प्रणमसाधनंकुर्यात्प्राणायामस्ययोगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तुप्राणायामउदाहृत: ।१२
लघुमध्योत्तरीवाख्यामस्त्रिधोदित: ।
तस्यप्रमाणवक्ष्यामितदलकश्रृणुष्वमे ।१३
लघुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुण:सतुमध्यम: ।
त्रिगुणाभिस्तुमात्रभिरुत्तम परिकीर्त्तित: ।।१४

सर्व प्रथम आत्मा से आत्मा को जीते क्योंकि आत्मा ही योगियों के लिए कठिनता से जीता जाने वाला है, आत्मा को किस प्रकार जीतना चाहिए, वह भी कहता हूँ ।९। प्राणायाम से कोषों को, धारण से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे, ।१०। जैसे अग्नि में पड़ कर सब धातु दोष-रहित होती है,

वैसे ही प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रिय के दोष नष्ट होते हैं ।११। योग-ज्ञाता प्रथम प्राणायाम का साधन करे, प्राणायाम के निरोध को प्राणायाम कहते हैं ।१२। प्राणायाम के तीन प्रकार हैं—लघु, मध्य और उत्तरीय । अब इनकाप्रमाण कहता हूँ ।१३।लघू प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला, मध्यम प्राणायाम उससे दुगुना और उत्तरीय उससे तिगुनी मात्रा में कहा गया है ।१४।

निमेषोन्मेषनेमात्राकालोलध्वक्षरस्तथा ।१५
प्रथमेनजयेत्स्वेदंमध्यमेनचवेपथुम् ।
विष दंहितृतीयेनजयेद्दोषाननुक्रमात् ।१६
मृदुत्वसेव्यमानास्तुसिंहशार्दूलकुञ्जरा: ।१७
वश्यमत्तं यतेच्छातोनागनयतिहस्तिप: ।
तथैवयोगीसच्छन्द:प्राणनयतिसाधितम् ।।१८
यथाहिसाधित सिंहोमृगान्हतिनमानवान् ।
तद्वन्निषिद्धपवन: किल्विषननृणांतनुम् ।१९
तस्माद्युक्त:सदायोगींप्राणायामपरोभवेत् ।
श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचमतुष्टयम् ।२०
ध्वस्ति:प्राप्तिस्थासवित्प्रसादश्चमहीपते ।
स्वरूपश्रृणुचैतेषांकथ्यमानमनुक्रमात् ।।२१

निमेष और उन्मेश का समय ही मात्रा है ऐसी बारह मात्रा होने पर लघु प्राणायाम होता है ।१५। पहले प्राणायाम से स्वेद, दूसरे से कम्प और तीसरे से विषयादि दोषों को जीते ।१६। जैसे सेवा के द्वारा सिंह, व्याघ्र और हाथी भी कोमल स्वभाव हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम द्वारा योगियों को प्राण को वश करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है ।१७। जैसे हाथी का स्वामी मत्त हाथी को वश करके इच्छानुसार चलाता हैं, वैसे ही योगीजन प्राण के द्वारा ही इच्छानुसार कार्य करने में समर्थ होते हैं ।१८। जैसे पाला हुआ सिंह मृगों को मारता है, मनुष्यादि की हिंसा नहीं करता, वैसे साधित प्राणवायु, के द्वारा पाप नष्ट होते हैं, देह नष्ट नही होता ।१९। इसलिए योगियों को प्राणायाम

परायण होना चाहिये। प्राणायाम की अवस्था चार प्रकार की हैं जिससे मोक्षफल की प्राप्ति होती है। अब इसका वर्णन करता हूँ।२०। हे राजन्! प्राणायाम के ध्वस्ति प्राप्ति संवित् और प्रसाद यह चार भेद है। अब इनके स्वरूप को क्रमशः बताता हूँ।२१।

कर्म्मणातिदुष्टानांजायतेफलसंक्षयः।
चेतसोऽपकषायत्व यत्रताध्वस्तिरुच्यते।२२
ऐहिकामुकाष्मिकात्कामाल्लोभमोहात्मकान्स्वयम्।
निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्तिःसासार्वकालिकी।२३
अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान्।
विजानातीन्दुसूर्य्यार्क्षग्रहाणांज्ञानसम्पदा॥२४
तुल्यप्रभावस्तुयदायोगोप्राप्नोतिसंविदम्।
तदासम्विदितिख्याताप्राणायामस्यासंस्थितिः।२५
यान्तिप्रसादयेनाऽस्यामनःपञ्चवायवः।
इन्द्रियाणीन्द्रियाथश्चिसप्रसादइतिस्मृतः।२६
शृणुष्वचमहीपालप्राणायामस्यलक्षणम्।
युञ्जतश्चसदायोगयादृग्विहितमासनञ्च।२७
पद्ममूर्द्धासनं चापितथास्वस्तिकमासनम्
आस्थायायोगंयुञ्जीतकृत्वाचप्रणवं हृदि॥२८

ध्वस्ति उसे कहते हैं जिससे दूषित अदूषित कर्मों का फल क्षीण हो और चित्त की मलीनता नष्ट हो।२२ प्राप्ति वह अवस्था कही गयी हैं जिसमें योगीजन लोभ मोहात्मक समस्त कामको स्वयंही निरुद्ध करते हैं।२३। जिस अवस्था में चन्द्रमा सूर्य ग्रह और नक्षत्र के समान ज्ञान शक्तिको प्राप्त हुएयोगीजन।२४।अतीत अनागत और तिरोहित इनसब विषयों को जान लेते हैं वह अवस्था संवित् कही गई है।२५। जिस अवस्था द्वारा पञ्चवायु इन्द्रिय और उसके विषयोंसे योगीका चित्तशुद्ध हो जाता है वह अवस्था ही प्रसाद कही जाती हैं।२६। हे राजन्! अब प्राणायाम के लक्षण और योगारम्भ में जिस आसन का अनुष्ठानउचित

हैं उसे मुनो ।२७। पद्मासन, अर्द्धासन, सवस्तिकासन इत्यादि का अवलम्बन करके हृदय में प्रणव का जप करता हुआ योगानुष्ठान में लगे ।२८।

समःसमासनोभूत्वासंहृत्याचरणावुभौ ।
सवृतास्यास्तथैवोरूसम्याग्विष्टभ्वचाग्रतः ।२९
पार्ष्णिभ्यांलिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयतःस्थितः ।
किंचिदुन्नामितशिरान्तैर्दन्तान्नस स्पृशेत् ।३०
संपश्यान्नासिकाग्रस्व दिशश्चानवलोकयान् ।
रजसःतमसोवृत्तिसत्वेनरजस्तथा ।३१
संज्छाद्यनिम्मलेसत्वेस्थितोयुञ्जीतयोवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्या प्राणादीन्ममएवच ।३२
निगृह्यसमवायेनप्रत्याहारामुपक्रमेत् ।
यस्तुप्रत्याहारेत्कामान्सावाङ्ग्रानीवकच्छपः ।३३
सदाऽऽपारतिरेकस्थः पश्यात्यामानमात्मनि ।
सबाह्याभ्यंतदंशौचंनिष्पाद्याकण्ठनाभितः ।३४
पूरायत्वाबुधोदेहंप्रत्याहारक्रमेत् ।
प्राणायामादशद्वौचधारणासाभिधीयते ॥३५

सरल चित्तसे जब आसनमें बैठे तो दोनों पांवोंको सकोड़ कर मुखबन्द करे तथा अग्र भागमें दोनों उरु स्तब्ध करे ।२९। तथा संयुक्त मनसे इस प्रकार बैठे जिससे उपस्थ और अण्ड कोषका हाथ से स्पर्श न हो शिर कुछ ऊपर की ओर उठावे तथा दांत से दांतका स्पर्श न होने दे ।५०। अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि रखें दूसरी ओर न देखे । इसी अवस्था में रजोगुणसे तमोगुण और सत्वगुण से रजोगुण को नष्ट करके केवल निर्मल तत्व में अवस्थान करता हुआ योगाभ्यास करे इन्द्रि के विषयसे मन प्राणादि को ।३२। निवृत्ति करले जैसे कछुआ अपने अङ्गों को समेंट लेता वैसे ही प्रत्याहार में प्रवृत्त हो ।३३। इसप्रकार आत्मा में आशक्त रहने पर आत्मा के द्वाराही आत्माका प्रदर्शन होता हैं । कण्ठसे नाभि तक ब्राह्याभ्यन्तरशुद्धि करता हुआ ।३४। देह को परिपूर्ण कर

प्रत्याहारका साधग करे। प्राणायाम के दश प्रकार और धारणा के दो प्रकार कहे गये हैं।३५।

द्वे धारणेस्मृतेयोगिभिस्तत्वदृष्टिभिः।
तथावैयोगयुक्तस्ययोगिनोनियातात्मनः।३६
सर्वदोषाःप्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते।
वीक्षतेचपरं ब्रह्मप्राकृतांश्चगुणान्पृथक।३७
व्योमादिपरमाना श्चतथात्मानमकल्मषम्।
इत्थंयोगीयताहारःप्राणायामपरायणः।३८
जि ांजितांशनैभूमिमारोहेतयथागृहम्।
दोषान्व्याधीस्तथामोहमाक्रान्ताभूरिनिर्जिता।३९
विवर्धयतिनारोहेत्तस्मद्भूमिमनिर्जिताम्।
प्राणानामुपसरोधात्प्राणायामइतिस्मृतः।।४०

तत्वदर्शी योगीजनों ने दो प्रकार की धारणा बतायी है,नित्यतात्मा होकर साधना करने पर।३६। योगी के सभी दोषों का शमन होता है, और शान्ति मिलती है तथा सभी प्राकृत गुण और परब्रह्म का पृथक् रूप से दर्शन प्राप्त होता है।३७। तथा आकाशादि परमाणु एवं विशुद्ध आत्मा से साक्षात्कार होता है,इस प्रकार नियताहार करता हुआ योगी प्राणायाम-परायण हो।३८। धीरे-धीरे योगभूमि को जीत कर घर के समान उसीमें आरूड़ रहे। यदि भूमि न जीती जाय तो उससे कामादि व्याधियों की।३८। और मोह की वृद्धि होती है, इसलिए बिना जीती हुई भूमि पर आरूढ़ न हो, जिससे पञ्चप्राण संयत हों, वही प्राणायाम है।४०।

धारणेत्युच्यातेचेयंधार्य्यतेयन्मनोयया।
शब्दादिभ्यःप्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मिभिः।४१
प्रत्याह्नियन्तेयोनप्रत्याहारस्ततः स्मृतः।
उपायश्चात्रकथितोयोगिभि परमर्षिभिः।४२
येनव्याध्यादयोदोषानजायन्तेहियोगिनः।
यथातोयार्थिनस्तोयंयन्त्रनालादिभिः शनैः।।४३

आविवेयुस्तथावायु पिवेद्योगीजितश्रमः ।
प्राङ्‌नाभ्यांहृदयेचात्रतृतीयेचतथोरसि ।४५
कण्ठे मुखेनासिकाग्रे नेत्रभ्रू मध्यमूर्द्ध सु ।
किञ्चतस्मात्पर्स्मिमश्चधारणापरमास्मृता ।४६
दशैताधारणा प्राप्यप्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।
नाध्मातःक्षधित श्रान्तोननचव्याकुलचेतनः ।
युञ्जीतयोगंराजेन्द्रयोगीसिद्धयर्थमाहृतः ।
नातिशीतेनचोष्णेवचद्वन्देनानिलात्मके ।४७
कालेष्वेतेषुयुञ्जीतनयोगध्यानतत्परः ।
सशब्दाग्निजलाध्याशेजीर्णगोष्ठे वतुष्पथे ।।४८
शुष्कपर्णचयेनद्यांश्मशानेससरीसृपे ।
सभयेकुपतीरेवाचैत्यवल्तीकसंचये ।४९
देशेष्वेतेषुतत्वज्ञोयोगाभ्यासविवर्जयेत् ।
सत्वस्नुपपत्तोचदुशकालविवर्जयेत् ।।५०

जिससे मन का धारण हो, वह धारण है तथा जिस अवस्था में इन्द्रियों को अपने-अपने विषय से नियतत्मा पुरुष ।४१। प्रत्याहरण करते हैं वही प्रत्याहार है, योग सिद्ध ऋषियों ने इस विषय में जो उपाय कहा है ।४२। उससे योगी के देह में व्याधियों का आक्रमण नहीं हो सकता । पिपासु जैसे पात्रादि से धीरे-धीरे जल पीते हैं ।४३। वैसे ही श्रम को जीत कर योगीजन धीरे-धीरे वायु का पान करते हैं, पहले नाभि में, फिर हृदय में, फिर वक्ष स्थल में ।४४। फिर कण्ठ वदन, नासाग्र, नेत्र, भी, ऊर्ध्व प्रदेश और अन्त में परब्रह्म धारणा करनी उचित है ।४५। इस दश प्रकार से धारणा निर्देश हुआ है, इसकी सिद्धि से ब्रह्म सारूप्य की प्राप्ति होती है । योगीजन सिद्धि प्राप्त करने के लिए अति भाषण क्षुधा, भ्रम एवं चित्त की चंचलता को ।४६। हटाकर प्रयत्न पूर्वक योगाभ्यास करते हैं, अति शीत, अति ग्रीष्म या अत्यन्त वायु चलता हो, उस समय ।४७। ध्यान में तत्पर होकर योगाध्याय करने का निषेध हैं । शब्द युक्त स्थान अग्नि और जल के समीप, प्राचीन गोशाला या चोराहा ।५८। शुष्क पत्रों से युक्त स्थान नदी,

श्मशाम, सर्पादि वाले स्थान, कुए के किनारे अथवा जहाँ सात्विक पदार्थ उपलब्ध न हों, उन सब स्थानों का परित्याग करे।४८-५०।

नासतोदर्शनंयोगेतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
देशाननेताननाद्दत्यमूढत्वाद्योयुतेक्तिवै: ।५१
विघ्नायतस्यवैदोपजायन्तेतन्निवोधमे ।
वाधिर्य्यंजडतालोपःस्मृतेर्मूकत्वनन्धता ।५२
ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः ।
प्रमादद्यागिनोदेषायद्यतेस्युश्चिकित्सितम् ।५३
तेषांबाशयकर्त्तव्ययोगिनांतन्निबोधमे ।
स्निग्धांयवागमृत्युवातत्रैवधारयेत् ।५४
वातगुल्मप्रशान्त्यथमुदावर्त्ततथोदरे ।
यावखूवापिपवनं वायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत् ।५५
तद्वत्कपेमहाशैलस्थिर मनसिधारयेत् ।
विघातेवचसोवाचंबाधिश्रवणेन्द्रियम् ।५६
यथवाऽऽम्रफलध्यायेत्तृष्णार्तोरसनेन्द्रिये ।
यस्मिन्नुजादेहेस्मिस्तदुपकारिणीम् ।।५७

असत् बातों को न देखे, जो मूर्खतासे इन सब बातों का विचार न करके योगाभ्यास करता है, ।५१। उसके कार्यमें सब दोष उत्पन्नहोकर विघ्न रूप हो जाते हैं, उसे बधिरता, जड़ता, मूकता, अन्धता, स्मृति लोप ।५२। या ज्वर की उत्पत्ति होती हैं, यदि प्रमाद बश यह दोष उत्पन्नहो जांय तो उनकी शान्ति से लिए जो चिकित्सा करनी चाहिए ।५३। उसे भी सुनो । भली प्रकार पकायी हुई खिचड़ी स्निग्ध करके भोजन करे ।५४। वात गुल्म, अफरा अथवा उदर रोगों के शमनार्थ खिचड़ी अवश्य खाय, इससे वायु रोग तथा वायु ग्रन्थि रोग भी दूर हो जाता है ।१५। कम्प के उत्पन्न होने पर मन से अत्यन्त भारी पर्वतका धारण करे वाणी के विलुप्त होने पर वाक्य धारण करे और श्रवण शक्ति नष्ट हो जायतो ।५६।जैसे प्यासा मनुष्य जिह्वासे ही लाभचिंतन

करता है, वैसे ही श्रवणेन्द्रिय को धारण करनी चाहिए। इस प्रकार जिस जिस अङ्ग में व्याधि हो जाय उस उस अङ्ग का उपकार करने वाली क्रिया को करे।५७।

धारयेद्धारणामुष्णेशीतांशीतेचदाहिनीम् ।
कीलशिरसिसंस्थाप्यकाष्ठेनताडयेत् ॥५८
लुप्तस्मृतेःस्मृतिःसद्योयोगिनस्तेनजायते ।
द्यावापृथिव्यौवाव्यानीव्याधिधारयेत् ॥५६
अमानुषात्सत्वजाद्वाबाधास्त्वितिचित्सितम् ।
अमानुषसत्वमन्तर्योगिन प्रविशेविद्यदिः ॥६०
वायव्वग्निधारणेनैनंदेहसंस्थविनिदहेत् ।
एवं सर्वात्मनारक्षाकार्यायोगदिदानृप ॥६१
धर्मार्थकाममोक्षाणाँशरीरं साधन यतः ।
प्रवृत्ति लक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तपा ।
विज्ञानं विलयंयाति स्माद्गोप्याःप्रवृत्तयः ॥६२
अलोल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वगन्ध शुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्तिःप्रसाद स्वरसौम्यताचयोगप्रवृत्तेः प्रथमहिचिन्हम्६३
अनुरागं जनोयातिपरोक्षेगुणकीर्त्तनन् ।
नबिभ्यतिचसत्वानिसिद्धं लक्षणामुत्तमम् ॥६४
शीतोष्णादिभिरत्यग्रै यँस्यवाधानविद्यते ।
नभीतिमेतिचान्येभ्यस्यसिद्धिरूपस्थिताः ॥६५

उष्ण में शीतल और शीतलमें उष्ण धारण करे। शिर में सूक्ष्मकाल को स्थित कर काष्ठ से उसे ठोके तो उससे।५८। रोगों की लुप्त स्मृति तुरन्त उदित हो जाती है अथवा स्मृति नष्ट होने पर आकाअ पृथिवी वायु और अग्नि की धारणा करनी चाहिए।५९। अमानुष सत्व से उत्पन्न विघ्नों में इस प्रकार उपचार करे योगियों के हृदय में अमानुष सत्व के प्रवेश करके पर वहाँ।६०। उसे वायु और अग्नि की धारा से जलावे इस प्रकार सर्वातःकरण से अपने देहकी रक्षा करना तो ज्ञानियों का कर्तव्य है।६१। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति का मूल

देह है। प्रवृति रूप वर्णन और विस्मय से ही योगी के विज्ञान का नाश होता है, इसलिए प्रवृत्ति को गुप्त ही रखे ।६२। चंचलता, आरोग्य, अनिष्ठुरता, देह में सुगन्धि का संचार मूत्र-पुरीष की न्यूनता, कान्ति, प्रसाद और ज्वर माधुर्य यह सब योग प्रवृत्ति के प्राथमिक नक्षत्र है। जिस अवस्था के प्रोत होने पर मनुष्य पीछे से उसका गुणगान करें और सब जीव जिससे निर्भय रहें, वही सिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण है।६४। जिसके लिए आयुध शीत उष्णता आदि बाधक न हो सकें और जिस किसी अन्य को भय न हो, उसी को सिद्धि प्राप्त हुई समझो।६५।

३२-योगसिद्धि

उपससर्गाःप्रवर्तन्तेदृष्टेह्यात्मनियोगिनः ।
येतांस्तेसम्प्रवक्ष्यामिसमासेननिबोधमे ।१
काम्याःक्रियास्तथाकामान्मानुषानभिवाञ्छसि ।
स्त्रियोदानफलविद्यामायांकुप्यंधनंदिवम् ।२
देवत्वममरेशत्वंरसायनचयः क्रियाः ।
मरुत्प्रपतनंयज्ञ जलाग्न्यावेशनतथा ।।३
श्राद्धानांसर्वदानानांफलानिनियमास्तथा ।
तथोपवासात्पूर्त्ताच्चदेवतार्चनादपि ।।४
तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्यउपसृष्टोऽभिवाञ्छति ।
चित्तमित्थंवर्तमानयत्नाद्योगीनिवर्तयेत् ।।५
ब्रह्मसङ्गिमनःकुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ।
उसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः ।६

दत्तात्रेय बोले आत्म दर्शन होने पर जो उपसर्ग योनियों को उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें संक्षिप्त रूप से कहता हूँ ।१। उस समय विभिन्न प्रकार की काव्य क्रिया और अनेक प्रकार के भोगोंके उपभोग की इच्छा होती हैं, स्त्री, दान, फल, विद्या, माया, कुए का जल, धन, स्वर्ग ।२। देवत्व, अमरत्व रसायन, वायु युक्त स्थान में कूदना; यज्ञ,

जल तथा अग्नि में प्रविष्ट होना ।३। सब श्राद्धों और दोनों का फल एवं नियम इत्यादि में योगों की इ छा का उदय होता है, उस समय उपवास, पूर्तादि, देव-पूजन ।४। आदि उस-उस कर्म से जब तब मुक्त होने की इच्छा हो, तब-तब उस-उस विषय से यत्न पूर्वक निवृत्ति प्राप्त करे ।५। इस प्रकार विषयों से निवृत्ति लाभ करके ही ब्रह्म साक्षी करते हुए उपसर्ग से बचा जा सकता है ।६।

योगिनः स प्रवर्तन्तेसात्वराजसतामसाः ।
प्रातिभःश्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौ तथापरौ ।७
पञ्चतेयोगिनांयोगविचायकटुकोदयाः ।
वेदार्था काव्यशास्त्रार्था शिल्पान्यशेषतः ।।८
प्रतिभान्तियदस्येतिप्रातिभःसतुयोगिनः ।
शब्दार्थनिखिलान्वेत्तिशब्द गृह्णातिचैवयत् ।९
योजनानांहस्त्रेभ्यः श्रावणःसोऽभिधीयते ।
समन्ताद्वीक्षतेचाष्टौसयदादेवयोनयः ।।१०
उपसर्गतमप्यहुर्दैबमुन्मत्तवद्बुधाः ।
भ्राम्यतेयन्निरालम्बमनोदोषेणयोगिनः ।११
समस्ताचारविभ्रशाद्भ्रमःसपरिकीर्तितः ।
आवर्तइवतोयस्यज्ञानावर्त्तायदाकुलः ।१२
नाशयेच्चितमावर्तउपसर्ग सउच्यते ।
एतैर्नाशितयोगास्तुसकलोदेवयोनयः ।१३
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्तेपुनःपुनः ।
प्रावत्याकम्बलंशुक्लयोगीतस्मान्मनोमम् ।।१४

इन सब उपसर्गो पर विजय कर लेने पर योगी के समक्ष सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से अपरापर विघ्न आक्रमण करते हैं। उनमें प्रातिभ, त्र्यवच, दैत्य आवर्त ।७। यह उपसर्ग भयंकर रूप से योग में विघ्न उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत होते हैं, जिससे वेदार्थ, काव्य, शास्त्रार्थ विद्या और शिल्प का ।८। योगी के मन में प्रतिभास

हो प्रतिभास हो वही प्रसिभा कहा है, जिससे सम्पूर्ण शब्दका अर्थ ज्ञात हो जाय ।९। हजार-हजार योजन दूर का शब्द भी सुनाई पड़े वही श्रावणी हैं जिसके द्वारा देवता के समान हुआ योगी उन्मत्त के समान आठों दिशाओं को देखता है।१०। उसे पंडितों ने दैव उप सर्ग कहा है जिससे योगी का चित्त आकार भ्रष्टता और मन के दूषित योने से निराश्रय रूप से भ्रमण करता है ।११। वही 'भ्रम' कहा जाता है जिस के प्रभाव से ज्ञानावर्त के समान आकुल होकर ।१२। चित्त को विनिष्ट करता है वही आवर्त उपसर्ग कहा गया है । इन सब उपसर्गों के प्रभाव से योनि सम्पूर्ण देवयोनि ।१३। तथा योग से भ्रष्ट होकर संसार चक्र में बारम्बार घूमते हैं इसलिए मन के निमित्त श्वेत कम्बल से आवृत्त हों।१४।

शीररमंडलेदृष्ट्वागुरुज्ञानं ततोहियत् ।
ज्ञानपूर्वोऽपियोयोगोज्ञातव्योवैविपश्चिता ।१५
चिन्तयेत्परमब्रह्मकृत्वातत्प्रवणंमनः ।
योगयुक्तःसदायोगीलब्ध्वाहरौंजितेन्द्रियः ।१६
सूक्ष्मास्तुधारणाः सप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् ।
धरित्रींधारयेद्योगीतत्सोरव्यप्रपिद्यते ।१७
आत्मानं मन्यतेचोर्वातिद्बन्धन्चजहातिसः ।
तथैवाप्सुरसं सूक्ष्मंतद्वद्रपचतेजसि ।१८
स्पर्शवायौतथातद्वद्बिभ्रमतस्तस्यधारणाम् ।
व्योम्नःसूक्ष्मांप्रवृत्तिचशब्दतद्वज्जाहातिसः ।१९
मनसामर्वभूतानांमनस्याविशतेयदा ।
मानसींधारणांविभ्रन्मनःसूक्ष्म चजायते ।२०
तद्वद्बुद्धिमशेषाणांसत्वानामेत्योगवित् ।
परित्यजतिसम्प्राप्यबुद्धि सौक्ष्ममनुत्तमम् ॥२१

शरीर मण्डल में गुरु ज्ञान का दर्शन करे क्योंकि ज्ञान से योग करना सीखना चाहिए ।१५। मन में परब्रह्म का चिन्तन और उन्हीं का ध्यान करे निरन्तर जितेन्द्रिय हो तथा योग युक्त होकर मस्तक में भूरवादि

सात प्रकार की सूक्ष्म धारण करने से उसे उसका सूक्ष्म ज्ञान होगा ।१७। इस प्रकार आत्म चिंतन करने से पृथिवी के बन्धन को काटने में समर्थ होगा । इसी प्रकार जल में सूक्ष्म रस तेज में रूप ।१८। वायु में स्पष्ट और आकाश में सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्द धारण पूर्वक परित्याग करे ।१९। मन के द्वारा समस्त भूत के मन में प्रवेश करके मानसी धारणा करने से ही सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ।२०। इस प्रकार योगी समस्त भूत को बुद्धि में प्रवेश करके अनुत्तमा सूक्ष्म बुद्धिरूप का लाभ करके उसे छोड जाता है ।२१।

परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तानियोगवित् ।
सम्यग्यिवज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते ।२२
एतासांधारणानांतुसप्तानांसौक्ष्मा मात्मवान् ।
दृष्ट्वादृष्ट्वाततःसिद्धित्यक्त्वात्वापराव्रजेत् ।२३
यस्मिन्यस्मिश्चकुरुतेभूतेराग महीपते ।
तस्मिंस्तस्मिन्सम सक्तिसम्प्राप्यसविनश्यति ।२४
तस्माद्विदित्वसूक्ष्माणिससक्तानिपरस्परम् ।
परित्यजतियोदेहीसपरं प्राप्नुयात्पदम् ।२५
एतान्येवतुसंधायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव ।
भूतादीनांविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्ते ।२६
गन्धादिषुसमासक्तिसम्प्राप्यसविनश्यति ।
पुनरावर्त्तंतेभूपसब्रह्मपरमानुषम् ।२७
सप्तैताधारणायोगीसमतीत्ययदिच्छति ।
तस्मिंस्तस्मिंल्लयंसूक्ष्मेभूतेयातिनरेश्वर ।२८
देवानामसुराणांवगन्धर्वोरगक्षसाम् ।
देहेषुलयमायातिसंगनाप्नोतिचक्वचित् ॥२९

जो योगी सात प्रकार के इन सूक्ष्म भावों को जानकर छोड़ता है पुनर्जन्म नहीं लेना होता ।२२। आत्मवान् योगी सात प्रकार की धारणाओं के सूक्ष्मतत्व को बारम्बार सिद्धि का विसर्जन करता हुआ परमगति पाकर ।२३। जिस जिस भूत में अनुरागी होता है उसी-उसी में आसक्ति को प्राप्त होता हुआ विनष्ट हो जाता है ।२४। इसलिए पर-

स्पर सशक्त भूतों को जानकर जो उनका परित्याग कर देता है उसी को परमपद प्राप्ति होती है ।२५। यह सात प्रकार के सूक्ष्म संधानपूर्वक भूतादि राग छोडकर ही सद्‌भाव को जानकर मोक्ष करता है ।२६। हे भूपते ! गन्धादि में आसक्ति ही नाश का कारण है उसी से उसका संसार चक्र में पुनरावर्त्तन होता है ।२७। योगी इन सात प्रकार की धारणाओं का अति क्रमण करके उस-उस भूतमें लीन हो जाता है और देव, दानव, गन्धर्व नाग, राक्षस आदि के देह में लीन होकर भी किसी में आसक्त नहीं होता ।२८-२९।

अणिमालघिमाचैवमहिमाप्राप्तिरेवच ।
प्राकाम्यं चतथेशित्व वशित्वं चतथापरम् ।३०
यत्रकामवसायित्वगुणा नेतांस्तथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरनिर्वाणसूचकान् ।३१
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वं लाघिमागुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वाप्राप्तिर्नाप्राप्यमस्ययत् ।३२
प्राकाम्यमस्यव्यापित्वादीशित्वचेश्वरोयतः ।
वशित्वाद्वशिमानामयोगिनःसप्तमोगुणः ।३३
यत्रेच्छास्थानमप्युक्त यत्रकामावसायिताः ।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनःप्रोक्तमष्टधा ।३४
मुक्तिससूचकंभूपपर निर्वाणमात्मनः ।
ततोनजायतेनैववर्द्धतविनश्यति ॥३५

वह अणिमा, लघिमा महिमा प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और काम वशित्व इन आठ प्रकार के नर्वाण प्रदायक ऐश्वर्यात्मक गुणों को प्राप्त करता है।३०-३१। जिसके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म हो सके वह अणिमा हैं, जिसके द्वारा सब कार्योंमें शीघ्रता उत्पन्न हो सके वह लघिमा है, जिसके द्वारा सबका पूजनीय हो सके वह महिमा है, जिसके द्वारा समस्त इच्छित की प्राप्ति हो सके वह प्राप्ति है ।३२। जिसके द्वारा व्यापक शक्ति उत्पन्न हो सके वह प्राकाम्य है, जिसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो वह ईशित्व है, जिसके द्वारा सब वशीभूत हो सके,

वह वशित्व हैं यह वशित्व ही योगियों का सातवाँ गुण है ।३३। जिसके द्वारा स्वेच्छानुसार गमन कर सके और स्वेच्छानुसार कार्य सिद्ध हो सके वह काम वसायित्व है । आठ प्रकार के गुणों से ईश्वर के सब कार्य करने में समर्थ हो जाता है ।३४। यह सब गुण मोक्ष के सूचक हैं इनके मिलने पर मुक्तिकाल उपस्थित समझे । फिर इसे जन्म ग्रहण वृद्धि और मरण के चक्र में नहीं पड़ना होगा ।३५।

नापिक्षयमवाप्नोतिपरिणामंनगच्छति ।
छेद्क्लेदतथादाह्शोषंभूरादितोनचः ।३६
भूतवर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यै र्ह्रियतेनच ।
न चास्यसन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्तातैर्नयुज्यते ।३७
यथाहिकनकखण्डमपद्रव्यवदग्निना ।
दग्धदोषद्वितीयेनखण्डेनैक्यं ब्रजेन्नृपः ।३८
नतिशेषमवाप्नोतितद्वद्यगाग्निनायतिः ।
निर्दग्धदोषस्तेनैक्यप्रयातिब्रह्मणासह ।३९
यथाग्निरग्नौस क्षिप्तःसमानत्वमब्रजेत् ।
तदाख्यस्तन्मयोभूतोनगृह्य तविशेषतः ।४०
परेणब्रह्मणातद्वत्प्राप्यैक्यंदग्धकिल्विषः ।
योगीयातिपृथग्भावं नकदाचिन्महीपते ।४१
यथाजलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति ।
तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिनः परमात्मनि ॥४२

उसको यक्ष की प्राप्ति कभी नहीं होगी, उसे कभी भूतादि भूतोंसे छिन्न भिन्न, क्लिन्न दग्ध अथवा शुष्क नहीं करना पड़ेगा।३४। शब्दादि उसे अपहृत न कर सकेंगे, विषयके साथ उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा, वह भोक्ता भी न होगा तथा उनसे उसका स्पर्श भी न हो सकेगा ।३७। हे राजन् ! जैसे स्वर्ण के टुकड़े को अपद्रव्य के समान अग्नि में तपा कर दोष रहित करने पर एक निर्मल स्वर्ण खण्ड का संयोग होता है ।३८। किसी प्रकार का प्रभेद उसमें नही दीखता वैसे ही योगाग्नि में रागद्वेषादि दोषों को तपाने से योगी भी ब्रह्म के साथ संयोग प्राप्त

करता है ।३६। जैसे अग्नि में अग्नि डाले तो वह अभेद होती है तथा तदात्म हो जाती है ।४०। वैसे ही दोनों के जल जाने पर योगी भी ब्रह्म से तदात्म रूप को प्राप्त होता है उसका पृथक् भाव नहीं रहता ।४१। जिस प्रकार जलमें गिरा हुआ सम भाव होता है वैसे ही योगियों का आत्म भी ब्रह्म में सम्भाव हो जाता है ।४२।

३३- योगचर्या

भगवन्योगिनश्चर्य्याश्रोतुमिच्छामितत्वत: ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथायोगीनसीदति ।१
मानापमानौयावेत्तौ त्युद्वेगकरौनृणाम् ।
तावेवविपरीतार्थौ योगिन:सिद्धिकारकौ ।२
मानपमानौयावेतौतावेवासुर्विषामृते ।
अपमानोऽमृतत्रमास्तुविषमंविषम् ।३
चक्ष पूतन्यसेत्पादवस्त्रपूतंजल पिवेत् ।
सत्यपतांवदेद्वाणीबुद्धिपूतंचचिन्तयेत् ।४
आतिथ्यश्राद्धज्ञेषु देवयात्रेत्सर्वेषुच ।
महाजनं च सिद्ध्यर्थंनगच्छेद्योगवित्क्वचित् ।५
व्यस्तेविधूमेव्यङ्गारसर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।
अटेतयोगविद्भेक्ष्यनतुतेष्वेवनित्यश: ।६
यथैमवत्रमन्यतेजना: परिभवन्तिच ।
तयुक्तश्चरेद्योगीसतांवत्मनदूषयन् ।।७

अलर्क बोले—हे भगवन् ! योगियों के जिस आलरण से ब्रह्मपथके अनुगामी होकर नाश को प्राप्त नहीं होता है उसे मैं यथार्थ रूप से सुनना चाहता हूं ।१। दत्तात्रेयजी बोले-मान अपमान ही प्रीति और उद्वेग के कारण है, यदि योगी इन दोनों को विपरीतार्थक अर्थात् मान

अपमान को मान समझते तो यह सिद्धि देने वाले होते हैं ।२। मान अपमान ही अमृत और विष है मान को विष और अपमान को अमृत माने ।३। नेत्र से देखकर पैर रखे, जल को वस्त्र से छानकर पीवे ,सत्य से पवित्र हुए वचन ही बोले तथा बुद्धि पूर्वक विचार कर ही चिन्तन करे ।४। आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सवमें न जाय तथासिद्धि के लिए महाजनों के पास भी गमन न करे ।५। जब गृहस्थ के गृह की भी अग्नि शान्त हो जाय सब मनुष्य भोजन करके निश्चन्त होलें उसी समय योगी को भिक्षाके लिए जाना चाहिए ।२। जिससे मनुष्य अपमान करे ऐसी चेष्टा करता हुआ साधुत्व को कभी दूषित न करता हुआ ही विचरण करे ।७।

भैक्ष्यंचरेद्गृहस्थेषुयायावरगृहेषु च ।
श्रेष्ठातुप्रणमाकेतिबृत्तिरस्योपदिश्यते ॥८
अथनित्यगृहस्थेषुशालीनेषुचरेद्यतिः ।
श्रद्दधानेषुदान्तेप्रोत्रियेषुमहात्मसु ॥९
अतऊर्ध्वपुनश्चापिअदुष्टापतितेषुच ।
भैक्ष्यचर्याविवर्णेषुजघन्यावृत्तिरिष्यते ॥१०
फलमूलप्रियंगु वाकणविण्याकसक्तवः ॥११
इत्येतेचशुभाहाययोगिनांसिद्धिकारकाः ।
तत्प्रयंज्यान्मुनिर्भक्तयापरमेणसमाधिना ॥१२
अप पूर्वसुक्रत्प्राश्यतूष्णींभूत्वासमाहितः ।
प्राणायतिततस्यप्रथमाह्यहुतिः स्मृताः ॥१३
अपानायद्वितीयातुसमानयेरिचापरा ।
उदानायचतुर्थीस्याद्वयानायेतिपंचमी ॥१४

गृहस्थों के अथवा यायाबर पुरुषों के घर से ही भिक्षा ले, उसमें प्रथम वृत्ति ही प्रधान मानी गयी है ।८।जो गृहस्थ लज्जावान्,श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय महात्मा, निर्दोष तथा अपतित हैं,उसीके घर भिक्षामांगे विवर्ण पुरुष के यहां से भिक्षा लेनेको खजन्य वृत्ति कहा गयाहै ।९-१०। यवागू, मट्ठा,दुग्ध, यावककुलथी, फल, मूलप्रियगु, कण, पिण्याक, सत्तू इनकी भिक्षाले ।११। यह वस्तुएं कल्याण करने और सिद्धि देने वाले

आहार के रूप में निर्दिष्ट है, इसलिए सावधानी पूर्वक यह वस्तु उपभोग करे ।१२। भोजन के पहिले मौन रहकर एकबार जल पीकर प्राणाय स्वाहा कहता हुआ आहार करे, योगियों की यही प्रथम आहुति मानी गयी है ।१३। फिर 'अपानाय' कहकर दूसरी, 'समानाय' कहकर, तीसरी, 'उदानाय' कहकर चौथी और 'व्यानाय' कहकर आहुति दे।१४।

प्राणायामैःपृथक्कृत्वामेषंञ्जीतकामतः ।
अपः पुनःसकृत्प्राश्यआचम्यहृदयंस्पृशेत् ॥१५
अस्तेयब्रह्मचर्यंचत्यागोलोभस्तथैवच ।
व्रतानिपञ्चभिक्षूणामर्हिसापरमाणिवै: ॥१६
अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् ।
नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाः परिकीर्तिताः ॥१७
सारभूतमुपासीतज्ञानंयन्कार्यसाधकम् ।
ज्ञानामांवहूतायेययोगविघ्नकरीहिसा ॥१८
इदंज्ञे यमिदंज्ञे यमितियस्तृषितश्चरेत् ।
अपिकल्पसहस्रे षुनैवज्ञयमवाप्नुयात् ॥१९
त्यक्तसङ्गोजितक्रोधोलघ्वाहारोजितेन्द्रियः ।
बिधायबुद्धयाद्वाराणिमनोध्यानेनिवेशयेत् ॥२०
शून्येय्वेवाकाशेषुगुहाषुवनेषु च।
नित्ययुक्तःसदायागोध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥२१

फिर प्राणायाम द्वारा पृथक् करते हुए स्वेच्छानुसार शेष भोजन करे, फिर एकबार जल पीकर आचमन करे और हृदय को स्पर्श करे ।१५। अस्तेय ब्रह्मचर्य, त्याग अलोभ, अहिंसा यह पाँच परम व्रतभिक्षुक के लिए कहे गये है ।१६। तथा अक्रोध गुरु सेवा, शौच, लघु आहार और नित्य स्वाध्याय और यह पाँच नियम बताये हैं ।१७। कार्य सिद्धि वाले साररूपी ज्ञान की ही आलोचना करे क्योंकि अनेक प्रकार की ज्ञान विषयक चर्चा से योग में विघ्न पड़ती है ।१८। जो योगी ज्ञेय पदार्थ की जिज्ञासा करते हुए तृषित चित्त से भ्रमते हैं

उनको हजार कल्प में ज्ञेय पदार्थ की उपलब्धि नहीं हो सकती ।१९। सङ्ग का परित्याग करता हुआ अक्रोधी, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धियोग से विधान करके चित्त को ध्यान मग्न करे ।२०।निर्जन स्थान, गुफा तथा वन में जाकर सम्यक विधानपूर्वक ध्यान रत हो ।२१।

वाग्दण्ड:कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रय: ।
य एतेनियतादण्डा:सत्रिदण्डीमहायति: ॥२२
सर्वमात्ममयंयस्यसदज्जागदीदृशम् ।
गुणागुणमयंतस्यक:प्रिय:कोनृपाऽप्रिया: ॥२३
विशुद्ध बुद्धि:समलोष्ठकाञ्चन:समस्तभूतेषुचतत्समाहित: ।
स्थानपरं शाश्वतमव्ययचयतिर्हिमत्वानपुन.प्रजायते ॥२४
वेदाच्छ्रेष्ठा:सर्वयज्ञक्रियाश्चयज्ञाज्जप्यंज्ञानमागश्चजप्यात् ।
ज्ञनाद्धयानं संगरागव्यपेततस्मिन्प्राप्तेशाश्वतस्योपलब्धि:।२५
समाहितोव्रह्मपरोऽप्रसादोशुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेद्रि: ।
समाप्नुयाद्योगमिमहात्माविमुक्तिप्राप्नोतितत.स्वयोगत:।२६

वाग्दड कर्मदण्ड और मनोदण्ड को वश में रखने वाला त्रिदण्डी ही महायती कहा जाता है ।२२। इस सत्-असत् गुण, अगुण. युक्त दिखाई पड़ने वाले विश्वको जो योगी आत्मभय मानते हैं,उनके लिए कौन प्रिय और कौन अप्रिय है ? ।२३। जो विशुद्ध बुद्धि से लोहा और सुवर्ण को समान मानते तथा समस्त भूत में समाहित होकर सर्वाधारा, शाश्वत एवं अव्यय ब्रह्म को सर्वत्रविद्यमान देखते हैं उन्हें पुनर्जन्म नहीं धारण करना होता ।२४। निखल वेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट हैं, यज्ञ से जप, जप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से नि:सग और रागहीन ध्यान श्रेष्ठ है, क्योंकि इस ध्यान योग के द्वारा ही शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति है ।२५। जो सावधानी से ब्रह्मपरायण. प्रमादरहित एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योगसाधन करते हैं, वे आत्मा के संयोग को पाकर मोक्षलाभ करते हैं ।२५।

३४—ओंकार स्वरूप कथन

एवयोवर्त्त योगीसम्यन्योगव्यवस्थितः ।
नसब्यावर्तितुं शण्योजन्मान्तरशतैरपि ॥१
दृष्ट्वाचपरमात्मानंप्रत्यक्षंविश्वरूपिम् ।
विश्वसादशिरोग्रावंविश्वेशविश्वभावम् ॥२
तत्प्राप्तयेमपरपुण्यमोमित्येकाक्षर्जपेत् ।
तादेवाध्ययनतस्यस्वरूपश्रृण्वतः परम् ॥३
अकारश्चतथोकारोमकारश्चाक्षरत्रयम् ।
एताएवत्रयोमात्राः सात्वराजसतामसाः ॥४
निर्गुणायोगिगम्याऽन्याचार्धमात्रोध्वंसस्थिता ।
गान्धारोतिचविज्ञेयागान्धारस्वरसंश्रया ॥५
पिपीलिकागतिस्यशर्प्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ।
यथाप्रयुक्तओङ्कारः प्रतिनिर्य्यातिमूर्द्धनि ॥६
तथोङ्कापमयोयोगीत्वक्षरेत्वक्षरोभवेत् ।
प्राणोधनुः शरीह्यात्माब्रह्मवेध्यमनुत्तमम् ॥७

दत्तात्रेयजी बोले—जो योगी इसप्रकार सम्यक् विधान पूर्वक योग युक्त होते हैं वह सौ-सौ जन्मान्तर में भी अपने पद से निवृत्त नहीं होते ।१। जो विश्वस्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन हैं तथा विश्व ही जिनके पाद्ग्रीवा और मस्तक हैं उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी ।२। उनको पाने को निमित '३ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे, यही उनका स्वाध्याय है इसी ॐकार स्वरूप का श्रवण करना चाहिए ।३। अकार, उकार और मकार यही तीन अक्षर ॐकार स्वरूप है, इन्हें तीन मात्रा समझो । यही मात्रा के क्रम से सात्विक, राजसिक और तामसिक होते हैं ।४। तथा ओंकार में एक अर्द्ध मात्रा और है,वह तीनों गुणों से परे है ऊर्ध्व में अवस्थित योगियों को गम्य है इसमें गांधर स्वर का आश्रय होने से यह गांधारी नाम से प्रसिद्ध है ।५। यह मात्रा चींटीं के समान गति और स्पर्श वाली है शिरोभाग में दिखाई देती है, तथा जिस प्रकार ओंकार प्रयुक्त यह

शिरोभाग में जाती हैं ।६। वैसे ही योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को वाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने ।७।

अप्रमत्ते नवेद्धव्यश रवत्तान्मयोभवेत् ।
ओमित्येतत्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽनय: ॥८
विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋृक्सामानियजूषिच ।
मात्रा: सार्द्धाश्चतिस्त्रश्चविज्ञेया: परमार्थत: ॥९
तत्रयुक्तस्तुयोयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ।
अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुद: ॥१०
सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोक: परिकल्प्यते ।
व्यक्तातुप्रथामामात्राद्वितीयव्यक्तपज्ञिता ॥११
मात्रातृतीयाचिच्छक्तिरधमात्रापरपद्रम् ।
अनेनैवक्रनेणैताविज्ञेयायोगभूमय: ॥१२

प्रमाद रहित होकर बाण के समान ब्रह्म को सिद्ध करने में तन्मय हो सकता है । ओंकार ही त्रिवेद त्रैलोक्य और तीनों अग्नि ।८। ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा ऋक्, यजु, साम स्वरूप है परम अर्थ से ओंकार की साढ़े तीन मात्रा है ।९। इस ओंकारमें मिलकर योगी उसमें लीन होतेहैं, अकार भूलोक उकार भुवर्लोक ।१०। तथा व्यञ्जन युक्त मकार स्वर्लोक कहा गया हैं उसके प्रथम मात्रा व्यक्त, द्वितीय अव्यक्त, ।११। तृतीय विच्छक्ति और चतुर्थ परमपद हैं, इस प्रकार क्रम पूर्वक इसे योग भूमि समझो ।१२।

ओमित्युच्चारणात्सर्वगृहीतंसदसद्भवेत् ।
ह्रनस्वातुप्रथमामांद्वितीयादैर्ध्यसंतुता ॥१३
तृतीयाचप्लुताधख्यिावचस: सानगोचरा ।
इत्येत्तदक्षर ब्रह्मापरमोंकारसंज्ञितम् ॥१४
यस्तुवेदनर: सम्यक्तयाध्यायतिवापुन: ।
संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधवन्धन: ॥१५

प्राप्नोतिब्रह्मणिलयंपरमेपरमात्मनि ।
अक्षीणकर्मबन्धश्चज्ञात्वामृरिष्टतः ॥१६
उक्तक्रान्तिकालेसस्मृत्यापुनर्योगित्वच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेनसिद्धयोगेनवापुनः ।
ज्ञेयान्यारिष्टातिसदायेनोत्क्राँतौनसीदति ॥१७

केवल ॐ का उच्चारण करते ही सदैव सत्-असत् का ग्रहण हो जाता है। प्रथम मात्रा और द्वितीय मात्रा दीर्घ है।१३। तृतीया मात्रा प्लुत स्वरूप है और अर्द्ध मात्राका तो स्वरूप वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इस प्रकार जो योगी ओंकार स्वरूप अक्षर परब्रह्म को ।१४। जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़ कर ।१५। उस परब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं, यदि उनके कर्म बधन क्षीण न हों तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु काल को जानकर ।१६। उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्वको पुनः प्राप्त होते है इसलिए सिद्ध या असिद्ध के साभी योगी हो अरिष्ट का ज्ञान होना ही चाहिए, क्योंकि अरिष्ट के ज्ञान से मरणकाल में दुःख की प्राप्ति नहीं होगी ।१७

३५-अरिस्ट कथन

अरिष्टानिमहाराजश्णुवक्ष्यासितानिते ।
येषामालोकनान्मृत्युनिजजानतियोगवित् ॥१
देवमार्गध्रुवंशुक्रंसोमच्छयामरुन्धतीम् ।
योनपश्येन्नजीवेत्सनरःसंवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिबिम्वसूर्य्यंस्ववह्निचैवांशुमालिनम् ।
दृष्ट्वैकादशमासत्तुनरोनोर्ध्वंतुजीवति ॥३
वान्तेमूत्रपुरीषेचयःस्वर्णरजततथा ।
प्रत्यक्ष कुरुतेस्वप्नेजीवेत्सदशमासिकम् ॥४

दृष्ट्वातृतपिश चादीन्गन्धर्वनगराणि च ।
सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति ।।५
स्थूल:कृश कृश:स्थूलोलोऽकस्मादेवजायते ।
प्रकृतेश्चनिवर्तेततस्यायुश्चाष्टमासिकम् ।।६
खण्डंयस्यपदंपार्ष्ण्यापादस्याग्रे चवाभवेत्।
पाशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ।।७

दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन् ! अब तुम्हारे प्रति समस्त अरिष्टका वर्णन करता हूँ,श्रवण करो, इन्हें देखकर योगी अपना मृत्युकाल समझने लगे ।१। देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र,चन्द्र, स्वच्छ या और अरुन्धती इनको जो नहीं देख सकता वह सम्वत्सर के पश्चात् ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।२। सूर्य का बिम्ब रश्मियों से रहित तथा अग्नि की किरणों युक्त जो देखे, वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहता ।३। स्वप्नावस्था में मूत्र पूरीष और वमन में जिसे स्वर्ण अथवा चाँदी दिखाई दे, वह दश महीने से अधिक नहीं जीता ।४। जो प्रेत, पिशाच, गन्धर्वनागर अथवा स्वर्णिम वृक्ष को देखता है वह नो मास ही जीवित रहता है ।५। जो सहसा स्थूल, होकर कृश होना और तुन कृश से स्थूल हो जाय वह आठ महीने ही प्राण धारण करता है ।६। रेत अथवा कीचड़ में पाँव जमाने पर जिसकी एड़ी या पांब के अगले भाग का चिह्न खडित दिखाई पड़े उसकी परमायु सात महीने ही समझो ।७।

गृध्रकपोत:काकोलोवायसोवापिमूर्द्ध नि ।
क्रव्यादोबाखगोनलषण्मासायु: प्रदर्शक: ।।८
हन्यतेकाकपंक्तीभि:पाँशुवर्षेणवानर: ।
स्वांच्छायामन्यथ दृष्ट्वा चतु:पंचसजीवति ।।९
अनभ्रे विद्यतंदृष्ट्वादक्षिणाँदिशमाश्रिताम् ।
रात्राबिन्द्रधनुश्चापिजीवितंद्वित्रिमासिकम् ।।१०
घृतेतलेतथादर्शेतोयेवानात्वात्मनस्तनुम् ।
य:पश्येदशिरस्कांवामासादूर्ध्वंनजीवति ।।११

यस्यवस्तसभोगन्धोगात्रेशवमोऽपिवा ।
तस्यार्द्धं मासिवज्ञे यंयोगिनोनृपजीवितम् ॥१२
यस्यर्वस्नातमात्रस्यहृत्पादमवशुष्यते ।
पिवतश्चजलंशोषोदशाहृपोपिजीवति ॥१३
सभिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानं निकृन्तति ।
हृष्यतेनाम्बुसंस्पर्शात्तिस्यमृत्युरुपस्थितः ॥१४

गृद्ध, उलूक,काक अथवा क्रव्याद या अन्य कोई नीलवर्ण का हिंसक पक्षी उड़कर सिर आ बैठे तो छः मास ही जीवत रहता है ।८। जो काक पंक्ति से अथवा धूलि की वर्षा से आहत हो जाय तथा जो अपने देहकी छाया को विपरीत देखे यह चार या पांच माससे अधिक जीवित नहीं रहता ।६। विना मेंघके दक्षिण दिशा में जिसे बिजली चमकती हुई दिखाई पड़े अथवा रात्रि के समय इन्द्रधनुष दिखाई दे वह दो तीन मास तक ही जीवनधारण करता है ।१०। जिसे घृत, तेल, दर्पण और जल में अपना स्वरूप दिखाई न पड़े अथवा अपने शरीर को मस्तक रहित देखे, वह एक मास से अधिक जीवित नहीं रहता ।११। जिसके शरीरसे मुर्दे जैसी गन्ध आती हो वह एक पक्ष ही जीवित रहताहै।१२। जिसका हृदय और पांव स्नान करते ही सूखजाय अथवा जल पीते ही पुनः प्यास स्थान को वायु छिन्न-भिन्न करदे तथा जल के स्पर्श से जिसे रोमांचन हो उसका मृत्यु जाल ही उपस्थित समझें ।११।

ऋृक्षवानग्यानस्थोगान्ययोदक्षिणांदिशम् ।
स्वप्नेप्रयातितस्यापिनमृत्युः कालमिच्छति ॥१५
रक्तकृष्णाम्बरधागायन्तीहसतीचयम् ।
दक्षिणाशांनयेन्नरींस्वप्नेसीपिनजीवति ॥१६
नग्नक्षपणकंस्वप्नेहसमानंमहाबलम् ।
एवंसंत्रीक्ष्ववलगन्तंविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥१७
आपस्तकतलाद्यस्तुनिमग्नंपङ्कसागरे ।
स्वप्नेपश्यत्यथात्मानंससद्योम्रियतेनरः ॥१८

केशाङ्गारांस्तथाभास्मभुजङ्गान्निर्जलाँनदीम् ।
दृष्ट्वास्वप्नेदशाहात्तु मृत्युरेकादशेदिने ॥१६

करालैर्विकटैस्कृष्णै पुरुषरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताडितत्स्वनेसद्योमृत्यु लभेन्नरः ॥२०

सूर्योदयेयस्यशिवाक्रोशन्तीयातिसंमुखम् ।
विपरीतपरीतंवाससद्योमृत्युमृच्छति ॥२१

जो स्वप्नावस्था में रीछ या वन्दर के यान में चढ़ कर गाता हुआ दक्षिण दिशा की तरफ जाय उसका मृत्युकाल आया समझें ।१५। जिसे लाल काले वस्त्र पहिने हुए हास्य मुख से गाती हुई स्त्री स्वप्न में दक्षिण दिशा में ले जाय उसकी मृत्यु शीघ्र होती है ।६। स्वप्न में महाबली नग्न। क्षपणक सन्यासी को एकाकी हँसता हुआ जाता देखे तो मृत्युकाल समीप जानें ।१७। तथा जिसे स्वप्न में अपना शरीर मस्तक तक कीचड़ में धसा हुआ दिखाई, दे उसका मरणकाल भी निकट समझें ।१८। स्वप्न में केश, अङ्गार भस्म सर्प शुष्क नदी दिखाई तो ग्यारहवें दिन उसकी मृत्यु होती है ।१६। स्वप्न में जिसे कराल तथा विकट आकर वाले कृष्णवर्ण पुरुष सशास्त्र आकर पत्थर से मारे उसकी मृत्यु शीघ्र होने वाली समझो ।२०। जिसके सामने, पीछे अथवा चारों ओर सूर्योदय काल में गीदड़ी आ जाय वह शीघ्र ही मरता है ।२१।

यस्यवैभुक्तमात्रस्यहृदयंबाधतेक्षुधा ।
जायतेदन्तघर्षश्चसगतायुनसंशयः ॥२२

दीपगन्धनयोवेत्तिास्यत्यह्निनतथानिशि ।
नात्मानंपरनेत्रस्थंवीक्षतेनसजीवति ॥२३

शक्रायुधंचार्द्धरात्रेदिवाग्रहतारास्तथा ।
दृष्ट्वामन्येतसंक्षीणमात्मजीवितमांत्मवित् ॥२४

नासिकावक्रतामेतिकर्णयोनमनोन्नती ।
नेत्रंचबामस्रवतियस्यतस्यायुरुद्गतम् ॥२५

आरक्ततामेतिमुखंजिह्वाश्यामतांयदा।
तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥२६
उष्ट्ररासभयानेनयःस्वप्नेदक्षिणांदिशम्।
प्रयातितंचजानीयात्सद्योमृत्यु नरेश्वर ॥२७
पिधान्यकर्णौ निर्घोषनश्रृणोत्यात्मसम्भवम्।
नश्यतेच्चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्यसोऽपिजीवति ॥२८

भोजन करके उठते ही जो तुरन्त भूख से व्याकुल हो जाय तथा दंत घर्षण होने लगे, उसकी आयु समाप्त ही समझो ।२२। जिसकी नासिका को दीप गन्ध का ज्ञान न हो, जो दिन या रात्रि भय को प्राप्त हो तथा जो अपने प्रतिबिम्ब को दूसरे के नेत्र में न देख सके उसकीभी आयु समाप्त हुई समझो ।२३। यदि आधी रात में इन्द्र धनुष और दिन में तारे दिखाई दें तो उसकी भी आयु को निःशेष हुआ समझो ।२४। जिसकी नाक टेढ़ी होजाय, दोनों कान ऊँचें नीचे प्रतीत हों अथवा बाँये नेत्र से आंसू गिरते हों, उसकी आयुभी सम्पूर्ण हुई समझिये ।२५। मुख लाल, जिह्वा श्याम हो जाय तो अपना काल समीप समझे ।२६। स्वप्न में ऊँट या गधे के यान में चढ़कर दक्षिण की ओर जाय तो शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।२७। दोनों कान ढक लेने पर अपना शब्द सुनाई न पड़े अथवा जिसके नेत्रों से कुछ दिखाई न पड़े वह शीघ्र ही मरता है।

पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारंविधीयते।
नचोत्तिष्ठतियश्वभ्रत्तदन्तंतस्येजीवितम् ॥२९
ऊर्ध्वाचदृष्टिर्नचसप्रतिष्ठारक्तापुनः संपरिवर्तमाना।
मुखस्यचोष्माशुषिरंचनाभेः शंसंतिपु सामपरंशरीरम् ॥३०
स्वप्नेऽग्निप्रविशेद्यस्तुनचनिष्क्रमतेपुनः।
जलप्रवेशादपिवातदन्ततस्यजीवितम् ॥३१
यश्चाभिहन्यतेदुष्टभूतैरात्रावथोदिवा।
समृत्युंसप्तरात्र्यन्तेननः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३२

स्ववस्त्रममलंशुक्लंरक्तं पश्यत्यथाऽसितम् ।
य पुमान्मृत्युमासन्नंतस्यापिहिविनिर्दिशेत् ॥३३
स्वभाववैपरीत्यंतुप्रकृतेश्चविपर्ययः ।
कथयन्तिमनुष्याथांसदासन्नोयमान्तकौ ॥३४

स्वप्न में जो गढ़े में गिरकर उससे निकलने का मार्ग न पा सके या गिरकर उठनेमें असमर्थ हो तो भी उसकी आयु निःशेष समझो।२५। जिसकी दृष्टि उर्ध्व भागमें नहीं जमती, लाल रङ्गकी होकर वारम्बार घूणित या चंचल हो जाय, तथा जिसका मुख उष्णता से युक्त और नाभि विस्तृत हो जाय वह शरीर त्यागकर अन्य देह धारण करता है ।३०। स्वप्नमें जो अग्नि या जलमें धसकर फिर बाहर न निकले उसका जीवन समाप्त समझो ।३१। जो दिन अथवा रात्रि में दुष्ट भूतों से ताड़ित हो वह सात दिनमें मर जाता है ।३२। जो अपने पहिने हुए श्वेत वस्त्रों को लाल या काले रङ्ग के देखता है, उसका मरण काल समीप समझो । स्वभाव के विपरीत होने तथा प्रकृतिका विपपर्यय होने से यम और अन्तक उन पुरुष के समीप होते हैं ।३४।

येषांविनीतः सततयेऽस्यपूजस्यतमामताः ।
तानेवचावजानातितानेवचविनिन्दति ॥३५
देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्रांश्चनिन्दति ।
मातापित्रोर्नसत्कारज मातृणांकरोति च ॥३६
योगिनांज्ञानविदुषामन्येषांचमहात्मनाम् ।
प्राप्तेतुकाले पुरुस्तद्विज्ञेयंविचक्षणैः ॥३७
योगिनांसततंयत्नादरिष्टान्यवनीपते ।
संवत्सरान्तेतज्ज्ञेयंभलदातिदिवानिशम् ॥३८
विलोक्याविशदाचेषांफलपक्तिःसुभीषणा ।
विज्ञायकार्योमनसिसचकालोनरेश्वर ॥३९
ज्ञात्वकालंचतंसम्यगभयस्थान समाश्रितः ।
युञ्जीतयोगीकालोऽसौयथानास्याफलोभवेत् ॥४०

दृष्ट्वाऽरिष्टंतथायोगीत्यक्त्वावरणजंभयम् ।
तत्स्वभावतदालोक्यकालोयाबद्धिपाकदः ।।४१
तस्यभागेतथैबाह्नोयोगंयुञ्जीतयोगवित ।
पूर्वाह्णे चापराह्णेचमध्याह्न चापितद्दिने ।।४२
यत्रवाररजनीभागेतदरिष्टंनिरीक्षितम् ।
तत्रवताद्यु ञ्जीतयावत्प्राप्तंहितद्दिनम् ।।४३

कालके प्राप्त होने पर ही मनुष्य पूजनीय पुरुषों का निरादर तथा निन्दा करता है ।३५। देव पूजन से विमुख होता, वृद्धों और विप्रों की निन्दा करता तथा माता पिता और जामाता का सत्कार ।३६। करता और योगी ज्ञानी तथा अन्य साधु-सन्तों के सत्कार से विमुख होता है, उसकी भी आयु निःशेष समझें ।३७। हे राजन्! योगियों को यह ज्ञान रखना चाहिए कि यह सभी अरिष्ट संवत्सर के अन्तमें रात्रि हो या दिन फल देते हैं ।३८। इन सभी भीषण फलों पर दृष्टि रखे इनका ज्ञान सहजमें ही हो जाताहै इन्हें भली प्रकार जानकर उनके उपस्थित-कालका ध्यान रखे ।३९। उसके उपस्थित कालको जानकर भय रहित स्थान का आश्रय लेकर योग में निमग्न हो, जिससे कालका वश न चल सके ।४०। अरिष्ट को देखकर उससे होने वाले मृत्यु भयको त्याग-कर अरिष्ट के स्वभाव पर विचार करे और जब वह समय उपस्थित हो ।४१। दिन के उसी भाग में योगी योग निमग्न हो, रात के पूर्वाह्न अथवा अपराह्न में ।४२। अथवा रात्रि में, जिससमय भी अरिष्ट दिखाई पड़े, उसी समय योग मग्न होना चाहिए जब तक वह मृत्यु का दिन न आवे, तब तक इसी प्रकार योग क्रिया में लगा रहे ।४३।

ततस्त्यक्त्वाभयंसर्वजित्वातंकालमात्मवान् ।
तत्रैवावसथेस्थित्वायत्रवास्थैर्यमात्मनः ।।४४
युञ्जीतयोगनिर्जित्यत्रान्गुणान्परमात्मनि ।
तन्मयश्चात्मनाभूत्वाचिद्वत्तिमपिसंत्यजेत् ।।४५
ततःपरमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् ।
यद्बुद्धेर्यन्नचाख्यातुंशक्यतेतत्समश्नुते ।।४६

एतत्सर्वंसमाख्यातंतबालकंयथार्थवत् ।
प्राप्स्यसेयेनवद्ब्रह्मसंक्षेपात्तन्निबोधमे ।।४७
शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिः पयः ।
समुत्सृजतिनायुक्तःसोपमामयोगिनणिस्मृता ।।४८
यथार्करश्मिसंयोगादर्कक्रान्तोहुताशनम् ।
आविष्कोरोतिनैक सन्नुपमासाऽपियोगिनः ।।४९

यह आत्मावन् होकर सम्पूर्ण भय को छोड़कर और उस समय को जीतकर उसी गृह में या जहाँ भी मन स्थिर रह सके ।४४। निवास करता हुआ तीनों गुणों पर विजय प्राप्त करके, एकातिक चित्त से योगयुक्त हो कर परब्रह्म में अभिनिविष्ट हो तथा आत्मा की तन्मयता पूर्वक चित्त वृत्ति का सर्वथा त्याग करे।४५। ऐसा करके ही वह इन्द्रिया तीत, बुद्धि द्वारा अगम्य और वाणी द्वारा अकथनीय परम निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं ।४६। यह सब यथार्थ रूप से मैंने तुम्हें बताया है, अब जिस प्रकार ब्रह्म पदार्थ की उपलब्धि हो सकती है, उसे संक्षिप्त से कहता हूं, श्रवण करो ।४७। चन्द्रमा की किरणों के संयोग से चन्द्र-कान्त मणि से जल निकलता है। योगियों की योग सिद्धि का उपाय भी यही है अर्थात योग में मन न लगानेसे आनन्दका संचार कभी नहीं हो सकता ।४८। सूर्य रश्मियों के संयोग से चन्द्रकान्तमणि से जैसे अग्नि निकलती है, वैसे ही योग युक्त न होने से ब्रह्मण को साक्षात्कार सम्भव नहीं ।४९।

पिपीलिकाऽऽखककुलगृहगोधाकपिञ्जलाः ।
वसन्तिस्वामिवद्गेहेध्वस्तेयान्तिततोऽन्यतः ।।५०
दुःखंतुस्वामिनोध्वसेतस्ययेषांनकिंचन ।
वेशमनोयत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धये ।।५१
मृद्देहिकाल्पदेहापिमुखाग्रेणाध्यणीयसा ।
करोतिमृद्भादारचयमुपदेशः संयोगिनः ।।५२
पशुपक्षिममुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् ।
वृक्षविलुप्यमानतुदृष्ट्वासिध्यन्तियोगिनः ।।५३

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम् ।
सहतेनविवर्द्धन्तेयोगीसिद्धिमवाप्नुयात् ।।५४
द्रवणमुपादायपात्रमारोहतोभुवः ।
तुङ्गमङ्गविलोक्योच्चेर्विज्ञातकिंनयोगिना ।।५५
सर्वस्वेजीवनायालनिखाते पुरुषस्यया ।
चेष्टांतांतत्वतोज्ञात्वायोगिन कृतकृत्यता ।।५६

चीटी, मूषक, नकुल गोधा, कपिञ्जल और कपोत यह सब गृह-स्वामी के समान ही वहाँ रहते हैं और घर के नष्ट होने पर ही अन्यत्र जाते हैं ।५०। गृहस्वामी के न रहने से उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं हैं इसी प्रकार स्वभाव से ही देह पीछे देह का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, इसलिए उनके प्रति ममता के वश में नहीं पड़सा चाहिए, ऐसा जान कर सब छोड़कर योग साधन ही चित्त लगावे ।५१। सूक्ष्म शरीर वाली चींटी अपने अत्यन्त सूक्ष्म मुख से ही संचय करती है, योगियों के लिए यह भी एक दृष्टान्त है कि ब्रह्म साधन जैसा कठिन कार्य योगरूप साधारण उपाय से वशमें कर लिया जाता है।५२। पशु, पक्षी, मनुष्यादि फल, पुष्प, पत्र से युक्त वृक्ष को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार काल के हाथ से सबको नष्ट होना पड़ता हैं, यह जानकर योग साधन पूर्वक मोक्ष लाभ करे ।५३। रुरु मृग के बालक के सींग का अग्र भाग तिलक के आकार को होकर भी उसी के साथ बढ़ता है इसी प्रकार योगी की कठिन योगचार्या भी अभ्यास से सुलभ हो जाती है ।५४। जब मनुष्य द्रव से भरा हुआ पात्र हाथमें लेकर ऊँचे स्थान में चढ़ता है, उस समय उसके अङ्गों पर दृष्टि डालने से योगी की कोई बात अज्ञात नहीं रहती ।५५। मनुष्य जीवन के लिए जो अपने सर्वस्व को त्याग करने में लगा है, उसे भली प्रकार जानकर योगी कृतकृत्य हो जाता है ।५६।

तद्गृहं यत्रवसतितद्भोज्यंयेनजीवति ।
येनसम्पद्यतेचार्थस्तत्सुखंममताऽत्रका ।।५७
अर्भ्यितोऽपितैःकार्यंकरोतिकरणैर्यथा ।
तथाबुद्धयादिभिर्योगोपारक्यै साधयेत्परम् ।।५८

ततः प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कःसमहीपतिः ।
प्रश्नयावनतोवाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ।।५९
दिष्ट्यादेत्ररिदन्नह्मन्पराभिभवसम्भवम् ।
उपपादितमत्युग्र प्राणसंदेहदंभयम् ।।६०
दिष्टट्वाकाशिपतेभूरिवलसम्पत्पराक्रमः ।
यदुच्छेदादिहायातःसयुष्मत्सङ्गदोसम ।।६१
दिष्टयामंदवलश्चाहं दिष्टयाभृत्याश्चमेहताः ।
दिष्ट्याकोषक्षयंयातोदिष्ट्याऽहंभीतिमागतः ।।६२
दिष्ट्यात्वत्पादयुगलममस्मृतिपथगतम् ।
दिष्ट्यात्वदुक्तयःसर्वायमचेतसिसंस्थिताः ।।६३

जहाँ निवास करे वहीं गृह, जिससे प्राण धारणा हो वह भोज्य और जिससे विषयकी निष्पत्ति हो वही सुख है, इसलिए इस विषय से ममता क्यों करें ?।५७। जिस प्रकार कारण से कार्यासिद्धि होती है,उसी प्रकार योगी पारलौकिक बुद्धि आदि कारण रूप से ब्रह्म कीं सिद्धि का लाभ करते हैं।५८। जड़ बोला—इसके पश्चात् राजा अलर्क विनय पूर्वक झुक कर दत्तात्रेयजी को प्रणाम करते हुए आनन्द सहित बोले।५९। हेब्रह्मन्! मुझे सौभाग्य से अत्युग्र प्राणी को संशयप्रद एवं भयदायक तिरस्कार शत्रु से मिला है।६०। सौभाग्य से ही काशीराज इतने समृद्धशील हुए जिसके कारण मैं आपके सत्संग का लाभ कर सका।६१। सौभाग्य से ही मेरा बल क्षीण हो गया, सौभाग्य से ही मेरे भृत्य मारे गए हैं और सौभाग्य से ही मेरा कोष नष्ट हो गया और सबका संहार हुआ।६२। सौभाग्य से ही आपके दोनों चरण मेरे स्मृति मार्गमें उदय हुए हैं तथा आपके वचन मेरे हृदय में निवास प्राप्त कर सके हैं।६३।

दिष्टयाज्ञानंममोत्पन्नं भवतश्चसमागमात् ।
भवताचैवकारुण्ययं दिष्ट्याब्रह्मन्कृतंममः ।।६४
अनर्थोऽप्यर्थतांयातिपुरुषस्यशुभोदये ।
तथेदमुपकारयव्यसन संगमात्तव ।।६५

सुबाहुरुपकारीमेसचकाशिपतिःप्रभो ।
तयोः कृतेऽहंसंप्राप्तोयोगीशभवतोऽन्तिकम् ॥६६
सोऽहतवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्विषः ।
तथायतिष्यैयनेदृङ्नभूयांदुःखभाजनम् ॥६७
परित्यजिष्येगार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् ।
त्वत्तोऽनुज्ञांसमासाद्यज्ञानदातुर्महात्मनः ॥६८
गच्छराजेन्द्रभद्रंतेयथातेकथितंमया ।
निर्ममोनिरहंकारस्तथाचरविमुक्तये ॥६९

सौभाग्य से ही आपका समागम पाकर ज्ञानका मुझमें उदय हुआ है और सौभाग्य से ही आपने मुझपर दया की है ।६४। शुभोदय हो तो समर्थ भी अर्थ हो जाता है, इस भीषण विपत्ति ने आपसे मिलाकर मेरा उपकार ही किया है ।६५। हे प्रभो ! मैं जिसके लिए यहाँ आया हूँ वह सुबाहु और काशी नरेश दोनों ही मेरे लिए परोपकारी सिद्ध हुए हैं ।६६। आपकी कृपा रूप अग्नि ने मेरे अज्ञान रूपी पापों को भस्मकर दिया है जिससे ऐसे दुःखों की प्राप्ति पुनः न हो सके, अब मैं उसी के अनुष्ठान में लगूँगा ।६७। आपज्ञान दाता महात्मा हैं, आपकी अनुमति पाकर ही मैं गृहस्थ आश्रम को छोड़ूंगा, क्योंकि यह आश्रम दुःख रूपी ही है ।६८। दत्तात्रेयजी ने कहा हे राजन् ! तुम जाओ तुम्हारा कल्याण हो मैंने तुम्हें जो आदेश दिया है, ममता और अहङ्कार छोड़कर मोक्ष लाभार्थ उसी पर चलो ।६९।

एवमुक्तःप्रणम्यैनमाजगामत्वरान्वितः ।
यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः ॥७०
समुत्पत्यमहाबाहुंसोऽलर्कः काशिभूतिम् ।
सुबाहोदग्रतोवीरमुवाचप्रहसन्निव ॥७१
राज्यकामुककाशीशभुज्यतांराज्यमूर्जितम् ।
तथाचरोचतेतद्वत्सुबाहोःसंप्रयच्छवा ॥७२
किमलर्कपरित्यक्त राज्यंतेसंयुगंवना ।
क्षत्रियस्यनधर्मोऽयंभवर्वांश्चक्षत्रधर्मवित् ॥७३

निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम् ।
संदभीतशरराजालक्ष्यमुद्दिमश्यवरिणम् ॥७४
तज्जित्वानृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ।
भुञ्जीतपरमंसिद्ध्यैयजेतचमहामखैः ॥७५
एवमीदृशकवीरमपाप्यासीन्मनः पुरा ।
साम्प्रतंविपरीतार्तंश्रृणुचाप्यत्रकारणम् ॥७६

जड़ ने कहा-दत्तात्रेयजी की यह आज्ञा सुनकर अलर्कने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रतासे अपने भाई सुबाहु और काशी नरेशके पास पहुँचे ।७०। उन्होंने काशी नरेश के समीप आकर सुबाहु के सामने हँसते हुए कहा ।७१। हे काशिराज ! तुमने राज्य की अभिलाषा की है, इसलिए इस समृद्धशाली राज्य का उपयोग करो या सुबाहु को दे दो,जो चाहो, वही करो ।७२। काशिराज बोले—हे अलर्क ! तुम युद्ध के बिना राज्य को क्यों छोड़ते हो, तुम तो क्षात्रधर्म-विशारद हो, यह क्षत्रियों का धर्म नहीं है ।७३। आत्माओं को वशमें रखकर राजा मृत्यु के भय को छोड़ कर शत्रु को लक्ष्य बनाकर बाण संधान करे ।७४। तथा शत्रु को जीत कर सिद्धि के लिए इच्छित भोगों का उपभोग करते हुए श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करे ।७५। अलर्क बोले हे वीर ! मैं भी पहिले यही सोचता था, किन्तु अब उसके विपरीत सोचता हूँ उसका कारण सुनो ।७६।

यथायंभौतिकः संउस्तथाऽन्तः करणनृणाम् ।
गुणास्तुकलास्तद्वशेषेष्वेजन्तुषु ॥७७
चिच्छक्तिरेकएवायंदानान्योऽस्तिकश्चन ।
तदाकानृपतेज्ञानान्मित्रारिप्रभूभृत्यता ॥७८
तन्मयादुःखमासाद्यत्वद्भयोद्भवमुत्तमम् ।
दत्तात्रेय प्रसादेनज्ञानप्राप्तं नरेश्वर ॥७९
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तुत्यक्त्वासंगमशेषतः ।
मनोब्रह्मणिसंधायेतज्जयेपरमोजयः ॥८०

संसाध्यमन्यत्तत्सिद्धयैयतःकिंचिन्नविद्यते ।
इन्द्रियाणिचसंयम्यततः सिद्धिनियच्छसि ॥८१
सोऽहनतेऽरिर्नममाऽसिशत्रुसुबाहुरेषो नममाऽपकारो ।
दृष्टंमयासर्वमिदंयथात्माअन्विष्यतांभूपरिपुस्त्वयाऽन्यः ॥८२
इत्थंसतेनऽभिहितोनरेन्द्रोहृष्टः समुत्थायततः सुबाहूः ।
दिष्टयेतितंभ्रातरमाभिनन्द्यकाशीश्वरं वाक्यमिदंबभाषे८३

जैसे मनुष्य मात्रका सङ्ग भौतिक है, उसीप्रकार उनका अन्तकरण और गुणावगुण भी भूतकी समष्टि है ।७७। हे राजन्! केवल चिच्छक्ति रूप ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब असत्य है ऐसा ज्ञान मुझे मिला है, तब शत्रु, मित्र, प्रभुता या भृत्य की कल्पना ही कैसी ? ।७८। हे नरेश्वर ! तुम्हारे भय से अत्यन्त दुःखित होकर दत्तात्रेयजी की कृपा से यह ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ ।७९। अब जितेन्द्रिय होकर समस्त सङ्ग का त्याग करके केवल परब्रह्म में मन को लगाऊँगा ब्रह्म के जीतते ही सब कुछ जीत लिया समझो ।८०। एकमात्र वही विद्यमान है उसके लिए अन्य साधना उचित नहीं हैं जितेन्द्रिय हुए बिना सिद्धि लाभ नहीं हो सकता ।८१। हे राजन् ! न मैं तुम्हारा शत्रु हूँ, न तुम मेरे शत्रु हो, सुबाहु ने भी मेरा कोई अपकार नहीं किया इसलिए अब दूसरे शत्रु की खोज करो ।८२। अलर्क के इन वचनों से काशिराज अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सुबाहु भी हर्ष से परम सौभाग्य कहते हुए उठकर भाई को अभिनन्दन करते हुए काशिराज से बोले ।८३।

३६—अलर्क की योगसिद्धि

यदर्थंनपशार्दूलत्वामहंशरणगतः ।
तन्मयासकलप्राप्तंयास्यामित्वंसुखोभव ॥१
किंनिमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव ।
सुबाहोतन्ममाचक्ष्व परकौतूहलहिमे ॥२

समाक्रान्तमलर्केणपितृपैतामहंमहत् ।
राज्यदेहीतिनिर्जित्यत्वयाहमभिचोदितः ॥३
ततोमयासमाक्रम्पराज्यमस्यानुजस्यते ।
एतत्तेवलमानीततद्भुङ्क्षस्वकुलोचितम् ॥४
काशिराजनिबोधत्वैयदर्थमयमुद्यमः ।
कृतोमयाभवांश्चैवकारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥५
भ्रातामामायग्राव्येषुशक्तोभोगेषुतत्ववित् ।
विमूढौबोधयन्तौचभ्रातरावग्रजौमम ॥६
तयोर्ममचयन्मात्राबाल्येस्तन्यंयथामुखे ।
तथावबोधोविन्यस्तःकर्णयोरवनीपते ॥७
तयोर्ममचविज्ञेयाःपदार्थायेमतानृभिः ।
प्रकाश्यंमनसोनीतास्तेमात्रानास्यपार्थिव ॥८

सुबाहु ने कहा—हे नृपशार्दूल ! जिस लिए मैं आपकी शरण में गया था, वह मुझे मिल गया, अब मैं जाता हूँ, आप भी सुखी रहें ।१।काशी-नरेश ने कहा हे सुबाहो ! आप मेरी शरण में किस लिए आये थे और आपका कौनसा कार्य सम्पादित हो गया यह बताओ, इसके प्रति मुझें अत्यन्त कुतूहल हुआ है ।२। अलर्क अपने परम्परागत राज्य को भोगता था, आपने उस राज्य को जीतने के लिए मुझे उत्तेजित किया था ।४। सुबाहु बोला-हे काशिराज ! मैंने उद्यम पूर्वक आपको इस कार्य में क्यों प्रवृत्त किया, उसे सुनो ।५। मेरे यह छोटे भ्राता तत्वज्ञानी होकर भी भोगों में आसक्त थे तथा मेरे दो अग्रज बिमूढ़ होते हुए भी तत्वज्ञानी हुए हैं ।६। हे राजन् ! मेरी माता ने शिशुकाल में जैसे हमको दूध पिलाया था, वैसे ही हमारे कानों में तत्वज्ञान का उपदेश किया था।७। मनुष्यों के लिए जो-जो विषय ज्ञातव्य हैं, वह सभी हमारी माताने हम सब भाइयों के हृदयगत कर दिये थे, किन्तु अलर्क उन्हें भूल गया ।८।

यथैकमर्थयातानामेकस्मिन्नवसीदति ।
दुःखंभवतिसाधनांतथाऽस्माक महीपते ॥९

गार्हस्थ्यमोहमामपन्नेसीदत्यस्मिन्नरेश्वर ।
सम्बन्धिनस्यदेहस्यविभ्रतिभ्रातृकल्पनाम् ॥१०
ततोमयाविनिश्चित्यदुःखाद्वै राग्यभावना ।
भविस्यतोत्यस्यभवानित्युद्याागायसंश्रितः ॥११
तदस्यदुःखाद्वै रऽयंसंबोधादवनीपते ।
समुद्भूतकृतकार्यभद्रं तेऽस्तुव्रजाम्यहम् ॥१२
उष्ट्वामदालसागर्भेपीत्वातस्यास्तथास्तनम् ।
नान्यनारीसुतैर्यातिंवर्त्मंयात्विर्तिपार्थिवः ॥१३
विचार्य्यंतन्मयासर्वंपुष्मत्संश्रयपूर्वकम् ।
कृतंतच्चापिनिष्पन्नं प्रयास्येसिद्धयेपुनः ॥१४

हे राजन् ! जैसेएक साथजाने वालों में एक मनुष्य के दुःखित होने सभी साथी दुःखित होते हैं वैसे ही मेरी अवस्था थी ।९। क्योंकि अलर्क से मेरा सम्बन्ध बन्धुत्व का है और यह ग्रहस्थी के मोह में पड़कर दुःखित हो रहे थे ।१०। इसलिए दुःख होने पर ही विरक्ति होगी, ऐसा विचार करके ही मैंने आपकी शरण ग्रहण की थी ।११। हे राजन् उनसे वह दुःखी हुआ और उसी दुःख से उसमें तत्वज्ञान की उत्पत्ति हुई और विरक्ति का उदय हुआ इसलिए अब मैं अपने कार्य में सफल हो गयाहूँ, आपका मङ्गल हो, मैं जाता हूं ।१२। यह अलर्क मदालसा के गर्भ से उत्पन्न है उसीके स्तनों का दूध पिया है इसलिए अन्य नारी से उत्पन्न पुत्र जिस मार्ग से नहीं जा पाते, यह उस श्रेष्ठ मार्ग पर चले ।१३। यही विचार कर मैंने आपका लिया और तदनुरूप कार्य किया मेरा कार्य पूरा हो गया अब पुनः सिद्धि की प्राप्ति के लिए जा रहाहूँ ।१४।

उपेक्ष्यतेसीदमानः स्वजनोबान्धः सुहृत् ।
यैनंरेन्द्रनतान्मन्येसेन्द्रियाविकलाहिने ॥१५
सुहृदिस्वजनेबन्धौसमर्खेयोऽवसीदति ।
धर्मार्थकाममोक्षभ्योवाच्यास्तेतत्रनत्वसौ ॥१६

एतत्स्यवत्सङ्गभात्भूपमयाकार्यंमहत्कृतम् ।
स्वस्तितेऽस्तुगामिष्यामिज्ञानभारभवसतम् ॥१७
उपकारस्त्वयासाधोपलर्कस्यकृतोमहान् ।
ममोपकारायकथंनकरोषिस्वमानसम् ॥१८
फलदायीसतांसद्भिः सङ्गमीनाफलोयतः ।
तस्मात्वत्सश्रयाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नतिः ॥१९
धमर्थिकाममोक्षाख्यंपुषार्थचतुष्टयम् ।
तत्रधर्मार्थकामास्तेसकलोहीयतेऽपरः ॥२०
ततेसंक्षेपतोवक्ष्येतदिहैकमनाः शृणु ।
श्रुत्वाचसम्यगालोच्चययतेथाः क्षायसेनृप ॥२१

हे राजन् ! स्वजन, सुहृदजन बांधवों के दुःखित होने पर, उनके प्रति उपेक्षा करने वाला मनुष्य मेरे विचार में विकलेन्द्रिय है।१५।तथा स्वजन सुहृदजन और बांधवजन के समर्थ होते हुए भी जो दुःख पाता हैं, उससे स्वजनादि निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ मोक्ष से वंचित होते हैं।१६। आपके सङ्ग-लाभसे मैंने इस महान् कार्य को सम्पन्न किया है आपका कल्याण हो और ज्ञान मार्ग पर चलने वाले हो, मैं अब गमन करता हूँ।१७। काशिराज बोले-आपने अलर्क का अत्यन्त उपकार किया है परन्तु मेरा उपकार करने से विमुख क्यों हैं ।१८। साधु-सङ्ग या संत-मिलन फल देने वाला होता है इसलिए आपको सत्सङ्ग होने में मेरी उन्नति ही होगी ।१९। सुबाहु बोले-धर्म, अर्थ काम, मोक्ष यह चार पदार्थ पुरुषार्थ कहे गये हैं इनमें धर्म, अर्थ काम सिद्धितो आपकी हो चुकी है, केवल मोक्ष का ही अभाव है ।२०। इसलिए आप से जो चाहता हूँ उसे एकाग्र मन से श्रवण करो उस इसी प्रकार विचार करके अपने कल्याणार्थ प्रयत्नशील होओ ।२१।

ममोतेप्रत्ययोवूपनकार्य्योऽहमितित्वया ।
सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्माभावेनिराश्रयः ॥२२
कस्याहमितिसंज्ञेयमित्यालोच्यन्वयऽऽत्मना ।
वाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापरात्रित ॥२३

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ।
व्यक्ताव्यक्तं त्वयाज्ञेयंज्ञाताकश्चाहमित्युत ॥२४
एतस्मिन्नेवविज्ञातेविज्ञातमखिलंत्वया ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता ॥२५
सोऽहंसर्वगतोभूमलोकसंव्यवहारतः ।
मयेदमुच्यतेसर्वंत्वयापृष्टोव्रजाम्यहम् ॥२६
एवमुक्त्वाययौधीमान्सुबाहुःकाशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपिसंपूज्यसौऽलर्कस्वपुरययौ ॥२७
अलर्कोऽपिसुतंज्येष्ठमभिषिच्यनराक्षिपम् ।
वनजगामसत्त्यक्तसर्वसगःस्वसिद्धये ॥२८

हे राजन् ! यह मेरा है, यह मैं हूँ इत्यादि ममता और अहंकार पूर्ण विचार के वश में न पड़ना और भली प्रकार धर्म की अलोचना न करना क्योंकि धर्म नहींतो आश्रय भी नहीं मिलता ।२१। विचार करने पर ही 'मैं किसका हूँ' इसका ज्ञान होता है, रात्रि के शेष भाग में इस पर भली प्रकार विचार करो ।२३। अव्यक्त से प्रकृति तक विकार रहित, चेतनारहित, और व्यक्त जो कुछ है उसे जानते हुए, ज्ञाता ज्ञेय और अपने विषय में भी जाने ।२४। इसके जान लेने पर ही आप सब कुछ जान लेंगे । शरीरादि आत्मा से पृथक् वस्तु में आत्मबोध तथा पराये को अपना माननाही मूर्खता है ।२५। हे राजन् ! वही मैं सांसारिक ज्ञान में सम्पन्न हूं जो आपने प्रश्न किया, उसका समाधान कर चुका, अब मैं गमन करता हूं ।२६। मेधावी सुबाहु ऐसा कहकर चले गये तव काशिराज ने अलर्क का भली प्रकार पूजन किया और अपने नगर को गये ।२७। अलर्क ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर समस्त सङ्ग परित्याग करके आत्म सिद्धि के लिए वनवास किया ।२८।

ततःकालेनमहतानिर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्राप्ययोगर्द्धिमतुलांपरंनिर्वाणमाप्तवान् ॥२९
पश्यञ्जगदिदसर्वंसवेवासुरमानुषम् ।
पाशैर्गुणमयर्वद्धं वध्यमानचनित्यशः ॥३०

पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः ।
आकृष्यमाणकरणैर्दुःखार्त्तं भिन्नदर्शनम् ॥३१
अज्ञानपंकगर्भस्थमनुद्धारंमहामतिः ।
आत्माचसमुत्तीर्णगाथामेतामगायत ॥३२
अहोकष्टंयदस्माभिःपूर्वंराज्यमनुष्ठितम् ।
इतिपश्चान्मयाज्ञातयोगान्नास्तिपरंसुखम् ॥३३
तातैर्नत्वंसदातिष्ठमुक्ततेयोगमुत्तमम् ।
प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥३४
ततोऽहमपिपास्ययामिकियज्ञैःकिंजपेनमे ।
कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते ॥३५
त्वक्तोऽनुज्ञामवाप्याहंद्वंन्द्वोनिष्परिग्रहः ।
प्रयतिष्तेतथामुक्तोयथायास्यामिनिवृतिम् ॥३६

फिर बहुत समय व्यतीत होनेपर उन्होंने अतुलित योगा ऐश्वर्यको प्राप्त कर परम मोक्ष को लाभ किया ।२९। सुर, असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण यह विश्व गुणमय पाश से बद्ध होकर नित्यही बध्यमान रहता है ।३०। यह पाश पुत्र आदि, भ्रातृ-पुत्रादि अपने पराये के मोह में बनी हुई हैं, भिन्न दिखाई पड़ने वाला बिश्व उसी पाश में आकृष्ट होकर दुःख में डूब रहा है ।३१। इस पर भी अज्ञान रूपी पङ्क में फँसने पर मुक्ति का उपाय नहीं है, बुद्धिमान अलर्क ने इन पर विचार करके मेरा उद्धार हो गया इस प्रकार गाथा का गान किया ।३२। 'अहो कैसा कष्ट है ? पहिले मैं राज्य भोगता था, परन्तु अन्त में ज्ञान हो गया कि योग की अपेक्षा अन्य कोई परम सुख नहीं है ।३३। पुत्र ने कहा हे तात ! मोक्ष लाभ के लिए आप उस श्रेष्ठ योग का आचरण करें तो ब्रह्मको प्राप्त हो सकेंगे क्योंकि ब्रह्म को प्राप्त होकर पुनः शोक में नहीं पड़ना होगा, अब मैं भी जाऊँगा ।३४। मुझे यज्ञया जप की आवश्यकता नहीं है, कृतकृत्य मनुष्य का कार्य तो ब्रह्म प्राप्ति के लिए ही है ।३५। इस-लिए आपकी आज्ञा पाकर मैं द्वन्द्व और परिग्रह को त्याग कर मोक्ष लाभ के लिये सम्यक् प्रयत्न करूँगा ।३।

एवमुक्त्वा सपितरप्राप्यानुज्ञा ततश्चसः ।
ब्रह्मञ्जगाममेधावीपरित्यक्तपरिग्रहः ॥३७
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः ।
वानप्रस्थं समास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात् ॥३८
तत्रात्मजंसमासाद्यहित्वाबन्धगुणादिकम् ।
प्रापसिद्धिपराँप्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥३६
एतत्ते कथितब्रह्मन्यपृष्टाभवतावयम् ।
सुविस्तरंयणावच्चाकमन्यज्छ्रोतुमिच्छसि ॥४०
यश्चैतच्छृणुयाद्विप्रपठेद्वासुसमाहितः ॥४१
यदश्वमेधावभृथस्तातः प्राप्नोनिवफलम् ।
सकलतदवाप्नोश्रुत्वैवमुनिसत्तम् ॥४२
एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ।
अलर्कात्रेययसंवादमशुभान्मुच्यतेनरः ।
सम्यगेतन्माख्यातंभवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥४३

पक्षियों ने कहा-हे ब्रह्मन् ! वह महामतिजड़ अपने पिता से ऐसा कह कर और उनकी आज्ञा लेकर परिग्रह रहित होकर चला गया।३७ उसके पिताने भी वानप्रस्थ आश्रम का आश्रय लेते हुए चतुर्थ आश्रममें प्रवेश किया।३८। वह पुत्र की संगति से गुणादि बन्धन को त्याग कर तत्काल उत्पन्न हुई बुद्धि के बल से परम सिद्धि को प्राप्त हुए।३६। हे विप्र ! आपका पूछा हुआ सभी विस्तार पूर्वक कह दिया अब और क्या सुनना चाहते हो, सो बताओ।४०। हे ब्रह्मन् ! इस वार्ता को जो सावधानी से पढ़ता अथवा श्रवण करता है।४१। वह अश्वमेध के अवभृथ स्नान के फलको पाता है। हे मुनीश्वर ! इसके श्रवण से ही सब कुछ प्राप्त होता है।४२। संसार में विचरण करने वालों की श्रेष्ठ रक्षा यही है। उस अलर्क, दत्तात्रेय संवाद को श्रवण करके मनुष्य अशुभ से मुक्त हो जाता है।४३।

३७—ब्रह्माण्य जौर ब्रह्मोत्पत्ति

सम्यगेतन्मयाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः ।
प्रवृत्तिश्चनिवृत्तिचद्विविधकर्णवंदिकम् ॥१
अहोपितृपसादेनभवताँज्ञानमीदृशम् ।
येनतिर्यक्त्वमप्येतत्प्रान्यमोहस्तिरस्कृतः ॥२
धन्याभवन्त संसिद्धयैप्रागवस्थास्थिस्थितंयतः ।
भवताँविषयोद्भतैर्नमोहैश्चाल्यतेमनः ॥३
दिष्ट्याभगवतातेनमार्कण्डेयेनधीमता ।
भवन्तौवैसमाख्याताः सर्वसन्देहहृतमाः ॥४
संसारेऽस्मिन्मनुष्याणांभ्रमतामतिसंकटे ।
भविद्वधैः समसङ्गोजायतेनतपस्विनाम् ॥५
यद्यहंसंगमासाद्यभवद्मेज्ञानदृष्टिभिः ।
नस्यांकृतार्थस्तन्त्यूमेऽन्यत्रकृतार्थता ॥६
प्रवृत्तेचनिभृत्तं चभवतांज्ञानकर्मणि ।
मतिमस्तमलांमन्येयथानान्यस्यकस्यचित् ॥७

जैमिनी बोले—हे श्रेष्ठ द्विजो ! वैदिक कर्म प्रबुत्ति और निवृत्ति भेद से दो प्रकार का है आपने वह सब मेरे प्रति भली प्रकार कहा है ।१। आपने पिता के अनुग्रह से ऐसा ज्ञान पाया है, उसी ज्ञान के प्रभाव से तिर्यका, योनि को पाकर भी आपका मोह नष्ट हो चुका है ।२। आपका मन सिद्धि लाभ के लिए प्राणवस्था में स्थित रहता है, अतः आप धन्य है आपके मन को विषयों से उत्पन्न मोह चलायमान नहीं कर सकता ।३। महामति मार्कण्डेयजी ने सौभाग्य से ही आपका वृत्तांत कहा था, आप सब सन्देहों को दूर करने वाले हैं ।४। इस संकटमय विश्व में जो भ्रमते हैं, उनके भाग्य में आप जैसे तपस्वियों मिलना दुर्लभ ही हैं ।५। शाप ज्ञान दृष्टा हैं यदि आपके सङ्ग लाभ से भी मेरा मनोरथ पूर्ण न हुआ तो अन्यत्र कहीं भी नहीं हो सकता ।६। आपको प्रवृत्ति और निवृत्ति के ज्ञान और कर्म से जो परम बुद्धि प्राप्त हुई है, वह मेरे विचार से अन्य किसी को नहीं हो सकती ।७।

यदित्वनुग्रहवतीमबुद्धिर्तिद्वजोत्तमाः ।
भवतातत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥८
कथमेतत्समुद्भूतजगत्स्थावरजंगमम् ।
कथंचप्रलयंकालेपुनर्यास्यतिसत्तमम् ॥९
कथंचवशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ।
मन्वन्तराणिचकथं वशानुचरिततंचयत् ॥१०
यावत्याःसष्टयश्चैवयावन्तः प्रलयास्तथा ।
यथाकल्पविभागश्चयाश्चमन्वतरस्थितिः ॥११
यथाचक्षितिसंस्थनियातप्रमाणंचबभूवः ।
यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाः काननानिच ॥१२
भूर्लोकादिश्वर्लोकानांगणः पातालसंश्रयः ।
गतिस्तथाऽर्कसोम दिग्ग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥१३
श्रोतुमिच्छाम्याहं सर्वमेतदाभूतसंप्लवम् ।
उपसंहृतेचयच्छेषंजगत्यस्मिन्भविष्यति ॥१४

हे श्रेष्ठ द्विजो ! यदि आपकी गति मरे प्रति अधिक अनुग्रह वाली हुई है, तो मेरे प्रश्नका विस्तार सहित समाधान करिए।८। इस स्थावर जंगम युक्त विश्वकी सृष्टि किस प्रकार हुई और यह प्रलयकाल में किस प्रकार होती है, और मन्वन्तरों का प्राकट्य कैसे होता है ?१०। सम्पूर्ण सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्प का विभाग, मन्वन्तरों की स्थिति ।११। पृथिवी का संस्थान और परिमाण पर्वत, शैल, सरिता और वनों का विवरण ।१२। मर्त्यलोक, स्वर्ग और पाताल का विवरण तथा सूर्य, चन्द्र ग्रह, नक्षत्र इत्यादि की गति ।१३। इन सबका प्रलय पर्यन्त वर्णन सुनने की अभिलाषा हैं तथा प्रलयकाल में उपसंहृति होने पर जो जगत् अवनिष्ट रहता है, वह सुनना चाहता हूँ ।१४।

प्रश्नभारोऽयततुलोयस्त्वयामुनिसत्तम् ।
पृष्टस्तंतेप्रवक्ष्यामत्तच्छणुष्वेहजैमिने ॥१५

मार्कण्डेयेनकथितंपुरांक्रौष्टुकयेयथा ।
द्विजपुत्रायशान्तायव्रतस्नातायधीमते ॥१६
मार्कण्डेयमहात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः ।
क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छपदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥१७
तस्यचाकथयत्प्रीत्यायामुनिर्भृगुनन्दनः ।
तत्त प्रसथयिष्यामः शृणुत्वंद्विजसत्तमः ॥१८
प्रणिपत्याजगन्नाथपद्मयोनिं पितामहम् ।
जगद्यौनिंस्थितंसृष्टौस्थितौविष्णुस्वरूपिणम् ।
प्रलयेचान्तकर्त्ताररौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥१९
पुराणमेतद्वेदाश्चमुखेभ्योऽनुविनिः सृताः ॥२०
पुराणसंहिताश्चक्रुबृहुलाः परमर्षयः ।
वेदानांप्रविभागश्चक्रुतस्तैस्तुसहस्रशः ॥२१

पक्षियों ने कहा-हे जैमिने ! आपने यह अत्यन्त प्रश्न भार हम पर डाला है, फिर भी हम उसका वर्णन करते है, सुनो ।२५। मार्कण्डेयजी ने जिस प्रकार घ्रौष्टुको के प्रति कहा था उसे ही कहते हैं ।२६। आपने जो प्रश्न किया, वही क्रौष्टुकी ने मार्कण्डेयजी से किया था ।१७। हे द्विजवर ! भृगुपुत्र ने प्रसन्न चित्त से जो कुछ कहा था, वही सव कहते हैं सुनो ।१८। जगत् के कारण कमलयोनि पितामह स्वरूप से जो इस संसार को प्रसन्न करते हैं बिष्णु रूप से स्थित करने और रौद्र रूप से प्रलय कालमें सँहार करते हैं, उन्ही जगन्नाथ को प्रणाम पूर्वक हम सब कहते हैं ।३९। मार्कण्डेयजी ने कहा पुराकाल में ब्रह्माजी के उत्पन्न होने पर उनके चार मुखों से वेद-पुराण प्रकट हुए ।२०। उस पुराण संहिता को ऋषियों ने अनेक अंशों में विभाजित किया तथा वेद के भी हजार विभाग किये ।२१।

धर्मज्ञानंचवैराग्यमैश्वर्य्यंचमहात्मनः ।
तस्योपदेशेनविनानहिसिद्ध चतुष्टयम् ॥२२

वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः ।
पुराणजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसाः ॥२३
भृगोः सक शाच्चद्मथवनस्तेनोक्तं चद्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापिदक्षायाप्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥२४
दक्षेणचापिकथितमिदमासीत्तदामम ।
तत्तुभ्यंकथ्याम्याद्यकलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सर्वमेतन्महाभागश्रूयतांमेसमाधिना ।
यशाश्रूतंमयापूर्वं दक्षस्यागदतोमुने ॥२६
प्राणिपत्या जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयाम् ।
चराचरस्या जगतोधातारं परमंपदम् ॥२७
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे ।
यत्कारणमनौरस्ययत्र वंधतिष्ठितम् ॥२८

उनके उपदेश बिना धर्म ज्ञान, वैराग्य और ईश्वरीय भाव सिद्ध नहीं हो सकते ।२२। उनके मन से सप्तर्षियों की उत्पत्ति हुई जिनसे समस्त वेद पुराण उनके मानसोत्पन्न अन्य ऋषियों ने ग्रहण किए ।३। भृगु से उस पुराण को लेकर च्यवन ऋषि ने अन्य ऋषियों पर प्रकट किया और उन ऋषियों ने उसे दक्ष के प्रति कहा ।४। दक्ष ने ही उसे हमें प्रदान किया है, तभी से यह हमारे पास है, इसके प्रभाव से कलि-युग में पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी को तुमसे कहते हैं ।२५। हे मुने ! हमने दक्ष से जो सुना, वही दत्तचित्त होकर हमसे सुनो।२६। जो जगत् के कारण अजन्मा, अव्यय चर विश्व के एक मात्र आश्रय धाता एवं परम पद रूप है ।२७। जो सृष्टि स्थिति और प्रलय के कारण, आदि पुरुष, अनुपम हैं यथा सब कुछ उन्हीं में प्रतिष्ठित रहता है ।२८।

तस्मैहिरण्यगर्भायालोकतन्त्रायाधीमते ।
प्रणम्यासम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९
महादाद्य विशेषान्तसर्वरूप्यासलक्षणम् ।
प्रमार्णपंचभिर्गम्यास्रोतभिःपडभिरन्वितम् ॥३०

पुरुषाधिष्ठितनित्यमनित्यामिवचस्थितम् ।
तच्छ्रूयातांसहाभागपरमेणसमाधिन ॥३१
प्रधानकारणयत्तदव्यक्ताख्यामहर्षयः ।
यादाहुः प्रकृतिसूक्ष्मांनित्यांसदसदात्मिकाम् ॥३२
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयंनान्यासंश्रयाम् ।
गन्धरूपरसंर्हीनंशब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥३३
अनाद्यन्तंजगद्योनिंत्रिगुणप्रभवाप्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयब्रह्माग्रेसमवर्त्तत ॥३४
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठतान्मुने ॥३५

उन्हीं हिरण्यगर्भ को प्रणाम करके अनुपम प्रपंच को कहते हैं ।२४ महत् से विशेष पर्यन्त जो भी भौतिक सृष्टि के विकार और लक्षण हैं उन सभी को पाँच प्रकार के प्रमाण और षट्स्रोत सहित कहेंगे ।३०। पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण यह भूत सृष्टि नित्य होकर भी अनित्य के समान अवस्थान करती है, उसे भी कहते हैं सावधान चित्त से सुनो ।३१। सत्-असत् वाली अव्यक्त कही जाने वाली को महर्षियों ने नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहा है ।३२। जो नित्य अक्षय, अजर, अपरिमेय, अनाश्रित, निर्गन्ध तथा रूप रस शब्द और स्पर्श से परे हैं ।५३। जो अनादि अनन्त एवं विश्व के उत्पत्ति स्थान हैं, जिनसे तीनों गुणों की उत्पत्ति हुई है, जो अविनाशी अविज्ञेय सदा विद्यमान और सर्वकारण हैं, वही प्रधान स्वरूप ब्रह्म सबके समक्ष विराजमान रहकर।३४। प्रलय के पश्चात् अखिल विश्व को प्राप्त करके स्थित रहते हैं, उन्हीं में परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूप से तीनों गुण विद्यमान रहते हैं ।३४।

गुणभावान्सृज्य सानात्सर्गकालेततःपुनः ।
प्रधानंतत्वमुद्भूतंतत्ममावृणोत् ॥३६
यथाबीजत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतोमहान् ।
सात्विकोराजसश्चैवतामसश्चत्रिधोदितः ॥३७

ततस्तस्मादहंकारस्त्रिविधोवैव्यजायत ।
वैकारिकस्तैजश्चभूतादिश्चसतामसः ॥३८
महताचावृतःसोऽपियथाऽव्यक्तेनवैमहान् ।
भूतादिस्तुविकुर्वाणःशब्दतन्मात्रकन्ततः ॥३९
ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाशंशब्दलक्षणम् ।
आकाशशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्ततः ॥४०
स्पर्शतन्मात्रमेवेहजायतेनात्रसंशयः ।
बलवाञ्जायतेवायुस्तस्यस्पर्शगुणोमतः ॥४१
वायुश्चापिविकुर्वाणोरूपमात्र ससर्जह ।
ज्योतिरुत्पद्यतेवायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥४२

सृष्टिकाल में क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से इनके उसी-उसी गुण की सहायता से प्रधान तत्व प्रकट होकर वृहत्तत्व को ढक लेता है ।३६। जैसे बीज त्वचा द्वारा ढका रहता है, वैसे ही प्रधान से महत्तत्व ढका रहता है, वह महत्तत्व सात्विक, राजसिक और तामसिक के भेदसे तीनप्रकार का है ।३७। उस महत्तत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है, वैकारिक, तेजस और तामस के भेद से अहङ्कार भी तीन प्रकार का है, तामस अहङ्कार ही भूतादि संज्ञक है ।३८। जिस प्रकार प्रधान से महत्तत्व ढका है, वैसे ही महत्तत्व से अहंकार ढका है और इसी प्रभाव से विकार को प्राप्त होकर शब्द तन्मात्रा सृष्टि है ।३९। शब्दात्मक आकाश इस शब्द तन्मात्र से ही प्रकट होता हूँ, तब तामस अहङ्कार से शब्द रूप आकाश ढक जाता है ।४०। इससे स्पर्श तन्मात्र की उत्पत्ति होती है, तब स्पर्श गुण वाला अत्यन्त बलवान् वायु उत्पन्न होता है ।४१। शब्द मन्त्र आकाश से स्पर्श मात्र ढका रहता है, वायु से रूप गुणात्मक ज्योति प्रकट हुई ।४२।

स्पर्शमात्रस्तुवैवायुरूपमात्रंसमावृणोत् ।
ज्योतिश्चापिविकुर्वाणंरसमात्रं ससर्जह ॥४३

सम्भवन्तितोह्यापश्चासन्वैतारसात्मिका: ।
रसमात्रं तुताह्यापोरूपमात्रंसमावृणोत् ॥४४
आपश्चापिविकुर्वत्योगन्धमात्रं ससर्जिरे ।
संघतोजायतेतस्मात्तस्यगन्धोगुणोमत: ॥४५
तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रतेनतन्मात्रतास्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्चते ॥४६
नशान्तानापिघोरास्तेनमूढाश्चतिशेषत: ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहंकारात्तु तामसात् ॥४७
वैकारिकादहंकारात्सत्वाद्रिक्तात्तु सात्विकात् ।
वैकारिक: ससर्गस्तुयुगपत्सप्रवर्त्तते ॥४८

स्पर्श मात्र वायु से रूपमात्र ढका रहता है, इससे ज्योति के विकृत होने पर रसमात्र की उत्पत्ति होती है ।४२। उसी के द्वारा रसात्मक जल उत्पन्न होता है जो रूपमात्र से ढका रहता है ।४४। फिर रसमात्र जल की विकृति से गन्धमात्र की उत्पति होती है, उसी से गन्धात्मिका पृथिवी उत्पन्न होती है।४५। इसीप्रकार जिस-जिस पदार्थमें जो तन्मात्र है, उस उसके द्वारा ही तन्मात्र की गणना होती है इसके लिए कोई विशेष वाचक नहीं होता, इसलिए यह भी अविशेष है ।४६। अविशेष होने के कारण यह शांत, घोर अथवा मूढ़ नहीं है, इसी प्रकार भूत तन्मात्र की उत्पत्ति अहङ्कार से ही होती है ।४७। सात्विक और वैकारिक अहंकार से एक सङ्ग ही वैकारिक सृष्टि की आवृत्ति है ।४८।

बद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपंचकर्मेन्द्रियाणिच ।
तजसानीन्द्रियाण्यातुर्देवावैकारिकादश: ॥४९
एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिका: स्मृता: ।
श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपंचमी ॥५०
शब्दादादीनासौवन्प्त्यर्थं बुद्धियुक्तानिवक्ष्यते ।
पादौपायुरूपस्थश्चहस्तौवाक्पञ्चमीभवेत् ॥५१

गतिर्विसर्गोह्यानन्दः शिल्पंवाक्यंचकर्मत् ।
आकाशंशब्दमात्रन्तुस्पर्शमात्रसमाविशत् ॥५२
द्विगुणोजायतेवायुस्तस्यस्पर्शोगुणोमतः ।
रूपतथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणाबुभौ ॥५३
द्विगुणस्तुतश्चाग्नि सशब्दस्पर्शरूपवान् ।
शब्दः स्पर्शश्चरूपंचरसमात्रसमाविशत् ॥५४
नस्माच्चतुर्गणाह्यापोविपूयास्तारसात्मिका: ।
शब्दः स्पर्शश्चरूपचरसोगन्धसमाविशत् ॥५५
संहतागन्धमात्रेणआवृण्वस्तेमहीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणाभूमिः स्थूलाभूतेषुदृश्यते ॥५६

पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय तैजस इन्द्रिय कही गई है, यह वैकारिक दश देवता होते हैं ।४९।ग्यारहवाँ मन मिलाकर ग्यारह देवता हुए, श्रोत, त्वक, चक्षु, रसना और नासिका ।५०। इनसे शब्दादि का बोध होता है, इसलिए इन्हें बुद्धीन्द्रिय कहा गया हे चरण, गुदा, उपस्थ हाथ और जिह्वा ।५१। इत्यादि कर्मेन्द्रिय कही गई हैं, इनके द्वारा चलना, मल त्यागना, मैथुन, शिल्प नौर कथन यह कार्य होते है, शब्द मात्र आकाश,स्पर्श मात्रसे समाविष्ट होकर।५२। द्विगुण वायुको उत्पन्न करता है, उसका विशेष गुण वायु ही है शब्द और स्पर्श यह दोनों गुण रूप में समाविष्ट होकर ।५३। त्रिगुण अग्नि की उत्पत्ति करते हैं। यह अग्नि शब्द और रूप गुण से युक्त हैं शब्द, स्पर्श और रूप रस-मात्र में समावेश करके ।५४। चतुर्गुण रसात्मक जल की सृष्टि करते हैं है ।५५। इनके साथ मिलकर इस पृथिवी की आवृत्ति करते हैं। इसी-लिए भूतों में पञ्चगुणात्मि का स्थूलाकार वाली पृथिवी दिखाई देती है ।५६।

शान्ताघोराश्चमूसाश्चविशेषास्तेनतेस्मृताः ।
परस्परानुप्रदेशाद्धारयन्तिपरस्परम् ॥५७
भूमेरन्तस्त्विवमसर्वलोकालोकघनावृतम् ।
विशेषाश्चेन्द्रिवग्राह्यानियतत्वाथ्चतेमृताः ॥५८

गुणपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तोत्तरम् ।
नान वीर्य्या पृथग्भूताःसप्ततेसं हतिविना ।।५९
नाशक्नुवन्प्रजा स्रष्टुमसागम्यकृत्सनशः ।
समेत्या यो यस योगमन्योन्याश्रयिणश्वते ।।६०
एकसंघातचिह्नाश्चसं प्राप्यैक्यमशेषतः ।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्चाअव्यक्तानुग्रहेणचः ।।६१
महदाद्याविशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्तिते ।
जलबुद्बुवत्तत्रक्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ।।६२
भूतेभ्योऽण्डमहाबृद्धे पृहत्त दुदकेशयम् ।
प्रकृतेऽण्डेविवृद्ध सन्क्षेत्रब्रह्मसंज्ञितः ।।६३

इसी कारण वह शान्त, घार। मूढ कहे गए हैं, वह परस्पर एक दूसरे को धारण करते हैं ।५७। यह सभी लोकालोकभूमि के अन्तर में निवृष्ट रहकर नियतत्व के कारण इन्द्रिय ग्राह्य विशेष कहे गयेहैं ।५८। पहिले के गुण उत्तरोत्तर में प्रविष्ट होते हैं, जग तक यह अनेक वीर्य-वाले सात पदार्थ परस्पर नहीं मिलते ।५९। तब तक सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते, जब यह परस्पर मिलकर एक दूसरे के अवलम्बन से ।६०। भली प्रकार से एकता को पातेहैं और जब पुरुषका अधिष्ठान और प्रकृति का अनुग्रह प्राप्त करते हैं ।६१। तभी महत् से विषय तक इन सबमें अण्ड की उत्पत्ति करते है, यह अण्ड जलमें रहकरही क्रमशः बढ़ता ही रहता है ।६२। जल में स्थित यह अण्ड भूतों से बृहत् है, ब्रह्म सज्ञा वाले क्षेत्रज्ञ भी उस प्राकृत अण्ड में बढ़ते हैं ।६२।

सर्वेशरीरीप्रथमः सर्वपुरुषउच्यते ।
आदिकर्त्ताचभूतानांब्रह्माग्रे समवर्तत ।।६४
तेनसर्वमिदव्याप्तंत्रैलोक्यसचराचरम् ।
मेरुस्तस्यानुसंभूतोजरायुश्चापिपर्वताः ।।६५
समुद्रागर्भसलिलतस्यण्डस्यमहात्मनः ।
तस्मिन्नण्डेजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ।।६६

द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्चसज्योतिलोकसंग्रहः ।
जलानिलानलोकाशस्ततोभूतादिनाबहिः ॥६७
वृतमण्डदशगुणैरेकैकत्वेनतैःपुनः ।
महतातत्प्रमाणेनहैवानेनवेष्टितः ॥६८
महाँस्तैसंयुतःसर्वैरव्यक्तेनसमावृतः ।
एभिरावरणैरण्डसप्तभिःप्रकृतैर्वृतम् ॥६९

वही प्रथम देह और पुरुष नाम वाले हैं, वही भूतों के आदिकर्त्ता ब्रह्मा है, वही सबसे आगे प्रतिष्ठित होते हैं ।६४। वही चराचर तीन लोकों को व्याप्त कर रहे हैं, उस वृहद् अण्डसुमेरु पर्वत जरायु ।६५। और समुद्र गर्भजल है, सुर असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण सम्पूर्ण विश्व उस अण्ड में है ।६६। द्वीप, पर्वत, समुद्र ज्योति आदि के सहित सब लोक उसमें स्थित हैं, जल, वायु, अग्नि और आकाश भूतादि के सहित ।६७। प्रत्येक ही उत्तरोत्तर दशगुण के नियम से बाहर के भाग में उस को घेरे रहते हैं । इसके अतिरिक्त महत्तत्व ने इसी प्रमाण से उनके साथ अण्ड का आच्छादन किया हुआ है ।६८। इस महत्तत्व के सहित अण्ड को ढककर प्रकृति सुशोभित होती है इस प्रकार सात प्राकृतिक आवरणों द्वारा वह अण्ड ढका हुआ है ।६९।

अन्नोनमावृत्यचताअष्टौप्रकृतयःस्थिताः ।
एषासाप्रकृतिर्नित्यातदन्तः पुरुषश्चसः ॥७०
ब्राह्माख्यः कथितोयस्तेसमासात्छ्यतापुनः ।
यथामग्नोजलेकश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥७१
जलवक्षिपतिप्रह्मास्सतथाप्रतीर्विभुः ।
अव्यक्तंक्षेत्रमुदिद्दष्ठंब्रह्माक्षेत्रज्ञउच्यते ॥७२
एतत्सस्तंजानीणयात्क्षोत्रक्षेज्ञत्रलक्षणम् ।
इत्येषप्राकृतः सगक्षोत्रज्ञाधिष्ठितस्तुसः ।
अबुद्धिपूर्वःप्रथमःप्रादुर्भूतस्मर्डिद्यथा ॥७३

इसी प्रकार आठ प्रकृति को परस्पर ढककर विद्यमान है । इन

प्रकृतियों को नित्य स्वरूप समझो, इनके अन्त से वह पुरुष विद्यमान ।७०। तुमसे जिस ब्रह्म संज्ञक पुरुष का वर्णन किया, उसका विषय अब संक्षिप्त रूप से कहता हूँ। जल में डूबा हुआ मनुष्य जैसे जल में से उठने के समय जलमें प्रकट ।७१। द्रव्य को फेंकता है, उसी प्रकार ब्रह्मा को प्रकृति का स्वामी समझ, क्योंकि प्रकृति क्षेत्र और ब्रह्मा क्षेत्र है ।७२। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के लक्षण यही हैं, इसी प्रकार क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि सहित प्रथम विद्युत के समान प्रकट हुई ।७३।

३८—ब्रह्माजी की आयु का प माण

भगवंस्त्वण्डसंभूतिर्यथावत्कथिताम् ।
ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मतथाचोक्तमहात्मनः ॥१
एतदिच्छाम्यहश्रोतुत्वत्तोभृगुकुलोद्भव ।
यदानसृष्टिभूतानामस्तिकिन्नुनचास्तिवा ।
कालेवै प्रलयस्याऽन्ते वंस्मिन्नुपसंहृते ॥२
यदातुद्रकृतौयातिलयविश्वमिदजगत् ।
तदोच्यतेप्राकृतोऽयविद्वभिःप्रसिसचरः ॥३
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेऽविकारेप्रतिसंहृते ।
प्रकृतिःपुरुषश्चैवसाधर्म्यैणावतिष्ठतः ॥४
तदातमश्चसत्व च समत्वेनगुणोस्थितौ ।
अनुद्रिक्तावनूनोचतंत्प्रतोचपरस्परम् ॥५
तिलेषुवायथातैघृतंपयासिवास्थितम् ।
तथातमसित्वेचरजोऽप्यनुसृतस्थितम् ॥६

क्रोष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने अण्ड की सृष्टि और ब्रह्मांड में ब्रह्माजी के जन्म को यथावत् कहा है ।१। हे भृगुवंशोत्पन्न ! जब प्रलय के अवसान में नष्ट हुई सृष्टि अविद्यमान थी, तब फिर भूतों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? वही सब सुनना चाहता हूँ ।२। मार्कण्डेय

जी ने कहा—जब वह संसार प्रकृति में लीन हो जाता है, उसी अवस्था को विद्वानों ने प्रलय कहा है ।३। जब यह आत्मा में अवस्थित हो जाती है तब सब पदार्थ अदृश्य हो जाता है जब प्रकृति-पुरुष दोनों साधर्म्य में प्रतिष्ठित होते हैं ।४। उस समय उनमें में कोई बढ़ता या घटता नहीं वे दोनों ताने बाने के समान समभाव से परस्पर संयुक्त अधिष्टित रहते हैं ।५। जैसे तिल में तेल दूध में घी विद्यमान है, वैसे ही सतोगुण और तमोगुण विद्यमान रहता है ।६।

मत्पत्तिर्ब्रह्मणोयावदायुषोद्विपरार्द्धिकम् ।
तावद्दिनं परेशस्यतत्समासयमेनिशा ॥७
अष्टौयुगसहस्राणिअहोरात्रप्रजापते: ।
अनेनंवतुमानेनशतंब्रह्मासजीवति ।
पिताहशतेनैवविष्णोर्मानंविधीयते ।
निमेषार्धेनशभोस्तुसहस्राणिचतुर्दश ।
विनश्यतितथाविष्णोरसख्याता: पिता: पितामहा ।
अहर्मुखेप्रबुद्धरतुजगदादिरनादिमान् ।
सर्वहेतुरचिन्त्यात्मापर: क्रोऽप्यपापक्रिय: ॥८
प्रक्रतिपुषंचैवप्रविशाऽऽशुजगत्पति: ।
क्षोभयामासयोगेनपरणपरमेश्वर: ॥९
यथामदोनवस्त्रीणां यथावामाधवानिल: ।
अनुप्रविष्ट:क्षोभायतथाऽसौयोमूर्त्तिमान् ॥१०
प्रफानेक्षोभ्यमाणेतुदेवोब्रह्मसंज्ञित: ।
समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थोयथातेकथितमया ॥११
सएवक्षोभक: पूर्वसक्षोभ्य: प्रकृते:पति ।
ससंकोचदिकाशाभ्यांप्रधानत्वेऽपिसंस्थित: ॥१२
उत्पन्न:सजगद्योनिगुणोऽपिरजोगुणम् ।
भुञ्जन्प्रवर्ततेसर्गेबह्मत्वंसमुपाश्रित: ॥१३

ब्रह्माजी की आयु का परिमाण द्विपरार्द्ध पर्यन्त है, जो परिमाण उनके दिन का है, उतना ही उनकी रात्रि का है ।७। (आठ हजार युगों का प्रजापति का एक अहोरात्र होता है, उसी परिणाम से ब्रह्माजी की आयु सौ वर्षकी है, ब्रह्माजी की सौ आयुओं के बराबर विष्णु की आयु होती है। शिव के अर्द्ध निमेष में चौदह हजार विष्णु हो जाते हैं। ब्रह्मा कितने होते ? इसकी संख्या नहीं है, यह विश्व के आदि हैं, उन का कोई आदि नहीं, वह सबके कारण, अचिन्त्यात्मा परमेश्वर और क्रियातीत हैं ।८। वह जगदीश्वर परमयोग के निमित्त प्रकृति और पुरुष में प्रवेश करके उनका विक्षोभ करते हैं ।९। जिस प्रकार मद और वसन्त समीर नव-युवतियों के हृदय को क्षोभित करते हैं, वैसे ही ब्रह्मा जी प्रकृति और पुरुष को क्षोभित करते हैं ।१०। प्रकृति को क्षोभित कर ब्रह्मा संज्ञक देव अण्डकोश में स्थित होकर समुत्पन्न होते हैं, यह मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ।११। पहिले तो क्षोभित करते हैं फिर प्रकृति के स्वामी होकर स्वयं क्षोभित होते हैं, इस प्रकार संकोच और विकास से प्रतिष्ठित रहते हैं ।१२। वह जगद्योनि निर्गुण होते हुए भी प्रकट होकर रजोगुण के अवलम्ब से ब्रह्मा के रूप में आविर्भूत होकर सृष्टि के उद्यम में लगते हैं ।१३।

ब्रह्मत्वेसजा:सृष्ट्वाततःसत्वातिरेकवान् ।
विष्णुत्वमेत्यधर्मेणकुरुतेपरिपालनम ॥१४
ततस्मोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलंजगत् ।
उपसंहृत्ववैशत्रैलोक्यत्रिगुणोऽणः ॥१५
यथाप्राग्व्यापकःक्षेत्री पालकोलावकःतथा ।
यसथाससंज्ञमायोतिब्रह्मविष्णुवीशकारिणीम् ॥१६
ब्रह्मत्वेसृजतेलोकासरुद्रत्वेसंहरत्यपि ।
विष्णुत्वेचाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाःस्वयम्भुवः ॥१७
रजोब्रह्मातमोरुद्रोविष्णुःसत्वंसजगत्पतिः ।
एतएवत्रयोदेवाएतएवत्रयोगुणाः ॥१८

अयोन्यमिथुनाह्येतेअन्योन्याश्रयिणस्तथा ।
क्षणंवियोगोनह्येषांनत्यजन्तिपरस्परम् ॥१९
एवंब्रह्माजगत्पूर्वेदेवदेवश्चतुर्मुखः ।
रजोगुणसमाश्रित्यस्त्रष्टवेसव्यवस्थितः ॥२०

ब्रह्मा रूप सृजन कार्य करके सतोगुण के आधिक्य से विष्णु रूप हो कर प्रजा-पालन करते हैं ।१४। फिर तमोगुण का उद्वेग होने पर रुद्र रूप धारण कर संहार करके शयन करते हैं, इस प्रकार वह निर्गुण ब्रह्म तीनों काल में तीनों गुणों का अवलम्बन करते हैं ।१५। सर्वजनक सर्वव्यापी ईश्वर इस प्रकार, सृष्टि स्थिति और प्रलय करने के कारण की उनकी संज्ञा ब्रह्मा, विष्णु और शिव होती है ।१६। वह ब्रह्म रूप में सब लोकों को उत्पन्न, रुद्र रूप में संहार और विष्णु रूपमें उदासिन होकर रहते हैं, स्वयंभू भगवान की यह तीन अवस्था है ।१७। ब्रह्म रजोगुण रुद्र तमोगुध और विष्णु सतोगुण हैं ।१८। यह त्रिदेव तीन गुण रूप में पपस्पर के आश्रय पूर्यक स्थिय रहते हैं, यह क्षण भर को भी विमुक्त नहीं होते ।१९। इस प्रकार जगत् के आदि देव चतुर्मुखी ब्रह्मा रजोगुण के आश्रय से सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होते हैं ।२०।

हिरण्यगर्भोदेवादिरनादिरुपचारतः ।
भूपद्मकणिकासंस्थोब्रह्माग्रे समजायतः ॥२१
तस्यवर्षषतंत्वेकंपरमायुर्महात्मनः ।
ब्राह्मयेणंवहिमानेनततस्यसंख्यांनिबोधमे ॥२२
निमेर्दर्गशभिःकाष्ठातथापश्चभिरुच्यते ।
कलास्त्रिशच्चैकाष्ठामुहर्तंत्रिशताकलाः ॥२३
अहोरात्रंमुहूर्त्तानांनृर्थास्त्रित्तुवेस्मृतम् ।
अहोरात्रैश्चत्रिशद्भिःपक्षौद्वौमास उच्यते ॥२४
तैःषड्तंभरयनवर्षंद्वऽयनेदक्षिणोत्तरे ।
तद्देवानामहोरात्रंदिनतत्रांत्तरायणम् ॥२५
दिव्यैर्वर्षसहस्रै स्तुक्रतत्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागश्शृणुष्वमे ॥२६

चत्वारितुसहस्राणिर्षाणांकृतमुच्यते ।
शतानिसन्ध्याचत्वारिसन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥२७
त्रेतात्रिणिसहस्राणिदिव्याब्दानाँशतत्रयम् ।
तस्यसन्ध्यातत्समाचवस ध्यांशश्चतथाविधः ॥२८

वह देवताओं के आदि रूप हिरण्य गर्भ एक प्रकार से आदि रहित हैं ।२१। वह भूपद्मकर्णिक का आश्रय करके सर्व से पहिले प्रकट होते हैं ।१२। उनकी परमायु ब्राह्म मान से सौ वर्ष की हैं, उनकी संख्या का वर्णन करता हूं सुनो ।२३। पन्द्रह निमेष की काष्ठा तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहुर्त ।२४। और तीस मुहुर्त का मनुष्यों का एक अहोरात्र होता है, तीस अहोरात्र अथवा दो पखवारों का एक मास होता है ।२५। छः मास का एक अयन और दो अयनों का एक वर्ष होता है, दक्षिणायने और उत्तरायण के भेद से अयन दो प्रकार का है, इस प्रकार मानव मान से एक वर्ष का देवताओं का एक अहोरात्र होता है, उसमें उत्तरायण देवताओं का दिन है ।२५। देवताओं के परिमाण से बारह हजार वर्ष की चतुर्युगी होती है । अब उन चारों युगों का विभाग वर्णन करता हूं ।२७। चार हजार दिव्य वर्षों का सत्युग तथा उसकी सन्ध्या व सन्ध्यांश के चार-चार सौ वर्ष होते हैं । ।२८। तीन हजार दिव्य वर्षो का त्रेतायुग और उसकी सायं तथा संध्यांश के तीन-तीन सों वर्ष होते हैं ।२९।

द्वापरद्वेसहस्रेतुवर्षाणांद्वे शतेतथा ।
तस्यसन्ध्यासमाख्याताद्वे शताब्देतदंशकः ॥२९
कलिःसहस्रदिव्यानामब्दनांद्विजसत्तम ।
सन्ध्यासन्ध्यांशफश्चैवशतकौसमुदाहृतौ ॥३०
ऐषाद्वादशसाहस्रीयुगाख्याकविभिःकृताः ।
एतत्सहस्रगुणितमपोब्राह्ममुदाहृतम् ॥३१
ब्रह्मणोदिवसेब्रह्मन्मनवःस्युश्चतुर्दश ।
भवन्तिभाणशस्तेषांसहस्रं तद्विभज्यते ॥३२

देवाःसप्तर्षयःसेन्द्रामनुस्तत्सूनवोनृपाः ।
मनुनासहसृज्यतेसंह्रियन्तेचपूर्ववत् ॥३३
चतुर्युगानाँसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ।
मन्वन्तरतस्यसंख्यांमानुषाब्दैर्निबोधमे ॥३४
त्रिंशत्कोटयस्तुसम्पूर्णसंख्याताः संख्ययाद्विज ।
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानियुतानिचसंख्यया ॥३५
विंशतिश्चसहस्राणिकालोऽयंसाधिकविना ।
एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे ॥३६

दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर, उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश के दो-दोसौ वर्ष होते हैं ।२९। एक हजार दिव्य वर्ष का कलियुग तथा उसकी सन्ध्या सन्ध्यांश के एक-एक सौ वर्ष होते हैं ।३०। इस प्रकार से चारों युग का परिमाण कवियों ने बारह हजार दिव्य वर्षों में विभक्त किया है, इसको सहस्रगुण करने पर जो समय होता है, वही ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है ।३१। ब्रह्मा के इस एक दिन में चौदह मनु हो जाते हैं उसका सहस्र विभाग कहा गया है ।३२। इन्द्रादि देव, सप्तर्षि मनु पुत्र राजा मन्वन्तर सहित उत्पन्न होते और पहिले के समान नष्ट हो जाते हैं ।३३। इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है इसकी संख्या मानव मान से अनुसार कहता हूँ ।३३। तीस करोड़ साठ लाख बीस हजार मानव वर्ष का एक मन्वन्तर होता है अव दिव्य मान के अनुसार सुनो ।३५-२६।

अष्टौवर्षसहस्राणिदिव्ययासँख्यायुतम् ।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानिहस्राण्यथिकानितु ॥३७
चतुर्दशगुणोह्येषकालोब्राह्मचमहःस्मृतम् ।
तस्यान्तेंप्रलयप्रोक्तोब्राह्मोनैमितिकोबुधैः ॥३८
भूर्लोकाऽथभुवर्लोकस्तन्निवासिनः ।
तदाविनाशमायातिमहर्लोकश्चतिष्ठति ॥३९
तद्वासिनोऽपितातंनजलोकप्रयांतिवै ।
एकार्णवेचत्रैलोक्येब्रह्मात्वपितिवैनिशि ॥४०

तत्प्रमाणैवसारात्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुनः ।
एवंतुब्रह्मणोर्षमेकंवर्षशतंतुतत् ॥४१
शतंहितस्यवर्षाणिपरमित्यभिक्षीयते ।
पंचाशद्भिस्तथावर्षे परार्द्धमितिकीर्त्यंते ॥४२
एवमस्यपरार्द्धतुव्यतीतं द्विजसत्तम !
यस्यान्तेऽभवन्महाकल्पःपाद्मइत्यभिविश्रुतः ॥४३
द्वितीयस्यपरार्द्धस्यवर्त्तमानस्यवैद्विज ।
वाराहइतिकल्पोऽयंप्रथमःपरिकल्पितः ॥४४

आठ लाख चौवन सहस्र दिव्य वर्ष का परिमाण एक मन्वन्वर का होता है ।३७। इतने काल को चौदह गुणा करने पर एक करोड़ उन्नीस लाख अट्ठाइस हजार दिव्य वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है, इस ब्रह्म दिवस के अन्त में जो प्रलय होता है, उसी को ज्ञानीजन नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ।३८। भर्लोक भवर्लोक और स्वर्लोक में निवास करने वाले जीव, इन लोकों के नष्ट होने पर महलों में जाकर निवास करते हैं ।३९-४०। जो परिमाण ब्रह्माजी के दिनका है, उतना ही उनका रात्रि का है। रात्रि के अन्तमें सृजन कार्य का पुनराम्भ होता है। इस प्रकार से ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ।४१। एक सो वर्ष का 'पर' और पाँच सौ वर्ष का एक परार्द्ध होता है ।४२। हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार ब्रह्माजी का एक परार्द्ध बीत चुका है, उसी के अन्त ने पाद्म, संज्ञक महाकल्प उपस्थित हुआ था ।४३। अब यह 'बाराह कल्प' नामक द्वितीय परार्द्ध है, यही प्रथम कल्प कहा गया है ।४४।

३९—प्राकृत और वैकृत सृष्टि

यथाससर्जवैब्रह्माभगवानादिकृत्प्रजाः ।
प्रजापतिःपतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद ॥१
कथयाम्येषतेब्रह्मन्मर्जभगवान्यथा ।
लोककृच्छश्वतःकृत्स्नंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२

पद्मवसानप्रलयेनिशासुप्तोत्थितःप्रभुः ।
सत्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्माताशुन्यंलोकमवेक्षत ॥३
इमचोदाहरन्त्यत्रश्लोकंनारायणप्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणंदेवजगतःप्रभवाप्ययम् ॥४
आपोनाराइवैतनवइत्यपांनानामशुश्रम् ।
तासुशेतेसयस्माच्चतेननारायणः स्मृतः ॥५
विबुद्धःसलिलेतस्मिन्विज्ञायान्तर्गतांमहीम् ।
अनुमानात्समुद्धांरकर्तुकामस्तदाक्षिते: ॥६
अकरोत्सतनूरन्याः कल्पादिषुयथापुरा ।
मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहंवपुरास्थितः ॥७

कोष्टुकि बोले—जिस प्रकार आदि सृष्टा ब्रह्माजी ने प्रजा की उत्पत्ति की, वह मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइए ।१। मार्कण्डेयजी ने कहा अनादि भगवान् श्री ब्रह्माजी ने इस स्थावर जगतमय विश्व की जिस प्रकार रचना की वह आपके प्रति वर्णन करता हूँ।२। पाद्म नाम प्रलय के अवसर होने पर सत्वगुण उद्रेक वाले ब्रह्माजी ने रात्रि के ब्यतीत होने पर शयन से जाग्रत हुए तब उन्होंने सम्पूर्ण भुवन शून्य देखा ।३। उस समय जगत्कारक नारायण के विषय में यह कहा जाता है ।४। जल शब्द को 'नार' कहा गया है, उसमें यह शयन करते हैं, इसलिए वह 'नारायण' कहे जाते हैं ।५। नारायण ने जाग कर पृथिवी को जल में डूबा हुआ जाना और निकलने की इच्छा से ।६। पूर्व कल्पों में मत्स्य या कूर्म आदि के समान वाराह रूप धारण किया ।७।

वेदयज्ञमयंदिव्यंवेदयज्ञमयोविभुः ।
रूपंकृत्वावेशशाप्सुसर्वमसर्वसम्भवः ॥८
समुद्धृत्यचपातालान्मुमोचसलिलेभुवम् ।
जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पतिः ॥९
तस्योपरिजलौघस्यहतोनौरिवस्थिता ।
विततत्वत्तु देहस्यनमपीयातिसप्लवम् ॥१०

ततः क्षितिसमी कृत्यपृथिव्यांसोऽसृजद्गिरीन् ।
प्राक्सर्गेदह्यमानेतुतदासंवर्तकाग्निना ॥११
तेनाग्निनाविशीर्णास्ते सर्वताभुविसर्वशः ।
शैलाएकार्णवेमग्नादायुनापस्तुसंहताः ॥१२
निषक्तायत्रयत्रसस्यत्रतत्राचलाभवन् ।
भूविभागततःकृत्वासप्तदीपोपशोभितम् ॥१३
भूराद्यांश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ।
सृष्टिचिन्तयस्तस्यकल्पादिषुयथापुरा ॥१४

वह वेदमय प्रभु दिव्य वेदमय स्वरूप को धारण करके बारह रूप से जल में घुसे ।८। और पाताल से, निकालकर पृथियी को जल पर स्थापित किया और फिर देखने लगे ।९। कि यह नौका के समान जल पर डोलती है विस्तृत होने के कारण स्थित नहीं होती ।१०। फिर उन्होंने पृथिवी को समान करके पर्वतों की रचना की, पहले सृष्टि को सम्वर्तक अग्नि ने दग्ध किया था ।११। वह सभी पर्वत उस अग्नि के ताप से विशीर्ण होकर समुद्र में मग्न हो गए थे । उस समय वहाँ का जल भी वायु के द्वारा एकत्र हो गया था ।१२। इसलिए पर्वत जहाँ पड़े थे, वहीं-वहीं अचल हो गये फिर सप्त द्वीप के रूप में पृथिवी को करके ।१३। पहिले के समान भूर्लोक आदि चार लोकों का विभाग किया और पूर्व कल्पों के समान ही सृष्टि विषयक विचार करने लगे । ।१४।

अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमोमोहोमहोमोहस्तामिस्त्रोह्यन्धसंज्ञित ॥१५
अविद्यापञ्चपूर्वेषाप्रादुर्भूतामहात्मनः ।
पञ्चधावस्थित सर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६
इहिरन्तश्चाप्रकाशःसंवृतात्मानगात्मकः ।
मुख्यानगायतचोक्तामुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७
तंदृष्ट्वासाधकंसर्गममन्यदपरं पुनः ।
तस्याभिध्यायतः सर्गतिर्यकोस्त्रतोह्यवर्ततः ॥१८

यस्मात्तिर्यंक्प्रवृत्तिः सातिर्यवस्त्रातस्ततःस्मृतः ।
पश्वादयस्तेविख्यातास्तमः प्रायाह्यावेदिनः ॥१९
उत्पथग्राहिणश्चेवतेऽज्ञानैज्ञानमानिनः ।
अहंकृता अहमानाअष्टाविंशद्विधात्मिकाः ॥२०

तब तमोयुक्त तम, मोह तामिस्र, अन्धतामिस्र नामक ।१५। पाँच अविद्या उससे उत्पन्न हुई, उस प्रकार के चिन्तन से अप्रतिबोध वाली सृष्टि पाँच प्रकार से स्थित हुई ।१६। वह सावृतात्मक और पर्वत स्वरूप अपने भीतर बाहर सर्वत्र अप्राशित थी, पर्वत प्रधान होने के कारण वह सृष्टि मुख्य सर्ग संज्ञा वाली कही गई है ।१७। इस असाधक भृष्टि को देखकर उन्होंने अन्य सृष्टि की इच्छा की तो उनके ध्यान से तिर्यक् स्रोत की प्रवृत्ति हुई ।१८। उस तिर्यक् स्रोत के प्रवाहित होने से इसके द्वारा अधिक तमोगुणी सृष्टि अर्थात् पशुवादि अज्ञानी उत्पन्न हुए ।१९। वह उन्मार्गी अज्ञान को ही ज्ञान मानने लगे । अहंकारी अहमानी वे अट्ठाईस प्रकार के हुए ।२०।

अन्तःप्रकाशास्तेसर्वेआवृतास्तुपरस्परम् ।
तमप्यासाधकं मत्वाघ्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥२१
उर्ध्वस्रोततृतीयस्तुसात्विकोद्ध्वं मवर्तत: ।
ते सुखप्रीतिबहुलावहिरन्तस्त्वनावृताः ॥२२
प्रकाशाबहिरन्तश्चऊर्ध्वस्रोतः समुद्भवाः ।
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिस स्मृतः ॥२३
तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीमिर्निष्पन्नेब्रह्मणस्तदा ।
ततोऽन्यंसतदादध्योसाधकसर्गमुत्तमम् ॥२४
तथाभिध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्बभौतदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तुसाधकः ॥२५
यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्तोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ।
तेचप्रकाशबहुलास्ततोद्रिक्तारजोऽधिकाः ॥२६
तस्मात्ते दुःखबहुलाभूयोयश्चकारिणः ।
प्रकाशाबहिन्तश्मनुष्याःसाधकाश्चते ॥२७

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गः सचतुर्द्धाव्यवस्थितः ।
विपर्ययेणविद्धचाचशान्त्यातुष्टयातथैवच ॥२८

यह सब अन्तः प्रकाश और एक दूसरे को ढककर स्थित हैं। इस सृष्टिको उन्होंने असाधक समझकर और चिन्तन किया तो।२१। ऊर्ध्व पथगामी तृतीय स्रोत प्रवाहित होने लगा जिससे जिनकी उत्पति हुई वह सुख और प्रीति की अधिकता वाले तथा बाहर और अन्तर में अनावृत।२२। बाह्यभ्यंतर में प्रकाश बाले और तुष्टात्मा थे यह तीसरी सृष्टि देवसंग कही गई।२३। इस सृष्टि को उत्पन्न करके ब्रह्माजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और फिर उन्होंने श्रेष्ठ साधक सर्ग का चिन्तन किया।२४। उनके चिंतन करने पर अव्यक्त से अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग की उत्पत्ति हुई।२५। ऊर्ध्व से उग्र होने के कारण ही इसे अर्वाक्रि-स्त्रोत सर्ग कहा गया है, इनमें प्रकाश की अधिकता, तम की न्यूनता तथा रजोगुण का आधिक्य है।२६। इसलिए इनमें दुःख की अधिकता हैं, यह बारम्बार कार्य वाले तथा बाह्याभ्यन्तिर में प्रकाश वाले साधक मनुष्य रूप हैं।२७। फिर अनुग्रह नाम की पाँचवीं सृष्टि हुई यह विष-र्यय, सिद्ध, शान्ति और सृष्टि चार भागों में विभाजित हैं।२८।

निवृत्त वर्तमानं चतुऽर्थजानन्तिवैः पुनः ।
भर्तादिकानांभूतानांषष्ठः सर्गःसउच्यते ॥२९
तेपरिग्रहिणःसर्वेः संविभागरतास्तथा ।
चोदनाश्चाप्यशीलाश्चज्ञयाभूतादिकाश्चते ॥३०
प्रथमोयहतःसर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः ।
तन्मात्राणाँद्धितीयस्तुभूतसर्गःसउच्यते ॥३१
वैकारिकस्तृतीयस्तुसर्गश्चैन्द्रियकःस्मृतः ।
इत्येषप्राकृतःसर्गःसभूतोबुद्धिपूर्वकः ॥३२
मुख्य सर्गश्चतुर्थस्तुमुख्यावैस्थावराः स्मृताः ।
तिर्यक्स्रोतस्तुयः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यःसपञ्चमः ॥३३
तथोदर्ध्वस्रोतसांषष्ठोदेवसर्गस्तुसस्मृतः ।
ततोऽर्वाक्सोतसांसर्गः सतुमानुषः ॥३४

अष्टमोऽनुग्रहःसर्ग सात्विकस्तामसश्चसः ।
पंचैतेवैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तुत्रयःस्मृताः ॥३५
प्राकृतोवैकृतश्चैवकौमारोनवमःस्मृतः ।
इत्येतेवै समाख्यातानवसर्गाःप्रजापतेः ॥३६
प्राकृतावैकृताश्चैवजगतोमूलहेतवः ।
सृजतोजगदीशस्यकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३७

भूत और वर्तमान के सब अर्थ का जानने वाले भूतादि तथा अन्य समस्त भूतों की सृष्टि षष्ट सर्ग कही गई है ।२९। वह सभी स्त्री युक्त, बिषय में लगे हुए, प्रेरणा में निपुण, अशील स्वभाव के भूतादि कहे जाते हैं ।३०। जिससे ब्रह्माजी का आविर्भाव होता है, यह प्रथम महत् सृष्टि है, ब्रह्मा द्वारा होने वाली सृष्टि द्वितीय है, वह भूत सर्ग कही जाती है ।३१। ऐन्द्रिक वैकारिक जो तृतीय सृष्टि है, वह प्राकृत सर्ग बुद्धि पूर्वक माना गया है ।३२। चतुर्थ सर्ग मुख्य है, स्थावरों को मुख्य कहा है, तिर्यक् योनि रूप तिर्यक् स्रोत जो कहा गया है वह पञ्चम सर्ग है ।४३। उर्ध्व स्रोत की छठी सृष्टि देव सर्ग कही जाती है, इसके पश्चात् सप्तम सृष्टि अर्वाक् स्रोत मानवी सृष्टि है ।३४। आठवां अनुग्रह सर्ग सात्बिक और तामसिक दो प्रकार का है, यह पांच वैकृत सर्ग और पहिले कहे हुए तीन प्राकृत सर्ग हैं।३५। प्राकृत और वैकृत संयुक्त एक नवम सृष्टि कौमार नाम की है । इस प्रकार प्रजापति की यह नौ सृष्टि कही गई है।६६। यह प्राकृत और वैकृत ही संसार के मूल कारण हैं—जिनकी रचना जगदीश्वर ने की हैं, अब और क्या सुनाना चाहते हो ।३७।

४०—देवादि की सृष्टि

समासात्क्रथितासृष्टिःसम्यग्भगवाममम ।
देवादीनाँभवब्रह्मन्विस्तरात्तुब्रवीहिमे ॥१
कुशलाकुशलैह्मन्भाविताप्पूर्वकर्मभिः ।
ख्यात्याताह्यनिमुक्ता प्रलयेह्यपसंहृता ॥२

देवाद्यास्थावरान्तांश्चप्रजाब्रह्मांश्चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वत सष्टिजज्ञिरेमानसास्तदा ॥३
ततोदेवासुरपितृन्मानुषांश्चचतुष्टयम् ।
सिसृक्षरम्भस्येतानिस्वमात्मानमययुजत् ॥४
युक्तात्मनस्तमोमात्राउद्रिक्तभूत्प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेततः ॥५
उत्ससर्जतस्तांतुतमोमात्रात्मिकांतनुम् ।
साऽपाबिद्धातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत ॥६
अन्याँतनुमुपादयसिसृक्षुः प्रीतिमापसः ।
सत्वोद्रेकास्ततोदेवामुखतस्तस्यजज्ञिरे ॥७
उत्सर्जचभूतेशास्तनु तामप्यसौविभुः ।
साचापविद्धादिवसं सत्वप्रायमजायत् ॥८

कोष्टुकि बोले—हे प्रभो ! आपने जिस प्रकार से सृष्टि प्रकरण कहा वह अति संक्षिप्त हैं, इसलिए अब देवता आदि की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ।१। मार्कंण्डेयजी ने कहा—हे विप्र ! पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्म से ही उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह प्रलय में लीन होते हैं युक्त नहीं होते ।२। देवतादि से स्थावर तक चार प्रकार की प्रजा जन प्रलय काल में नष्ट हो गई तब ब्रह्माजी ने उसकी सृष्टि की पुनः इच्छा की और अपने मन से ।३। सुर, असुर, पितर और मनुष्य की सृष्टि की इच्छा से उन्होंने अपने अंश को जल में डाला ।४। सृष्टि का भी ब्रह्माजी तमोगुण का उद्रेक होने से, उसकी जंघा से प्रथम असुरों की उत्पत्ति हुई ।५। इसलिए उन्होंने उन असुरों को तमोगुणी शरीर दिया, वही शरीर त्यागा जाकर तमोगुणात्मिका रात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।६। फिर ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण किया; उससे वे प्रसन्न हुए, उनमें सतोगूण का उद्रेक होने से उनके मुख से देवताओं की उत्पत्ति हुई ।७। उनको सात्विक शरीर दिया, वही व्यक्त देह सत्वगुणातमक दिवस नाम से प्रसिद्ध हुआ ।८।

सत्वमात्रात्मिकामेवततोऽन्याँजगृहेतनुम् ।
तिवत्मन्यमानस्यपितरस्तस्यजज्ञिरे ॥९
सृष्ट्वारितृनुष्ससर्जतनुं तामपिसप्रभुः ।
साचोत्सष्टाऽभवत्सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता ॥१०
रजोमात्रात्मिकामन्यांतनु भेजेऽथः सम्प्रभुः ।
ततोमनुष्याः सम्भूतरजोमात्रासमुद्भवाः ॥११
सृष्ट्वामनुष्यान्सविभुरुत्ससर्जतनुं ततः ।
ज्योत्स्नासमभवत्साचनक्ताँतेऽह्मु खेवया ॥१२
इत्येतास्तस्यदेवस्यधीमतः
ख्यातारात्र्यहनीचैवसंध्याज्योत्स्नाचवैद्विज ॥१३
ज्योत्स्नासन्ध्यातथैवाऽहसत्वमात्रात्मकंत्रयम् ।
तमोमात्रासिश्कारात्रि सावैतस्माद्यमोऽधिका ॥१४

फिर उन्होंने अन्य सत्वमय शरीर धारणकर पितरों कीं सृष्टि की पितरों को शरीर देने पर वह व्यक्त शरीर दिवस रात्रिके भीतर स्थित सन्ध्या रूपात्मक हुआ ।१०। इसके पश्चात् रजोगुण युक्त अन्य देह धारण करके उन्होंने रजोगुण की अधिकता वाले मनुष्यें को उत्पन्न किया ।११। मनुष्यों को उत्पन्न करके उन शरीर का भी परित्याग कर दिया, वह व्यक्त शरीर ज्योत्सना हुआ, जो रात्रि के शेष में और दिवस के प्रथम भाग में आविर्भूत होती है ।१२। हे द्विज ! मेधावी देवदेव के यह विग्रह ही दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ।१३। ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिवस यह तीन सतोगुणी हैं और रात्रि तामसिक होने से अन्धकारमयी है ।१४।

तस्माद्देवादिवारात्रावसुरास्तुबलान्विताः ।
ज्योत्स्नागमेचमनुजा सन्ध्यायाँपितरस्तथा ॥१५
भवन्तिबलिनोंऽधृष्याविगक्षाणाँनसंशयः ।
तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिचविपर्ययम् ॥१६
ज्योत्स्नारात्र्यहनीसन्ध्याचत्वार्येतामिवैप्रभोः ।
ब्रह्मस्तुशरीराणित्रिगुणोपसितानितु ॥१७

चत्वार्येतान्यथोत्पाद्यतनुमन्यांप्रजापतिः ।
रजस्तमोमयींरात्रीजगृहेक्षुत्त्‌ड़न्वितः ॥१८
तद धकारेक्षुत्क्षामानसृद्‌भगवानजः ।
विरूपाञ्छमश्रुलानत्त मारब्धास्तेचतांतनुम ॥१९
रक्षामइतितेभ्योऽन्येयउचुस्तेतुराक्षसाः ।
खादामइतियेचोचुस्तेषक्षायक्षणात्‌द्विजः ॥२०
तान्दृष्ट्वाह्यप्रियेणास्यकेशाः शीर्यन्तवेधसः ।
ससारोहणहीनाश्चशिरसोब्रह्मणस्तुते ॥२१
सर्पणातऽभवन्सर्पाहीनत्वादहयः स्मृताः ।
सर्पान्दृष्ट्वातनः क्रोधात्क्रोधात्मानोविनिर्ममे ॥२२

पूर्वोक्त गुणों की अधिकता से दिन में देवता, रात्रि में असुर, ज्योत्स्ना में मनुष्य और सन्ध्याकाल में पितर।१५। अधिक बलवान होकर शत्रुओं द्वारा नहीं जीते जाते, इस प्रकार विपरीत काल में विपरीत बलवान् हो जाते हैं।१६। प्रजापति ने दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना रूप जो चार प्रकार के देह उत्पन्न किये, वही ब्रह्माजीका त्रिगुणात्मक देह है।१७। चारों देहों को प्रजापति ने उत्पन्न करके क्षुधा पिपासा से युक्त रज-तम युक्त रात्रि को ग्रहण किया।१८। उस अंधेरे में ब्रह्माजी न क्षुधा से कृश हुए विरूप दाढ़ी मूंछों की रचना की तब वे उस देह को भक्षण करने को ही प्रवृत्त हुए।१९। जब वह उस देह को भक्षण करने को उद्यत हुए तब जिन्होंने 'रक्षा करो' कहा वे राक्षस और जिन्होंने 'खाऊँगा' कहा वह यक्ष कहे गये।२०। उन्हें देखकर अप्रसन्नता उत्पन्न हुई इससे ब्रह्माजी के सप केश मस्तक से पतित हुए।२१। और विचरण करने से सर्प संज्ञक हुए, हीन होने से यह अहि भी कहे जाते हैं। सर्पों को देखकर क्रोधयुक्त होने से उन्हें क्रोधात्मा बनाया।२२।

वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूताः पिशिताशनाः ।
ध्यायतोगांततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसुताः ॥२३
जज्ञिरेपिततोवाचांगन्धर्वास्तेनतेस्मृताः ।
अष्टास्वेतासुसृष्टासुदेवयोनिषुसम्प्रभुः ॥२४

ततः स्वदेह ेऽन्यानिवयाँसिपशवोऽसृजत् ।
मुखतोऽजाः ससर्ज्जायवक्षसश्चऽवयोऽसृजय ॥२५
गाश्चैवोदरतोब्रह्मापार्श्वाभ्यांचविनिर्ममे ।
पद्‌भ्यांचाऽश्वन्समातङ्गान्नासभाञ्छशकान्मृगान् ॥२६
उष्ट्रानश्वतरांश्चैवनानारूपाश्वजातयः ।
औषध्यः फलमूलिन्योरोमभ्यतस्यजज्ञिरे ॥२७
एवंपशवोषधीः सृष्ट्वाह्ययजच्चाध्वरेविभुः ।
तस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुछतदा ॥२८

कपिल वर्ण से प्रकट कर्कश स्वभाव वाले आशित भी जो गणों की उत्पत्ति हुई, गौ का चिन्तन करते समय गन्धर्व उत्पन्न हुए ।२३।वाक्य को ग्रहण करते-करते उत्पत्तिको प्राप्त होनेसे उनका नाम गन्धर्व हुआ । इस प्रकार आठ प्रकार की देवयोनि को प्रकट करके ।२४। अपने शरीर से अन्य सभी पशु पक्षी प्रकट किए, मुख से बकरा और हृदय से पक्षी उत्पन्न किए ।२५। उदर और पार्श्व से गौं, दोनों चरणों से अश्व हाथी गधा, खरगोश, मृग ।२६। ऊँट और खच्चर उत्पन्न किए तथा रोम से फल मूल युक्त विभिन्न प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न की।२७। इसप्रकार त्रेतायुग के आरम्भ में ब्रह्माजी पशु और औषधियों की रचना करके यज्ञ सृजन में लगे ।२८।

गौरजः पुरुषोमेषोअश्वाश्तरगर्दभाः ।
एतान्ग्राम्यान्पमूनाहुररण्यांश्चनिबोधमे ॥२९
श्वापदद्विखुरहस्मीवानराः पक्षिप चमाः ।
ओदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तुसरीसृपाः ॥३०
गायत्रीञ्चत्र्यचचैवत्रिवृत्सामरथन्तरम् ।
अग्निष्टोमंचयज्ञानाँनिर्ममेप्रथमान्मुखात् ॥३१
यजूंषित्रैष्टुभछन्दः स्तौमंपचदसंतथा ।
वृहत्सामतथोक्तं छदक्षिणादसृजन्मुखात् ॥३२
सामानिजगतीच्छन्दःस्तोमंपंचदशतथा ।
वैरूपमतिरात्रंचनिर्ममेपश्चिमान्मुखात् ॥३३

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेवच ।
आनुष्टुभसवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४
विद्यु ताऽशनिमेघांश्चरोहितेन्द्रधनू षिच ।
वयांसिचससर्जाऽऽदौकल्पस्यभगवान्विभुः ॥३५

गौ, बकरा भैंस, मैंढ़ा, घौंड़ा, खच्चर और गधा इन पशुओं को ग्राम्य कहा गया है, अब आरण्य पशुओं का वर्णन करता हूँ ।२९। श्वापद, द्विखुर हाथी, बन्दर, पक्षी, जल के जीव, पशु और सर्पादि यह सात आरण्य अर्थात् बन के जीव कहे गये हैं ।३०। ब्रह्माने पहले अपने मुख से गायत्री, त्रिवृत् साम रथन्तर और अग्निष्टोम की उत्पत्ति की ।३१। दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुम, छन्द, पन्चदश स्तोम, बृहत साम और उक्त को प्रकट किया ।३२। पश्चिम मुख से सामवेद, जगती बृहत् पंचदश स्तोम, वैरूप और अतिरात्र को प्रकट किया ।३३। उत्तर मुख के द्वारा इक्कीस अथर्व, आप्तोर्यास अनुष्टुभ और वैराज की उत्पत्ति की ।३४। उन विभु ने कल्प के प्रथम विद्युत, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्र धनुष और पक्षियों को उत्पन्न किया ।३५।

उच्चावचानिभूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ।
सृष्ट्वाचतुष्टयपूर्वंदेवासुरपितृन्प्रजाः ॥३६
ततोऽसृजत्सभूतानिस्थावराणिच राणिच ।
यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वास्तथैवाप्सरसांगणान् ॥३७
नरकिन्नररक्षांसिवयः पशुमृगोरगान् ।
अव्ययं चैवयदिदंस्थाणुजङ्गमम् ॥३८
तेषायेयानिकर्माणिप्राक्सृष्टेः पतिपेदिरे ।
तान्येवप्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३९
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरेधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्तेतस्मात्त त्तस्यरोचते ॥४०
इन्द्रियार्थेषुभूषुशरीरेषुचसम्प्रभुः ।
नानात्वं विनियोगंचधातैवव्यदधात्स्वयम् ॥४१

नामरूपंचभूतानांकृत्यानांचप्रपंचनम् ।
वेदशब्देभ्यएवाऽऽदौदेवादीनांचकारसः ॥४२
ऋषीणांनामधेयानियाश्चदेवेषुसृष्टयः ।
शर्वर्यन्तेप्रसूतानामन्येषांचददातिसः ॥४३
यथार्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्यये ।
दृश्यन्तेतानितान्येवतथाभावायुगादिषु ॥४४
एवंविधाः सृष्टयस्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
शर्वर्यन्तेप्रबुद्धस्यकल्पेकल्पेभवन्तिवैः ॥४५

फिर सुर असुर, पितर मनुष्य उत्पन्न करके विभिन्न प्रकार के अन्य प्राणियों को उत्पन्न किया ।३६। फिर स्थावर, जंगम भूतगण, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व और अप्सरायें ।३७। नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, भृग, तथा नाग इत्यादि सब नाशभगवान् और स्थायी स्थावर जगम पदार्थों की उत्पत्ति हुई ।३८। सृष्टि के प्रथम ही जिनका जो कर्म है वह निर्दिष्ट हो गया, इसलिए वह बार-बार उत्पन्न होकर भी अपने नियत कर्मो को प्राप्त होते हैं।३६। जन्ममें जीव अहिंसा, मृदुता क्रूरता, धर्म, सत्य, मिथ्या आदि का आश्रय लेता है, उसे परजन्म में उसी की प्राप्ति होती है ।४०। जीवों में इन्द्रियों के विषय और देहों में इन्द्रियां उनके कर्मानुसार ही उन विभु ब्रह्माजी ने निर्मित की है ।४१। उनके नामरूप, कृत्य, अकृत्य, प्रपंच और देव-कर्मा आदि का निर्माण वेद शब्द से किया ।४२। प्रलय के पश्चात पहिले के समान ही उन्होंने ऋषियों के नाम और देवताओं की रचना की ।४१।जैसे ऋतु परिवर्तन के समय उसके लक्षण दिखाई दिखाई देने लगते हैं, वैसे ही युग-युग में उनके आगामी लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।४४।अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी प्रलयान्त के साथ इसी प्रकार सृजन कार्य करते हैं ।४५।

४१-मिथुन सृष्टि और स्थान कथन

अर्वाक्स्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः ।
ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहिब्रह्मासमसृजद्यथा ॥१

यथाचवर्णानसृजद्यद्गुणांश्चमहामते ।
यच्चयेषांस्मृतकर्मविप्रादीनांवदस्वतत् ।।२
ब्रह्मणः सृजतः पूर्वंसत्याभिध्यायिनस्तथा ।
मिथुनानांसहस्त्रन्तुनुखात्सोऽथासृजन्मुने ।।३
जातास्तुह्व पपद्यग्टेसत्वोद्रित्तः स्वतजसः ।
सहस्त्रमन्यद्वक्षस्तोमिथानांससर्जह ।।४
तेसर्वेरजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः ।
ससर्जान्यत्सहस्रं तुद्वंद्वानामरुतः पुनः ।।५
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तुते स्मृताः ।
पद्मयांसहस्त्रमन्यच्चमिथुनानांसमर्जह ।।६
उद्रिक्तास्तमसासर्वेनिश्रीकाह्यल्पचेतसः ।
ततः संघर्षमाणास्तेद्वन्द्वोत्पन्नास्तुप्राणिनः ।।७

क्रोष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने अर्वाक्स्त्रोत वाले मनुष्योंका जो वर्णन किया, उसी विषय को विस्तार पूर्वक कहिए ।१। हे महामते ! गुणवाली सब वर्णों की सृष्टि जिस प्रकार हुई तथा ब्राह्मणादिका जो-जो कर्तव्य है, वह सभी मुझे बताइए ।२। मार्कण्डेयजी ने कहा—सृष्टि के पहिले ही ध्यानशील ब्रह्माजी के मुख से सहस्र मिथुन की सृष्टि हुई थी ।३। यह सब तेजस्वी तथा सतोगुण की अधिकता वाले हुए उनके वक्षस्थल से और दूसरे सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ।४। वह सब क्रोधमय स्वभाव के तथा रजोगुण थे । उनके उपदेशसे जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ।५। वह रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक से युक्त ईर्ष्यावान्, हुए तथा जो सहस्र मिथून दोनों चरणों से उत्पन्न हुए ।६। वह लक्ष्मी हीन तमोगुण तथा तेजहीन हुए, तदनन्तर संघर्षण से जो द्वन्द्वरूप जीव उत्पन्न हुए ।७।

अन्योन्यंहृच्छयाविष्टामैथुनायोपचक्रमुः ।
यतः प्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानांहिसंभवः ।।८
मासिमास्यार्तवयत्तुनतदाऽऽसीत्तुयोषिताम् ।
तस्मात्तदामसुयुवुः सेवितैरपिमैथुनै ।।९

आयुषोन्तेप्रसूयन्तेमिथुनान्येवता: स कृत् ।
(कुलिकंकुलिकाचैव उत्पद्यन्तेमुमूषताम्) ।
तत: प्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनांनांहिसम्भव: ॥१०
ध्यानेनमनसातासांप्रजानांजायतेसकृत् ।
शब्दार्दिविषय: शुद्ध: प्रत्येकपंचलक्षण: ॥११
इत्येषामानुसीसृष्टिर्थापूर्ववैप्रजापते: ।
तस्यान्ववायमम्भूतायैरिदंपरित जगत् ॥१२
सरित्सर: समुद्रांश्चसेवन्तेपर्वतानपि ।
तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णायुगेनस्मिश्चरन्तिवै: ॥१३
तृप्यिस्वाभाविकींप्राप्ताविषयेषूमहामते
नतासांप्रतिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सर: ॥१४
पर्वतो दधिसेविन्योह्यनिकेतास्तुसर्वश: ।
तावैनिष्कामचारिण्योनित्यंमुदितमानसा: ॥१५

वह इन्द्र से उत्पन्न प्राणी प्रसन्नचित से मिथुनमें प्रवृत्त हुए इस प्रकार इस कल्प में मिथुनों की सृष्टि हुई ।८। पूर्वकाल में स्त्रियों को मासिक रजोधर्म का आभाव था, इसलिए वह अन्य समय में मैथुन कर के भी ।९। सन्तति उत्पादन में समर्थ नहीं थी । केबल अवस्था अन्तमें एक ही बार सन्तति होती थी (अन्त अवस्था में ही कुलिक और कुलिका उत्पन्न होते थे) तब वे इसी प्रकार इस कल्प में मिथुन की उत्पत्ति होती आई है ।१०। ब्रह्माजी ने जब प्रजा का चिन्तन किया, तब उनके मन से पंच महाभूत और शब्दादि विषय एक साथ उत्पन्न हुए ।११। यही प्रजापति की मानसी सृष्टि कही जाती है, इस समय यह विश्व उसीं सृष्टि से परिपूर्ण हो रहा है ।१२। पहिले युग में अल्प शीतोष्ण हुए प्रजा गण सरित, सरोवर और समुद्र के निकट अथवा पर्वतों में थे ।१३। हे महामते ! वह उपभोग में स्वाभाविक रूपसे तृप्त रहते थे, उनमें किसी भी प्रकार का विघ्न, द्वेष और मत्सर नहीं था ।१४। वह पर्वत में या समुद्र के किनारे रहते हुए सदा कामना रहित आचरण करते थे और प्रसन्न चित्त रहते थे ।१५।

पिशाचोगोरगरक्षाँसितथामत्सरिणोजनाः ।
पशवः पक्षिण श्चैवनक्रामत्स्याः सरीसृपाः ॥१६
अवारकाह्यण्डजावातेह्यधर्मप्रसूतयः ।
मूलफलपुष्पाणिनार्तवावत्सराणि च ॥१७
र्वकालसुखः कालोनात्यर्थधर्मशीतताः ।
ालेनगच्छत तेषांपित्रासिद्धिरजायत ॥१८
तश्चयेषांपूर्वाह्नेमध्याह्ने च वितृप्तता ।
ुनस्तथेच्छतांतृप्तिरनायासेनसाऽभवत् ॥१९
इच्छताँचतथाऽऽयासोभनसः समजायत् ।
अपांसौक्ष्म्यंततस्तासासिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ॥२०
समजायतुचैवाण्यासर्वकामप्रदायिनी ।
असंस्कार्यैः शरीरैश्चप्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ॥२१

पिशाच, उरग राक्षस, मत्सर युक्त मनुष्य पशु, पक्षी, नेक, मत्स्य, विच्छू ।२७। अवारक और अण्डज प्राणियों की उत्पत्ति अधर्म से हुई है उस समय मूल फल, पुष्प ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ भी नहीं था। ।१७। उस सभय उष्णता तथा शीतभी नहीं था, सब काल अत्यन्त सुख ही था, कालक्रम से उन्हें अद्भुत सिद्धि प्राप्त थी ।१८। पूर्वाह्न या मध्याह्न से उनको तृप्ति नहीं होती थी तो वह इच्छा करके सहज में ही तृप्ति को प्राप्त कर लेते थे ।१९। यथा इच्छा करते ही जलके सूक्ष्म होने के कारण उनकी विभिन्न प्रकार की रस और उल्लास वाली अन्य सिद्धि ।२०। उपस्थित होकर सब इच्छा पूर्ण कर देती, यह संस्कार हीन होते हुए भी स्थिर यौवन से सम्पन्न थे ।२१।

तासांविदातुसंकल्पंजायन्तेमिथुनाः प्रजाः ।
समंजन्मचरूपंचम्रियन्तेचवताः समम् ॥२२
अनिच्छाद्वेषसंयुक्तावर्तन्तेतुपरस्परम् ।
तुल्यरूपायुषः सर्वाअधमोत्तमतांविना ॥२३
चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांमानुषाणिपु ।
आयुःप्रमाणजीवन्तिनचक्लेशाद्विजत्तयः ॥२४

क्वचित्क्वचित् पुनः साऽभत्क्षितिभर्ग्येनसर्वशः ।
कालेनगच्छतानाशमुपयान्तियथाप्रजाः ॥२५
तथाताः क्रमशोनाशजग्मुः सर्वत्रसिद्धयः ।
तासुसर्वासुनष्टासुनभसः प्रच्युतानराः ॥२६
प्रायसः कल्पवृक्षास्तेसंभूतागृहसंज्ञिताः ।
सर्वप्रत्युपभीगाच्चतासांतेभ्यः प्रजायते ॥२७
वर्तयन्तिस्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेतदा ।
ततः कालेनवैरागस्तथासामाकस्मिकोऽभवत् ॥२८

बिना संकल्प ही उनकी मिथुन प्रजा जैसे एक साथ उत्पन्न होती वैसे ही रूप आदि में समता प्राप्त करके एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त होती थी ।२२। उनमें पारस्परिक इच्छा या द्वेष न था, सभी समान-भाव से समय को व्यतीत करते थे, उनमें कोई ऊँच-नीच भी न था, क्योंकि सभी आयु और रूपादि में समान होते थे ।२३। यह मिथुन सृष्टिचार हजार मानवी वर्ष तक जीवित रहती थीं और बिना विपत्ति अथवा क्लेश के ही प्राण छोड़ती थी ।२४। कहीं-कहीं पृथिवी देववशात् ऐसी हो जाती थी, जिसके कारण प्रजा को क्रमानुसार जीवन समाप्त करना होता था ।२५। वह सभी सिद्धियाँ कर्मानुसार नाश की प्राप्त हो गयी और उनके समाप्त होते ही आकाश से रस बरसने लगे ।२६। तब जल और दुग्ध की प्राप्ति हुई ग्रहों में कल्पवृक्षों की उत्पत्ति हुई और उन कल्पवृक्षों से ही सम्पूर्ण भोगों की उपलब्धि होने लगी ।२७। त्रेता के प्रारम्भ में अपने जीवन का निर्वाह मनुष्य इस प्रकार किया करते थे, फिर समय पाकर उसमें आकस्मिक रागकी उत्पत्ति हुई ।२८

मासिकमास्यार्ततोत्पत्यागर्भोत्पत्ति पुनः पुनः ।
रागोत्पत्याततस्त साँवृक्षास्तेगृहसंस्थिताः ॥२९
प्रणेशुरपरेचासांश्चतुः शाखामहीरुहाः ।
वस्त्राणिचमुसूयन्ते फलेष्वाभरणानिच ॥३०
तेष्वेवजायतेतेषांगन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमक्षिकंमहावीय पुटकेपुटकेमधु ॥३१

तेनतावर्तयन्तिस्ममुखेत्रेतायुगस्यवै ।
ततः कालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुताः ॥३२
वृक्षास्ताः पर्यगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतसः ।
नेशुस्तेन पचारेणतेऽपितासांमहीरुहाः ॥३३
(मूलेषुचापरं वासंचक्रः शालामहीरुहाम् ।)
ततोद्वन्द्वन्यजायन्तशीतोष्णक्षन्मुखानिवै ।
ताथ्तद्द्वन्दोपचाताथचक्रु: पूर्वं पुराणितु ॥३४

इस प्रकार राग के उत्पन्न होने से ही मासिक ऋतुराज और बार-बार गर्भ धारण होने लगा और उनके घर में स्थित कल्पवृक्ष भी राग युक्त हो गए ।२९। इससे वह कल्पवृक्ष नाश को प्राप्त हुए और चार शाखों वाले अन्य वृक्षों की उत्पत्ति हुई, उनके फलों में वस्त्राभरणप्रकट होते थे ।३०। फलों के प्रत्येक पट में श्रेष्ठ गन्ध और वर्ण वाला बल प्रद मधु मक्खियों के बिना ही उत्पन्न होता था ।३१। त्रेता के प्रारम्भ काल की प्रजा इस मधु को पीकर ही जीवन धारण करती थी, फिर वह कालक्रम से लोभान्ति होकर ।३२। ममता वाले वनसे उन वृक्षों के ग्रहण करने के कारण सभी वृक्ष नष्ट हो गए ।३३। (वृक्षों की निवास यो-य शाला वनाली थी फिर शीत उष्णता, क्षुधा आदि सभी द्वन्द्व-उत्पन्न हुए, तब उन्हें निवारण करने के लिए पुरों का निर्माण किया ।३४।

तरुधन्वसुदुर्गेषुपर्वतेषुदरीषुच ।
संश्रन्तिचदुर्गाणिवार्क्षं पार्वतमौदकम् ॥३५
कृत्रिमचतथादुर्गमित्वात्मनोऽगुलैः ।
मानार्थापिप्रमाणातितास्तुपूवप्रचकिरे ॥३६
परमाणुः परंसूक्ष्मंत्रसरेणमहोरजः ।
बालाग्र चैवलिक्षांचयूकांचाथयवोदरम् ॥३७
एकादशगुणंतेषांयवमध्यंतथांगुलम् ।
षडगुलपदतच्चविततिर्द्विगुणस्मृतम् ॥३८

द्वे विश्तौतथाहस्तोब्राह्मयतीर्थादिवेष्टनम् ।
चतुर्हस्तंधनुर्दण्डोनाड़िकायुगमेवच ।३९
धनुषांद्वे सहस्रे तुगव्यतिस्तच्चतुर्गुणम् ।
प्रोक्तं चयोजनंप्राज्ञै: संख्यानार्थमिदपरम् ।।४०
चतुर्णामथदुर्गाणांस्वसमुत्थानित्रींणिणु ।
चतुर्थंक्रु त्रमदुर्गंतच्चक्रुयात्सतस्तुते ।४१

तब मरुभूमि. पर्वत, गुफा इत्यादि में दुर्ग आदि के बनने पर यह उन वृक्षों पर्वतों और जल आदि में स्थित दुर्गों में रहने लगे।३५। तथा अपनी अँधुली आदिके परिणाम बनाया।३६। अति सूक्ष्म प्रमाणके लिए परमाणु जाली के छेदों में किरण पड़ने में सूक्ष्म रज दिखाई देती है, इसके तृतीयांश को परमाणु कहते हैं। परमाणु और धूल तथा स्थूल प्रमाण के लिए केशाग्र, तिष्क, यूका और सब निश्चित किया ।३०। आठ यव में अंगुल, छः अंगुल में एक पद, दो पद में वितस्ति ।३८। दो वितस्ति में एक हाथ, ब्राह्मतीर्थ तक चार हाथ में धनुर्दण्ड अथवा नाड़िका युव ।३९। दो हजार धनु में एक गव्यति और चार मव्यूत में एक योजन होता है। संख्या निरूपणार्थ पण्डित जनों ने इस प्रकार निर्धारित किया है।४०। पहले किए हुए चार प्रकार के दुर्ग में तीन स्वाभाविक और अन्य कृत्रिम है। दुर्ग कर्म यही हैं।४१।

पुरं चखेटकचवतद्वद्द्रोणोमुखद्विज ।
शाखानगरकंचापितथाखर्वटकत्रयी ।।४२
ग्रामसंघोषविन्यासंतेषुचावसथान्पृथक् ।
सोत्सेधवप्रकारकसर्वत: परिखातृतम् ।४३
योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागाययंपुरम् ।
प्राणुदक्प्रवणंशस्तशुद्ध वंशबहिर्गमम् ।।४४
तदर्द्धेनतथाखेटंतत्पादेनचखर्वटम् ।
न्यूनंद्रोणोमुखतस्मादंष्तभागेनचोच्यते ।।४५

प्राकारपपिसहीनपुरंवर्मवदुच्यते ।
शाखानगरकचान्यन्मन्त्रिसामान्तभुक्तियुत् ॥४६
तथाशद्राजलप्राया: स्वसमृद्धिकृपीवला: ।
क्षेत्रोषभोग्यभूमध्येवसतिर्ग्रामसाँज्ञिता ॥४७
अन्यस्मान्नगरादेर्याकार्यमुद्दिश्यमानवै: ।
क्रियतेवसति: सावंविज्ञयावसतिर्नरै: ॥४८
दुष्टप्रायोविनाक्षेत्रै: परभूमिचरोवली ।
ग्राभएवाऽकिमीसंज्ञोराजवल्लभसाँन्नय: ॥४९

फिर उन्होंने उन स्थानों में पुर, खेटक, द्रोणमुख, शखानगर, खर्वटक द्रमो ।४२। ग्राम संघोष की रचना की और उनमें पृथक-पृथक आवास घर बनाये जिसके चारों ओर प्राचीन खाइयां थी ।४३।लम्बाई में दो कोस और उसके अष्टांश चौड़े को पुर कहतेहैं । इसका पूर्वओर उत्तर भाग जल प्लावित होने के कारण उसमें बाहर आने का मार्ग पुल होना चाहिए ।४४। पुर के अर्द्ध लक्षण वाले को खेटक उससे अर्ध लक्षण वाले को खवेटक तथा पुर के अष्टमांण लक्षण वाले को द्रोण-मुखी कहते हैं ।४५। जिस पुर में दीवार तो हैं परन्तु खाई नहीं है खर्वट कहा गया है । जिसमें मत्रिगण और सामन्तादि रहते हों उसे विभिन्न प्रकार के भोग पदार्थ वाले को शाखा नगर कहते हैं ।४६। जहाँ शूद्र तथा अपनी अपनी समृद्धि वाले कृषक रहते हों और जिसके चारों ओर खेत आदि हैं उसे ग्राम कहा गया है ।४७। किसी कार्य से अन्वान्य नगरादि में लोग रहते हैं उसे वसति कहते हैं ।४८। जिस ग्राम के मनुष्य दुष्ट प्रकृति के बलवान् और अपना खेत न होने पर पराये खेत पर अधिकार कर लेते हैं और जहाँ राजा के प्रिय लोग रहते हों वह ग्रामक्रिमी कहा गया है ।४९।

शकटारूढभाणगैश्चगोपालैर्विपणंविना ।
गोयमूहस्तथ घोषोयत्रेच्छाभूमिकेतन: ॥५०
तएवंनगर दीस्तुकृत्वावासार्थमात्मन: ।
निकेतनानिद्वंद्वातांचक्रुरावशथायवै ॥५१

गृहकारायथापूर्वं तेषामासन्महीरुहा: ।
तथासंस्मृत्यतत्सर्वंचक्रुर्वेश्मानिता: प्रज्ञा: ॥५२
वृक्षस्यैवङ्गता शाखास्तथैवंचापरावता: ।
नताश्चैवोन्नताश्चैवतदच्छाखा: प्रचक्रिरे ॥५३
या: शाखा: कल्पवृक्षाणाँपूर्वमासन्द्विजोत्तम ।
ताएवशाखागेहानांशालात्वंतेनतासुतत् ॥५४
कृत्वाद्वंद्वोपचाततेवार्तोपायमचिंतयत् ।
नष्टेषमधुनासार्द्धं कल्पवृक्षोष्वशेषत: ॥५५

जहाँ ग्वाले अपने वर्तन आदिको गाडी पर लादकर रखते है, जहां गौयें अधिक रहती हैं, जहाँ बाजार न हो और भूमि धन के बिना ही मिल जाती हो उसे घोष कहते हैं ।५०। इसप्रकार इन्होंने अपने निवासार्थ स्थान बनाकर द्वन्दों का कथन करने और व्यापार आदि के लिए ग्रहों का निर्माण किघा, पहिले जो वृक्ष घरों के समान थे, उन्हीं के आधार पर बनाये गये।५१-५२। जैसे पेड़ की शाखायें एक के पीछे एक दूसरी तथा ऊँची नीची होती हैं, उसी प्रकार घर की रचना की गई ।५४। पहिले जो कल्पवृक्ष की शाखायें थीं, उन शाखाओं में सब घरों का शालात्व प्राप्त किया ।५४।जब इन शालाओं द्वारा उनके शीत उष्ण आदि दुःख नष्ट हुए, तब वह अपनी जीविका के निर्वाहार्थ चिन्ता करने लगे उस समयमधु के सहित सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे ।५५।

विषादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिता ।
तत: प्रादुर्वभौतासांसिद्धिस्त्रेतामुखेतदा ॥५६
वार्त्तास्वसाधिताह्यन्यावृष्टिस्तासांनिकामत: ।
तासांवृष्टयुदकानीहयानिनिम्नगतानि वै ॥५७
वृष्टयावरुद्धैरभवत्स्रोत: खातानिनिम्नगा: ।
येपुरस्तादयांस्तोकाआपन्ना: पृथिवीतले ॥५८
ततोभूमेश्चसंयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् ।
अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यश्चतुर्दश ॥५९

ऋतुपुष्पफलाश्चैववृक्षागुल्माश्चजज्ञिरे ।
प्रादुर्भावस्तुत्रेतायामाद्योऽयमोषधस्यतु ॥६०
तेनौषधेनवर्तन्तेप्रजास्त्रेतायुगेयुगे ।
रातलोभौसमासाद्यप्रजाश्चाकस्मिकौतदा ॥६१
ततस्ताः पर्यगृह्णन्तनदीक्षेत्राणिपर्वतान् ।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्मान्य यथाबलम् ॥६२
तेनदोषेणतानेशूराषध्योमिषांद्विजः ।
अग्रसद्भूयुंगपत्तास्तदौषध्योमहामते ॥६३

तब वह सम्पूर्ण प्रजा विषाद और क्षुधा पिपासासे अत्यन्त व्याकुल होगई, क्योंकि त्रेता के आरम्भ में ही उनमें इस प्रकार की सिद्धि थी ।५६। उस समय उनके इच्छा करते ही वर्षा होती और वर्षा का जल नीचे को गमन करता था ।५७। वर्षा का रुका हुआ जल स्रोत द्वारा गहराई करता हुआ नदी स्वरूप हो गया तथा प्रथा प्रथम जो सामान्य पृथ्वी में गिरा ।५८। उस समय वह जल मिट्टी से मिलकर निर्दोष हो गया, इसमें ग्राम्य और आरण्यजो चौदह वृक्ष थे सभी स्वयं उत्पन्न हुए थे ।५९। वह सब ऋतु में फल, पुष्प उत्पन्न करते थे । इस प्रकार त्रेता के प्रारम्भ में सब औषधियाँ उत्पन्न हुई ।६०। हे मुने अकस्मात् राग और लोभ से युक्त प्रजागण उन औषधियों से उत्पन्न हुये पदार्थ से ही त्रेता के प्रारम्भ में जीवन धारण करते थे ।६१। फिर जिससे देह अधिक बलशाली हो सके, इसलिए नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष, गुल्म एवं सब औषधियों का अवलम्बन करने लगे ।६२। इसी दोष के कारण वह सभी औषधियां नष्ट हो गई अर्थात् एक समयमें ही वह सब औषधियाँ पृथ्वी द्वारा ग्रास ली गयीं ।६३।

पुनस्तासुप्रणष्टामुविभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः ।
ब्रह्माणशरणजग्मुक्षुधार्त्ताः परमेष्ठितम् ॥६४
सचापितत्क्तोज्ञात्वातदाग्रस्तांवसुन्धराम् ।
वत्सकृत्वासुमेरुंतुदुदोहभगवान्विभुः ॥६५

दुग्धेयंगौस्तदातेनसस्यानिपृथिवीतले ।
जज्ञिरेतानिबीजानिग्राम्यारण्यास्तुत: पुन: ॥६६
ओषध्य: फलपाकान्तागणा: सप्तदशस्मृता: ।
ब्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिला: ॥६७
प्रियंगवोह्यदाराश्चकोरदूषासचीनका: ।
माषामुद्गामसूराश्चनिष्पावा: सकुलत्थका: ॥६८
आढकाश्चणकाश्चैवशणा: सप्तदशस्मृता ।
इत्येतेताओषधीनांतुगम्याणांजतय:पुरा ॥६९

इस प्रकार सब औषधियों के ग्रसित होने पर सम्पूर्ण प्रजा भ्रात और क्षुधातुर होकर ब्रह्माजी के शरण में गयीं ।६४। तव उन ब्रह्माजी ने पृथ्वी को ग्रास करने वाली जानकर सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर दोहन किया ।६५। तव पृथिवी अपने तल में समस्त धान्यों का दोहन कराने लगी, उससे सव जीवों की उत्पत्ति हुई और ग्राम तथा वृक्ष उत्पन्न हुए ।६६। फल पकने पर सूखने वाली सत्रह प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुई उनके नाम ब्रीहि, जौ, गेहूँ, तिल कोदों ।६७। प्रियगू, फल, राईकोबिदार, लाल कचनार, मटर, उड़द:, मूँग, मसूर, लोंबिया, कुलथी ।६८। अरहर और चना इन सत्रह जातियों की यह ग्राम्योपधि उत्पन्न हुई ।६९।

ओषध्योयज्ञियाश्चैवग्रास्यारण्याश्चतुर्दश ।
ब्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिला: ॥७०
प्रियंगुषष्ठाह्येतेसप्तमास्तुकुलत्थका: ।
श्यामाकास्त्वथनीवारायत्तिलासगवेधुका: ॥७१
कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयवाश्चये ।
ग्राम्याराण्या: स्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश ॥७२
यदाप्रसृष्टाओषध्योनप्ररोहन्तिता: पुन: ।
तत: सतासांबृद्धयर्थं वार्त्तोपायचकारह ॥७३
ब्रह्मास्वयभूर्भगवान्हस्तसिद्धिचकर्मजाम् ।
तत: प्रभृत्यत्रौषध्य: कृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥७४

ससिद्धायांतुवार्त्तायांतत स्तसाँस्वयंप्रभुः ।
मर्यादास्थापयामासयथान्यायथागुणम् ।।७५
वर्णानामाश्रमाणांचधर्मान्धर्मभृतांवर ।
लकानांसर्ववर्णानांसम्यधर्मार्थपालिनाम् ।।७६

जो चौदह प्रकार की ग्राम्य और आरण्यक औषधियाँ हैं वह यज्ञ में व्यवहृत होती है। व्रीहि, जो, गेहूँ, अणु, तिल ।७०। प्रियंगु कुलथी श्यामक, अलसी, तिल तथा गवेधुक ।४६। कुलथी, मर्कटक, वेणू, यव चावल यह चौदह प्रकार की औषधियाँ ग्राम्यारण्यक मानी गई हैं ।७२। इस प्रकार उन श्रेष्ठ औषधियों का उत्पादन रुक गया तब ब्रह्माजी ने उनके जीवन यापन का उपाय सोचा ।७३। तब उन्होंने कर्म द्वारा सिद्धि होने वाली हस्त-सिद्धि को उत्पन्न किया तभी जोतने से उत्पन्न होने वाली औषधियों की उत्पत्ति हुई ।७४। इस प्रकार उनके जीवन का साधन हो जाने पर स्वयं ब्रह्माजी ने न्याय और गुण के अनुसार उनकी मर्यादा बनाई ।७५। उस समय सब वर्णाश्रमों का धर्म तथा धर्म और अर्थ का पालन करने वाले लोक धर्म का निरूपण किया ।७६।

प्राजापत्यब्राह्मणानस्मृतस्थानंक्रियावताम् ।
स्थानमन्द्रक्षत्रियाणासंग्रामेष्वपलायिनाम् ।।७७
वैश्यानांमारुतस्थानस्वधर्ममनुवतताम् ।
गान्धर्वशूद्रजातीनांपरिचर्यानुवर्तिनाम् ।।७८
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणानूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतंतेषाँन्तुयत्स्थानतदेवगुरुवासिनाम् ।।७९
प्राजापत्यंगृहस्थानांसन्यासिनाँब्रह्मणः क्षयम् ।
योगिनाममृतंस्थानमितिवैस्थानकल्पना ।।८०

कर्मवान् ब्राह्मणोंके लिए उन्होंने प्राजापत्य स्थानकी कल्पनाकीओर युद्धसे विमुख न होनेवाले क्षत्रियोंके लिए ऐन्द्र स्थान नियत किया।७७। स्वधर्म परायण वैश्यों के लिए मारुत स्थान और सेवा करने वाले शूद्रों

के लिए गांधर्व स्थान बनाया ।७८। अट्ठासी सहस्र ऊर्ध्वरेता ऋषियों के लिए स्थान नियत किये गये, वही स्थान गुरुघरमें निवास करनेवाले ब्रह्माणों के लिए निश्चित हुए ।७९। सप्त ऋषियों के लिए जिन स्थानों की स्थापना हुई वही स्थान वनवासियों के लिए नियत किये गए, ग्रहस्थ के लिए प्राजापत्य, सन्यासियों के लिए अक्षय ब्राह्मपद तथा योगियों को अमृतस्वरूप मोक्ष स्थान कल्पित किया गया ।८०।

४२-यक्षानुशासर

ततोऽभिध्यायतस्तस्यजज्ञिरेमानसीः प्रजाः ।
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यस्तैः कारणैः सहः ॥ १

क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्तगात्रेभ्यस्तस्यधीमतः ।
तेसर्वसमवर्तन्तयेमयाप्रागुदाहृताः ॥२

देवाद्य स्थावरांताश्चत्रैगुण्यविषयाः स्मृता ।
एवभूतानिसृष्टानिस्थावराणिच ॥३

यदाऽस्यताः प्रजाः सर्वानव्यवर्द्धन्तधीमतः ।
अथात्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४

भृगपुलस्त्यंपुलहक्रतुमङ्गिरसंतथा ।
मरीचिदक्षमत्रिचवसिष्ठचैवमानसम् ॥५

नवब्रह्मणइत्येतेपुराणेनिश्चयङ्गताः ।
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मारुद्रंक्रोधात्मसम्भवम् ॥६

सङ्कल्पचैवधर्मं चपूर्वेषामपिपूर्वजम् ।
सनन्दनादयोयेचपूर्वसृष्टाः स्वयभुवा ॥७

नतेलोकेषुसज्जन्तोनिरपेक्षाः समाहिताः ।
सर्वेतेऽनागतज्ञानावीतरागाविमत्सराः ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर ब्रह्माजी के दुवारा चिन्तन करने पर उन के देह से कार्य कारण वाली मानसी प्रजाकी उत्पत्ति हुई।१। उन ब्रह्माजी के शरीर से सब क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए और जो इनके अतिरिक्त उत्पन्न हुए उनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।२। देवताओं से स्थावर तक सभी जीव त्रिगुणात्मक हैं, इस प्रकार स्थावर जंगम चराचर प्राणियों की ब्रह्माजी ने उत्पत्ति की।३। परन्तु जब ब्रह्माजी से अपनी समस्त प्रजा की वृद्धि होती हुई न देखा, तब उन्होंने अपने जैसे ही मानस पुत्रों की सृष्टि की।४। उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ इन मानस पुत्र को, उत्पन्न किया।५। ब्रह्माजी के यह नौ मानस पुत्र माने गए हैं, फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्र की उत्पत्ति की।६। फिर सकल्प और धर्म को उत्पन्न किया जो कि पहिले से ही प्रकट हैं, उन्होंने पूर्व सृष्टिमें ही सनन्दनादि तथा स्वायभुव को उत्पन्न किया।७। यह सभी भविष्य के जानने वाले, राग-रहित मात्सर्यहीन, निरपेक्षण और समाधि युक्त बने रहे।८।

तेष्वेवंनिरपेक्षेषु लोकसृष्टौमहात्मनः।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तंत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः॥९
अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान्।
विभजात्मानमित्युक्त्वासतदान्तर्दधततः॥१०
सचोक्तोवैपृथक्स्त्रीत्वंतथाऽकरोत्।
विभेदपुरुषत्वंचदशधाचैकधातुसः॥११
सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तैः पुंस्त्वस्त्रीत्वंचसप्रभुः।
विभेदबहुधादेवः पुरुषैरमितैः शितैः॥१२
ततोब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवप्रभुः।
आत्मनः सदृशंकृत्वाप्रजापालीमनु द्विजः॥१३
शतरूपांचतांनारींतपोनिर्धूतकल्मसाम्।
स्वायक्ष्भुवोमनुर्देवः पत्नीत्वेजगृहेविभुः॥१४

सृष्टि कार्य से उनके इस प्रकार निरपेक्ष रहनेपर ब्रह्माजी अत्यन्त क्रोधित हुए और उस क्रोध से सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुष आविर्भूत हुआ।६। उसके शरीर का अर्द्धाङ्ग पुरुष और अर्द्धाङ्ग स्त्री था,

फिर ब्रह्माजी उससे अपने देह को विभाजित कर' कहते हुए अन्तर्धान हो गये ।१०। ब्रह्माजी की ऐसी आज्ञा पाकर उस पुरुष ने अपने शरीर के ही भाग किए, जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक्-पृथक् हो गये, उसमें पुरुषाकार भाग को सौम्य, असौम्य, शान्त, असित सित आदि के भेद से ग्यारह भागों में बाँटा ।११-१२। फिर ब्रह्माजी ने अपने समान पूर्वोत्पन्न उस पुरुष का नाम स्वायंभुव मनु रखा और उसे प्रजापालक बनाया ।१३। और जिस स्त्री ने तप के द्वारा अपने पापों का क्षय किया था, उसका नाम 'शतरूपा' रखा, तब देव एवं विधु स्वायम्भुव मनु ने उस शतरूपा को अपनी भार्या बनाया ।१४।

तस्माच्चपुरुषातपुत्रौशतारूपाव्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानादौप्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥१५
कन्येद्वे चतथाऋद्धिप्रसूतिचततः पिता ।
ददौ प्रसूतिदक्षायतथाऋद्धितरुचेः पुरा ॥१६
प्रजापतिः सजग्राहतयोर्यज्ञः सदक्षिणः ।
पुत्रोजज्ञे महाभागदम्पतीमिथुनंततः ॥१७
यज्ञस्यदक्षिणायांतुपुत्राद्वादशजज्ञिरे ।
यामाइतिसमाख्यातादेवाः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥१८
तस्यपुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायांसुभास्वराः ।
प्रसूत्यांचतथादक्षश्चतस्रोविंशतिस्तथा ॥१९
ससर्ज्जकन्यास्तासांचसम्यङ् नामानिमेश्रृणु ।
श्रद्धालक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टर्मेधाक्रियातथा ॥२०
बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिः सिद्धिकीर्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थेप्रति जग्राहधर्मोदाक्षायणीः प्रभुः ॥२१

उस पुरुष के द्वारा शतरूपा के दो पुत्र हुए, उनमें से एक का नाम प्रियव्रत और दूसरे का नाम उत्तानपाद हुआ,इन दोनोंकी प्रसिद्धि अपने अपने कर्म से हुई ।१५। और शतरूपा के दो कन्यायें ऋद्धि और प्रसूती नामकी हुई । स्वायंभुव मनु ने प्रसूती को दक्ष के लिए और ऋद्धि को

प्रजापति रुचि के लिए ।१६। अर्पण कर दिया, उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा रखा गया, वे दोनों दाम्पत्य सूत्र में बँध गये ।१७। उस दक्षिणा से यज्ञके जिन बारह पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई, वह स्वायंभुव मन्वन्तर में 'याम' देवता के नाम से प्रसिद्ध हुए।१८। उसी दक्षिणा से भास्वर आदि अन्य अनेक पुत्र उत्पन्न हुए । उधर दक्ष ने प्रसूती के गर्भ से चौबीस ।१९। कन्यायें उत्पन्न की, उनके नाम सुनो श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, ।२०। बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि इन तेरह दक्षसुताओं को धर्म ने अपनी पत्नी बना डाला ।२१।

ताभ्यः शिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचनाः ।
ख्यातिः सत्यथसम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथाक्षमा ॥२२
सन्ततिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा ।
भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनिः ॥२३
पुलस्त्यः पुलहश्चैवक्रतुश्चऋषयस्तथा ।
वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्निः पितरश्चयथाक्रमम् ॥२४
ख्यात्याद्याजगृहुः कन्यामुनयोमुनिसत्तमाः ।
श्रद्धाकामश्रीश्चदर्पं नियमंधृतिरात्मजम् ॥२५
सन्तोषंचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरजायत ।
मेधाश्रुतंक्रियादण्डनयंविनयमेवच ॥२६
बोधंबुद्धिस्तथालज्जाविनयंवपुरात्मजम् ।
व्यवसायंप्रजज्ञेवैक्षेमंशान्तिरसूयत ॥२७
सुखंसिद्धिर्यशः कीर्तिरित्येतेधर्मयोनयः ।
कामादतिमुदंहर्षं धर्मपौत्रमसूयत ॥२८

और ग्यारह-ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा।२२। संतति अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नाम से प्रसिद्ध थी, उन्हें भृगु इत्यादि ने क्रमशः ग्रहण किया ।२३। भृगु, शङ्कर मरीचि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठः अत्रि वह्नि और पितगण ।२४। इन मुनियो, मुनिसत्तमों और ऋषियों ने ख्याति इत्यादि ग्यारह दक्षसुताओं को ययाक्रम ग्रहण

किया, श्रद्धा ने काम को उत्पन्न किया लक्ष्मी ने दर्प को धृति ने नियम को।२५। तुष्टि ने सन्तोष को, पुष्टि ने लोभ को, मेधा ने श्रुति को, क्रिया ने दण्ड को।२६। बुद्धि ने बोध को लज्जा ने नियम को, वपुने व्यवसाय को, शान्तिने क्षेम को।२७। सिद्धि ने सुख को ओर कीर्ति ने यज्ञ को जन्म दिया, धर्मकी यही सन्तान हैं। काम से हर्ष नामक धर्म के पौत्र की उत्पत्ति हुई।२८।

हिंसाभार्यात्वधर्मस्यांजज्ञे तथाऽनृतम्।
कन्याचानिर्ऋतिस्तस्यांसुतौद्वौनरकंभयम्॥२९
मायाचवेदनाचैवमिथुनद्वयमेतयोः।
तयोर्जज्ञेऽथवैमायामृत्युं भूतापहारिणम्॥३०
वेदनात्मसुतचापिदुःखंजज्ञेऽथरौरवात।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्चजज्ञिरे॥३१
दुःखोद्भवदाः स्मृताह्येतेसर्वेवाऽधर्मलक्षणाः।
नैषांभार्यास्तिपुत्रोवासर्वेतेह्यूद्र्ध्वरेतसः॥३२
निर्ऋतिश्चतथाचान्यामृत्याभार्याऽभवन्मुने।
अलक्ष्मीनांमतस्यांच मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश॥३३
अलक्ष्मीपुत्रकाह्येतेमृत्योरादेशकारिणः।
विनाशकालेषुनरान्भजन्त्येतश्शृणुष्वतान्॥३४

अधर्म की पत्नी का नाम अहिंसा हुआ,उससे अनृतकी उत्पत्ति हुई, अनृत ने निर्ऋति नामकी पत्नी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न किए,जिनके नाम 'नरक' और 'भय' हुए।२९। तथा माया और वेदना नामक दो कन्यायें हुई इन पुत्र पुत्रियोंमें परस्पर मिथुनभाव की सृष्टि हुई। माया के गर्भ से जीवों का संहारक 'मृत्यु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।३०।तथा वेदना के गर्भ से नरकने दुःखनामक पुत्र उत्पन्न किया, मृत्यु से व्याधि, जरा शोक तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई।३१। दुःख के यह सभी पुत्र महाअधर्मी हुए सब यह ऊर्ध्व रेता है, इसलिए इनके पत्नी या पुत्र नहीं हैं।३२। हे मुने! मृत्यु की निःऋति नामक जो पत्नी थी वह अलक्ष्मी भी कही जाती है, उससे मृत्यु ने चौदह पुत्रों की उत्पत्ति की।३३। मृत्यु की आज्ञा में रहने वाले सब पुत्र 'अलक्ष्मी' ही कहे जाते हैं,

मृत्यु के समय यह मनुष्यों के जिस-जिस अङ्ग में स्थित रहते हैं, उनके नाम बताता हूँ ।३४।

इन्द्रियेषुदशस्वेतेतथामनसिच स्थिता: ।
स्वेस्वेरंस्त्रियंवापिविषयेयोजयन्तिहि ॥३५
अथेन्द्रियाणिचाक्रम्यरागक्रोधादिभिर्नरान् ।
योजयन्ति तथाहानियान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥३६
अहंकारगताश्चान्यस्तथान्योबुद्धिसंस्थित: ।
विनाशायनरा: स्त्रीणांयतन्ते मोहसंश्रिता: ॥३७
तथैवान्योगृहेषु सांदु: सहोनामविश्रुत: ।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमरवन: ॥३८
ससर्वान्खादितुं सृष्टोब्रह्मणातमसौनिधि: ।
दंष्ट्रकरालमत्मर्थं विवृतास्यंसुभैरवम् ॥३९
तमत्तुकाममाहेदंब्रह्मालोकपितामह: ।
सर्वंब्रह्ममद: शुद्ध: कारणंजगतोऽयय: ॥४०
नात्तव्यंतेजगदिदं जहिकोपं शमंब्रज ।
त्यजैनांतामसींवृत्तिमपास्यरजस: कलाम् ॥४१
क्षुत्क्षामोऽस्मिजगन्नाथपिषासुश्चापिदुर्बल: ।
कथंतृप्तिमियांनाथ भवेयंबलवान्कथम् ।
कश्चाश्रयोममाऽख्याहिवर्तेयंयत्रनिर्वत: ॥४२

उनमें से प्रथम दश तो दशों इन्द्रियों में निवास करते हैं ग्यारहवां मन के ऊपर रहता हैं और स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने विषय में संयुक्त करता है ।३४। फिर रागादि के द्वारा सब इन्द्रयों को आक्रांत कर अधर्म आदि से मिला देता है । जिससे उसकी अत्यन्त हानि होती हैं । ।३५। मृत्यु का बारहवां पुत्र अहंकार में रहता है । तेरहवां पुत्र जीवों की बुद्धि पर रहता है इससे मोहित हुए मनुष्य स्त्रियों को नष्ट करने प्रयत्न करते हैं ।३६। और चौदहवां अलक्ष्मी-पुत्र जिसे दु:सह कहते हैं यह घर-घर में रहकर सदा क्षुधातुर, अधोमुख, नग्न चीरधारी और कौए के समान शब्द करता है ।३७। प्रतीत होता है कि ब्रह्माजी ने इस

तमसोनिधि को सब पदार्थों का भक्षण करने के लिए ही उत्पन्न किया है। फिर उस दुःसह को कराल द्रंष्ट्रा, फैले हुए मुख से भयंकर शब्द करते हुए।३९। तथा सबको भक्षण करने के लिए तत्पर देखकर जगत् के कारण रूप अविनाशी पितामह ब्रह्माजी बोले।४०। ब्रह्माजी ने कहा—हे दुःसह ! संसार को भक्षण करना तुम्हारे लिए अनुचित हैं, तुम क्रोध को छोड़कर शान्त होओ, इस तमोगुणी वृत्ति और रजोगुण के अंश का परित्याग करो।४१। दुःसह ने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं क्षुधा के कारण अत्यन्त कृश और पिपासा के कारण दुर्बल हो गया हूँ, मैं किस प्रकार तृप्त तथा बलवान् होऊँ और जिसके आश्रय में सुखपूर्वक रहूँ, यह कृपा पूर्वक बताइए।४२।

तवाश्रयोगहंपं सांजनश्चाधार्मिकावलम् ।
पुष्टिनित्यक्रियाहान्याभवान्वत्संगमिष्यति ॥४३
लताः स्फोटाश्चतेवस्त्रमाहारं चददामिते ।
क्षुतंकीटावपन्नंचतथाऽत्वभिरयेक्षितम्। ।४४
भग्नभाण्डगततद्वत्मुखवातोपशामितम् ।
उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसस्कृतम् ॥४५
भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेवच ।
विदिङ्मुखसन्ध्ययोश्चनत्यवाद्यस्वरोत्तमम् ॥४६
उदक्योपहतंभुक्तमुदक्याहृष्टमेवच ।
यच्चोपधायवर्तिकंचित भक्ष्यपेयंमथापिवा ॥४६
एतानितवपुष्टचर्थमन्यच्चापिददामिते ।
अश्रद्धयाहुतंदत्तमस्नातैर्यंदवज्ञया ॥४८
यन्नास्बुपूर्वकंक्षिप्तमनर्थीकृतमेवच ।
त्यक्तुमाविष्कृतंयत्तु दत्तं चैवातिविस्मयात् ॥४९

ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! पुरुषों का घर तुम्हारा आश्रय स्थान अधर्मी मनुष्य तुम्हारा बल तथा नित्यकर्म की हानि ही तुम्हारे लिए तुष्टि होगी।४३। मकडी के जाने और सायस्फोट तुम्हारे वस्त्र हैं, अब मैं तुम्हें आहार देता हूँ, जिस घाव में कीड़े उत्पन्न हो गए और जिसे

कुत्ते ने देख लिया है, ऐसे व्रण का स्वामी तुम्हारे आंहार स्वरूप है ।४४। फूटे पांत्र में रखा हुआ पदार्थ अथवा जो पदार्थ मुख की फूंक से ठंठा किया हो, उच्छिष्ट या कच्चा अथवा संस्कार रहित हो ।४५। अथवा फटे आसन पर बैठकर या अतिथि को भोजन दिए बिना अथवा दक्षिण की ओर मुख करके या सन्ध्या के समय नृत्य के समय गायन-के समय जो पदार्थ खाया जाय ।४५। अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा देखा या छूआ, किसी का भी झूंठा अथवा दोष युक्त पका हुआ भोजन ।४७। यह सब पदार्थ तुम्हारे खाने के योग्य और पुष्टि करने वाले होंगे। तुम्हारी पुष्टिके लिए और भी प्रदान करता हूँ। जो स्नान किए बिना अश्रद्धा से हवन किया जाय या अज्ञानी मनुष्यों के द्वारा दान किया जाय ।४८। जो वस्तु जल स्पर्श के विना दी गई हो व्यर्थ पड़ी हुई हो, जो विस्तार की गई हो या भय से दी गई हो ।४९।

दुष्टक्रुद्धार्तदत्तञ्चयक्षतद्भाणितत्फलम् ।
यच्चपौनर्भवः किंचित्करोत्यामुष्मिकक्रमम् ॥५०
यच्चपौनर्भवायोषित्तद्यक्षमतवतृप्तये ।
कन्याशुल्कौपधानायसमुपास्तेधनक्रियाः ॥५१
तथैवयक्षपुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्चयाः ।
यच्चार्थनिर्वृतकिंचिदधीतंयन्नसत्यतः ॥५२
तन्सर्व तवकालांश्चददामितवसिद्धये ।
गुर्विण्यभिगनेसन्ध्यानित्यकार्यव्यतिक्रमे ॥५३
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषुचदुःसह ।
तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदानृषु ॥५४
पङ्क्तिभेदेवृथापाकेपाकभेदेतथक्रिया ।
नित्यंचगेहूकलहंभवितावसतिस्तव ॥५५
अपोष्यमाणेचतथाभृत्यगोवाहनादिके ।
असन्ध्याभ्युक्षितागारेकालेत्वक्त्वीभयंनृणाम् ॥५६

दुष्ट, क्रोधित या आर्त्त मनुष्यों द्वारा दी गई हो। ऐसी सब वस्तुओं का भोग करो। हे यक्ष ! यह तुम्हारे वश में की गई। जो कार्य दूसरी बार विवाहित हुई स्त्री के पुत्र द्वारा परलोक की सिद्धि के

लिए किया गया हो ।३०। अथवा दूसरी बार विवाहित स्त्री जो कर्म करे, उससे ही तुम्हारी तृप्ति होगी अथवा कन्या के बदले द्रव्य लेकर जो धर्म कार्य किया जाय ।५१। या जो क्रिया मिथ्या धर्मशास्त्र द्वारा संपादन की जाय, वह भी तुम्हारी ही पुष्टि के लिए दिया। असत्यता से पढ़ा हुआ अर्थ प्राप्ति के लिए जो कार्य है ।५२। वह भी तुम्हारी पुष्टि का कारण बनेगा, अब तुम्हारी सिद्धि का समय कहता हूँ—जब गर्भवती नारी से समागम किया जाता है, तब सन्ध्या और नित्य कर्म का व्यतिक्रम होती है ।५३। तथा जब मिथ्या शास्त्र कहे गए कार्य द्वारा मनुष्य दोष युक्त होते हैं, तब उनका तिरस्कार करने में तुम समर्थ होंगे ।५४। जहाँ पंक्तिमें भेद किया जाय, जहाँ वृथा पाक बनाया जाय और जहाँ सदैव क्लेश रहता हो तुम्हारा निवास वही होगा ।५५ जिन गृहों में गो अश्वादि अन्नतृण के बिना भूखे बँधे रहते हैं और सूर्यास्तसे पहिले बुहारी नहीं लगती, उन घरोंके मनुष्य तुमसे डरेंगे।५६

नक्षत्रग्रहपीडासुत्रिविधोत्पातदर्शने ।
अशान्तिकपरान्यक्ष्मानरानभिभविष्यसि ।।५७
वृथोपवाजिनोमर्त्यद्यूतस्त्रीषुसदारता: :
त्वद्भाषणोसकर्त्तारोबैडालब्रतिकाश्चये ।।५८
अब्रह्मचारिणाऽधीतमिज्याचाऽविदुषाकृता ।
तपोवनेग्राम्यभुजांतथैवानिर्जितात्मनाम् ।।५९
ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचस्वकर्मत: ।
परिच्युतावांयाचेष्टापरलोकार्थमीप्सताम् ।।६०
तस्याश्चयत्फलंसर्वं तत्तं यक्षभविष्यति ।
अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्टयर्थं सन्निबोधतत् ।।६१
भवतोवेश्वदेवान्तेनामोच्चारणपूर्वकम् ।
एतत्तवेतिदास्यन्तिभवतोवलिमूर्जितम् ।।६२
य: संस्कृताशीबिधिवच्छुचिरन्तस्तथावहि:
अलोलपोऽजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ।।६३

नक्षत्र या गृह की पीड़ा या त्रिविध उत्पादों के दिखा देने पर जो उनकी शान्ति का उपाय नहीं करते, तुम उन मनुष्यों को घेरे रहोगे ।५७। वृथा उपवास करने वाले, क्रूर और स्त्री से आसक्ति रखने वाले तुम्हारे ही उपकारी है जो बिल्ली के समान अपने प्रयोजन में लगे रहते हैं ।५८। या जो ब्रह्मचर्य के बिना ही वेदपाठ करते हैं, मूर्ख होते हुए भी यज्ञ करते हैं तथा तपोवन में गृहस्थ धर्म जैसा आचरण करते हैं । चंलल चित और असंयम पूर्वक अध्ययन ।५९। तथा अपने कर्म से भ्रष्ट होकर पारलौकिक सुखकी इच्छा वाले ब्राह्मण क्षत्रिय,वैश्य और शूद्रों द्वारा तपोबल में किए जाने वाले कर्म ।६०। तथा इन कार्यो का जो फल हैं वह सभी तुम्हारे वश में है । तुम्हारी पुष्टि के लिए और भी प्रदान करता हूँ ।६१। जो वैश्वदेव के अन्त में तुम्हारा नाम लेकर यह तुम्हारा है ऐसा कहते हुए अर्जित बलि देते हैं ।६२। परन्तु जो मनुष्य सांस्कार युक्त पदार्थों का भोजन करते और बाहर भीतर से पवित्र तथा निर्लोभ है, जिन्हें स्त्रियाँ अपने वश में नहीं कर सकती । उनके चरों को तुम छोड़ देना ।६३।

पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यांदेवता: पितरस्तथा ।
जामयोऽतिथयश्चापितद्गेहं यक्षवर्जय ।।६४
यत्रमैत्रीगृहे वायवृद्धयोषिन्नरेषु च ।
तथास्वजनवर्गेषुनृहं तच्चापिवर्जय ।।६५
योषितोऽभिरतायित्रनबहिर्गमनोत्सुका: ।
लज्जान्विता: सदागेहं यक्षतत्परिवर्जय ।।६६
वय: सम्बन्धयोग्यनिशयनान्यशनानि च ।
यत्रगेहेत्वयायक्षतद्वर्ज्यं वचन्मम ।।६७
यत्रकारुणिकानित्यंसाधुकर्मण्यवस्थिता ।
समान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथायक्षतद्गृहम् ।।६८
यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सुगुरुवृद्धद्विजातिषु ।
नतिष्ठन्तिगृहंतच्चवर्ज्यं यक्षत्वयासदा ।।६९

तरुगुल्मादिभिर्द्वारं नविद्धं यस्यवेश्मनः ।
मर्मभेदोऽथवापुंसस्तच्छ्रेयोभवनं नते ॥७०

जिस घर में देवता और पितर सदा हव्य कव्य द्वारा तृप्त रहतेहैं और जहाँ अतिथियों की पूजा है उस घर का भी परित्याग करदो।६४ जिस घर में बालक, वृद्ध, युवक, युवती और स्वजन आदि सदा मैत्री भाव से रहते हैं उस घर को भी छोड़ दो ।६५। जिस घर की नारियां अनुरक्ता हैं तथा घर से बाहर जाने की इच्छा नहीं करती और सदा लज्जावती रहती हैं वह घर भी तुम्हारे रहने योग्य नहीं ।६६।हे यक्ष ! जिस घर के लोग अपनी अवस्था और वैभव के अनुसार ही शयन या भोजन करते हों वह घर भी तुम्हारे लिए त्याज्य है ।६७। जिस घर के मनुष्य कल्याणयुक्त, सत्कार्य में तत्पर और सामान्य सामिग्री से परिपूर्ण हैं, वह भी तुम्हें त्याग देना चाहिए ।६८। जहाँ के मनुष्य गुरुवृद्ध और ब्राह्मणों के आसन पर बैठ जाने पर भी आसन ग्रहण नहीं करते उस घर को सदा के लिए छोड़ दो ।६९। जिस घर का द्वार वृक्ष गुल्मादिके द्वारा अवरुद्ध न हो और जहाँ कोई किसी के प्रति मर्मभेदी वाक्यों का उच्चारण न करता हो उस श्रेष्ठ घरमें भी तुम्हें न जाना चाहिए।७०।

देवतापितृमर्त्यानामितिथिनांचवर्तनम् ।
यस्यवशिष्टे नान्नेनपुंसस्तस्यगृहत्यज ॥७१

सत्यवाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ।
पुरुषानीदृशान्यक्षत्यजेथाश्चानसूयकान् ॥७२
भर्तृशुश्रूषणेयुक्तासमत्स्त्रस्त्रीङ्गवर्जिताम् ।
कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टांचत्यजयोषिताम् ॥७३
यजनाध्ययनाभ्यासदनासक्तमतिसदा ।
याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिद्विजत्यज ॥७४
दानाध्ययनयज्ञेषुसदोद्युक्तंचदुः सह ।
क्षत्रियंत्यजसच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ॥७५

त्रिभि:पूर्वगुणैयुक्तं पाशुपाल्यवणिज्ययो: ।
कृषेश्चावाप्तवृत्तिचस्य जवैश्यमकल्मषम् ।।७६
दानेज्याद्विजाशुश्रुषातत्परंयक्षसंत्यज ।
शूद्रंचब्राह्मणादीनांशुषषावृत्तिपोषकम् ।।७७

जो पुरुष देव, पितर, मनुष्य और अतिथि को भोजन कराकर ही शेष अन्न का भोजन करता है,उसका घर भी तुम्हें त्याग देना चाहिए। ।७१। हे यक्ष ! जो सत्यभाषी, क्षमावान्, अहिंसक, अनुतापहीन तथा असूयारहित हैं, उन मनुष्यों के यहाँ मत जाना ।७२। जो नारी सदैव पतिसेवा में तत्पर है और असती स्त्री के सङ्ग नहीं रहती और कुटुम्ब तथा पति के अन्न से पुष्टि को प्राप्त होती हैं । ऐसी स्त्रीके पास कभी मत जाना ।७३। जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानादि के विषय में दत्तचित्त है तथा यज्ञ, अध्यापन और दानके प्रतिग्रहसे जीवि-को पार्जन करते हैं, उन ब्राह्मणों का परित्याग करो ।७४। जो क्षत्रिय सदा दान, अध्ययन और यज्ञ में तत्पर रहते हैं तथा शास्त्रजीविका से प्राण रक्षा करते हुए वेतन मात्र ग्रहण करते हैं वे भी तुम्हारे द्वारा त्याज्व हैं ।७५। जो वैश्य पहिले कहे गये तीन गुणों से युक्त हैं, पशु पालन और कृषिकर्म द्वारा अपनी जीविकोपार्जन करते हैं, उन निष्पाप वैश्यों का भी परित्याग करो ।७६। जो शूद्र दान, यज्ञ और ब्राह्मण सेवा में तत्पर और ब्राह्मणादि की सेवा-वृत्ति से निर्वाह करते हैं, उन शूद्रों को भी त्याग दो ।७७।

श्रुतिस्मृत्यविरोधेनकृतवृत्तिर्गहेगृही ।
यत्रचत्र चतत्पत्नीचतस्यैवानुगतात्मिका ।।७८
यत्रपुत्रोगरो: पूजांदेवानांचतथापितु: ।
पत्नीचभर्तु: कुरुतेत्रालक्ष्मीभयंकुत: ।।७९
यदानुलिप्तंसन्ध्यासुगृहमम्बुसमुक्षितम् ।
कृतपुष्पवलियक्षनत्वशक्नोषिवीक्षितुम् ।।८०
भास्कराहृष्टशय्यानिनित्याग्निसलिलानिच ।
सूर्यावलोकदीपानिलक्ष्म्यागेहानिभाजनम् ।।८१

यत्रोक्षाचन्दनंवीणाआदर्शोमधुसर्पिषी ।
विषाज्यताम्रपात्राणितद्गुहंनतबाश्रयः ॥८२
यत्रकण्ठकिनोवृक्षायत्रनिष्पाववल्लरी ।
भार्यापुनर्भू र्वल्मीकस्तद्यक्षतवमन्दिरम् ॥८३
यस्मिन्गृहेनराः पंचस्त्रीत्रयंतावतीश्चगाः ।
अन्धकारेन्धनाग्निचतद्गृहंवसतिस्तव ॥८४

जो मनुष्य घर में रहकर श्रुति स्मृति से समस्त जीवन निर्वाह करते हैं और उनकी भार्या भी उन्हीं का अनुसरण करती हैं।७८। जिस गृह में पुत्र अपने देवता पितर और गुरुकी पूजा तथा स्त्रियाँ पति सेवा करती है, वहाँ अलक्ष्मी का भय किस प्रकार हो सकता है? ।७९।तीनों संध्याओं के समय जो घर लीपा जाय या जल छिड़ककर पवित्र किया जाय और जहाँ सुगन्धित पुष्पों द्वारा देवताओं की बलि दी जाय, तुम उस गृह को देख भी न सकोगे ।८०। जिस घर की शय्या को सूर्य न देखते हों अर्थात् सूर्योदय के समय तक जहाँ कोई शयन न करता हो तथा जो घर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता हो और जिस घर में अग्नि और जल विद्यमान रहते हों, वह घर लक्ष्मी का ही निवास स्थान है ।८१। जिस घर में चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत और ताम्र-पात्र विद्यमानहो वह घर तुम्हारा आश्रय स्थान कदापि नहीं हो सकता ।८२। जिस घर में काँटे युक्त वृक्ष निष्वबल्लारी, दुबारा ब्याही हुई पानी और वल्मीक बाँबी हो उस घर को तुम अपना ही समझो ।८३। जिस घर में पाँच पुरुष और तीन स्त्री तथा तीन गौ, अन्धेरा काष्ठ और अग्नि हो वही घर तुम्हारा निवास स्थान होगा ।८४।

एकच्छागंद्वित्रालेयंत्रिगवंपञ्चमाहिषम् ।
षडश्वंसप्तमातङ्गं गृहंयक्ष्माऽऽशुशोषय ॥८५
कुद्दालदात्रपिटकतद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ।
यत्रतत्रैवक्षिप्तानितवद्यु प्रतिश्रयम् ॥८६
मुशलोद्खलेस्त्रीणामास्यातद्वदुदुम्बरे ।
अवस्करेमन्त्रेणचयक्षैतदुपकृतव ॥८७

लघ्यन्तेतत्रधान्यानिपक्वानवेश्मनितथा।
तद्वच्छास्त्राणितत्रत्वंयथेष्टंचरदुःसह ॥८८
स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दत्तोदर्वाफलेनवा।
गृहेयत्रह्यरिष्टानामशेषाणांसमाश्रयः ॥८९
मानुषास्थिगृहेयत्रदिवारात्रं मृमस्थितिः।
यत्रयक्षातववांसस्तथान्येषांचरक्षसाम् ॥९०
अदत्वाभुञ्जतेयेवैवन्धोः पिण्डतथोदकम्।
सपिण्डान्सोदकांश्चैवतत्कालेतान्नरान्भज ॥९१

हे यक्ष ! जिस घर में एक बकरी दो स्त्री, तीन गो, पाँच भैंज, छः अश्व, सात हाथी हों, उस घर का शीघ्र ही शोषण करो ।८५। जिस घर में कुदाल, दरांत, पीड़ा पालो इत्यादि वस्तुयें इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती हो वहाँ के मनुष्य तुम्हें निवास देना चाहते हैं ।८६। जिस घर में स्त्री मूसल या ओखली पर बैठकर या आँगन में गूलर के नीचे बैठ कर घर के पीछे रहने वाली स्त्री से बातें करने लगी रहती है उस के वे कार्य तुम्हारा उपकार करने वाले हैं ।८७। जिस घर में कच्चे या पक्के धान का अनादर और सद्शास्त्र का तिरस्कार होता है उस घर में स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण करो ।८८। जिस घर में थाली ढकना अथवा करछली से स्त्री को अग्नि देती हो वह घर सम्पूर्ण घर का निवास स्थान है ।८९। जिस घर में मृत पदार्थ या मनुष्य ही हड्डी रातदिन विद्यमान रहे वहाँ सभी राक्षसों का निवास होगा ।९०। जब मनुष्य बन्धु, सपिड या समानोदक पुरुषों को पिण्ड या जल नहीं देते तुम उस समय उनकी कामना करो ।९१।

यत्रपद्ममहापद्मौसुराभिर्मोदकाशिनी।
वृषभैरावतोयत्रकल्प्यतेतद्गुहत्यज ॥९२
अशस्त्रादेवतायत्रसशस्त्रश्चाहवविना।
कल्प्यन्तेमनुजैरर्च्यास्तत्परित्यजमन्दिरम् ॥९३
पौरजानपदायत्रप्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः।

क्रियन्ते पूर्ववद्गेहेनत्वंतत्रगृहेचरा ॥९४
शूर्पवातघटाम्भोभिःस्नानवस्त्राम्बुविप्र षैः ।
नखा ग्रसयिलैश्चैवतानयाहिहतलक्षणान् ॥९५
देशाचारान्समयान्ज्ञातिधर्मं जपंहोममङ्गलंदेवतेष्टिम् ।
सम्यक्छौचविधिवल्लोंकवास्पुंसस्त्वयाकुर्वंतोमाऽस्तुसङ्गः९६
इत्युक्त्वादुःसहंब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ।
चकारशासनंसोऽपितथापङ्कजजन्मनः ॥९७

जिस घर में पद्म और महापद्म विद्यमान है, स्त्रियाँ सदा मोदक खाती है तथा जहाँ बैल और ऐरावत भी है तुम उस घर को छोड़ दो ।९२। जहाँ अशस्त्र देवता बिना युद्धके ही सशस्त्र देवता के समान पूजे जाते हैं, तुम उस मन्दिर को भी छोड़ दो ।९३। जिन घरों या पुरों में तथा जनपदों में सदा महोत्सव होते रहते हैं, वहाँ तुम कभी मत जाना ।९४। जो मनुष्य सूप की वायु, कलश के जल,वस्त्र के निचोड़े हुए जल तथा पादाग्र से स्पर्श जल से स्नान करते हैं उन ही लक्षणों बाले के पास जाओ ।९५। जो मनुष्य देशाचार समय, जाति, धर्मजप, हवन, मङ्गल कार्य, देव पूजन, विधिवत शौच सब लोकाचार का पालन करते हैं, उनसे तुम्हारा सङ्ग नहीं हो सकता ।९६। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे प्रियवर ! इस प्रकार दुःसह को आदेश देकर ब्रह्माजी वहीं पर अन्तर्धान हो गये और वह दुःसह भी उनी आज्ञा को उसी प्रकार पालने लगा ।९७।

४३—दौःसहोत्पत्ति

दुःसहस्याभवद्भार्यानिर्माष्टिर्नामनामतः ।
जाताकलेस्तुभार्यायामृतौचाण्डालदर्शनात् ॥१
तयोरपत्यान्यभवञ्जगद्व्यापीनिषोडश ।
अष्टौकुमाराःकन्याश्चतथाष्टांवतिभीषणाः ॥२
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चपरिवर्तस्तथापरः ।
अङ्गध्रूक्छकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥३

गर्भहाशस्यहाचान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ।
कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौतासांनामानिमेश्रृणुः ॥४
नियोजिकावैप्रथमातथैवाऽयाविरोधिनी ।
स्वयंहारकरीचैवभ्रामणीऋतुहारिका ॥५
स्मृतिवीजहरेचान्येतयोः कन्येतिऽदारुणे ।
विद्वेषण्येष्टमीनामकन्यालोकभयावहा ॥६
एतासांकर्मवक्ष्यामिदोषप्रशमनंचयत ।
अष्टानांचकुमाराणांश्रूयतांद्विजसत्तम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—दुःसह की पत्नी निर्माष्टि थी, जो यम की पुत्री थी। जब यमपत्नी ऋतुमती हुई, उस समय उसने चांडाल को देखा। उस गर्भ से निर्माष्टि उत्पन्न हुई।१। फिर निर्माष्टि के गर्भ से दुःसह के द्वारा अत्यन्त भीषण आकार वाली सोलह सन्तानें हुईं, जिनमें आठ पुत्र आठ कन्यायें हुईं।२। दन्ता कृष्टि तथोक्ति परिवर्त्तक अङ्गध्रुक, शकुनि, गन्ड, प्रतिरिता।३। गर्भहा और शस्यहा नामक आठ पुत्र हुए अब आठ कन्याओं के नाम सुनो।४। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयं हारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका।५। स्मृतिहर और बीजहरा यह दोनों अत्यन्त भयङ्कर हुई तथा आठवी विद्वेषिणी थी, वह लोकों के लिए अत्यन्त भयावह थी।६। हे द्विजोत्तम ! अब उन आठ पुत्रोंके कर्म और उनकी दोष-शक्ति का उपाय कहता हूँ, उसे सुनो।७।

तन्ताकृष्टिः प्रसूतानांबालानांदशनस्थितः ।
करोतिदंतसंघर्षचिकीर्षेद्दुःसहागमम ॥८
तस्योपशमनंकार्य्यंसुप्तस्यसितसर्षपः ।
शयनस्योपरिछिप्तैर्मानुषैदर्शनोपरि ॥९
सुवर्चलौषधीस्नानात्तथासच्छास्त्रकीर्त्तनात् ।
उष्ट्रकण्टकखगास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात ॥१०
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तुतथास्त्वियसकृद्व्रवन् ।
शुभाशुभौनृणांयुङ्क्ते तथोक्तिस्तच्चनान्यथा ॥११

तस्माददुष्टंमङ्गल्यंवक्तव्यंपण्डितैः सदा ।
दुष्टेश्च तेतथैवोक्तेकीर्त्तिनीयोजनार्दनः ॥१२
चराचरगुरुर्ब्रह्मायायस्यकुलदेवता ।
अन्यगर्भपरान्गर्भान्स दैवपरिवर्तयन् ॥१३
रतिमाप्नोतिवाक्यंचविवक्षोरन्यदेवयत् ।
परिवर्त्तकसंज्ञोऽयंतस्यापिसितसर्षपैः ॥१४

दान्ताकृष्टि उत्पन्न हुए बालक के दांतों को किड़किड़ाता है और दुःसह भी दन्ताकृष्टि के आश्रय से वहाँ आ जाता है ।८। इसकी शांति का उपाय कहते हैं । सोते हुए बालक के दांतों और शय्या पर सरसों डालें ।९। अथवा ओषधि जल से स्नान करावे, सत शास्त्रों का कीर्तन करावे तथा ऊँट या गेंढ़े की अस्थिका यन्त्र बनाकर बालक के कण्ठमें डाले अथवा रेशमी वस्त्र धारण करावें ।१०। दूसरा पुत्र यथोक्ति यही हो कहता हुआ सब मनुष्यों के शुभ अशुभ में लगता है, इसमें असत्य नहीं है ।११। इसकी शान्ति के लिए श्रेष्ठत्व और मङ्गल का प्रकाश करते हुए भगवान जनार्दन का नाम—संकीर्तन करे ।१२। अथवा चराचर-विश्व के श्रीब्रह्माजी का नाम कीर्तन अथवा अपने कुल देवता का ही स्मरण करे। परिवर्त्तक नामक तृतीय पुत्र अन्य गर्भ में अपर गर्भ स्थापना ।१३। और एक प्रकार के वचनों को अन्य प्रकार से कहने से प्रसन्न होता है। उसकी शांति के लिए भी श्वेत सरसों बिखेरनी चाहिए ।१४।

रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षांकुर्वीततत्त्ववित् ।
अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषुस्फुरणोदितम् ॥१५
शुभाशुभंचममावष्टेकुशैस्तस्याङ्गताडनम् ।
काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः श्वादेरंगगतोऽपिवा ॥१६
शुभाशुभंचशकुशलैकुमारोऽन्योब्रवीतिवै ।
तत्रापिदुष्टेव्याक्षेपः प्रारम्भत्यागएवच ॥१७
शुभेद्रुततरंकार्यमितिप्राहप्रजापतिः ।
गण्डान्तेषुस्थितश्चान्योमुहूर्तार्द्धंद्विजोत्तम ॥१८

सर्वारम्भान्कुमारोऽत्तिशमंतस्यनिशामयः ।
विप्रोक्त्यादेवतास्तुत्यामूलोत्खातेनचद्विजः ॥१९
गोमूत्रसर्षपस्नातैस्तद्दक्षग्रहपूजनैः ।
पुनश्चधर्मोपनिषत्करणः शास्त्रदर्शनै ॥२०
अवज्ञयाजन्मनश्चप्रशमंयातिगण्डवान् ।
गर्भस्त्रीणांतथाऽन्यस्तुफलनाशीसुदारुणः ॥२१

अथवा ज्ञानीजन रक्षोघ्न मन्त्र के जप से रक्षा करें चौथा अङ्ग-घ्रक नामक पुत्र मनुष्य के अङ्ग में वायु के समान स्पन्दन ।१५। और लोमहर्षण करके शुभाशुभ बताता है, उसकी शान्ति के लिए शरीर में कुशा से आघात करे । पांचवां पुत्र शकुनी काकादि पक्षी तथा श्वान या गीदड़ के देह में प्रविष्ट रहकर ।१६। मनुष्य के शुभ-अशुभ को व्यक्त करता है, यदि अशुभ लक्षण प्रकाशित हो तो सभी कार्य का आरम्भ छोड़ दे ।१७। और यदि शुभ लक्षण दिखायी पड़े तो कार्यारम्भ में अत्यन्त शीघ्रता करे । छठवां पुत्र गण्डान्तरित आधे मुहूर्त गण्डान्त में निवास करे ।१८। सभी मंगलमय कार्य, अनिन्द्यता आदि को नष्ट कर देता है । उसके शमनार्थ ब्राह्मणका आशीर्वाद, देव स्तुति या मूलनक्षत्र की शान्ति ।१९। गोमूत्र और श्वेत सरसों से स्नान, नक्षत्र और ग्रह का पूजन, धर्मोपनिषद का श्रवण और शास्त्रों का दर्शन ।२०। तथा जन्मका तिरस्कार करे इससे गण्डदोष का शमन होता है, तथा सातवां गर्भहा नामक भयंकर पुत्र, स्त्रियों के गर्भस्थ कलल को नष्ट करता है ।२१।

तस्यरक्षासदाकार्यानित्यंशौचनिषेवणात ।
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिराणात् ॥२२
विशुद्धगेहावसथासाच्चवैद्विज ।
तथैव शस्यहाचान्यः शस्यर्द्धिमुपहिन्तयः ॥२३
तस्यापिरक्षांकुर्वीत जीर्णोपानद्विधारणात् ।
तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्यप्रवेशनात् ॥२४
बहिर्वलिप्रदानाच्चसोमाम्बुपरिकीर्तनात् ।
परदारपरद्रव्यहरणादिषुमानवान् ॥२५-२६

नियोजयतिचैवान्यान्कन्यासाचनियोजिका ॥२७
नियोजयत्येनमितिनगच्छेतद्वसबुधः ।
परदारादिसशर्गे चित्तमात्मानमेवच ॥२८
नियोजयत्यत्रसामामितिप्राज्ञोविचिन्तयेत् ।
विरोधंकुरुतेचान्यादम्पत्यो प्रीयमाणयोः ॥२९
बन्धूनांसुहृदांपित्रो पुत्रैः सावर्णिकैश्चया ।
विरोधिनीसातद्रक्षांकुर्वीतबलिकर्मणा ॥३०

उसके शमनार्थ सदैव पवित्र भाव से रहे, प्रसिद्ध मन्त्र लिखकर माल्यादि धारण पूर्वक ।२२। शुद्ध गृह में निवास करे तथा आयास को त्यागे, हे विप्र ! इसी प्रकार आठवां शस्यहा नामक पुत्र सम्पूर्ण शस्य नाश करता है ।२३। खेत में पुराना जूता रखे और बाँई ओर खेत में जाकर चाण्डाल का प्रवेश करावे।२४। बर्हिर्बलि प्रदान तथा सोमाम्बूके पाठ से उसका शमन होता है । प्रथम पुत्र नियोजका मनुष्यों को पर-नारी गमन और पराये द्रव्य के हरण आदि में नियोजित करता है,इस के शमनार्थ पुण्य ग्रन्थों का पाठ और क्रोध लोभादि का त्याग करे। २५-२६। किसी के द्वारा दुर्वचन कहने पर भी क्रोधित न हो और नियोजिका के उपर्युक्त कर्म का चिन्तन करके उस असत् वृत्त से अपने को रोके। जो विरोधिनी नाम वाली द्वितीय पुत्री है। वह अत्यन्त प्रेम युक्त दम्पति में -२७-२८-२९। तथा सुहृद बन्धु पिता, माता, पुत्र आदि में विवाद उत्पन्न कराती है, उसके शमनार्थ बलि कर्म करे ।३०।

तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ।
धन्यंखलागृहाद्गोभ्यः पयःसर्पिस्तथापरा ॥३१
समद्धि मृद्धिमद्द्रव्यादपहन्तिचकन्यका ।
सास्वयंहारिकेत्युक्तासदान्तर्धानतत्परा ॥३२
महानसादर्द्धसिद्धमान्नागारस्थितंतथा ।
परिविष्यमाणंचसदासार्द्धभुङ्क्तेचभुञ्जता ॥३३
उच्छेषणंमनुष्याणांहरत्यनं चदुर्हरा ।
कर्मान्तागारशालाभ्यः सिद्धिंहरतिद्विज ॥३४

गोस्त्रीस्तनेभ्यश्चपय: क्षीरहारीसदैवसा ।
दध्मोघृतंतिलात्तै लंसुरागारात्तथासुराम् ।।३५

इस प्रकार सब प्रकार के अतिवाद को परित्याग कर शास्त्रानुसार पवित्र कर्मों को करे, और जो तीसरी खरिहान नाम की पुत्री है, वह घर के अन्न, गो दूध, घी, ।३१। तथा द्रव्यादि की हानि और समस्त ऋद्धि सिद्धि का हरण करती है। और जिसका नाम स्वयंहारिणी है, वह सदा छिपे रूप में रहती ३२। तथा रसोई की वस्तुओं या अन्य वस्तुओं में प्रविष्ट होकर अन्न का संचय नहीं होने देगी तथा खाने वालों के साथ स्वयं भी खाती है।३३। जिस घर में अन्न के ढेर में से जो चोरी होती है उस अन्नका चुराने वाली वही है। जिस घरमें श्रेष्ठ कर्म नहीं होते। उस घर की ऋद्धि-सिद्धि का वही हरण करती है।३४। गौओं और स्त्रियों के स्तन से दूध, दही में से घी, तिलमें से तेल और सुरा की मिट्टी में से सुरा को वही पीती है।३५।

रागंकुसुम्भकादीनांकापांसात्सुवमेवच ।
सस्वयंहारिकानामहरत्यविरतंद्विज ।।३६
कुर्याच्छिखण्डिनोद्वन्द्वं रक्षार्थंकृत्रिमांस्त्रियम् ।
रक्षाश्चैवगृहेलेख्यावर्ज्योचोच्छिष्टतातथा ।।३७
होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिष्क्रिया ।
कार्याक्षीरादिभाण्डानामेवतद्रक्षणंस्मृतम् ।।३८
उद्वेगजनयत्यन्याएकस्थाननिवासिन: ।
पुरुषस्यतुयाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका ।।३९
तस्याऽथरक्षांकुर्वीतवक्षिप्तैसितसर्षपै: ।
आसनेशयने चोर्व्यायत्राऽऽस्तेसतुमानव: ।।४०
चिन्तयेच्चनर: पामामेशादुष्टचेतना ।
भ्रामयत्यसकृज्जप्यंमुव:सूक्तंसमाधिना ।।४१
स्त्रीणांपुष्पंहरत्यन्याप्रवृत्तं सातुकन्यका ।
तथाप्रवृत्तं साज्ञेयादोसहाऋतुहारिका ।।४२

कुसुम्मादि पुष्प से रङ्ग तथा कपास से सूत्र को हरती है, इसलिए इसे स्वयं-हारिका कहा गया है।३६। इसका दमन करने से लिए अपने घर में एक स्त्री और दो मोरों के चित्र बनावे वे चित्र सदा व्यक्त हैं, मिटे नहीं।३७। होम करे, देवताओं के लिए धूप दिखावे फिर उसी अग्नि की भस्म को दुग्धादि के पात्रों पर लगावें स्त्री अपने स्तनों पर मले, इस सब दोषों की शान्ति होती है।३८। तथा भ्रामणी नामक चौथी कन्या एक स्थान पर रहने वाले मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होकर उद्वेग उत्पन्न करती है।३६। इसका शमन करने के लिए आसन शैया और पृथिवी में श्वेत सरसों बिखेरे, किसी पाप कर्म से चित्त के लगने पर उसी दुष्टात्मा की प्रेरणा समझकर समाधि युक्ति होकर भूमि सूक्त का जप करे।४१। पाँचवी कन्या ऋतु हारिका ऋतुमती स्त्रियों के रज का हरण करती है।४२।

कुर्वीततीर्थदेवौकश्चैत्यपर्व तसानुषु।
नदीसंगमखातेषुस्नपनंतत्प्रशान्तये ।।४३
मन्त्रवित्कृततत्वज्ञः पर्वसूषसिचद्विज।
तेषांतुपूजनकार्यंधूपवपवत्युंपहारकैः।
चिकित्साज्ञश्चवैवैद्य संप्रयुक्तैर्वरौषधैः ।।४४
स्मृतिचापहरत्यन्याप्रवृत्तासातुकन्यका।
अन्याप्रवृत्तासाज्ञयानृणांसास्मृतिहारिका ।।४५
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोशपशमोभवेत्।
बीजापहारिणीचान्यास्त्रीपु सोरति भीषणा।
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमोभवेत् ।।४६
दारुणासादुराचारादारुणकुरुतेभयम्।
तत्प्रशान्त्यैप्रकुर्वीतद्विजानामर्चनंशुभम् ।।४७
अष्टमीद्वेषणानामकयालोकभयावहा।
याकरोतिजनद्विष्टं नरनारीमथापिवा ।।४८
मधुक्षीरघृताक्तांस्तुशान्त्यर्थंहोकयेत्तिलान्।
कुर्वीतगित्रविन्दांचतथेष्टिंतत्प्रशान्तये ।।४६

इसके शमनार्थ यत्वज्ञानी पंडित पर्वत की कन्दराओं ओर तीर्थो में मन्दिर बनवावे तथा नदी के सङ्गम स्थल पर स्नान करे।४३। मन्त्रविद् इन सब कर्मो को प्रातःकाल करे तथा घूपादिसे उपहार का पूजन और चतुर वैद्य से चिकित्सा करावे।४४। छठवीं कन्या स्मृतिहारिका स्त्रियों और पुरुषों की स्मृति को हर लेती है।४५। इसके शमन के लिए श्रेष्ठ परिष्कृत और रमणीक स्थान का सेवन करे। सातवीं पुत्री बीजाप हारिणी स्त्री पुरुषोंको रति को बिनपृ करती है, इसकी शांति के लिए पवित्र अन्न का भोजन और स्नान करे।४६। यह दुराचारिणी घोर भय को उत्पन्न करने वाली है उसकी शान्ति के लिए ब्राह्मण पूजन श्रेष्ठ कर्म करे।३७। आठबी पुत्री द्वेषि-स्त्री पुरुषों में द्वेष कराने वाली है।४८। इसका शमन करने के लिए मधु, दुग्ध, घृत और तिलकी आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे।४६।

एतेषांतुकुमाराणांकन्याद्विजसत्तम् ।
अष्टात्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेश्रृणु ।।५०
दन्ताकृष्टेभूत्कन्याविज्जलपाकलहातथा ।
अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पातत्प्रशान्तये ।।५१
तामेवचिन्तयेत्प्राज्ञः प्राज्ञः प्रयतश्चगृहोभवेत ।
कलहाकलह गेहेकरोत्यविरतंनृणाम् ।।५२
कुटुम्बनाशहेतु सातत्प्राशान्तिनिशामय ।
दूर्वाङ्कुरान्मधृघृतक्षीराक्तान्वलिकर्मणि ।।५३
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवाऽनलंमित्रंचकीर्तयेत् ।
भूतानांमातृभिःसार्द्धं बालकातुशान्तये ।।५४
विद्यावांतपसांचैवसंयमस्ययमस्यच ।
कृष्यांवणिज्यलाभेचशांकिकुर्वन्तुमेसदा ।।५५
पूजिताश्चयथान्यायंतुष्टिंगच्छतुसर्वशः ।
कूष्माण्डायातुधानाश्चयेचान्येगणसञ्ज्ञिता ।।५६

इन सब पुत्र-पुत्रियों की अढ़तीस सन्ताने हुई उनके नाम बताता हूं सुनो।५०।दन्ताकृष्टि के विजल्पा और कलहा नामकी दो कन्यायें हुई। विजल्पा अवज्ञा करने वाली तथा मिथ्या और दुष्ट भाषिणी है, उसके

शमनार्थ ।५१। गृहस्थ को संयत चित होकर उसी का चिन्तन करना चाहिए। और कलही सदा घरों में कलह कराती है ।५२। तथा उनके कुटुम्ब का नाश कराने वाली है, इसकी शान्ति के लिए दूब के अंकुर, मधु, दूध की बलि देकर ।५३। अग्नि में होम करे तथा सम्पूर्ण गृह में जल छिड़के-मित्रविन्दा का जप करे और यश वर्णन तथा विनती सहित भूतों का पूजन करें, इससे बालकों की शान्ति हो जायेगी ।५४। फिर कहे कि विद्या, तप, संयम, यम, कृषि और व्यापार में तुम लाभार्थ हमारी सहायता करो ।५५। तथा सभी कूष्माण्ड और यातुधान आदि गण हैं वे सब भी मेरे इस पूजन को स्वीकार कर सन्तुष्टि को प्राप्त हों ।५६।

महादेवप्रसादेनमहेश्वरमतेनच ।
सर्वएतेनृणांनित्यंतुष्टिमाशुवर्जंतुते ।।५७
तुष्ट सर्व निरस्यन्तुदुष्कृतं दुरनुष्ठितम् ।
महापातकगंसर्व यच्चान्यद्विघ्नकारणम् ।।५८
तेषमेवप्रसादेनविघ्नाश्यन्तुसर्वंश: ।
उद्वाहेषुचसर्वेषुवृद्धिकर्मसुचैवहि ।।५९
पुण्यानुष्ठानयोगेषुगुरुःवार्चनेषुच ।
जपयज्ञविधानेषुयात्रासुचचतुर्दश ।।६०
शरीरारोग्यभोग्येषुसुखदानधनेषु च ।
वृद्धवालातुरेष्वेवशांतिकुर्वंतुमेसदा ।।६१
सोमाम्बुपोतथाम्भोधि: सविताचाऽनिलानलौ ।
तपोक्तेः कलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतन: ।।६२
सयेषांजननीसंस्थस्तानसाधूनविवाधते ।
परिवं तंसुतौद्वौतुविरूपविकृतौद्विज ।।६३
तौतुवृक्षाद्रिपरिखाप्राकारांम्भोधिसंश्रयौ ।
गुर्विण्याः परिवर्ततौकुरुतः पादपादिषु ।।६४

महादेव के प्रसाद और महेश्वर की अनुमति के अनुसार सब मनुष्यों पर शीघ्र प्रसन्न होकर नित्य ही रक्षा करो ।५७। तथा सन्तुष्ट होकर मेरे सब पाप दूषित कर्म तथा महापाप जनित सब कष्टों और

विघ्न के कारणों को विनष्ट करो ।५८। यदि विवाहादि शुभ कार्यो की वृद्धि में विघ्न उपस्थित हो तो वह सब भी आपके प्रसाद से नष्ट हो जाय ।५९। पुण्य कार्यके अनुष्ठान, गुरु देवता के पूजन,जप, यज्ञ,कर्त्तव्य और चौदह यात्रा में ।६०। शारीरिक आरोग्य, भोग, सुख, दान के विषय में तथा वृद्ध, बालक, और पीड़ित व्यक्ति के विषय में भी सदैव शान्ति की स्थापना करो ।६१। सोम, वरुण, सूर्य, सागर, वायु, अग्नि आदि भी मेरी रक्षा करें तथोक्ति का कालजिह्न नामक तालवृद्ध में रहने वाला एक पुत्र है ।६२। वह कालजिह्न जिस स्त्रीकी जिह्वा पर बैठ जाता है, उसके बालक को अत्यन्त पीड़ाप्रद होता है। परिशंक के दो पुत्र विरूप और विकृत नामक हुए ।६३। वह वृक्ष के अग्रभाग में, प्राचीर में निवास करके गर्भिणी का परिवर्तन किया करते हैं ।६४।

क्रौष्टकेपरिवर्तः स्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः ।
नवृक्षंचैवनैवाद्रिनप्राकारं महोधिम् ॥६५
परिखावासमाक्रामेदबलागर्भधारिणी ।
अङ्गध्रुक्तनयंलेभेपिशुननामनामयः ॥६६
सोऽस्थिमज्जागातः पुंसांवलमत्यजितात्मनाम् ।
श्येनकाकपोतांश्चगृध्रोलूकौववैसुतान् ॥६७
अवापशकुनिः पंचजगृहस्तासुरासुराः ।
श्येनं जग्राहमयुश्चकाकं कालोगृहीतवान् ॥६८
उलूकंनिर्ऋतिश्चैवजग्राहातिभयावहम् ।
गृध्रंव्याधिस्तदीशोऽथकपोतं च स्वयंयमः ॥६९
एतेषामेवचौवोक्ताभूताःपापोपपादने ।
तस्माच्छयेनादयायस्यनिलीयेषुः शिरस्यथ ॥७०
तेनात्मरक्षणायालशांतिर्य्याद्द्विजोत्तम ।
गेहे प्रसूतिरेतेषांतदन्नीडनिवेशनम ॥७१
नरस्तबर्जयेद्गेहंकपोताक्रांतमस्तकम् ।
श्येनः कपोतोगृध्रश्चकाकोलूकोगृहे द्विज ॥७२

प्रविष्टःकथयेदतंवसतांतत्रवेश्मनि ।
ईदृक् परित्यजेद्गेहशांतिकुर्याच्चपण्डितः ।।७३

हे क्रोष्टिकि ! गर्भिणी स्त्री को वृक्षों में, कोठे पर, नदी तट पर न जाना चाहिए ।६५। तथा खाई में न जाय, अङ्कधु्क के पिशुन नामक पुत्र हुआ ।६६। वह अज्ञान में अन्धे हुए मनुष्यों की हड्डी और मज्जा में घुसकर बल का भक्षण करता है, श्येन काक, कपोत, गृध्र और उलूक ।६७। यह पाँच पुत्र शकुनि, के हुए, इनको सुर, असुर ने ग्रहण किया है । श्येन को मृत्यु ने, काक को काल ने ।६८। उलूक को नैर्ऋति ने, गृध्रको व्याधि ने और कपोत को स्वयं यम ने ग्रहण किया ।६९ यह सभी पापों के उत्पन्न करने वाले है, इसलिए बाज इत्यादि के सर पर बैठने से ।७०। आत्म रक्षा के निमित्त शान्ति कर्म करें।७१। उस घरका घर में भी मनुष्य परित्याग कर दें । श्येन गृध्र काक और उलूक ।७२ प्रविष्ट होकर उस घर को रहने वाले के अन्त की सूचना देते हैं, इस लिए ज्ञानियों को ऐसे घरको छोड़कर शान्ति कर्म करना उचित है।७३

स्वप्नेऽपिहिकपोतस्यदर्शनंनप्रशस्यते ।
षडपत्यानिकथ्यन्तेगण्डप्रांतरतेस्तथा ।।७४
स्त्रीणांरजस्यवस्थानतेषांकालांश्चमेश्रृणु ।
चतस्राय्यंहानिपूर्वाणितथैवान्यत्त्रयोदश ।।७५
एकादशतथैवान्यदपत्यतस्यवैदिने ।
अन्थाहृनाभिगमनेश्रद्धदानेतथापरे ।।७६
पब्र्वस्वथान्यत्तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानिपण्डितैः ।
गर्भहन्तुःसुतोनिघ्नोमोहनीचापिकन्यका ।।७७

कबूतर का स्वप्न में देखना भी अमङ्गल जनक है । गण्ड आन्तरिक के जो छः पुत्र कहे गए ।७४। वह स्त्रियों के रज में रहित हैं । उनका समय सुनो, पहिले चार दिन, तेरहवाँ दिन ।७५। ग्यारहवाँ दिन का अन्त समय, श्राद्धका दिन अथवा दान कर्मका दिन ।७६। दिन और पर्व दिवस यह सब उनके रहने का समय समझो । इन सब दिनोंका ज्ञानियों

को परित्याग करना चाहिए गर्भहन्ता के एक विघ्न नामक पुत्र और मोहिनी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई।

प्रविश्यगर्भमत्येकोभुक्त्वामोहयतेऽपरा ।
जायन्तेमोहनात्तस्याः सपमण्डूककच्छपा ॥७८
सरीमृपाणिचान्यानिपुरीषमथवापुनः ।
षण्माषान्गुर्विर्णीमांसमश्नुवानामसयताम् ॥७९
वृक्षच्छायाश्रयांरात्रावथवात्रिचतुष्पथे ।
श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥८०
रुद्यमानांनिशीयेऽथआविशेत्तामसौस्त्रियम् ।
शस्तहन्तुर्थवैकः क्षुद्रकोनामनामतः ॥८१
सस्यर्द्धिससदाहन्तिलब्ध्वारं ध्रं शृणुष्वतत् ।
अमङ्गल्यदिनारम्भेसुतृप्तोवपतेचयः ॥८२
क्षेत्रेष्वनुप्रवेशवैकं रेत्यन्तीपसगिषु ॥८३

यह कन्या गर्भ में प्रविष्ट होतीहै और विघ्न स्वच्छ गर्भका आहार करती है। मोहिनी मोह को उत्पन्न करती है उसी मोह से सर्प, भेड़ कछुए ।७८। तथा बिच्छू आदि जन्तु और पुरीष उत्पन्न होते हैं । गर्भ वती छः महीने मांस भक्षण से, असयम से ।७९। रात्रि में वृक्ष के नीचे, तिराहे या चौराहे पर जाने से अथडा श्मशान में जाने से या नग्न होने से ।८०। अथवा रात्रि के समय रोने से स्त्री विघ्न प्रविष्ट होता, शस्य-हन्ता के क्षुद्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।८१। वह छिद्र मिलते ही धान्य की बृद्धि को रोक देता है, जो मनुष्य मङ्गल सहित दिवसमें तृप्त रहकर धान्य का बीजारोपण करता है उसके खेत में क्षुद्रक घुस जाता है ।८२-८३।

अमङ्गल्यदिनांरभमंगलानांचवर्जयेत् ।
महद्भयंप्रयच्छतियत्रवेतत्प्रसंगिषु ।
तस्मातकल्पःसुप्रशस्तेदिनेऽभ्यर्च्यनिशाकरम् ॥८४
कुर्यादारम्भमुप्तिचहृष्टःसहायवान् ।
नियोजिकेतियादन्यादुःसहस्यमयोदिता ॥८५

जातप्रचोदिकासंज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम् ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तुनरान्नारीस्तुताः सदा ॥८६
समाविशन्तिनाशायचोदयन्तीहदारुणम् ।
अधर्मंरूपेणकामचाकामरूपिणम् ॥८७
अनर्थंचार्थरूपेणमोक्षचामोक्षरूपिणम् ।
दुर्विनीताविनाशोचंदर्शयन्तिहृधङ् नरान् ॥८८
भ्रम्यन्तेताभिरष्टाभिः पुरुषार्थात्पृथङ् नराः ।
तासांप्रवेश्चगृहेसन्ध्यृक्षेषुउदुम्बरे ॥८९
धात्रे चवलिर्यत्रकालेनदीयते ।
भुञ्जातांपिवतांवापिसंगिभिर्जलविप्रुषैः ॥९०
नरनारीषुसंक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते ।
विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदकोग्राहकस्तथा ॥९१

वह मङ्गलों को बाधा देकर अमङ्गल को आरम्भ करता है घोर भय प्रस्तुत करता है । इसकी शान्तिके लिए शुभ पवित्र दिनमें चन्द्रमा का पूजन करके ।८४। प्रसन्न चित्त होकर कृषि कार्य का आरम्भ करे । दुःसह की जिस नियोजिका नाम वाली कन्या का पहिले वर्णन कर चुका हूँ ।८५। उसके प्रचोदिका नाम की चार कन्याएँ हुईं, वे अत्यन्त मद मत्त यौवन सम्पन्न स्त्री पुरुषों में प्रवेश करके ।८६। उनको नष्ट करने के लिए रूप से प्रेरित करती हैं और धर्म में अधर्म तथा अकाम में काम को ।८७। अर्थ में अनर्थ की मोक्ष में अमोक्ष की प्रेरणा पूर्वक पृथक्-पृथक् भावों का दर्शन कराती और अत्यन्त दारुण रूप में उनके विनाशार्थ प्रविष्ट होती हैं ।८८। पूर्वोक्त आठ कन्याओं द्वारा पुरुषार्थ हत होकर पुरुष घूमते फिरते हैं । यह गृहों में स्थित गूलर में नक्षत्र के सन्धिकाल में प्रविष्ट होती है ।८९। जब धाता विधाता का पूजन नहीं किया जाता, उसी समय घर में घूमती है, साथियों सहित भोजन, जल-पान या कुल्ला करने के समय ।९०। स्त्री पुरुषों को उनका संक्रमण होता है । विरोधिनी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए एक का नाम चोदक, दूसरे का ग्राहक ।९१।

तमः प्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपंशृण्वमे ।
प्रदीपतैलसंसर्गदूषितेलंघितेखले ॥९२
मुसलोलूशलेयत्र पादुकेवासनेस्त्रियः ।
सूर्पदात्रादिकयत्रपदाकृष्य तथासनम् ॥९३
यत्रोपलिप्तंचाभ्यर्च्यविहारः क्रियतेगृहे ।
दर्वीमुखेनयत्राग्निराऽयत्रनीयते ॥९४
विरौधिनीसुतास्तत्रविजृम्भन्तेप्रचोदिताः ।
एकोजिह्वागतः पुसांस्त्रीणांचालीकसत्यवान् ॥९५
चोदकोनायसप्रोक्तः पैशुन्यकुरुतेगृहे ।
अवधानगतश्चान्यःश्रवणस्थोऽतिदुर्मतिः ॥९६
करोतिग्रहणतेषांवचसांग्राहृकस्तुसः ।
आक्रम्यान्योमनोनृणांतमताच्छाद्यदुर्मतिः ॥९७
क्रोधजनयतेयस्तुतमःप्रच्छादकस्तुसः ।
स्वयहार्यांस्तुचौर्यणजनितंतनयत्रम् ॥९८

तीसरे तमाच्छादक पुत्र का स्वरूप सुनो । जहाँ मूसल या ओखली दीपक के तेल से दूषित की जाती अथवा उलांघी जाती है ।९२। अथवा जहाँ मूंसल और ओखली स्त्रियों की चरण पादुका अथवा आसन होता है जहाँ स्त्रियाँ पैरों से सूप दरांती आसन आदि को हटाती हैं ।९३। लिपे हुए स्थान में जहाँ पूजन किये बिना ही विहार किया जाता है, अथवा जहाँ करछली से अग्नि निकालकर दी जाती है ।९४। उन सभी स्थान में विरोधिनी के पुत्र अपना विक्रम बनाते हैं और जो स्त्री पुरुष की रसना पर बैठ कर झूँठ सत्य कहलाता है ।९५। उसे चोदक कहते हैं, वह कुटिलता तथा अन्य नीच कर्म करने वाला है, अतिदुर्मति कानों में रहकर ।९६। उन सब वाक्यों को ग्रहण करता है तथा तमाच्छादक मनुष्यों के मन पर अधिकार करके ।९७। तम से आच्छादित कर क्रोध को उत्पन्न करता है, स्वयं हारी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए ।९८।

सर्वहार्यर्द्धहारीचवीर्यहारीतथैवच ।
अनाचान्त गृहेष्वेतेमन्दाचारगृहेषु च ॥९९
अप्रक्षालित पादेषुप्रतिशत्सुमहानसम् ।
खलेषुगोष्ठेषुचवैहोद्रोयेषगृहेषु ॥१००
तेषुसर्वेयथान्यायायंविहरन्तिरमन्ति च ।
भ्रामण्यान्तनयरत्वैकः काकजंवइतिस्मृतः ॥१०१
तेनाविष्टोरतिसर्वो नैवप्राप्नोतिवैमुनेः ।
भुञ्जन्योगयतेमैत्रेगायतेहमतेचते ॥१०२
सन्ध्यामैथुनिनश्च वनरमाविशतिद्विज ।
मन्यात्रयंप्रमूतासायाकन्याश्रृतुहारिणी ॥१०३
एकाकुचहराकन्याअन्याव्तञ्जनहारिका ।
तुतीयातुसमाख्याताकन्यकाजातहारिणी ॥१०४
यस्मानक्रियतेसर्वःसम्यग्वैवाहिकोविधिः ।
कालातीतीऽथवायस्याहरत्येकाकुचद्वयम् ॥१०५

सर्वाहारी अर्द्धाहारी,और वीर्यहारी यह अपवित्र अथवामन्द आचरण वाले घरमें ।९९। विना चरण धोये पाठशाला में घुसने वालोंके घर या खलियानों में विद्रोह उपस्थित करता है ।१००।यह उन सभी स्थानों में विभिन्न रीति से बिहार करते हैं । भ्रामणी के काकजंख नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ।१०१। यह जिस घर में घुस जाता है, उसमें कोई प्रसन्न नहीं रहता, जो मनुष्य भोजनके समय गाते और मित्रोंसे वार्तालाप हास परिहास करते हैं ।१०२। अथवा जो सन्ध्या काल में मैथुन करते हैं उनका काकजंखका का आक्रमण होता है । ऋतुहारिणी की तीन कन्यायें उत्पन्न हुई ।१०३। प्रथमा कन्या का नाम कुचहरा; द्वितीय का व्यञ्जनहारिका तथा तृतीय का जातहारिणी नाम हुआ ।१०४।जिस कन्या विवाह सम्यक विधि विधान से नहीं या विवाह की लग्न व्यतीत होने पर होता है, उस कन्या के स्तनद्वय को वह कुचहरी हरण कर लेता है ।१०५।

सम्यक श्राद्धमदत्वाचतथानभ्यर्च्य मातृकाः ।
विवाहितायाः कन्यायाहरतिव्यञ्जनं तथा ॥१०६
अग्न्यम्बुशून्येचतथाविध्रपे सूतिकागृहे ।
अदीपशस्त्रमुसलेभृतिसर्षं पर्वाजिते ॥१०७
अनुप्रविश्यः साजातमपहृत्यात्मसम्भवम् ।
क्षणप्रसविनीबालतंश्चैवोत्सृजतेद्विज ॥१०८
साजातहारिणीनामसुघोरापिशताशना ।
तस्मात्संरक्षणंकार्यंयत्नतः सूतिकागृहे ॥१०९
स्मृतिचाप्रयतानांचशून्यागारनिषे वणात ।
अपहन्तिसुतस्तस्यसम्भूतालोकाशतसहस्रशः ॥११०
चाण्डालयोनयश्चाष्टौददण्डपाशातिभीषणाः ॥१११
क्षुधाविष्टास्तपोलोकास्तश्चाण्डालयोनयः ।
अध्यधावन्तचान्योन्यमत्तु कामाः परस्परम् ॥११२

आश्राद्धादि कर्म और मातृकाके अर्चन विना जिस कन्याका विवाह किया जाता है, व्यञ्जनहारिका उसका हरण कर लेतीहै ।१०६।सूतिका गृह में अग्नि, जल, धूप, दीपक, शस्त्र, मूशल, भस्म, सरसों आदि के होने से ।१०७। जातहारिणी वहाँ प्रविष्ट होकर तत्काल उत्पन्न हुए बालकों का हरण करती है और उनके स्थान पर अन्य बालक रख देती है ।१०८। इसलिए उस जातिहारिणी से सूतिका गृह में बालक की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए ।१०९। उसका प्रचण्ड नाम का पुत्र है जो निर्जन घर में रहने असयमत चित्त वाले मनुष्यों की स्मृतिका हरणकर लेता है ।११०। उसके पौत्रों के द्वारा सौ सहस्र लोकों की उत्पत्ति हुई, दण्ड और पाश को धारण करने वाली अत्यन्त भयंकर चाण्डालों की आठ योनियाँ भी इसीके वंशसे हुई ।१११। जब तालिका और चाण्डाल जातियाँ क्षुधातुर होकर परस्पर के भक्षणार्थं दौड़ीं ।११२।

प्रचण्डोवारयित्वातुतास्ताश्चाण्डालयोनयः ।
समयेस्थापयामासयादृशेतादृशश्शृणु ॥११३
अद्यप्रभृतिलोकानामावासंयोहिदास्यति ।
दंडंतस्याहमतलंपातयिष्येनसंशयः ॥११४
चण्डालयोन्योऽवसथेलीकायाप्रसविष्यति ।
तस्याश्चसन्ततिः पूर्वासाचसद्योनशिष्यति ॥११५
प्रसूतेकन्यकेद्वेतुस्त्रीपुंसोर्वीजहारिणी ।
वातरूपामरूपांचतस्याः प्रहरणंतते ॥११६
वातरूपानिषेकान्तेसायस्मैक्षिपतेसुतम् ।
सपुमान्वातशुक्रत्वंप्रयातिपिवा ॥११७
तथैवगच्छतः सद्योनिर्वीजत्वमरूपया ।
अस्मताशीनरोयोऽसौतथाचापिवियोगिनः ॥११८
विद्वेषिणीतुयाकन्याभृकुटीकुटिलानना ।
तस्याद्वौतनयोपुसामपकारप्रकाशकौ ॥११९

तब प्रचण्ड ने उन्हें निवारण किया और जिस समय में स्थापित किया, उसे सुनो ।११३। आज से जो पुरुष लोकों को स्थान देना, उसे मैं घोर दुःख दूंगा ।११४। चाण्डाल के घर में या पराये घर में रहकर जो स्त्री सन्तानको जन्म देती हैं, वह लीका उसकी सब सन्तानोंको नष्ट करने वाली है ।११५। स्त्री-पुरुषों के वीर्य को हरण करने वाली बीजापहारिणी के वातरूपा और अरूपा नाम की दो कन्यायें हुईं ।११६। उनमें वातरूपा सिंचन के समय शुक्र को जिसमें गिराती है, वह पुरुष या स्त्री वाताशुक्रत्व के रोग से पीड़ित होते हैं ।११७। जो पुरुष बिना स्थान, बिना भोजन करे नारी समागम करता अथवा किसी अन्य योनि में भोग करता है, उसे अरूपा शीघ्र ही वीर्य रहित कर देती है ।११८। कुटिल मुख वाली, जिसकी भौंहें सदा तनी रहती हैं, उस विद्वेषिणी के दो पुत्र उत्पन्न हुए, वह सदा ही पुरुषों का अपकार करते रहते है ।११९।

निर्वीजत्वंनरोयातिनारीवाशोचवर्जिता ।
पैशुन्याभिरतंलोलमसज्वलनिषेवणम् ॥१२०
पुरुषद्वेषिणंचैतौनरमाक्रम्यतिष्ठतः ।
मात्राभ्रात्रातथामित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः ॥१२१
विद्विष्टोनाशमायातिपुरुषोधर्मतोऽर्थतः ।
एकस्तुस्वगुणाँल्लोकेप्रकाशयतिपापकृत् ॥१२२
द्वितीयस्तुगुणात्मैत्रींलोकस्थामपकर्षति ।
इत्येतेदौःसहा सर्वेयक्ष्मण सन्ततावथ ।
पापाचाराः समाख्याता यैर्व्याप्तिमखिलंजगत् ॥१२३

अपवित्र स्त्री पुरुष भी निर्वीयत्व को प्राप्त होते हैं, विद्वेषिणी के दोनों पुत्र पर निन्दा में लगे, चञ्चल, अशुद्ध एव जलसेवी ।१२०।तथा पुरुष द्वेषी पुरुषों में अवस्थित होते हैं । माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन या आत्मीयजन के ।१२१। विद्वेषी होने पर धर्म और अर्थ को नष्टकर देते है, इस प्रकार एक पापाचारी पुत्रने अपने गुणोंको प्रकाशित किया हुआ है ।१२२। दूसरा पुत्र लोकों के गुणों और मैत्री भाव का आकर्षण करने में समर्थ है, इस प्रकार पाप का आचरण करने वाले दुःसह के गुणों ने सम्पूर्ण बिश्व को व्याप्त किया हुआ है ।१२३।

४४—रुद्रादिसृष्टि

इत्येषतामसः सर्गोब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
रुद्रसर्गंप्रक्ष्यामितन्मेनिगदतः शृणु ॥१
तनयाश्चतथैवाष्टोपत्न्यः पुत्राश्चतेतथा ।
कल्पादावात्मनस्तुल्यंसुतंप्रध्यायतः ॥२
प्रादुरासीदयांकेऽस्यकेऽस्यकुमारोनीललोहितः ।
रूरोदसुस्वरं सोऽथद्रवंश्चद्विजसत्तम् ॥३
किंरोदिषीतितब्रह्मारुद्रन्तंपयुवाचह ।
नामदेहोति तंसोऽप्रत्युवाचजगत्पतिम् ॥४

रुद्रस्त्वंदेवनाम्नासिमारोदीर्धैर्य्यमावह ।
एवमुक्तस्ततः सोऽथसप्ताकृत्वारुरोदह ॥५
ततोऽन्यानिददौतस्मै सप्तानामानिवै प्रभुः ।
स्थानानिचैषामष्टनाँपत्नीः पुत्रांश्चवैद्विज ॥६

मार्कण्डेयजी ने कहा—अव्यक्त जन्मी ब्रह्माजी की तामसी सृष्टिका यह वर्णन हुआ था रुद्रसर्ग का विषय वर्णन करते है, श्रवण करो ।१। आठ पुत्र, उनकी पुत्री और सब पुत्र कल्प के आदिमें आत्मतुल्य सुतका चिन्तन करने के कारण उसी प्रकार के हुए ।२। हे द्विजवर ! उन आठ पुत्रों में जो एक नीललोहित वर्ण वाला पुत्र ब्रह्माजी की देह से उत्पन्न हुआ था वह उनकी गोदी में ही सुस्वर पूर्वक रोने लगा ।३। उसे रुदन करता हुआ देखकर ब्रह्माजी ने प्रश्न किया 'तू क्यों रोता है ?' तो उस बालक ने कहा 'हे जगत्पते ! मुझे नाम दीजिए ।४। ब्रह्माजी ने कहा—'तुम्हारा नाम रुद्र हुआ अब तुम रुदन बन्द करके धैर्य धारण करो, ब्रह्माजी के ऐसा करने पर भी वह बालक सात बार पुनः रोया ।५। हे द्विज ! तब उन्होंने उसे क्रमशः सात नाम और दिये, तदनन्तर इन आठों को आठ स्थान, पत्नी और पुत्र भी दिए ।६।

भवं शर्वंतथेशानंतथापशुपतिंप्रभुः ।
भीममुग्रं महादेवमुवाचसपितामहः ॥७
चक्रे नामान्यथैतानिस्थानान्येषांचकारह ।
सूर्य्योजलंमहीवह्निर्व्वायुराचाशमेवच ॥८
दीक्षितोब्राह्मणः सोमइत्येतास्तनवः क्रमात् ।
सुवर्चलातथैवोमाविके शोचापरास्वधा ॥९
स्वाहाविशस्तथादीक्षारोहिणीचयथाक्रमम् ।
सूर्य्यादीनाद्विजश्रे ष्ठरुद्राद्यै नमिभिः सहः ॥१०
शनैश्चरस्तथाशुक्रोलोहिताङ्गोसनो जवः ।
स्कन्दःसर्गोऽथसन्तानोबुधश्चनुक्रमात्सुताः ॥११
एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसतींभार्य्यासविन्दत ।
दक्षकोपाच्चतात्याजसासतींस्वं कलेवरम् ॥१२

शंभोरवज्ञायत्रास्तेस्थातव्यंनैवसूरिभिः ।
एतेचब्राह्मणाः सर्वेयेद्विषतोमहेश्वरम् ।
भवंतुतेवेदवाह्याःपापोपहतचेतसः ।
पाखडाचारनिरताः सर्वेनिरयगामिनः ।
कलौयुगेतुसंप्राप्तेदरिद्राः शूद्रजापकाः ।
हिमवद्दुहितासाऽभून्मेनायांद्विजसत्तम ।
तस्याभ्रातातुमैनाकसखाम्भोधेरनुत्तमः ॥१३
उपयेमेपुनश्चनामनन्यांभगवान्भवः ।
देवोधाताविधातारौभृगोःख्यातिरसूयत ॥१४

ब्रह्माजीने रुद्र, भव, शर्व, ईषान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ।७। यह आठ नाम देकर आठों स्थानका निर्देश किया । सूर्यंजल पृथिवी वह्नि वायु आकाश ।८। दीक्षित ब्राह्मण और सोम तथा सुवर्चला,उमा विकेशी, स्वधा ।९। स्वाहा, दिक, दीक्षा और रोह्णिणी यह नाम उनकी भार्याओं के हुए अब रुद्रादि के नामों सहित उनके पुत्रों के नामों का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ।१०। रुद्रादि के क्रमशः शनैश्चर, शुक्र, लोहितांङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग सन्तान और बुध यह आठ पुत्र हैं ।११। इन रुद्रों ने पत्नी रूप से सती को प्राप्त कियाथा और दक्ष कोप के कारण सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया था ।१२। क्योंकि जहाँ शिवजीका तिरस्कार हो वहाँ न रहे महेश्वर से द्वेष करने वाले यह ब्राह्मण पाप से नष्ट चेता हों, वेद से बहिर्मुख तथा पाखण्डी और नारकी हों, कलियुग के आने पर दरिद्र और शूद्रों का जप करें) इस प्रकार शाप देकर वह मैना के गर्भ से हिमवान् सुता वनी, उसका भाई मैनाक सागर का सखा है ।१३। उस पार्वती से भगवान भव ने विवाह किया भृगुजी की पत्नी ख्याति के धाता-विधाता नामक दो पुत्र हुए थे ।१४।

श्रियंचदेवदेवस्यपत्नीनारायणास्यया ।
आयतिर्नियतिश्चैवमेरोःकन्येमहात्मनः ॥१५

भार्येधाताविधात्रोस्तेतयोर्जातौसुतावुभौ ।
प्राणश्चैवमृकण्डुश्चपितामममहायशाः ॥१६
मनस्विन्तमहंतस्मात्पुत्रोवेदशिरामम् ।
धूम्रवत्यांसमभवत्प्रणस्यापिनिबोधमे ॥१७
प्राणस्यद्यु तिमान्पुत्र उत्पन्नस्तस्यचात्मजः ।
अजराश्चतयोःपुत्राःपौत्राश्चवहवोऽभवन् ॥१८
पुत्रीमरीचेः संभूतिः पौर्णमासमसूयत ।
विरजापर्वतश्चैवतस्यपुत्रौमहात्मनः ॥१९
तयोःपुत्रांस्तु वक्ष्येऽहवंशसंकीर्तनेवद्विज ।
स्मृतिश्चाङ्गिरसःपत्नीप्रसूताकन्यकान्यकास्तथा ॥२०
सिनोवालीकुहूश्चैवराकाचानुमतोस्तथा ।
अनसूयाथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ॥२१
सोमं दुर्वाससंचैवदत्तात्रयंचयोनम् ।
प्रात्यापुलस्त्यभार्यायांदत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ॥२२

लक्ष्मीजी भगबान् नारायण की भार्या हुई और महात्मामेरु की आयाति नियति नाम की दो कन्याएँ थीं ।१५। वे दोनों धाता-विधाता की पत्नी हुईं । इन दोनों के एक-एक पुत्र हुआ धाताने आयातिके पुत्र का नाम प्राण और विधाता ने नियति के पुत्र का नाम मृकण्डु रखा । महायशस्वी मुझ मार्कंण्डेयजी के यही पिता हैं ।१६। मेरे पिता मृकण्डु का विवाह मनस्विनी से हुआ वही मेरी माता है । मैंने अपने पुत्र का नाम वेदशिरा रखा । प्राण की भार्या धूम्रवती थी, अब उसके पुत्रों का वर्णन करता हूँ ।१७। धूम्रवती के द्यु तिमान और अराजक नामक दो पुत्र हुए, इनके अनेक पुत्रपोत्र हुए ।१८। मरीचि की पत्नी सम्भूति से पौर्णमासी का जन्म हुआ, उसके विरजा और पर्वत नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।१९। हे द्विज ! इनके पुत्रों के वंश का वर्णन करता हूँ, अङ्गिरा पत्नी स्मृति ने ।२०। चार कन्याये उत्पन्न की, उनका नाम सिनीवाली, कुहू, राका अनुमति था, अत्रि से अनसूया ने निष्पाप ।२१। सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक तीन योगी पुत्रों को उत्पन्न किया,

पुलस्त्य-पत्नी प्रीति ने दत्त को जन्म दिया ।२२।

पूर्वजन्मनिसोऽऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेन्तरे।
कर्दमश्चार्बवीरश्चसहिष्णुश्चमुतत्रयम् ॥२३
क्षमातुसुषुनेभार्यापुलहस्यप्रजापतेः ।
क्रतोस्तुसन्ततिर्भार्यावालखिल्यानसूयत ॥२४
षष्टिर्यानिसहस्राणिऋषीणमूर्द्ध रेतसाम् ।
उर्जायांतुवसिष्ठस्यसप्ताजयन्तवैसुताः ॥२५
रजोगात्रोर्ध्ववाहुश्चसवलश्चानयस्तथा ।
सुतपाःशुक्लइत्येतेसर्वेसप्तर्षयः स्मृताः ॥२६
योऽसावग्निरभीमानीब्रह्मणस्तनयाऽयजः ।
तस्मात्स्वाहासुतान्ल्लेभेत्रीनुदारौजसोद्विज ॥२७

यही दत्त पूर्व जन्म में अगस्त्य नामसे प्रसिद्ध थे, प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमा के दर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र हुए । ऋतु की पत्नी सन्नति ने ।२३-२४। साठ हजार ऊर्ध्वरेता वालखिल्यों की उत्पत्ति की वशिष्ठ के द्वारा ऊर्जा के प्रसव से सात पुत्रों की उत्पत्ति हुइ ।२५। यही सप्तर्षि रस, गांव, ऊर्ध्वबाहु, सबल, अनघ सुतपा और शुक्र नाम से प्रसिद्ध हुए ।२६। हे द्विजोत्तम ! ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र अग्नि हुए, उनका विवाह स्वाहा के साथ हुआ था तथा उनके अत्यन्त प्रतापी और बली तीन पुत्र हुए ।२७।

पावकंपवमानंचवशुचिंचापिजलाशिनम् ।
तेषांतुसन्ततावन्येचत्वारिंशच्चपञ्च ॥२८
कथ्यन्तेबहुशश्चैतेपितापुत्रत्रयंचयत् ।
एवमेकोनपञ्चाशद्वृ जंयापरिकीर्तिताः ॥२९
पितरोब्रह्मणासृष्टायेव्याख्याता मयातव ।
अग्निष्वात्तावर्हिषदोऽग्नयः साग्नयश्चये ॥३०
तेभ्यःस्वधासुतेजज्ञे मेनांवैधारिणी तथा ।
तेउभेब्रह्मावादन्यौपोगिन्यौचाप्युभेद्विज ॥३१

पावक पवमान और शुचि, यह सदैव जल पीते रहते हैं, उनके सैंतालीस पुत्र हुए ।२८। जो अन्य तीन पुत्र नाम से कहे हैं वह अग्नि के पौत्र है, अग्नि के यह उनचास पौत्र दुर्जय कहे जाते हैं ।२६। पहिले मैंने इन्हीं को पितरों के नाम से बताया था, अग्निष्वाता, वर्हिषद अनग्नि और साग्नि ।३०। स्वधा ने पितरों से मेना और वैधारिणी नाम की दो कन्याएँ प्राप्त की, यह दोनों ही परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यास परायण हुई ।३१।

४४—स्वायम्भुव मन्वन्तर कथन

स्वायम्भुवंत्वयाऽऽख्यातमेतन्मन्वन्तरंचयत् ।
तदहंभगवन्सम्यक् श्रोतुमिच्छामिकथ्यताम् ॥१
मन्वन्तरप्रमाणंचदेवदेवार्षयस्तथा ।
येचक्षितीशाभगावन्देवेन्द्रश्चवयस्तथा ॥२
मन्वन्तराणांसंख्याातासाधिकाह्योकसप्तति: ।
मानुषेणप्रमाणेनश्रृणुमन्वन्तरं चवै ॥३
त्रिंशत्कोट्यस्तुसंख्याता: सहस्राणिचविंशति: ।
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥४
मन्वन्तरप्रमाणं चइत्येतत्साधिकांविना ।
अष्टौशतसहस्राणिदिव्ययासंख्ययास्सृतम् ॥५
द्विपंचाशत्तथान्यानिसहास्त्राण्यधिकानिच ।
स्वायम्भुवोमनु:पूर्वं मनु:स्वारीचिषस्तथा ॥६
औत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षषस्तथा ।
षडेतेमनवोऽतीतास्तथावैदस्वतोऽधुना ॥७

क्रौष्टुकि, बोले हे भगवन ! आपने जिस स्वायंभुव मन्वन्तर का विषय कहा, उसे भले प्रकार सुनना चाहता हूं ।१। मन्वन्तर का प्रमाण देवता, देवर्षि राजा तथा देवेन्द्र के वृत्तान्तको विस्तार सहित कहिए।२। मार्कण्डेयजी ने कहा—मन्वन्तर की संख्या कुछ अधिक इकहत्तर चतुर्युगी है, मैं इसे मानव मान से कहता हूं ।३। एक मन्वन्तर में तींस करोड़

सड़सठ लाख बीस हजार मानवी वर्ष व्यतीत होते हैं ।४। मन्वन्तर का यह प्रणाम आधिक्य रहित है, दिव्य आठ लाख ।५। बावन हजार वर्ष एक मन्वन्तर में होते हैं प्रथम मनु स्वायंभुव, स्वारोचिष ।६। औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष इस प्रकार छः मनु व्यतीत हो चुके हैं, इस समय वैवस्वत मनु हैं ।७।

सावर्णापंचरोच्याश्चभौत्याश्चामिनस्त्वमी ।
एतेषांविस्तरं भूयोमन्वन्तरपरिग्रहे ॥८
वक्ष्येदेवानुषीश्चैवयक्षेन्द्राःपित्त रश्चये ।
उत्पत्तिसंग्रहं ब्रह्मन्श्रूयतामस्यसंततिः ॥९
यच्चतेषाममूत्क्षेत्रतत्पुत्राणांमहात्मनाम् ।
मनोःस्वायम्भुवस्यासन्दशपुत्रास्तुतत्समाः ॥१०
वैविरियंपृथिवीमवसिप्तद्वीपासर्वता ।
समसुद्राकरवतीप्रतिवर्षनिवशिता ॥११
स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वमाद्यौत्रेतायुगेतथा ।
प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैःपौत्रैः स्वायम्भुवस्यच ॥१२
प्रियव्रतात्प्रजावत्यांवीरात्कन्याव्यजायत ।
कन्यसातुमहाभागाकर्द्दमस्यप्रजापतेः ॥१३
कन्यद्‌द्वेदपुत्राश्चसम्राटाकुक्षीचतेउभे ।
तयोर्वेभ्रातरःशूशःप्रजापतिसमादश ॥१४

पंचसावर्णि, रोच्य भविष्य में होंगे इन सबका पूरा वृत्तांत मन्वन्तरो का वर्णन करने में कहूँगा ।८। हे विप्र ! मन्वन्तरों में जो जो देवता ऋषि, इन्द्र, पितर, होते हैं, उन सबकी उत्पत्ति आदि का वर्णन उनकी सन्तति करूँगा ।९। उन महात्माओं के जो-जो सन्तति हुई, उसे कहता हूँ, स्वायम्भुव के दश पुत्र उन्हीं के समान उत्पन्न हुए ।१०। उन्होंने इस सप्त द्वीप, पर्वत, समुद्र और खानों से सम्पन्न पृथ्वी को वर्षों में विभाजित किया था ।११। पहिले भी स्वायं भुव मन्वन्तर में त्रेतायुग के आरम्भ में स्वायंभुव के पौत्रों अर्थात् प्रियव्रत के पुत्रों ने

भी इसी प्रकार किया था ।१२। प्रियव्रत की प्रजावती नाम की अत्यन्त सौभाग्यवती कन्या के गर्भ से ।१३। दश पुत्र और दो कन्यायें उत्पन्न हुई इन दोनों कन्याओं का नाम सम्राट और कुक्षि हुआ और उनके दशों भाई भी अत्यन्त शूर और प्रजापति के तुल्य थे ।१४।

आग्नींध्रोमेधातिथिश्चवपुष्मांश्चतथापरः ।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यःसवनः सप्तएवते ॥१५
मेधाग्निबाहुमित्रास्तुत्रयोयोगपरायणाः ।
जास्तिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधुः ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिचत्तान्सप्तसप्तसुपार्थिवान् ।
द्वीपेषुतेनधर्मेणद्वीपांश्चैवनिबोधमे ॥१६
जम्बुद्वीपेतथाग्नीध्रं राजानकृतवान्पिता ।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापितेनमेधांतिथिः कृतः ॥१७
शाल्मलेस्तुवपुष्मन्तज्योतिष्मर्न्तकुशाह्वये ।
क्रौंचद्वीपेद्युतिमन्तभव्यंशाकाह्वयेश्वरम् ॥१८
पुष्कराधिपतिंचापिसवनं कृतावान्सुतम् ।
महावीतोधातकिश्चपुष्कराधिपते सुतौ ॥१९
द्विधाकृत्वातयोर्वर्षपुष्करेसन्यवेशयत् ।
भव्यस्यपुत्राः सप्तासन्नामतस्तान्निबोधमे ॥२०
जलदश्चकुमारश्चसुकुमारोमणीवकः ।
कुशोत्तरोऽथमेधावीसप्तमस्तुमहाद्रुमः ॥२१

उन दशोंके नाम आग्नीध्र मेधातिथि वपुष्मान, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान, भव्य और सवन(यहसात) तथा सबसे छोटे, मेधा,अग्निबाहु और मित्र हुए । यह तीनों जन्म से ही योग परायण हुए और उन सातों को राजा प्रियव्रत ने सात द्वीपों का राज्य प्रदान किया, जहाँ यह धर्मपूर्वक राज्य करने लगे, अब उन द्वीपों के विषय में कहता हूँ ।१६। अर्थात् राजा ने आग्नीध्र को जम्बूद्वीप का तथा मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का राज्य दिया ।१७। वपुष्मान को शाल्मलि द्वीप, ज्योतिष्मान, को कुश द्वीप, द्युतिमानको क्रोंचद्वीप और भव्य को शाकद्वीपका राजा बनाया ।

।१८। और सवन को पुष्कर द्वीप दिया इसी सवन के दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम मेधावी और घातकी हुआ ।१९। राजा सवनने अपने दोनों पुत्रों के लिए पुष्कर द्वीप को दो भागों में विभक्त कर दिया, शार्क के राजा भव्य के सात पुत्र हुए, अब उनके नाम कहता हूँ ।२०। जो क्रमशः जलदकुमार सुकुमार, मनोवक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम नाम के हुए ।२१।

तन्नामकानिवर्षाणिशाकद्वीपेचकारसः ।
तथाद्युतिमतः सप्तपुत्रास्तांस्चनिबोधमे ॥२२
कुशलोमनुगश्चोष्णः प्राकरश्चार्थकारकः ।
मुनिश्चचदुन्दुभिश्चैवसप्तमः परिकीर्तितः ॥२३
तेषांस्वनामधेयानिक्रौंचद्वीपेतथाभवन् ।
ज्योतिष्मतःकुशद्वीपेपुत्रनामांकितानिवै ॥२४
तत्रापिसप्तवर्षाणितेषांनामानिमेश्रृणु ।
तस्यापिसप्तपुत्रास्तुत्रेयास्तेऽपिमहौजसः ।
उदभिदंवैष्णवंचैवसुरथंलम्वनं तथा ॥२५
धृतिमत्प्राकरं चौवकापिलं चापि सप्तमम् ।
वपुष्मतः सुताः सप्तल्मलेशस्यचाभवन् ॥२६
श्वेतश्चहरितश्चो वजीमूतोरोहितस्तथा ।
वैद्युतोमानसश्चौवकेतुमान्सप्तमस्तथा ॥२७
तथैवशाल्मलेस्तेसांसमनामानिसप्तवै ।
सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्यवै ॥२८

उस राजा ने अपने शाकद्वीप के सात भागों में विभक्त करके सातों पुत्रों में बांट दिया, वह सात भागही सप्तवर्ष कहकर इन्हीं के नाम से प्रख्यात हुए, इसी प्रकार क्रौंचद्वीप के राजा द्युतिमान् के सात पुत्र उत्पन्न हुए, उनके भी नाम बताता हूँ ।२२। वे क्रमशः कुशल, मनुग, उष्ण, आकार अर्थकारक मुनि और दुंदुभि नामक हुए ।२३। क्रौंचद्वीप को भी सात भागों में बांटा गया, ज्योतिष्मान् ने सात पुत्रों के नामा-
तुसार ही कुशद्वीपका विभाग किया ।२४। ...

बने, जिसके नाम सुनो उद्भिव वैष्णव सुरथ लम्बन ।२५। धृतिमत प्रभाकर और कपिल यह सात नाम हुए तथा शाल्मलि के राजा वपुष्मान के भी सात ही पुत्र हुए ।२६। उनके नाम क्रमशः श्वेतः हरित, जीमूत मानस वैद्युत् मानस और केतुमान हुए ।२७। उस द्वीप के भी सात भाग होकर इन्हीं के नामों पर सप्त वर्ष हुए तथा प्लक्ष द्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र हुए ।२८।

येषांनामाकितैवर्षैःप्लक्षद्वीपस्तुसप्तधा ।
पूर्वंशाकभवं षंशिशिरं तुसुखोदयम् ॥२९
आनन्दंचशिवंचैवक्षेमकंचध्रुवंतथा ।
प्लक्षद्वीपादिभूतेषुशाकद्वीपान्तिमेषुवै ॥३०
ज्ञेयपञ्चसुधर्मश्चवर्णाश्रमविभागजः ।
नित्यःस्वाभाविकश्चैवअहिंसाविधिवर्जितः ॥३१
यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
सुखमायुश्चरूपचपलंधर्मश्चनित्यशः ।
पचस्वेतषुवर्षे सर्वसाधारणःस्मृतः ।
अग्नीध्रायपितापूर्वंजम्बूद्वीपददौद्विज ॥३२
तस्यपुत्राबभूवुर्हिप्रजापतिसमानव ।
ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिंपुरुषोऽनुजः ॥३३
हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
वश्यश्चपचमःपुत्रोहिरण्यः षष्ठउच्यते ॥३४
कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वश्चाष्टमःस्मृतः ।
नवमःकेतुमालश्चतन्नाम्नावर्षसंस्थितिः ॥३५

उन्होंने भी प्लक्षद्वीप को सात भागों में विभक्त किया वहाँ भी इन के नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए, उनके नाम थे शाकभव, शिशिर, सुखोदय ।२९। आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव तथा प्लक्ष, शाल्मणि, कुश, क्रौंच और शाक इन पाँच द्वीपों में ।३०। और इनके विभागों में वर्णाश्रम धर्म सदा स्थित रहता है और स्वभाव से ही वहाँ हिंसा नहीं होती

।३१। हिमालय के अतिरिक्त किम्पुरुषादि वर्ष में सुखपूर्णायु जल और धर्म सदैव स्थित रहता है। हे विप्रवर! इन पाँचों द्वीपों में संपूर्ण धर्म साधारण रूप से विद्यमान है। जिन आग्नीध्र को अपने पिता से जम्बू द्वीप मिला था।३२। उनके प्रजापति तुल्य नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, सब से बड़ा नाभि, उससे दूसरा किम्पुरुष।३३। तीसरा हरि, चौथा इलाबुत पांचवां रम्य, छठवां रव्य, छठवां हिरण्य।३४। सातवां कुरु, आठवां भद्र और नौवां केतु माल हुआ, इन सबके नामों पर ही वर्ष बने।३५।

यानिकिंपुरुषाख्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
तेषांस्वभावतः सिद्धिः सुखप्रायाह्ययत्नतः ॥३६
विपर्ययोनतेष्वस्तिजरामृत्युभयंनच ।
धर्माधर्मौ नतेष्वास्तानोत्तमाधर्ममध्यमाः ॥३७
नवैचतुर्युगावस्थानार्तवाऋतवोनच ।
आग्नीध्रसूनानभिस्तुऋषभोऽभूत्सुतोद्विज ॥३८
ऋषभाद्भरतोजज्ञवीरः पुत्रशताद्वरः ।
सोऽभिषिच्यर्षभपुत्रंमहाप्राव्राज्य मास्थितः ॥३९
तपस्तेपेमहाभागापुलहाश्रमसंश्रयः ।
हिमाह्वंदक्षिणंवर्षं भरतायपिताददौ ॥४०
तस्मात्तु भारतंवर्षंतस्यनाम्ना महात्मनः ।
भरतस्यान्वभूत्पुत्रः सुमतिर्नामधार्मिकः ॥४१
तस्मिन्राज्यंसमावेश्यभरतोऽपिवनं ययौ ।
एतेषांपुत्रपौत्रेस्तुसप्तद्वीपाबसुन्धरा ॥४२
एषस्वायम्भुवः सर्गः कथितस्तेद्विजोत्तम ।
पूर्वमन्वन्तरेसम्यक्किमन्यत्कयामिते ॥४३

हिमालय के अतिरिक्त जो किम्पुरुष हूँ, उनको सिद्ध स्वभाव से ही तथा सुख बिना यत्नके ही उपलब्ध है।३६। उनको विपर्यय अथवा वृद्धावस्था और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला भय उपस्थित नहीं होता, वहाँ धर्म-अधर्म श्रेष्ठ मध्यम या निम्न रूप में विभाग।३७। और चारोंयुग

होते हैं, ऋतु विभाग भी नहीं है, आग्नीध्र के पुत्र नाभि के ऋषभ नामक पुत्र हुआ ।३८। ऋषभ के पुत्र भरत हुए, ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को राज्य देकर सन्यास ग्रहण कर लिया ।३९। इन महाभाग ने पुलहाश्रम में निवास पूर्वक तप किया था, हिम नामक दक्षिण वर्ष को उनके पिता ने भरत को दिया था ।४०। इसलिए उन्हीं के नाम पर भारतवर्ष हुआ है भरत के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुमति था। ।४१। भरत ने भी सुमति को राज्य देकर वन गमन किया, इस प्रकार पौत्रों तथा प्रियव्रत के पुत्रों ने स्वायंभुव मन्वन्तर में सप्तद्वीपा पृथिवी का निरन्तर भोग किया ।४२। पूर्व मन्वन्तर में यह स्वायम्भुव सर्ग का सम्यक् वर्णन हुआ अब और क्या कहूँ ।४३।

४६—जम्बूद्वीप वर्णन

कतिद्वीपाः समुद्रावापर्वतावाकतिद्विज ।
क्रियेन्तिचैववर्षाणि तेषांनद्यश्चकामुने ॥१
महाभूतप्रमाणंचलोकालोकतथैवच ।
पर्य्यासंपरिमाणंवगतिचन्द्रार्कयोरापि ॥२
एतत्प्रब्रूहिमेसर्वविस्तरेण महामुने ॥३
शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशोद्विज ।
तस्याहिस्थानमखिलंकथयामिश्रृणुष्वतत् ॥४
येतेद्वीपामयाप्रोक्ताजम्बूद्वीपादयोद्विज ।
पुष्करान्तामहाभागश्रृण्वेषांविस्तरं पुनः ॥५
द्वीपात्तुद्विगुणोद्वीपोजम्बूप्लक्षोऽथशाल्मलिः ।
कुशःक्रौंचस्तथाशाकः पुष्करद्वीप एव च ॥६
लवणोक्षुरासुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः ।
द्विगुणर्द्विगुणैर्वृ्यासर्वतः परिवेष्टेता ॥७

क्रोष्टुकी ने कहा—हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियाँ कितनी हैं ? ।१। महाभूत एवं लोकालोक का प्रमाण कितना है तथा

चन्द्रमा और सूर्य के व्यास का परिमाण और गतिका प्रकार क्या है ? ।२। हे महामुने ! विस्तार सहित इनका वर्णन करिये ।३। मार्कण्डेयजी ने कहा-यह सम्पूर्ण पृथिवी पचास करोड़ योजन विस्तार वाली है उन सभी स्थानों का विषय वर्णन करता है, उसे सुनो ।४। हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि जिन सप्तद्वीपों का वर्णन किया है उसका पुनःविस्तार सहित वर्णन करता हूं ।५। जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश, क्रौंच और पुष्कर यह सातों द्वीप क्रमशः एक से दूसरा विस्तार में दुगुना हैं ।६। लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध और जल समुद्रके द्वारा दुगने-दुगने परिमाण में बढ़े हैं ।७।

जम्बुद्वीपस्यसंस्थानं प्रवक्ष्येऽहं निबोधमे ।
लक्षमेकंयोजनानांवृत्तौविस्तारदैर्घ्यंतः ॥८
हिमवानन्हेमकूटश्चनिषधोमेरुरेवचः ।
नीलः श्वेतस्तथाश्रृङ्गीसप्तऽस्मिन् वर्षपर्वताः ॥९
द्विलक्षयोजनायामौमध्येतत्रमहावलौ ।
तयोर्दक्षिणतोयौतुयौतयोत्तरतोगिरो ॥१०
दशभिर्दशभिन्यूनैः सहस्रैस्तैः परस्पर ॥११
द्विसाहस्रोच्छ्रयाः सर्वे तावद्वविस्तारिणश्चते ।
समुद्रान्तः प्रविष्टाश्वषऽस्मिन्वर्षपर्वताः ।
दक्षिणोत्तारतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षितिः ॥१२
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणिवर्षाणिचोत्तरे ।
इलावृतंतायोर्मध्येचन्द्राद्धाकाखत्स्थितम् ॥१३
ततःपूर्वेणभद्राश्व केतुमालंचपश्चिमे ।
इलावृतस्यमध्येरुः कनकपर्वतः ॥१४

जम्बूद्वीप का आकार परिमाण बताता हूं यह बिस्तार, दीर्घता व्यास में यह एक लाख योजना का है।८। उसके वर्ष पर्वत हिमवान्,हेम कूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत ओर श्रृङ्गी यह सात हैं ।९। मध्य में दो लाख योजन विस्तार वाले दो महान पर्वत है, उनके दक्षिण ओर

उत्तर में दो २ पर्वत हैं ।१०। वह परस्पर दस-दस हजार न्यून संख्यक हैं तथा अन्य पर्वत दो हजार योजन ऊँचे और इतने ही विस्तार वाले हैं ।११। इसके मध्य समुद्र में स्थित छः वर्ष पर्वत हैं, यह भूमि उत्तर दक्षिण की ओर नीची और मध्य में ऊँची तथा विस्तृत है ।१२। उत्तर और दक्षिण में तीन वर्ष है, इन दोनों के मध्य इलावृत वर्ष अर्द्ध चन्द्र के आकार में स्थित है ।१३। उसके पूर्वमें भद्राश्व और पश्चिम में केतु माल, है, इलावृत के मध्य में ही सुमेरु पर्वत है ।१४।

चतुरशीतिसाहस्रस्तस्योच्छ्रायोमहागिरेः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तारः षोडशंवतु ॥१५
सरावसस्थिततत्वच्चद्वात्रिशन्मूनविस्तृतः ।
शुक्लःपीताऽसितोरक्तःप्राच्यादिषुयथाक्रमम् ॥१६
विप्रोवैश्यस्तथाशूद्रःक्षत्रियश्चसवर्णतः ।
तस्योपरितथैवाष्टौपूर्वादिषुयथाक्रमम् ॥१७
इन्द्रादिलोकपालानांतन्महयेब्रह्मणः सभा ।
योजनानांसहस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता ॥१८
अयुतोच्छ्रायस्तस्याधस्तथाविष्कुम्भपर्वतः ।
प्राच्यादिषुक्रमैणैवमन्दरोगन्धमादनः ॥१९
विपुलश्चसुपार्श्वश्वकेतुपादपशोभिताः ।
कदम्बोमन्दरेकेतुर्जम्बुर्वेगन्धमादने ॥२०
विपुलेचताथाऽश्वत्थःसुपार्श्वे च वटोमहान् ।
एकादशतायामायोजनानामिमेनगाः ॥२१

यह महापर्वत चोरासी सहस्र योजना ऊँचा है, सोलह हजार योजन धरती में घुसा हुआ और वहाँ से सोलह सहस्र योजन विस्तार वाला है ।१५। इसका शिखर बत्तीस योजन चौड़ा है । यह पूर्व को ओर श्वेत-वर्ण का दक्षिण की ओर पीला, पश्चिम में नीला तथा उत्तर में लाल वर्ण का है ।१६। उसकी दिशाओं में पूर्वादि के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और शूद्र कहते हैं ।१७। उनके ऊपर उक्त दिशा क्रमसे ही इन्द्रादि लोकपालों तथा मध्य में ब्रह्माजी चौदह सहस्र योजन विस्तार वाली सभा सुशोभित हैं ।१८। इसके नीचे पूर्वादि दिशाओं में दस सहस्र योजन ऊँचे चार विष्कुम्भ पर्वत हैं, इनके नाम मन्दर, गन्धमादन।१९ विपुल और सुपार्श्व है । इन चार पर्वतों पर चार वृक्ष क्रमशः कदम्ब, जामुन ।२०। पीपल और बरगद केतु के समान स्थित हैं, यह पर्वत एकादश सहस्र योजन परिमाण के हैं ।२१।

जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यादिशिपर्वं तौ ।
आनीलनिषधौप्रातोपरस्परनिरन्तरौ ॥२२
निषधः पारियात्रश्चमेरोः श्वेतुपश्चिमे ।
यथापूर्व्वौं तथाचैतावानीलनिषधायतो ॥२३
कैलाशोहिमवांश्चैवदक्षिणेनमहाबलौ ।
पूर्वं पश्चायतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२४
श्रृंङ्गवाञ्जारुधिश्चैवतथैवोत्तरपर्व तौ ।
यवथैवदक्षिणेतद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२५
मर्यादापर्वताह्य तेकथ्यन्तेऽष्टौद्विजोत्तम् ।
हिमवद्धेमकूटादिपर्व्वतानांपरस्परम् ॥२६
नवयोजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ।
मेरोरिलावृतेतद्वदन्तरेवैं चतुर्दिशम् ॥२७

पूर्व में जठर और देवकूट पर्वत स्थित हैं । वह परस्पर नीले से निषध तक विस्तृत हैं ।२२। मेरु के पश्चिम पार्श्व में निषध और पारियात्र स्थित है, पूर्व दिशा के ही समान यह भी नील से निषध तक विस्तार युक्त हैं ।२३। दक्षिण में कैलाश और हिमवान् नामक महान पर्वत है यह पूर्व पश्चिम में लम्बे होकर समुद्र में प्रवेश किए हुए हैं । ।२४। उत्तर में श्रृङ्गवान और जारुधि हैं, यह भी दक्षिण दिशा के ही समान ही समुद्र तक विस्तार किए हुए हैं ।२५। हे विप्र श्रेष्ठ, आठों

पर्वतों का नाम यही है, जो तुम्हारे प्रति कहे। तथा हिमवान् और हेम कूट आदि पर्वत परस्पर में है।२६। नौ सहस्र योजन तक विस्तृत हैं। यह सभी पर्वत मेरु के चारों ओर तथा इलावृत के मध्य में है।२७।

फलानियानिवैजम्बूगन्धमादनपर्वते।
गजदेहप्रमाणानिपतान्तिगिरिमूर्धनि ॥२८
तेषांस्रावात्प्रभवतिख्याताजम्बूनदींतिवै।
यनत्रजाम्बूनदंनामकनकं सम्प्रजायते ॥२९
सापरिक्रम्यवैमेरुंजम्बूमूलंपुनर्नदी।
विशतिद्विजशार्दूलपीयमानाजनैश्चतैः ॥३०
भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारतेकूर्मसंस्थिताः।
वराहः केतुमालेचमत्स्यरूपस्ताथोत्तारे ॥३१
तेषुनक्षत्रविन्यसांद्विषयाः समवस्थिताः।
चतुर्ष्वदद्विजश्रेष्ठग्रहाभिभवपकाः ॥३२

गन्धमादन पर्वत से गजदेह जैसे जामुन के फल शिखर के नीचे गिरते हैं।२८। उनके रस से उत्पन्न होने वाली नदी जम्बुनदी कही जाती है: इसी नदी से जम्बूनद उत्पन्न हुआ है।२९। सुमेरु पर्वत की चारों ओर परिक्रमा करती हुई वह नदी उस जामुन के वृक्ष के नीचे प्रवाहमान हैं, वहाँ रहने वाले मनुष्य उसी का जल पीते हैं।३०। भद्राश्व में अश्वशिरा, भारत में कूर्माकृति, विष्णु केतुमाल वराह और उत्तरमें मत्स्य के स्वरूप में भगवान् नारायण प्रतिष्ठित हैं।३१। इन चारों पर्वतोंमें नक्षत्र और ऋषि स्थित हैं तथा नक्षत्रों का जाना आना रहता है और उन ग्रहों का श्रेष्ठ या निकृष्ट फसे भी होता रहता।३२।

४७—जम्बूद्वीप के वन पर्वतादि

शैलेषुमन्दराद्येषुचतुर्ष्वेवद्विजोत्तम्।
वनानियानि चत्वारिसरांसिचनिबोधमे ॥१

पूर्वचैत्ररथंनामदक्षिणेनन्दनं वनम् ।
वै भ्राजंपश्चिमेशैलेसाविन्नचोत्तराचले ॥२
अरुणोदंसर पूर्वेमानसं दक्षिणेतथा ।
शीतोदं पश्चिमेमेरोर्णंमहाभद्रं तथोत्तरे ॥३
शीतातंश्चक्रमुं जश्चकुलीरोऽथसुकंकवान् ।
मणिशैलोऽथवृषवान्महानीलीथवाचलः ॥४
सुविन्दुर्मन्दरोणुस्तामसोनिषधस्तथा ।
देवशैलश्पूर्वेणामन्दस्यमहाचलः ॥५
त्रिकूटः शिखराद्रिश्चकलिङ्गोऽथपताङ्गकः ।
रुचकः सानुसांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथविशाखवान् ॥६
श्वेतोदरः समूलश्चबसुधारश्चरत्नवान् ।
एकश्रृङ्गोमहाशैलोराजशैलः पिपाठकः ॥७
पञ्चशैलोऽथकैलाशोहिमवांश्चाचलोत्तम् ।
इत्येतेदक्षिणेपाश्र्वे मेरोः प्रोक्तामहाचलाः ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! मन्दरादि पर्वतों में चार वन तथा घार सरोवर हैं, अब उनका वर्णन करता हूं सो सुनो ।१। पूर्व में कैत्ररथ, दक्षिण में नन्दन, पश्चिम वैभ्राज और उत्तर में सावित्रनामक वन स्थित है ।२। सुमेरु के पूर्व में अरुणोद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शतोद तथा उत्तर में महाभद्र नामक सरोवर है ।३। मन्दर के पर्व में शीतांत चक्र मुज कुलीर, सुककवान् मणिशैल, वृषवान्, महानीली भवाचल ।४। बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध और देवशैल नामक पर्वत स्थित हैं ।५। त्रिकूट, शिखर कलिग, पतगक, रुचक, सानुमान् ताम्रक, विशाखवान् हैं ।६। श्वेतादर, समूल, बसुधार, रत्नवान्, एक श्रृङ्ग, महाशैल, पिपाठक ।७। पंचशैल, कैलाश तथा हिमयान् यह सभी महा पर्वत सुमेरु के दक्षिण ओर अवस्थित हैं ।८।

सुरक्षाशिशिराक्षश्चवैदूर्यः पिलस्तथा ।
पिजरोऽथमहाभद्रः सुरसः कपिलोमधुः ॥९

अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डरश्चाचलोत्तमः ।
सहस्रशिखरश्चाद्रिः पारियात्रः सश्रृङ्गवान् ॥१०
पश्चिमेनतथामेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्वहिः ।
एतेऽचलाः समाख्याताः श्रृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥११
शङ्खकूटोऽथप्रसभोहंसनाभस्तथाचलः ।
कपिलेन्द्रस्तथाशैलः सानुमान्नीलएवच ॥१२
स्वर्णश्रृङ्गः शातश्रृङ्गः पुष्पकोमेघपर्वतः ।
विरजाक्षोवराहाद्रिर्मयूरोजारुधिस्तथा ॥१३
इत्येतेकथिताब्रह्मन्मेरोरुत्तरतोनगाः ।
एतेषांपर्वतानातुद्रोण्योऽतीवमनोहराः ॥१४

सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिञ्जर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मनु ।९। अंचग कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्र, शिखर, पारियात्र और श्रृङ्गवान् ।१० यह सुमेरु और विष्कम्भ के पश्चिम और बहिर्भाग में अवस्थित है । अब उत्तर दिशा के पर्वतों के विषन में कहता हूँ, उसे सुनो ।११। शंखकूट वृषभ हंसनाम कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील ।१२। स्वर्ण, श्रृङ्गी, शातश्रृङ्गी, पुष्पक मेघ पर्वत, विरजांक्ष, बराहाद्रि, मयूर और जाराधि ।१३। हे विप्र ! यह सभी पर्वत सुमेरु के उत्तर भाग में स्थित बताये गये हैं, इन पर्वतों की गुफाएं अत्यन्त रमणीक हैं ।१४।

वनैरमलपनीयैः सरोभिरुपशोभिताः ।
तासुपुण्यकृतांजन्ममनुष्याणांद्विजोत्तम ॥१५
एतेभौमाद्विजश्रेष्ठवर्गगुणाधिकाः ।
नतासुपुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ॥१६
पुण्योपभोगात्तीदेवानामपितास्वपि ।
शीतान्ताद्येषुचैतेषुशैलेषुद्विजसत्तम ॥१७
विद्याधराणांयक्षाणांकिंशरोरगरक्षसाम् ।
देवानांचमहावासागन्धर्वाण च शोभनाः ॥१८

महापुण्यमनोज्ञैश्चसदेवापवनैर्युताः ।
सरांसिचमनोज्ञामिवंतुसुखदाऽनिलः ।१९
नचैतेषुमनुष्याणांवैमनस्यानिकुत्रचित् ।
तदेतत्पार्थिवंपद्मंचतुष्त्रंमयादितमुदितम् ।२०
भद्राश्वभारताद्यानिपत्राण्यस्यतुर्दिशम् ।
भारतंनामयद्वर्षं दक्षिणेनमोदितम् ।२१
तत्कर्मभूमिनर्न्यत्रसं प्राप्ति पुण्यपापयोः ।
एतत्प्रधानं विज्ञययत्रसर्वेप्रतिष्ठितम् ।२२
तस्मात्स्वर्गापवर्गौचमानुष्यनारकावपि ।
तिर्यक्त्वमयवाप्यन्यत्नप्रानोतिवृद्धिज ।२३

यह सभी पर्वत, वन तथा निर्मल जलसे परिपूर्ण सरोवरों से सुशोभित हैं । इस परम पुण्य स्थल में पुण्यात्मा मनुष्य ही उत्पन्न होतेहैं।१५ हे द्विजवरे ! यह सब स्थान स्वर्ग से गुणवान् भीम स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध है यहाँ अपूर्व पाप अथवा पुण्य संचित नहीं होता ।१६। इन सभी शीतान्तादि पर्वतों का उपभोग हो सकना देवगणों के लियेभी पुण्य भोग स्वरूप हैं ।१७। यहां विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता, गन्धर्व आदिका अत्यन्त सुशोभित निवास है ।१८। यह भूमि अत्यन्त पुण्यरूपा, सुरम्य और देवोद्यान एवं मनोहर सरोवरों से युक्त है, यहाँ की समीर सभी ऋतुओं में सुखदायी है ।१९। यहाँ कहीं भी मनुष्यों में विद्वोष भाव दिखाई नहीं देता, इसलिये इसे मैंने चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहा है ।२०। भद्राश्व और भारत आदि इसके चारों ओर चार पत्ते हैं तथा जो दक्षिण दिशा में भारतवर्ष कहा है ।२१। यह कर्मभूमि है, अन्य किसी स्थान में पाप-पुण्य की उपलब्धि नहीं है, सबके अवस्थान करने से ही भारवतर्ष को ही प्रधान माना गया है ।२२। कर्मभूमि होने के कारण ही इससे मनुष्यों को स्वर्ग, मोक्ष, मनुष्ययोनि, नरक, खग योनि अथवा अन्यान्य योनियों की प्राप्ति होती है ।२३

४४–गङ्गावतार

धराधारंजगद्योगे:पदंनारायणस्यच ।
वत:प्रवृत्तायादेवीगङ्गात्रिपथगामिनी ।१
साप्रविश्यसुधायोनिंसोममाधारमम्भसाम् ।
ततः संवर्द्ध मारार्करश्मिसङ्गतिपाविनी।२
परातमेरुपृष्ठेचसाचतुर्द्धातंतोययौ ।
मेरुकूटतटन्तेभ्योनिपन्तन्तीविवतिजा ।३
विकीर्यमाणसलिलानिरालम्वापपातसा ।
मन्दराद्ये षुपादेषुप्रविभक्तोदकासमम् ।४
चतुर्ष्वपिपताम्वुविभिन्नाड़घ्रिशिलोच्चया ।
पूर्वासोतेतिविख्यातायर्यौचैत्ररथनम् ।५
तत्प्लावयित्वाचययौवरुणोदंसरोवरम् ।
शीतान्तंचगिरितस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ।६
गत्वाभुवंसमासाद्यभद्राश्वाजुलधिगता ।
तथैवालकनन्दास्यंदक्षिणेगन्धमादने ।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—जगद्योनि नारायण के ध्रुव धार पद से ही त्रिपथगामिनी भगवती गंगा की उत्पत्ति हुई है ।१। वह समस्त जल ही आधार रूपिणी सुधायोनि चन्द्रमण्डल में प्रवेश करके वहाँ सम्बद्ध सूर्य-रश्मियों से सयुक्त होकर अत्यन्त पवित्र होकर ।२। सुमेरु पर गिरी है और वहाँ के सब कूट प्रान्त से गिरती हुई चार धराओं में वहाँ से निकली है ।३। इस प्रकार जलसे विस्तृत और आलम्ब से रहित गंगा मन्दरादि पर्वत में विभाजित होकर समान भाव से निपतित हुई है ।४। और पर्वत शिखाओं को काटती हुई बढ़ी । उनमें जो जल धारा पूर्व में बहती हुई चैत्ररथ वन की ओर गई है, उसे सीता कहते हैं ।५। वह सीता नामक गङ्गा चैत्ररथ वन को जलयुक्त करती हुई वरणोद सरोवर में पहुँची है, वहाँ से शीतान्त पर्वत एवं अन्य पर्वत का अतिक्रमण करती हुई ।६। पृथ्वी पर उतर कर भद्राश्व वर्ष में होकर समुद्र तक

गई है तथा सुमेरु के दक्षिण ओर के जो गङ्गाजल गंधमादन पर्वत में निपतित हुआ है, उस धारा का नाम अलकनन्दा है ।७।

मेरुपादवनंगत्वानन्दनं देवनन्दनम् ।
मानसचमहावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।८
आसाद्यशैलराजानंरम्यंहिशिखरंतथां ।
तस्माच्चपर्वतान्सर्वान्दक्षिणोपक्रमोदितान् ।९
तान्प्लावयित्वासंप्राप्ताहिमवन्तंमहागिरिम् ।
दधारतत्रतांशम्भुर्नमुमोचवृषध्वजः ।१०
भगीरथेनोपवासैःस्तुत्याचाऽऽराधितोविभुः ।
तत्रनुक्ताचशर्व्वेणसप्तधादक्षिणादधिम् ।११
प्रविवेशत्रिधाप्राच्यांप्लवयन्तीमहानदी ।
भगीरथरस्यानुस्रोतसैकेनंदक्षिणम् ।१२
तथैवपश्चिमेपादेविपुलेसामहानदी ।
सुचक्षरितिविख्याताвैभ्रजसाययौ ।१३
शीतोदंचसरस्तस्मात्प्लावयान्तीमहानदी ।
तस्मांत्क्रमेणचाद्रीणांशिखरेषुनिपत्यसा ।
स्वरक्षु पर्वतंप्राप्ताततश्चत्रिशिखंगता ।१४

अलकनन्दा ने सुमेरु के समीपवर्ती देवताओं को प्रसन्नताप्रद नन्दन-वन में जाकर अत्यन्त वेग से मानस सरोवर को जल से परिपूर्ण किया है । ८ । इस मानस सरोवर को भर कर पर्वतराज के सुरम्य शिखर स्थान से तथा वहाँ से सब पर्वतों का अतिक्रमण करती हुई ।९। और उन्हें जल से परिपूर्ण करती हुई हिमालय में निपतित हुई है । वहाँ भगवान् शङ्कर ने उस गङ्गा को धारण कर उन्हें किसी प्रकार भी नहीं छोडा ।१०। फिर जब महाराज भगीरथ ने भगवान शिव का उपवास और स्तुति पूर्वक आराधना की तब उन्होंने गङ्गा को छोडा और वहाँ से छूटते ही गङ्गा सात धाराओं में विभक्त होकर दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुई ।११। उनमें तीन भाग पूर्व की ओर प्लावित करती हुई समुद्र में गई और एक धारा भगीरथ के पीछे-पीछे जाकर समुद्र में

जा मिली ।१२। सुमेरु के पश्चिम में विपुलपाद के रूप से जो धारा निर्गत हुई उसका नाम सुचक्षु हुआ । उसने वैभ्राज पर्वत एवं वन को पवित्र करते हुए ।१३। शीतोद सरोवर को प्लावित किया और वहाँ से सब पर्वतों के शिखरों पर और सुचक्षु पर्वत पर होकर त्रिशिखर पर्वत को प्राप्त हुई ।१४।

केतुमातुमालंसमासाद्यप्रविष्टालवणोदधिम् ।१५
(गत्वोत्तरांदिशंगंगादिव्यासाचमहानदी ।
तस्माच्चऋषभादींश्चक्रमादुत्तरजान्नगान ।)
सुपार्श्वन्तुतथैवाद्रिमेरूपाद्‌हिसागता ।
भद्रसोमेतिविख्यातासाययौसवितुर्वनम् ।१६
तत्पावयन्तीसं प्राप्तामहाभद्र सरोवरम् ।
ततश्चशङ्खकूटंसाप्रयावैमहानदी ।१७
तस्माच्चवृषभादीन्साक्रमात्प्राप्यशिलोच्चयान् ।
महर्णवमनुप्राप्ताप्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ।१८
एवमेषामयागंगाकथितातेद्विजर्षभ ।
जम्बूद्वीपनिवेशच्चवर्षाणिचयथातथम् ।१९
वसन्तितेषुप्रजाःकिंपुरुषादिषु ।
सुखप्रायानिरातङ्कान्यूनतोत्कर्षवर्जिताः ।२०
नवस्वपिचवर्षेषुसप्तकुलाचलाः ।
एकैकस्मिंस्तदादेशेनद्यश्चाद्रिविनि सृताः ।२१

फिर केतुमाल वर्ष में प्रवेश करती हुई समुद्र में संयुक्त हुई है ।१५ (फिर यह दिव्य महानदी उत्तरदिशामें होतीहुई ऋषभादिक उत्तरपर्वतों को प्राप्त हुई)यह चतुर्थधारा सुपार्श्व और सुमेरु से सविता वनमेंगई,वहाँ भद्रसोमा के नाम से प्रसिद्ध हुई. उस सविता वन को ।१६। पवित्र करके उसने महाभद्र सरोवरको प्लावित किया फिर शंखकूट पर्वत में गई ।१७ वहाँसे वृषभादि पर्वत से होकर उसने समस्त उत्तर कुरुदेश को पवित्रकिया और फिर महासागर में जा मिली ।१८। हे द्विजवर ! मैंने तुम्हारे प्रति गंगाजीका विषय कहा तथा जम्बूद्वीपके निवेश में ।१९। जिन किम्पुरुषादि

का बर्णन हुआ है, उनमें जो जीव रहते हैं, वह प्रायः सुखी, आतङ्क रहित एवं न्यूनता-अधिकता से रहित है।२०। जिन नौ वर्षों का वर्णन हुआ है, उनमें सात-सात कुलाचल हैं और प्रत्येक देश में ही पर्वत तथा वहुतसी नदियाँ अवस्थित हैं।२१।

यानिकिंपुरुषद्यानिवर्षाण्यष्टोद्विजोत्तम।
तेपूद्भिदज्जातितोयानिमेधवार्यंत्रभारते।२२
वार्क्षीस्वाभाविकीदेश्यानोत्थामानसोतथा।
कर्मजाजमृणांसिद्धिवर्षेष्वेतेषुचाऽष्टसु।२३
कामप्रदेभ्योवृक्षेभ्योवार्क्षीसिद्धिःस्वभावजा।
स्वाभाविकीसमाख्यतातृप्तिर्देश्यादैशिकी।२४
अपांमौक्ष्म्याच्चतोयोत्थाद्धयानोपेताच्चमानसी।
उपासनादिकार्यात्तु कर्मंजासाप्युदाहृता।२५
नचैतेषुयुगावस्थानाधयोव्याधयोनच।
पुण्यापुण्यसमारम्भोनैवतेषुद्विजोत्तमः।२६

हे द्विजवर! किम्पुरुषादि जो आठ वर्षहैं उनमें जल उद्भिदमात्रहै क्योंकि इस भारतवर्ष में मेघ के जल की अधिकता है।२२। यह आठ वर्ष हैं, वहाँ वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्सा, मानसी और कर्मजा उन छः प्रकारों की मानसी सिद्धि है।२३। जिस कामना के देने वाले वृक्षसे सिद्धिकी उत्पत्ति होती है, वह वार्क्षी कहा गया है, स्वभाव वश उत्पन्न सिद्धि ही स्वाभाविकी है देश जात सिद्धि का नाम देश्य है।२४। तथा जल की सूक्ष्मता से जो सिद्धि होती है, उसे तोयोत्था कहते हैं, मानसी सिद्धि ज्ञानके द्वारा मनसे उत्पन्न होती है तथा उपासनादि कर्म द्वारा उत्पन्न होने वाली सिद्धिको कर्मजा कहा गया है।२५। हे द्विजवर! इन समस्त वर्षों में युगों का भेद आदि व्याधि तथा पुण्य पाप कुछ नहीं होता था।२६।

४९—भारतवर्ष विभाग

भगवन्कथितं त्वेतज्जम्बूद्वीपसामसतः ।
यदेतभ्दवताप्रोक्तं कर्मनान्यत्रपुण्यदम् ।१
पापायवामहाभागवर्जयित्वातुभारतम् ।
इतस्वर्गश्चमोक्षश्चमध्यंचान्तचगम्यते ।२
नखल्वन्यत्रमर्त्यानांभूमौकर्मविधीयते ।
तस्माद्विस्तदशोब्रह्मन्ममैतद्भारतंवद ।३
येचास्यभेदायावन्तोयथावत्स्थितिरेवच ।
वर्षोऽयंद्विजशाद्रूं त्ययेचाऽस्मिन्देशपर्वताः ।४
भारतस्यास्य षंस्यनवभेदान्निवोधमे ।
समुद्रान्तरिताज्ञयास्तेत्वगम्याःपरस्परम् ।५
इन्द्रद्वीप कशेरूमांस्ताम्रवर्णोगभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथासौम्योगान्धर्वोवारुणस्तथा ।६
अयंतुनवमस्तेषांद्वीपःसागरसम्वृतः ।
योजनानाहस्रं वैद्वीपोऽयदक्षिणोत्तम् ।७

कौष्टुकि बोले-हे भगवान् ! इस जम्बूद्वीप का आपने संक्षिप्त रूपसे वर्णन किया और आपने कहा कि भारत वर्ष के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में कोई ।१। पाप या पुण्य का कारण नहीं होता और इसी स्थान से स्वर्ग मोक्ष, मध्यदशा, अन्तकालीन दशा ।२। सब की प्राप्ति होती अन्य किसी भी स्थान में मनुष्य कर्म का अनुष्ठान नहीं करता इसलिए इस भारतवर्ष का वर्णन ही विस्तृत रूप से करिये ।३। इसमें जितने भेद हैं, भेदों का जितना परिणाम है, जितने प्रदेश और पर्वत हैं, उन सबको विस्तार पूर्वक बताइये ।४। मार्कण्डेय ने कहा हे ब्रह्मन् ! भारत वर्ष के नो विभाग हैं, वे सभी समुद्र के द्वारा विभक्त तथा परस्पर में अगम्य हैं, उनके विषय में बताता हूँ ।५। इन्द्र द्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण गमस्तिमान्, नागद्वीप, योम्य, गान्धर्व–

वारुण ।६। तथा नौवां भारत है,यह भारत नामक द्वीप समुद्रसे घिरा हुआ है तथा दक्षिण में और उत्तर में हजार योजन परिमाण वाला है ।७

पूर्वे किरातयस्यायान्तेपश्चिमे वनास्तधा ।
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्यःशूद्रचान्तःस्थिताद्विज ।८
इज्वाध्यायवाणिज्याद्यै कर्मभिःकृतपावनाः ।
तेषांसंव्यवहारश्चभिःकर्मभिरिष्यते ।९
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्चपुण्यंपाप चवैतदा ।
महेन्द्रोमलयः सह्यशुक्तिमानृक्षपर्वतः ।१०
विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैवात्रकुलाचलाः ।
तेषांसहस्रशश्चान्येभूधराहिसमीपगाः ।११
विस्तारोच्छ्रयिणोरम्याविपुलाश्चात्रसानवः ।
कोलाहलः सवैभ्राजमन्दरोदर्दु राचलः ।१२
वतस्वनोवैद्यु तश्चमैनाकःस्वरसतथा ।
तुंगप्रस्थोनागगिवरोचनः पाण्डराचलः ।१३
पुष्पोगिरिर्दु र्जयन्तोरैवतोऽर्बु दएवच ।
ऋष्यमूकःसगोमन्तःकूटशैलःकृतस्मरः ।१४
श्रीपर्वतश्चकारश्चशतोऽन्येचपर्वता ।
तैर्विमिश्राजनपदाम्छाश्चार्याश्चभागशः ।१५

इसके पूर्व में किरात और पश्चिम में यवन रहते हैं, इसके मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का निवास है । ८ । वह यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य आदि अपने-अपने कर्म को करते हैं । सब कर्मों से उनके भली प्रकार व्यवहार से । ९ । स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति और पाप पुण्य आदि सब कर्मों को उपस्थित रहती है । महेन्द्र मलय, सह्य, शुक्तिमान ऋक्ष ।१०। विन्ध्य और परियात्र नामक सात कुलाचल इसमें विद्यमान है, इन सब कुल पर्वतों के निकट ही हजार-हजार पर्वत हैं । ११ । जिनमें कोलासल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दु राचल ।१२। वातस्वन, वैद्यु तमैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, पाण्डुराचल । १३ । पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त,

कूटशैल, कृतस्मर ।१४। श्रीपर्वत और कोर पर्वत अत्यन्त ऊँचे, रमणीक, विपुल एव विस्तारयुक्त हैं । इनमें सैकड़ों जनपद हैं । इन पर्वतोंसे मिले हुए सभी जनपद विभागके अनुसार म्लेचछ तथा आर्य कहे गये हैं ।१५।

तैःपीयन्तेसरिच्छ्रेष्ठयास्ता.सम्यङ्निबोधमे ।
गङ्गसरस्वतीसिन्धुश्चन्द्रभागातथापरा ।१६
यमुनाचशतद्रुश्चवितस्तेरावतीकुहूः ।
चोमतीधूतपापाचबाहुदासद्दषद्वती ।१७
विपाशादेविकारंक्षुनिश्चीरागण्डकीतथा ।
कौशिकीचऽऽपगाविप्रहिमवत्पावनि सृताः ।१८
वेदस्मृतिर्वेवतीवृत्रघ्नीसिन्धुरेवच ।
वेणासानन्दाचैवसदानीरामहीतथा ।१९
पाराचर्मण्वतीतापीविशावेत्रवत्यपि ।
क्षिप्राह्यवन्तचताथापरियात्राश्रयाःस्मृताः ।२०
शोणोमहानदश्चैवनर्मदासुरथाऽऽद्रिजा ।
मन्दाकिनीशार्णाचचित्रकूटातथापरा ।२१

उन जनपदों में रहने वाले मनुष्य जिन श्रेष्ठ नदियों का जल पीते हैं, उन सब नदियों के नाम बताता हूँ, उनको जान लो गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा ।१६। यमुना, शतद्रू वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती पुण्य सलिला बाहुदा दृषद्वती ।१७। विपाशा, देविका, ऋक्षु, निश्चीरा गन्डकी और कोशिकी । यह सभी नदियाँ हिमालय पर्वत से निसृत हुई हैं ।१८। तथा वेदस्मृती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, रेवा, सानन्दनी, सदानीरा, मही ।१९। पार चर्मण्वती तापी' विदिशा वत्रवती, क्षिप्रा अवन्ती यह सब नदियाँ पारियात्र पर्वत से उद्‌भुत हुई हैं ।२०। शोण महानद और नर्मदा सुरथाद्रि से तथा मन्दाकिनी और दशार्णा यह दोनों चित्रकूट से निर्गत हुई हैं ।२१।

चित्रोत्मलासतमसाकरमोदापिशाचिका ।
तथान्यापिप्लश्रोणिविपाशावञ्जुलानदी ।२२

सुमेरुजाशुक्तिमतीसकुलीत्रिदिवाकमुः ।
ऋक्षपात्रसूतावैतथान्यावेगवाहिनी ।२३
क्षिप्रापयोष्णीनिर्विन्ध्यापीचनिषधावती ।
वेण्यावैतरणीचैवसिनीवालीकुमुद्वती ।२४
करतीयामहागौरीदुर्गाचान्तःशिवातथा ।
विन्ध्यादप्रसूतास्ताकद्यःपुण्यजला शुभाः ।२५
गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्ययातथापरा ।
तुङ्गभद्रासुपयोगा बाह्याकावेर्यथापगा ।२६
सह्यपादविनिष्क्रान्ताइत्येताः सरिदुत्तमाः ।
कृतमालाताम्रपर्णीपुष्पजीमूत्पलावती ।२७
मलयाद्रिसमुद्भूतानद्यःशीतलास्त्विमाः ।
पितृपोमर्षिकुल्याचइक्षुकाविदिवाचाया ।२८

चित्रोस्पला तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्लश्रोणि, विपासा, मंजुला ।२२। सुमेरुता, शुक्तिमत, शकुली, त्रिदिया, आक्रमु यह वेग से प्रवाहित होने वाली नदियाँ ऋक्ष पर्वत से निकली हैं। २३। क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणवा, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती ।२४। करतोया, महागोरी, दुर्गा, अन्तक्षिरा यह शुभ प्रदायिनी एवं पुण्य जल वाली नदियाँ विन्ध्यपर्वत से अवतीर्ण हुई हैं ।२५। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेगा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या और कावेरी महानदी ।२६। इनका उद्भव भी विन्ध्य पर्वत से ही हुआ है। तथा कृतमाला, ताम्रपर्णी और उत्प्लावती यह नदियाँ पुष्प पर्वत से निकलती हैं ।२७। पितृकुल्या, इक्षुका और त्रिदिवा यह शीतल जल से युक्त नदियाँ मलयाद्रि से उद्भूत हुई हैं ।२८।

लांगलिनीवंशकरामहेन्द्रप्रभवाःस्मृताः ।
ऋषिकुल्याकुमारीचानंदगामन्दवाहिनी ।२९
कुशापलाशिनीचैवशुचिमत्प्रभवाःस्मृताः ।
सर्वापुण्याःसरस्वत्यःसर्वागंगासमुद्रगाः ।३०

विश्वस्यमातरःसर्वाःसर्व पापहराःस्मृताः ।
अन्याःसहस्रशश्चोक्ताक्षुद्रनद्योद्विजोत्तम् ।३१
प्रावृट्कालवहाःसन्तिसदाकालवहाश्चयाः ।
मत्स्याश्वकटाःकुल्याश्चकुन्तलाःकाशिकोशलाः ।३२
अर्बुदाश्चार्कलिंगाश्चमलकाश्चवृकैः सह ।
मध्यदेश्याजनपदाःप्रायशोऽमीप्रकीर्त्तिताः ।३३
सह्यस्यचोत्तरेयास्तुयत्रगोदावरीनदी ।
पथिव्यामपिकृत्स्नायांसप्रदेशोमनोरमः ।३४

लांगूलिनी तथा वशकरा यह दो नदियाँ महेन्द्र पर्वत से निकली हैं, ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मेदवाहिनी ।२६। कुशा, पलाशिनी इन नदियों का उद्गम शुक्तिमान् पर्वत से हुआ है। यहाँ जिन नदियों का वर्णन किया गया है, वह सभी परम पुण्य प्रदायिनी एवं अधिक जल से परिपूर्ण हैं, यह सभी गङ्गा और समुद्र में जाकर मिल गई हैं ।३०। हे द्विजवर ! यह सब नदियाँ विश्व की माता स्वरूपा सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाली हैं, तथा इनके अतिरिक्त जो और भी हजारों छोटी-छोटी नदियाँ हैं ।३१। उनमें कोई वर्षाकाल में बहती हैं तथा किसी में सदैव जल रहा आता है। मत्स्य, अश्वकूट, कुल्या, कुण्डल, काशी, कोशल ।३२। अर्बुद, कलिंग, आगलक और वृक् यह सभी जनपद प्रायः मध्य प्रदेश में अवस्थित बताये गये हैं ।३३। सह्य पर्वत के उत्तर में जहाँ गोदावरी प्रवाहमान है, वह स्थान सम्पूर्ण पृथिवी में ही अत्यन्त रमणीक है ।३४।

गोवर्द्धनंपुरंरम्यं भार्गव्यस्यमहात्मनः ।
वाह्लीकावाटधानाश्चआभीराःकालतोयकाः ।३५
अपरान्ताश्चशूद्राश्चपल्कवाश्चर्मखण्डिकाः ।
गान्धारायवनाश्चैवसिन्धुसौवीमद्रकाः ।३६
शतद्रुजाकलिङ्गाश्चपारदाहारमूषिकाः ।
माठरावहुभद्राश्चकैकेयादशमालिकाः ।३७

क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानिच ।
काम्बोजादरदाश्चैववर्वराहर्षवर्द्धनाः ।३८
चीनाश्चैवतुषाराश्चपवहुलावाह्यतोनराः ।
आत्रयाश्चभरद्वाजाःपुष्कलाश्चकुशेरूकाः ।३९
लम्पाकाःशूलकाराश्चकुलिकाजागुडैःसह ।
औषधाश्चानिमद्राश्चकिरातानांचजातयः ।४०

वहाँ महात्मा भार्गवकी गोवर्द्धन नाम की सुरम्य नगरी है तथा वाह्लीक, वाटधान, आभार और कालतोयक ।३५। यह अपरान्त देश कहा है । शूद्र, पल्कव, चर्म खन्डिका, गांधार सिंधु, सौवीरमद्रका ।३६। शतद्रुज, लिंगपाद, हारमूषिक, माठर, बहुंभद्र, कैकय तथा दशमालिका आदि ।३७। सभी देशों में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं । काम्बोज, दरद अङ्गलौकिक ।३८। चीन, तुषार में उत्पन्न हुंए मनुष्यों को वहि-देशज कहा गया है । आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल तथा कुशेरुका ।३६। लम्पाक, शूलकार, कुलिक वागुड, औषध और अनिभद्र आदि जातियों के मनुष्य किरात जाति के ही भेद स्वरूप हैं ।४०।

तामसाहंसामार्गाश्चकाश्मीरास्तुंगणास्तथा ।
शूलिकाःकुहकाश्चैवऊर्णास्तथैवच ।४१
एतेदेशाह्युदीच्यास्तुप्राच्यान्देशान्निबोधमे ।
अभ्रारकामुद्‌कराअन्तर्गिरवहिर्गिराः ।४२
तथाप्लवङ्गारङ्गेयामानदामानवर्त्तिकाः ।
ब्रह्मोत्तरान्प्रविजयाभार्गवाज्ञेयमल्लकाः ।४३
प्राग्ज्योतिषश्चमद्राश्चविदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
मल्लामागधोमेदाःप्राच्याजनपदाःस्मृताः ।४४
अथापरेजनपदादक्षिणापथवासिनः ।
पाड्याश्चकेरलाचैवगोलाःडन्गूलास्तथैवच ।४५
शेलषामूषिकाश्चैवकुसमानाम्वासकाः ।
महाराष्ट्रामाहिषिका कलिङ्गाश्चैवसर्वशः ।४६

आभीराःसहवैशिक्याआढ्क्याशबराश्चते ।
पुलिन्दाविन्ध्यमौलेयावैदर्भादण्डकैसह ।४७
पौरिकामौलिकाश्चैवअश्मकाभोगवर्द्धनः ।
नैषिकाःकुन्तलाआन्ध्राउदभिदावनदारकाः ।४८
दाक्षिणात्यास्त्वमीदेशाअपरांस्तान्निबोधमे ।
सूर्यारकाकालिबलादुर्गश्चामीकदैःसह ।४९

तामस हंसमार्ग, काश्मीर, शूलिक कुहिक, ऊण और दर्श ।४१। यह सब देश उत्तर में हैं इनके पश्चात् अब पूर्व देशों का वर्णन सुनो अणस्त्रा-रक, मुदगर, अन्तगिरि,वहिर्गिरि ।४२। गवङ्ग, रङ्गेय, मानदमानेवृत्तिक, उत्तर ब्रह्म, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमस्लका ।४३। प्राग्ज्योतिष, भद्र,विदेह, ताम्म्रलिप्तक, मल्ल, मगध तथा गोमन्त आदि सब जनपद पूर्वदिशा में है । ४४ । अब दक्षिण के जनपदों को कहता हूँ—पाड्य, केरल, चोल, कुन्त्य ।४५। शैलूष, मूषिक, सुकुम, नामवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग ।४६। आभीर वैथिक, आढ़की, जहाँ शबर रहते हैं, पुलिन्द, विन्ध्यमालेय, वैदभ, दण्डक ।४७। पीरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैमिषिक, कुन्तल, अन्ध, उद्भिव और वनदारक । ४८ । आदि सब देश दक्षिणात्य कहकर प्रसिद्ध है, अब पश्चिम के देशों को कहता हूँ ।४९।

पुलिन्दाश्चसुमीनाश्रूपपाःस्वावदैःसह ।
तथाकुरूमिनश्चैवसर्वेचैवकटाक्षराः ।५०
(कारस्करालोहजंघाजेयाराजभद्रकाः) ।
तोसलाःकोसलाश्चैवत्रैपुराविदिशस्तथा ।
(तुषारास्तु बुराश्चैवसर्वे चौवकरस्कराः ।)
नासिक्यावाश्चान्येयेचौवोत्तरनमर्म्मदाः ।५१
भीरूकच्छाःसमाहेयाःसपसारस्वतैरपि ।
काश्मोराश्चसुराष्ट्राश्चअवन्त्याश्चार्बुदैःसह ।५२
इत्येतेह्यपरान्ताश्चश्रृणुविन्ध्यनिवासिनः ।
सरजाश्चकरूपाश्चकेरलाश्चोत्कलैःसह ।५३

उत्तमर्णादशार्णाश्चभोज्याःकिष्किन्धकैःसह ।
तुम्वरास्तुम्बलाश्चैवपटवोनैषधैःसह ।५४
अन्नजास्तुष्टिकाराश्चवीरहोत्राह्यवन्तयः ।
एतेजनपदाःसर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ।५५
अतोदेशान्प्रवक्ष्यामिपर्वताश्रयिणश्चये ।
नीहाराहंसमार्गाचकुरवोगुर्गणा खसाः ।५६
कुन्तप्रावरणाश्चैवऊर्णादार्वा सक्रुत्रका ।
त्रिगर्त्तागालवाश्चैवकिरातास्तामसैःसह ।५७

सूर्यारक कालिबल, दुर्ग, आमोकट, तुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वावद तथा कुरुमित्र आदि प्रदेशों को कटाक्षर ।५०। (कारस्कार, लोहजंघ, वाले राजभद्र) तोशल, कोशल, त्रिपुर, विदिशा (तुषार और तुबुर यह सब कारस्कर कहे हैं) या नासिक्याव कहे गये हैं, उत्तर नर्मदा ।५१ भीरुकच्छ माहेय्र सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र आरम्भ और अर्बुद आदि सब देश पाश्चात्य कहकर प्रसिद्ध हैं ।५२। अब इनके उपरान्त विन्ध्य-वासी देशों का वर्णन सुनो, सूरज, करूष, केरल, उत्कल ।५३। उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किधक, तुम्बरु, तुम्बुल, पट्ट, नैषध ।५४। अन्नज तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति यह सभी जनपद विंध्य पर्वतके पृष्ठमें स्थित हैं ।५५। अब जो देश पर्वत के आश्रय में स्थित हैं, उनका वर्णन करता हूँ। नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस ।५६। कुन्त, प्रावरण उर्ण, दर्व, क्रुत्रव, त्रिगर्त, गालव, किरात और तामस यह सब पर्वतीय देश कहे जाते हैं ।५७।

कृतत्रेतादिकश्चात्रचतुर्युगकृतोविधि ।
एतत्तु भरतंवर्षस्थानसंस्थानसंस्थितम् । ५८
दक्षिणापरतोह्यस्यपूर्वेणचमहोदधिः ।
हिमवातुत्तरेणस्यकार्मुकस्ययथागुणः ।५९
तदेतद्भारतंवर्षसर्ववीजष्ट्विजोत्तम ।
ब्रह्मत्वममरेशत्वंदेवत्वंमर्त्यतांस्तथा ।६०

मृगपश्वप्सरोनोरिस्तद्वत्सर्वेसरीसृपाः ।
स्थावराणांचसर्वेसामितोब्रह्मन् शुभाशुभैः ।६१
प्रयातिकर्मभूर्ब्रह्मन्नायालोकेषुविद्यते ।
देवानामपिविप्रर्षेसदाएषमनोरथः ।६२
अपिमानुष्यमाप्स्यामोदेवत्वात्प्रच्युताःक्षितौ ।
मनुष्यःकुरुतेतत्तु यन्नशक्यं सुरासुरैः ।६३
तत्कर्मनिगडग्रस्तैःस्वकर्मख्यामापनोत्सुकैः ।
नकिंचित्क्रियतेकर्नसुखलेशोपबृंहितैः ।६४

तथा इसी भारतवर्ष में सतयुगादि चारों युगों की विधि रहती है तथा यह चार संस्थान के रूप में अवस्थित हैं ।५८। इसे पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में धनुषाकार से महासागर घेरे हुए हैं तथा उत्तर में हिमालय पर्वत धनुष के गुणा के समान स्थित हैं ।५९। हे विप्रवर ! यह वह भारतवर्ष है, जो सभी का बीज स्वरूप है ! इसमें ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व तथा मनुष्यत्व इन सभी की विद्यमानता है ।६। इसी से मृग, पशु आदि और अप्सराएँ उत्पन्न हुई हैं, यहीं वृश्चिक आदि उत्पन्न होते हैं, स्थावर जंगमादि जितने भी पदार्थ हैं । वह सभी शुभाशुभ कर्म के फलस्वरूप हैं ।६१। हे ब्रह्मर्षे ! सभी लोकों में यह भारतवर्ष ही एकमात्र कम भूमि है, इसकी देवता भी सदैव इच्छा किया करते हैं ।६२ वे चाहते हैं कि यदि कभी देवत्व से नष्ट हों तो पृथिवी के मध्य में स्थित इस भारतवर्ष में ही मनुष्य योनि ग्रहण करें क्यों कि जिस कार्य के करने में मनुष्य समर्थ हैं, उस कार्य को देवता या असुर कदापि नहीं कर सकते ।६३। देखो, कर्म-रूपी बेढ़ियोंमें जकड़े हुए यह मनुष्य किंचित् सुख के मोह में पड़कर प्रसिद्धि की अभिलाषा करते हुए कर्म से विमुख रहते हैं ।६४।

५०—कूर्म संस्थान

भगावन्कथितंसम्यक्भवताभारतं मम ।
सरितःपर्वता देशायेचतत्रवसन्तिवै ।१

किन्तुकूर्मस्त्वयापूर्वंभारतेभवान्हरिः।
कथितस्तस्यसंस्थानंश्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ।२
कथंसंस्तितोदेवःकुर्मरूपीजनार्दनः।
शुभाशुभंमनुष्याणांव्यज्यतेचततःकथम्।
यथामुखयथापादंतस्यस्तदब्रूह्यशेषतः ।३
प्राङ्मुखोभगवदेन्वव कूर्मरूपीव्यवस्थितः।
आक्रम्यभारतंवर्षंनवभेदमिदंद्विज ।४
नवधासंस्थितान्यस्यनक्षत्राणिसमन्ततः।
विषयाश्चद्विजश्रं ष्ठयेसम्यक्तान्निबोधमे ।५
वेदिमद्रारिविमाण्डव्याःशाल्वनीपास्तथाशकाः।
उज्जिहांनास्तथावत्सघोषसंख्यास्तपाखशाः ।६
मध्येसारस्वतामत्स्याःशूरसेना समाथुरा।
धर्म्मारण्याज्योतिषिकागौरुग्रीवागुडाश्मकाः ।७

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवान्! आपने भारतवर्ष के विषय में मुझे सम्यक् प्रकारेण बताया तथा उसमें नदी,पर्वत,प्रदेश आदि जो हैं उनका भी सब वर्णन किया ।१। परन्तु आपने भारतवर्ष में भगवान् हरि के कूर्म रूप से निवास करने की बात कही थी, सो उनकी स्थिति किस प्रकार है यह सुनना चाहता हूं ।२। उन्होंने कूर्म रूप से किस प्रकार स्थिति की और उनके द्वारा मनुष्यों का शुभ:शुभ किस प्रकार प्रकट हुआ था ? हे प्रभो!सबके मुख और चरणों का प्रकार आदि सब सम्यक् प्रकार से कहिए ।३। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज ! वही नरायण भगवान् कूर्म रूप धारण करके इस नौ खण्डोंमें विभक्त भारतवर्षमें सुख से निवास करते हैं ।४। सभी नक्षत्र और सम्पूर्ण विषय भी नौ भागों में बँटकर उनके चारों ओर रहते हैं अब तुम उसका विवरण सम्यक्प्रकार से श्रवण करो ।५। वेद मन्त्र माण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोष, संख्य, खस ।६। सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव गुडाश्मक ।७।

वैदेहका:सपांचाला:सकेता:कङ्कमकता: ।
कालकोटिसपाषण्डा: पारियात्रनिमुवासित: ।८
कापिजला:कुरूर्ब्राह्यस्तथैवोदुम्बराजना: ।
गजाह्वमाश्कर्मस्यज लामघ्यनिवासिन: ।९
कृत्तकोरोहिणीसौम्याएतेषांमध्य वासिनाम् ।
नक्षत्रत्रितयविप्रशुभाशुभविपादकम् ।१०
वृषध्वजोऽञ्जनश्चैवजम्ब्वाख्योमनवाचल: ।
शूर्पकर्णोव्यघ्रमुखाखमु क:कर्क्कटाशन: ।११
तथाचन्द्रे श्वराश्चं वखशाश्चमगधास्तथा ।
गिशिरयोमैथिलाशुभ्रास्तथावदनदन्तुरा: ।१२
प्राग्ज्योतिषा: सलौहित्या:समुद्रा: पुरुषामका: ।
पूर्णोत्कटोभद्रगौरस्तथोदयागिरिद्वज ।१३
काशयोमेखलामुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपा: ।
वर्द्धमानाकौसलाश्चमुखेकूर्मस्यसंस्थिता: ।१४

वैदेहक, पांचाल, सकेत, कक, मारुत, कालकोटि, पाषण्ड, पारियात्र के निवासी ।८। कापिजल वाह्यकुरु, उदुम्बर और गजाह्व यह सभी देश कूर्मके मध्य स्थल में स्थित हैं ।९। कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा यह तीन नक्षत्र मध्य में रहने वाले उन मनुष्यों का शुभाशुभ प्रकटकरते हैं ।१०। वृषध्वज, अञ्जन जम्बुनामक मानवाचल, शूर्पकर्ण व्याघ्रमुख, कर्कटासन ।११। चन्द्रेश्वर खस, मगध शिव, मैथिल, शुभ्र वदन और दन्तुर ।१२। सभी पर्वत, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्र, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल ।१३। काशेय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एक पादप, वर्द्धमान और कौसल यह सभी कूर्म भगवान् के मुख में अवस्थित हैं ।१४

रौद्र:पुनर्वसु:पुष्योनक्षत्रत्रितयमुखे ।
पापादेमतुदक्षिणेदेशाक्रौष्टकेवदयश्रृणु ।१५
कलिङ्गवंगजठरा:कोशलामूषिकास्तथा ।
चेदयश्छोर्द्धकर्णाश्चमत्स्याद्याविन्धयवासिन: ।१६

विदर्भानारिकेलाश्चधर्मद्वीपास्तथैलिकाः ।
व्याघ्रग्रीबामहाग्रीवास्त्रैपुराः स्मश्रु धारिण ।१७
कैष्किन्ध्याः हेमकूटाश्चहैनिशधाः कटकस्थलाः ।
दर्शाणाहारिकानग्नानिषादाः काकुलालकाः ।१८
तथैवपर्णशवराः पादेवैपूर्वदक्षिणे ।
आश्लेषर्क्ष तथाः पैत्र्यंफाल्गुन्यः प्रथमास्तथा ।१९
नक्षत्रत्रितयपादमाश्रितंपूर्वदक्षिणम् ।
लङ्काकालजिनाश्च वशैलिकानिकटास्तथा ।२०
महेन्द्रमलगाद्रौचदर्दु रेचवसन्तिये ।
कर्कोटकवनेयेगभृगुकच्छाः सकोङ्कणाः ॥२१

तीन नक्षत्र आर्द्रा पुनर्वसु और पुष्य भी मुख में ही हैं । अब उनके दक्षिण पद में स्थित देशों का वर्णन करता हूँ ।१५। कलिंग दंग, जठर, कोशल, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण और मत्स्यादि जितने भी देश विन्ध्य पर्वत के समीपस्थ हैं ।१६। तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रु धारी ।१७। कैष्किन्ध्य, हेमकूट निषद, कटक स्थल, दशार्ण, हारिक, नग्न, काकुलालक ।१८। तथा पर्णशवर आदि सब देश और आश्लेषा, मघा और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र ।१९। उनके पूर्व दक्षिण पाद में स्थित हैं, लङ्का, कालोजित, शैलिक, निकट ।२०। महेन्द्र, मलग, और दर्दु र पर्वतो में स्थित जनपद तथा कर्कटक वन में बसे हूए सब देश, भृगुकच्छ, कौंकण ।२१।

सर्व्वाश्चैवतथाभीरावेण्यास्तीरनिवासिनः ।
अवन्तयोदासपुरास्तथैवाकारिणोजनाः ।२२
महाराष्ट्राः सकर्णाटागोनर्द्दाश्चित्रकूटकाः ।
चोलाः कोलगिराश्चैवक्रौंचद्वीपजटाधराः ।२३
कावेरो ऋष्यमूकस्थानासिक्याश्चैवयोजनः ।
शखशुक्त्यादिवैदूर्य्यशैलप्रान्तचराश्चगे ।२४

तथावारिचराः कोलाः श्चर्मपट्टनिवासिनः ।
गणाबाह्याः पराः कृष्णाद्वीपवासनिवासिनः ॥२५
सूर्याद्रौकुद्राद्रौचतेवसन्तितथाजनाः ।
रौद्रस्वनाः सपिशिकास्तथायेकर्मनायकाः ।२६
दक्षिणाः कौरुषायेचऋषिकास्तापसाश्रमाः ।
ऋषभाः सिंहलाश्चैवतथार्काचीनिवासिनः ।२७
तिलगाः कुञ्जरदरीकच्छवासाश्चयेजनाः ।
ताम्रपर्णीतथाकुक्षिरितिकूर्मस्यदक्षिणः ।२८

आभीर, वेण्यानदी के किनारे के सब देश अवन्ति, दासपुर, आकरिणी ।२२। महाराष्ट्र, कर्णाटकगोकर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरी, क्रौंच द्वीप, जटाधर ।२२। कावेरी तथा ऋष्यमूक के सब प्रदेश शंख शुक्ति आदि वैदूर्य शैल तथा उनके निकटस्थ ।२४। बरिचर कोल चर्मपट्ट तथा गणवाह्य और कृष्ण दीप में रहने वाले मनुष्य ।२५। सूर्याद्रि और कुमदाद्र इन पर्वतों के निवासी तथा रौद्र स्वर वाले, पिशिक और कर्मनायक ।२७। दक्षिण कौरुष, ऋषिक, तापसाश्रम, ऋषभ, सिंहल और कांची में निवास करने वाले, त्रिलङ्ग, कुंजर, दरी कच्छप, में रहने वाले मनुष्य एवं ताम्रपर्णी यह सभी कूर्म के दक्षिण पार्श्व में स्थित हैं ।२८।

फाल्गन्यश्चोत्तराहस्ताचित्राचक्षत्रत्रयं द्विज ।
कूर्मस्यदक्षिणेकुक्षौबाह्यपादस्तथापपम् ।२९
काम्बोजाः पहलवाश्चवतथवबडबामुखाः ।
तथाचसिन्धुसौवीराः सानर्त्तवनितामुखाः ।३०
द्रावणाः सार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधयवर्बराः ।
किराताः पारदः पाण्ड्यास्तथापारशवाः कलाः ।३१
धूर्त्तकाहैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः ।
सौराष्ट्रदरदाश्चैवद्राविडाश्चमहार्णवाः ।३२
एतेजनपदाः पादेस्थितावैदक्षिणोऽपरे ।
स्वात्योविशाखामैत्रंचनक्षत्रत्रयमेवच ।३३

मणिमेघः क्षुराद्रिश्चखंजनोऽतगिस्तथा ।
अपरान्तिकानौहयाश्चशान्तिकाविप्रशस्तकाः ।३४
कोंकणाः पञ्चनदकावननाह्य वरास्तथा ।
तारक्षुराह्य ंगतकाः कर्णराः शाल्मवेश्मकाः ।३५
गुरुश्वराःफल्नकावेणुमत्यांचयेजनाः ।
तथाफल्गुलुकाथोरागुरुहाश्च कवास्तथा ।३६
एकेक्षणावाजिकेशादीर्घग्रीवाः सचूलिकाः ।
अश्वकेशास्तथापुच्छेजनाः कूर्मस्यसंस्थिताः ॥३७

उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा यह तीन नक्षत्र कूर्म के दक्षिण पार्श्वमें ही हैं तथा वाह्य पाद।२९। काम्वोज, पह्लव, बडवामुख,सिन्धु सौवीर, आनर्त्त बनितासुख ।३०। द्रावेणु सार्गिग, शूद्र, कर्ण प्रांयश्वेय, खर्वर, किरात, पारद, पारश्व, कल ।३१। धूर्त्तक, हैमागिरिक, सिन्धु-कालक वैरत, सौराष्ट्र दरद महार्णव ।३२। यह समस्त जनपद कूर्म के दक्षिण पद में रहते हैं और स्वति, विशाखा और अनुराधा यह तीनों नक्षत्र इसमें निवास करने वालों व शुभाशुभ को व्यक्त करते रहते हैं ।३३। माणमेघ, शुराद्रि, खंजय, अस्ताचल, अपरन्तिक, हैहय शान्तिक, विप्राशतक ।३४। कोकण, पंचनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अङ्गतक, शङ्कुर, शाल्मल, ।३५। गुरुश्वर फाल्गुनक, वेणुमत्य, फाल्गलुक घीर, गुरुह कल तथा ।३३। एक नेत्र वाले वाजिकेशा, दीर्घ, कंठ सचूलिक तथा अश्वकेश इन सब देशों के निवासी कूर्म की पूँछ में स्थित हैं ।३७।

ऐन्द्रं मूलंतथाषाढानक्षत्रत्रयमेवच ।
माण्डव्याश्चंडखाराश्चअश्वकालनतास्तथा ॥३८
कुन्थतालडहाश्चैवस्त्रीबाह्यावालिकास्तथा ।
नृसिंहावेणुमत्यांचवलावस्थास्तथापरे ॥३९
धर्मवद्धास्तथालूकाउरुकर्मस्थिताजनाः ।
वामपादेजनाः पार्श्वेस्थिताः कूर्मस्यभागुरे ॥४०

आषाढाश्रवणेचैवधनिष्ठायत्रसंस्थिता ।
कैलासोहिमवांश्चैवधनुष्मान्वसुमांस्तथा ॥४१
कौंचाः कुरुवकाश्चैवक्षुद्रवीणाश्चयेजनाः ।
रसालयाः कैसकेयाभोगप्रस्थाः सयामुनाः ॥४२

ज्येष्ठ मूल और पूर्वाषाढा यह तीनों नक्षत्र भी कूर्म की पूँछ में ही रहते हैं। मान्डव्य, चन्डखार, अश्वकालनद एवं।३८। कुशात्त,लडह, स्त्री-ब्राह्य, बलिका, नृसिंह वेणुमती बलावस्था ।३९। धर्मवद्ध, उलूक ऊरुकर्म के निवासी मनुष्य यह सभी देश कूर्म के वामपद में अवस्थित हैं ।४०। तथा उत्तराषाडा, श्रवण और घनिष्ठा यह तीन नक्षत्र भी वामपद में स्थित हैं। कैलाश, हिमालय धनुष्मान् वसुमान् ।४१। कौंच, कुरुबक, क्षुरुवीण, रसालय, कंकय, भोगप्रस्थ, यामुन ।४२।

मन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्चअग्नीज्याः सार्दनाजनाः ।
तथैवाः श्वमुखाः प्राप्ताश्चिविडाः केशधारिणः ॥४३
दासेरकावाटधानाः शवधानास्तथैवच ।
पुष्कलाधर्मकैरातास्तथातक्षशिलांश्रयाः ॥४४
अम्बालामालवामद्रावेणुका, सवदन्तिकाः ।
पिङ्गलामानकलहाहूणाः कोहलकास्तथा ॥४५
माण्डव्याभूतियुवका, शातकाहेमतारकाः ।
यशोमत्या, सगान्धाराः खरसागरराशयः ॥४६
यौधेयादासमेयाश्चराजन्याः स्यामकास्तथा ।
क्षेमधूर्त्ताश्चकूर्मस्यवामंकुक्षिमुपाश्रिताः ॥४७
वारूणंचात्रनक्षत्रंतत्रप्रोष्ठपदाद्वयम् ।
येनकिन्नरराज्यंचपशुपालं सकीलकम् ॥४८
काश्मीरकंतथाराष्ट्रमभिसारजनस्तथा ।
दरदास्त्वंगणाश्चैवकुलटावनराष्ट्रकाः ॥४९
सैरिष्ठाब्रह्मपुरकास्तथैववनबाह्यकाः ।
किरातकौशिकानन्दाजनाः पह्लवलोलनाः ॥५०

अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्नीज्य: अर्द्द द, अश्वमुरा, प्रास चिविड़, केशधारी ।४३। दासेरक, वाटाधान, शवधान, पुष्कल, अधम कैरात, तक्षशिला ।४४। अस्वष्टा, मालव, मद्र, वेणुक, अदन्तिक, पिगाल, मानकलह, हूण कोहल ।४५। मान्डव्य, भूतियुवक, हेमतारक, यशोमत्य, गांधार'स्वरम, सागर राशि ।४६। यौधेय, दासनेय, राजन्य, श्यामक, क्षेमधूर्त यह सभी जनपद कर्भ के वाम पार्श्व में स्थित हैं ।४७। शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा यह तीनों नक्षत्र बर्हाक, शुभाशुभ फल व्यक्त करते हैं, जिधर राज्य पशुपाल, कीलक ।४८। काश्मीर, अभिमारजन, दरद, त्वगण, कूलर, वनरादक ।४९। सैरिष्ठ ब्रह्मपुर, वनवाह्यक, किरात, कौशिकानन्द पह्लव लोलन ।५०।

दार्वादामरकाश्चौवकुरटाश्चान्नदारकाः ।
एकपादाः खशाघोषाः स्वर्गं भौमानवद्यकाः ।५१
तथासयवनार्हिगाश्चीरप्रावरणाश्चये ।
त्रिनेत्राः पौरवाश्चौवगन्धर्वाश्चद्विजोत्तम ।।५२
पूर्वोत्तरंतुकूर्मस्यपादमेतेसमाश्रिताः ।
रेवत्याश्चाश्विदैवत्य याम्यं चक्षुमितित्रयम् ।५३
तत्रपादेसमाख्यातं पाकायमुनिसत्तन ।
देशेष्वेतेषु चौतानिनक्षत्राण्यपिवैद्विज ।५४
एतत्पीडाअमीदेसाः पीड्यन्तेयेक्रमोदिताः ।
यान्तिचाभ्युदयविप्रग्रहैः सम्यगवस्थितैः ।५५
यस्यर्क्षस्यपतियोवैग्रहस्तद्भावितोभयम् ।
तद्देशस्यमुनिश्रे ष्ठतदुत्कर्षेशुभागम ।५६

दार्वाद, मरक, कुरट, अन्न, दारक, एकपाद, खस, घोष, स्वर्गभौम अनवद्यक ।५१। तथा यवन, हिम, चीर आवरण, त्रिनेत्र, पौरव और गन्धर्व ।५२। यह सभी देश कूर्मके पूर्वोतर में स्थित हैं रेवती अश्विनी और भरणी यह तीन नक्षत्र उक्त देशों का शुभाशुभ सुखित करते हैं ।५३। हे मुनिश्रेष्ठ ! जो वर्णन मैंने आपसे कहा है उसी के अनुसार

उतने ही पर्वत उतने ही नक्षत्र, उतने ही देश और उतने ही मनुष्य हैं ।५४। हे ब्रह्मन् ! उक्त देशों में उक्त लक्षणों के कुपित होनेसे ही मनुष्यों को पीड़ा उत्पन्न होती है तथा जब वह श्रेष्ठ ग्रह से मिलते हैं तब मनुष्यों में सुख होता है ।५५। हे मुनिवर ! नक्षत्र का जो अधिपति है उसके कोप से उस देश के प्राणियों को दुःख या भय होता है तथा वही जब श्रेष्ठ स्थान में होता है तब शुभप्रद होता है ।५६।

प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् ।
भयंलोकस्यभवतिशोभनंवाद्विजोत्तमः ।५७
स्वक्षैरशोभनैर्जन्तोः सामान्यमितिभीतिदम् ।
ग्रहैर्भवतिपीडोत्यमल्पायासमशोभनम् ।।५८
तथैवशोभनः पाकोदुःस्थितैश्चतथाग्रहैः ।
अल्पोकारामनणांदेशज्ञश्चात्मतोबुधः ।५९
द्रव्येगोष्ठेऽथभृत्येषुसुहृत्सुतनयेषवा ।
भार्यायांग्रहे दुस्थेभयपुण्यवतांनृणाम् ।।६०
आत्मन्यथाल्पपुण्यानांसर्वत्रैवातिपापिनाम् ।
नैकत्रापिह्यपापानां भयमस्तिकदाचन ।।६१
दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् ।
नक्षत्रग्रहसामान्यंनरोभुङ्क्तेशुभाशुभम् ।।६२
परस्पराभिरक्षाचग्रहादौस्थ्येनजायते ।
एतेभ्यएवविप्रेन्द्रशुभहानिस्तथाशुभेः ।।६३

हे द्विजवर ! प्रत्येक देश में वहाँ के मनुष्यों के लिए नक्षत्र अथवा ग्रहके द्वारा भय अथवा सुख की प्राप्ति होती है ।५७। सभी मनुष्यों को सब देशों मे अपने अपने नक्षत्र के कोप से भय अथवा दुःख की प्राप्ति होती है ।५८। ग्रह के वक्र होने पर जिस भय की प्राप्ति होती है वह भय दूर करने के लिए मनुष्यों को जप, दानका उपदेश किया गया है। ग्रह के कुपित होने से पुन्यात्मा मनुष्य भी द्रव्य गोष्ठ भृत्य, सुहृद पुत्र, पत्नी आदि के सहित पीड़ित होते हैं ।६०। अल्प पुण्य वाले मनुष्य को शरीर पीड़ा और पापियों को ग्रह पीड़ा होती है, परन्तु पुन्यात्माओंको

तो यथार्थ में कोई भय प्राप्त नहीं होता ।६१। दिशा, देश, जनसाधारण, राजा से सुख, पुत्र तथा दुःख आदि की प्राप्ति सब कुछ ग्रह की अनुकूलता या प्रतिकूलता से होता है ।६२। हे विप्रेन्द्र ! ग्रह स्वस्थ रहे तो मनुष्य सुखी रहतेहैं और ग्रहों की अस्वस्थतासे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है ।६३।

यदेतत्कूर्मसंस्थानं नक्षत्रैषुमयोदितम् ।
तत्तत् देशसामान्यमशुभशुभमेवच ।६४
तस्माद्विज्ञातदेशर्क्षग्रहपीडांतथात्मनः ।
कुर्व्वतिशान्तिंमेधावीलोकवीलोकवाश्चसत्तम् ।।६५
आकाशाद्देवतानांचदैत्यादीनांचदोहृदा. ।
पृथ्व्यांपतिन्ततेलोकवादाइतिश्रुताः ।६६
तांतथैववूध कुर्याल्लोकवादान्नहापयेत् ।
तेषान्तत्करणानृणांयुक्तोदुष्टांगमक्षयः ।।६७
प्रयतानांमनुष्याणांग्रहक्षीत्थान्य शेषतः ।
एषकूर्मोसमाख्यातोभारतेभवान्विभुः ।।६८

नक्षत्रों सहित कूर्म भगवान् के संस्थान का यह वर्णन सब देशों में शुभाशुभ प्रदान करने वाला है ।६४। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि नक्षत्र और ग्रह से प्राप्त पीड़ा को जानकर उसके शमन करने का उपाय करे ।६५। आकाश से सुर-असुर का जो शत्रु-स्वर्गसे पतित होता है वही लोक बाद दोनों को शान्त करे क्योंकि इन्हीं के पतित होने से शुभ-अशुभ की प्राप्ति होती है ।६७। ग्रहों के कारण पवित्र पुरुषों को भी शुभ-अशुभ फल की प्राप्ति होती है । इस प्रकार भारतवर्ष में यह कूर्म भगवान् प्रतिष्ठित रहते हैं, जिनके विषय में तुम्हारे प्रति कहा ।६८।

नारायणोह्यचिन्त्यात्मायत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ।
तत्रदेवाःस्थिताःसर्वेप्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ।।६९
तथामध्येहुतवहःपृथ्वीसोमश्चैवैद्विज ।
मेषादयस्त्रयोमध्येमुखेद्वौमिथुनादिको ।।७०

प्राग्दक्षिणे तथा पादेकर्किसिहैहीव्यस्थितौ।
सिंहकन्यातुलाश्चेवकुक्षौराशित्रर्थस्थितम् ।७१
तुलाथवश्चिौभोपादेर्दक्षिणपश्चिमे।
पृष्ठे च वृश्चिकेनैवसहधन्वीव्यस्थितः ।७२
वायव्येचास्यवैपादेधनुर्ग्राहादिकत्रयम्।
कुम्भमीनौतथैवास्यउत्तराकुक्षिमाश्रितौ ।७३
मीनमेषौद्विजश्रेष्ठपादेपूर्वोत्तरेस्थितौ।
कर्मदेशास्तथाक्षाणिदेवेष्वेतेषूवैद्विज ।७४
राशयश्चतथर्क्षेषूग्रहराशिष्वस्थिताः।
तस्माद्ग्रहर्क्षपीड़ासुदेशपीडांविर्दिशेत् ।७५
तत्रस्नात्वाप्रकुर्वीतदानहोमादिक विधिम्।
सएषवैष्णवः पादोब्रह्मन्मध्येग्रहस्यवः ।।७६

यह कूर्म भगवान् अचिन्त्यात्मा है, इनमें ही सम्पूर्ण देवताओं और नक्षत्रों के अधिष्ठाता स्थित हैं ।६६। उनके मध्य में अग्नि, पृथ्वी एवं चन्द्रमा स्थित हैं मेघ आदि तीन राशियाँ उनके मध्य में ही हैं तथा मिथुनादि दो राशियाँ मुखमें अवस्थित हैं ।७०।कर्कट और सिंह राशि उनके पूर्व दक्षिण पद में निवास करती है, सिंह, कन्या और तुला यह तीनों राशि उनकी कुक्षि में स्थित हैं ।७१। तुला और वृश्चिक राशि दक्षिण पश्चिम चरण में विद्यमान है तथा वृश्चिक राशि उनके पृष्ठ भाग में है ।७२। धनु आदि तीन राशियाँ वायस पद में और कुम्भ मीन उनकी उत्तर कुक्षि में अवस्थित हैं ।७३। हे द्विजवर ! मीनमेष पूर्वोत्तर में स्थित है इस कर्म में देश तथा देश में नक्षात्र ।७३। नक्षात्र में राशि और ग्रह तथा ग्रह में राशि अवस्थित हैं, इसलिए ग्रह और नक्षात्र से पीड़ित होने पर देश में ही पीड़ा उपस्थित समझनी चाहिये।७५। देशमें पीड़ा आदि के उपस्थित होने पर स्नान,दान हवन आदि सब नियमोंको करे तथा जो विष्णु के पदरूपी यह ब्रह्माजी ग्रहोंके मध्यमें अवस्थितहैं।

।। श्री मार्कण्डेय पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ।।





G.N. Mujoo
39, KARAN NAGAR
JAMMU

पुराणों का वृहद् प्रकाशन

(सरल हिन्दी अनुवाद सहित)

१—शिव पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
२—विष्णु पुराण	१ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
३—मार्कण्डेय पुराण	१ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
४—गरुड़ पुराण	१ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
५—हरिवंश पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
६—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३५)
७ भविष्य पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
८—लिंग पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
९—पद्म पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
१०—कूर्म पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
११—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३५)
१२—स्कन्द पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
१३—ब्रह्म पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
१४ नारद पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
१५ कालिका पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
१६—वामन पुराण	१ खण्ड (भा.टी.)	—	३६)
१७—अग्नि पुराण	१ खण्ड (भा.टी.)	...	३६)
१८—ब्रह्माण्ड पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३६)
१९—कल्कि पुराण	(भा.टी.)	—	१८)
२०—सूर्य पुराण	(भा.टी.)	—	१८)
२१—आत्म पुराण (भाषा)		—	१८)
२२—गणेश पुराण (भाषा)		—	१८
२३—महाभारत (भाषा)		—	१८)
२४—श्रीमदभागवत सप्ताह कथा (भाषा)		—	३०)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब वेदनगर
बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)